दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास

गांधीजी

अनुवादक
सोमेश्वर पुरोहित



नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अहमदाबाद–१४

मुद्रक और प्रकाशक
शातिलाल हरजीवन शाह
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–१४

प्रथम संस्करण २०००

रु० ५.००

जनवरी, १९६८

प्रकाशकका निवेदन

गांधीजीकी 'आत्मकथा' के बाद जिसका नंबर आता है, ऐसी उनकी दूसरी पुस्तक है दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका यह महत्त्वपूर्ण इतिहास। यह इतिहास उन्होंने 'आत्मकथा' की तरह मूल गुजरातीमें ही लिखा था। इस ग्रन्थका केवल इतना ही महत्त्व नहीं है। इसमें गांधीजीके चरित्र-निर्माणके सबसे महत्त्वपूर्ण समयका तथा सत्याग्रहकी उनकी शोधके समयका इतिहास भी स्वयं उन्हींकी लेखनीसे लिखा हुआ मिलता है। जब कभी गांधीजीके जीवनमें अपनी आत्माकी गहराईमें उतर कर सोचने-समझनेका अवसर आता था, तब वे अकसर दक्षिण अफ्रीकाके अपने जीवन-कालकी बातों और वहांके अनुभवोंका स्मरण करते थे। इस ग्रन्थमें इतना महत्त्वपूर्ण इतिहास भरा हुआ है। यह इतिहास, 'आत्मकथा' की तरह ही, 'नवजीवन' में साप्ताहिक मालाके रूपमें छपा था और बादमें पुस्तकके रूपमें प्रकाशित किया गया था।

श्री वालजीभाई देसाईने इस पुस्तकका अंग्रेजी अनुवाद किया है। यह अनुवाद करते समय उन्होंने 'इंडियन ओपीनियन' की पुरानी फाइलें देखकर इस इतिहासकी कितनी ही तफसीलोंकी जांच की थी और ऐसा करते समय उन्हें मूलमें जहां जहां संशोधन या परिवर्धन करना जरूरी लगा वहां वहां अंग्रेजी अनुवादमें उन्होंने कर लिया था। यह अंग्रेजी अनुवाद गांधीजी स्वयं देख गये थे। उसमें किये गये सभी संशोधन या परिवर्धन इस हिन्दी अनुवादमें भी यथास्थान कर दिये गये हैं।

इस इतिहासकी विशेष महत्त्वपूर्ण तारीखें अंतमें यदि दी जायं तो अभ्यासियोंके लिए वे उपयोगी सिद्ध होंगी, ऐसा समझ कर वे तारीखें अंतमें परिशिष्ट – १ में दी गई हैं।

दूसरी एक बातकी ओर पाठकोंका ध्यान खींचना हमें जरूरी लगता है। स्व० श्री रावजीभाई मणिभाई पटेल इस सत्याग्रहकी लड़ाईके एक सैनिक थे। उन्होंने उस समयके अपने संस्मरण 'गांधीजीकी साधना' नामक पुस्तकमें लिखे हैं। उसकी प्रस्तावनामें उन्होंने एक बातका उल्लेख

किया है। वह इस पुस्तकके पृष्ठ ३१७–१८ पर छपी उस घटनासे सम्बन्ध रखती है, जिसमें बताया गया है कि पूज्य कस्तूरबा दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहकी लड़ाईमें कैसे शरीक हुई थी। अपनी उपर्युक्त पुस्तककी प्रस्तावनामें श्री रावजीभाईने इस प्रकार लिखा है :

"इस नई आवृत्तिमें पूज्य बाके अवसानके बाद एक प्रश्न खड़ा हुआ है, जिसके सम्बन्धमें स्पष्टता करना जरूरी है।

"दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहकी अंतिम लड़ाईमें पू० बा सम्मिलित हों इसके लिए बापूजीने जो प्रयत्न किया था, उसका वर्णन मैंने अपनी पुस्तकके 'शुभ आरंभ' नामक प्रकरणमें किया है। इसी प्रकरणके सम्बन्धमें थोड़ी स्पष्टता यहां करना जरूरी है। 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास' में बापूजीने इस बारेमें कुछ अलग ढंगसे लिखा है। वे लिखते हैं कि सत्याग्रहकी लड़ाईमें जब स्त्रियोंको शामिल करनेकी बात सोची गई तब मैंने सबसे पहले श्री छगनलाल गांधीकी पत्नी काशीबहन और श्री मगनलाल गांधीकी पत्नी संतोकबहनसे बात की और उन्हें तैयार किया; उसके बाद बा उसमें शामिल हुई। परन्तु अपनी पुस्तक 'गांधीजीकी साधना' के प्रकरण पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेसे पहले मैंने बापूजीके सामने पढ़े, उस समय बापूजीकी स्मृतिकी एक भूलकी ओर उनका ध्यान खींचा और अपनी पुस्तकके प्रकरणमें वर्णित घटनाके सही होनेका उन्हें विश्वास दिलाया। बापूजी भी गहरे सोचमें पड़ गये। उन्होंने बाकी साक्षीके आधार पर इस विषयमें कोई निर्णय करना ठीक समझा। बाको बुलाकर बापूजीने हमारी दोनोंकी बात उनके सामने रखी। बाने कहा कि, 'रावजीभाईकी सारी बात सच है। वह समूची घटना मुझे इतनी स्पष्ट याद है, मानो कल सवेरे ही घटी हो।' इस पर बापूजीने कहा, तब तो मेरी भूल हुई है। 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास' की नई आवृत्तिमें यह भूल सुधारनी होगी।"

पाठक देखेंगे कि श्री रावजीभाईने इस प्रसंगके विषयमें अपनी 'गांधीजीकी साधना' नामक पुस्तकके 'शुभ आरंभ' प्रकरणमें जो कुछ

लिखा है, वह गांधीजी द्वारा 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास' में लिखी गई बातसे भिन्न है। श्री रावजीभाईके उस प्रकरणका सम्बन्धित भाग इस ग्रन्थके अंतमें परिशिष्ट–२ में उद्धृत किया गया है। उसके आधार पर इस ग्रन्थकी नई आवृत्तिमें सुधार कर लेनेकी बात गांधीजीने सोची थी। परन्तु उनके जीवन-कालमें वह संभव नहीं हुआ। इसलिए इस निवेदनमें उसका उल्लेख करके ही हमने सन्तोष माना है। पाठकोंसे हमारी विनती है कि इस ग्रन्थमें उपर्युक्त घटनाका वर्णन पढ़ते समय वे श्री रावजीभाईका उससे सम्बन्धित चित्रण भी परिशिष्ट–२ में पढ़ें।

गांधीजीके जीवन-कार्य तथा सत्याग्रहकी शोधकी दृष्टिसे ऐतिहासिक महत्त्व रखनेवाले इस ग्रन्थको हिन्दीमें प्रकाशित करते हुए हमें आनन्द हो रहा है। आशा है, विद्यालयों और महाविद्यालयोंमें तथा सामान्य पाठकोंमें भी इसका हार्दिक स्वागत होगा और केवल साहित्यिक दृष्टिसे भी इस मौलिक इतिहास-ग्रन्थका आदर होगा।

१५–१–'६८

प्रास्ताविक

१

दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानियोंकी सत्याग्रहकी लड़ाई आठ वर्ष तक चली। 'सत्याग्रह' शब्दकी खोज उसी लड़ाईके सिलसिलेमें हुई और उसी लड़ाईके लिए इस शब्दका प्रयोग किया गया था। बहुत समयसे मेरी यह इच्छा थी कि उस लड़ाईका इतिहास मैं अपने हाथसे लिखूं। उसकी कुछ बातें तो केवल मैं ही लिख सकता हूं। कौनसी बात किस हेतुसे की गई थी, यह तो उस लड़ाईका संचालन करनेवाला ही जान सकता है। और राजनीतिक क्षेत्रमें यह प्रयोग बड़े पैमाने पर दक्षिण अफ्रीकामें पहला ही हुआ था; इसलिए उस सत्याग्रहके सिद्धान्तके विकासके बारेमें लोग जानें, यह किसी भी समय आवश्यक माना जायगा।

परन्तु इस समय तो हिन्दुस्तानमें सत्याग्रहका विशाल क्षेत्र है। हिन्दुस्तानमें वीरमगामकी जकातकी छोटीसी लड़ाईसे सत्याग्रहका अनिवार्य क्रम आरंभ हुआ है।

वीरमगामकी जकातकी लड़ाईका निमित्त था वढ़वाणका एक साधु-चरित परोपकारी दरजी मोतीलाल। विलायतसे लौट कर मैं १९१५ में काठियावाड़ (सौराष्ट्र) जा रहा था। रेलके तीसरे दरजेमें बैठा था। वढवाण स्टेशन पर यह दरजी अपनी छोटीसी टुकड़ीके साथ मेरे पास आया था। वीरमगामकी थोड़ी बात करके उसने मुझसे कहा:

"आप इस दुःखका कोई उपाय करें। काठियावाड़में आपने जन्म लिया है — यहां आप उसे सफल बनायें।" उसकी आंखोंमें दृढ़ता और करुणा दोनों थीं।

मैंने पूछा: "आप लोग जेल जानेको तैयार हैं?"

तुरन्त उत्तर मिला: "हम फांसी पर चढ़नेको भी तैयार हैं!"

मैंने कहा: "मेरे लिए तो आपका सिर्फ जेल जाना ही काफी है। लेकिन देखना, विश्वासघात न हो।"

मोतीलालने कहा· "यह तो अनुभव ही बतायेगा।"

मैं राजकोट पहुंचा। वहां इस सम्बन्धमें अधिक जानकारी हासिल की। सरकारके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया। वगसरा वगैरा स्थानों पर मैंने जो भाषण दिये, उनमें वीरमगामकी जकातके बारेमें आवश्यक होने पर लोगोंको सत्याग्रह करनेके लिए तैयार रहनेकी सूचना मैंने की। सरकारकी वफादार खुफिया पुलिसने मेरे इन भाषणोंको सरकारी दफ्तर तक पहुंचा दिया। पहुंचानेवाले व्यक्तिने सरकारकी सेवाके साथ अनजाने ही राष्ट्रकी भी सेवा की। अन्तमें लॉर्ड चेम्सफोर्डके साथ इस सम्बन्धमें मेरी चर्चा हुई और उन्होंने अपना दिया हुआ वचन पाला। मैं जानता हूं कि दूसरोंने भी इस विषयमें प्रयत्न किया। परन्तु मेरा यह दृढ़ मत है कि इसमें से सत्याग्रह शुरू होनेकी संभावनाको देख कर ही वीरमगामकी जकात रद की गई।

वीरमगामकी जकातकी लड़ाईके बाद गिरमिटका कानून (इंडियन इमिग्रेशन एक्ट) आता है। इस कानूनको रद करानेके लिए अनेक प्रयत्न किये गये थे। इस लड़ाईके सम्बन्धमें अच्छा खासा सार्वजनिक आन्दोलन चला था। बम्बईमें हुई सभामें गिरमिटकी प्रथा बन्द करनेकी अन्तिम तारीख ३१ मई, १९१७ निश्चित की गई थी। यह तारीख कैसे निश्चित हुई, इसका इतिहास यहां नहीं दिया जा सकता। गिरमिट कानूनकी लड़ाईके सम्बन्धमें वाइसरॉयके पास पहला डेप्युटेशन (शिष्ट-मण्डल) महिलाओंका गया था। उसमें मुख्य प्रयास किसका था, यह तो बताना ही होगा। वह प्रयास चिरस्मरणीया बहन जाईजी पिटीटका था। उस लड़ाईमें भी केवल सत्याग्रहकी तैयारीसे ही विजय मिल गई। परन्तु यह भेद याद रखने जैसा है कि इस लड़ाईके बारेमें सार्वजनिक आन्दोलनकी जरूरत पड़ी थी। गिरमिट प्रथाको रद करनेकी बात वीरमगामकी जकात रद करनेसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थी। रौलट एक्टके बाद भूलें करनेमें लॉर्ड चेम्सफोर्डने कोई कसर नहीं रखी। इसके बावजूद मुझे आज भी ऐसा लगता है कि वे एक सयाने और समझदार वाइसरॉय थे। सिविल सर्विसके स्थायी अधिकारियोंके पंजेसे आखिर तक भला कौनसा वाइसरॉय बच सका है?

तीसरी लड़ाई चम्पारनकी थी। उसका विस्तृत इतिहास राजेन्द्रबाबूने लिखा है। उसके लिए सत्याग्रह करना पड़ा, केवल तैयारी काफी साबित नही हुई। परन्तु विरोधी पक्षका स्वार्थ कितना बड़ा था? यह बात उल्लेखनीय है कि उस सत्याग्रहमें चम्पारनके लोगोंने खूब शान्ति रखी। इसका साक्षी मैं हूं कि सारे ही नेताओंने मनसे, वचनसे और कायासे संपूर्ण शान्ति रखी। यही कारण है कि चम्पारनकी यह सदियों पुरानी बुराई छह मासमें दूर हो गई।

चौथी लड़ाई थी अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी। उसका इतिहास गुजरात न जाने तो दूसरा कौन जानेगा? उस लडाईमे मजदूरोंने कितनी शान्ति रखी? नेताओके बारेमें तो मैं भला क्या कहूं? फिर भी उस विजयको मैंने दोषयुक्त माना है; क्योंकि मजदूरोंकी टेककी रक्षाके लिए मैंने जो उपवास किया, वह मिल-मालिकों पर दबाव डालनेवाला था। उनके और मेरे बीच जो स्नेह था, उसके कारण मेरे उपवासका असर मिल-मालिकों पर पड़े बिना रह ही नहीं सकता था। ऐसा होते हुए भी उस लड़ाईकी सीख तो स्पष्ट है। मजदूर शांतिसे अपनी टेक पर डटे रहते, तो उनकी विजय अवश्य होती और वे मिल-मालिकोंका मन जीत लेते। लेकिन वे मालिकोंका मन नहीं जीत सके, क्योंकि वे मन, वचन, कायासे निर्दोष — शांत रहे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर इस लड़ाईमें वे कायासे शांत रहे, यह भी बहुत बड़ी बात मानी जायगी।

पांचवीं लड़ाई खेड़ाकी थी। उसमें सारे नेताओंने शुद्ध सत्यकी रक्षा की, ऐसा तो मैं नहीं कह सकता। शांतिकी रक्षा जरूर हुई। किसानोंकी शांति कुछ हद तक अहमदाबादके मजदूरोंकी तरह केवल कायिक शांति ही थी। उससे केवल मान और प्रतिष्ठाकी रक्षा हुई। लोगोंमे भारी जागृति पैदा हुई। परन्तु खेड़ाने पूरी तरह शांतिका पाठ नही सीखा था; और अहमदाबादके मजदूर शांतिके शुद्ध स्वरूपको समझे नही थे। इससे रौलट एक्टके सत्याग्रहके समय लोगोंको कष्ट उठाना पड़ा, मुझे अपनी हिमालय जैसी बड़ी भूल स्वीकार करनी पड़ी और उपवास करना तथा दूसरोंसे करवाना पड़ा।

छठी लड़ाई थी रौलट एक्टकी। उसमें हमारे भीतरके दोष बाहर उभर आये। परन्तु हमारा मूल आधार सच्चा था। सारे ही दोष हमने स्वीकार किये; उनके लिए प्रायश्चित्त भी किया। रौलट एक्टका अमल कभी नहीं हो सका और अन्तमें वह काला कानून रद भी कर दिया गया। इस लड़ाईने हमें बहुत बड़ा सबक सिखाया।

सातवीं लड़ाई थी खिलाफतकी, पंजाबके अत्याचारोंकी और स्वराज्य प्राप्त करनेकी। यह लड़ाई आज भी चल रही है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इसमें एक भी सत्याग्रही यदि अन्त तक डटा रहे, तो हमारी विजय निश्चित है।

परन्तु आज जो लड़ाई चल रही है, वह तो महाभारतके जैसी है। इसकी तैयारी अनिच्छासे कैसे हुई, इस बातका क्रम मैं ऊपर बता चुका हूं। वीरमगामकी जकातकी लड़ाईके समय मुझे इस बातका पता नहीं था कि दूसरी लड़ाइयां भी आगे चल कर मुझे लड़नी होंगी। और वीरमगामकी लड़ाईके बारेमें भी दक्षिण अफ्रीकामें मैं कुछ नहीं जानता था। सत्याग्रहकी खूबी यही है। वह स्वयं हमारे पास चला आता है; हमें उसे खोजने नहीं जाना पड़ता। यह गुण सत्याग्रहके सिद्धान्तमें ही निहित है। जिसमें कुछ गुप्त नहीं है, जिसमें कोई चालाकीकी बात नहीं है और जिसमें असत्य तो हो ही नहीं सकता, ऐसा धर्मयुद्ध अनायास ही आता है; और धर्मी (धर्म-परायण) मनुष्य उसके लिए सदा तैयार ही रहता है। जिस युद्धकी योजना पहलेसे करनी पड़े, वह धर्मयुद्ध नहीं है। धर्मयुद्धकी योजना करनेवाला और उसे चलानेवाला ईश्वर है। वह युद्ध ईश्वरके नाम पर ही चल सकता है और जब सत्याग्रहीके सारे आधार ढीले पड़ जाते हैं, वह सर्वथा निर्बल हो जाता है और उसके चारों ओर घोर अन्धकार फैल जाता है, तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है। मनुष्य जब रजकणसे भी अपनेको नीचा मानता है तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है। निर्बलको ही राम बल देता है।

इस सत्यका अनुभव तो अभी हमें होना बाकी है। इसलिए मैं मानता हूं कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास हमारे लिए सहायक सिद्ध होगा।

पाठक देखेंगे कि वर्तमान लड़ाईमें आज तक हमें जो जो अनुभव हुए हैं, उनसे मिलते-जुलते अनुभव दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहमें हुए थे। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास हमें यह भी बतायेगा कि अभी तक हमारी इस लड़ाईमें निराशाका एक भी कारण पैदा नहीं हुआ है। विजय प्राप्त करनेके लिए इतना ही आवश्यक है कि हम अपनी योजना पर दृढ़तासे डटे रहें।

यह प्रस्तावना मैं जूहूमें लिख रहा हूं। इस इतिहासके प्रथम ३० प्रकरण मैंने यरवडा जेलमें लिखे थे। मैं बोलता गया था और भाई इन्दुलाल याज्ञिक लिखते गये थे। बाकी रहे प्रकरण मैं आगे लिखनेकी आशा रखता हूं। जेलमें मेरे पास आधारोंके लिए कोई सन्दर्भ-ग्रन्थ नहीं थे। यहां भी मैं ऐसी पुस्तकें एकत्र करनेकी इच्छा नहीं रखता। ब्योरेवार विस्तृत इतिहास लिखनेका न तो मेरे पास समय है, न इसके लिए मुझमें उत्साह या इच्छा है। यह इतिहास लिखनेमें मेरा उद्देश्य इतना ही है कि हमारी वर्तमान लड़ाईमें यह सहायक सिद्ध हो और कोई फुरसतवाला साहित्य-विलासी दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका ब्योरेवार इतिहास लिखे, तो उसके कार्यमें मेरा यह प्रयत्न मार्गदर्शक बन सके। यद्यपि यह पुस्तक मैं बिना किसी आधारके लिख रहा हूं, फिर भी मेरी विनती है कि कोई पाठक यह न समझे कि इसमें एक भी घटना अनिश्चित है या एक भी स्थान पर अतिशयोक्ति है।

जूहू, बुधवार,
० १९८०, फागुन वदी
अप्रैल, १९२४

२

पाठक यह जानते हैं कि उपवासके कारण और अन्य कारणोंसे मैं दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास आगे लिख नहीं पाया था। 'नवजीवन' के इस अंकसे मैं फिर यह इतिहास लिखना आरम्भ करता हूं। आशा है कि अब मैं इसे बिना किसी विघ्न-बाधाके पूरा कर सकूंगा।

इस इतिहासके स्मरणोंसे मैं देखता हूं कि हमारी आजकी स्थितिमें ऐसी एक भी बात नहीं है, जिसका छोटे पैमाने पर मुझे दक्षिण अफ्रीकामें अनुभव न हुआ हो। सत्याग्रहके आरम्भमें यही उत्साह, यही एकता और यही आग्रह वहां देखनेको मिला था; मध्यमें यही निराशा, यही अरुचि और ये ही आपसी झगड़े और ईर्ष्या-द्वेष; और फिर भी मुट्ठीभर लोगोंमें अविचल श्रद्धा, दृढ़ता, त्याग और सहिष्णुताके दर्शन होते थे। ऐसी ही अनेक प्रकारकी सोची-अनसोची मुसीबतें वहां भी सामने आई थी। हिन्दुस्तानकी लड़ाईका अन्तिम काल अभी बाकी है। उस अन्तिम कालमें मैं यहां भी यही स्थिति देखनेकी आशा रखता हूं, जिसका अनुभव मैं दक्षिण अफ्रीकामें कर चुका हूं। दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईका अन्तिम काल पाठक अब आगे देखेंगे। उसमें यह बताया जायगा कि किस प्रकार हमें बिन-मांगी मदद मिल गई, कैसे हिन्दुस्तानी लोगोंमें अनायास उत्साह आ गया और अन्तमें हिन्दुस्तानियोंकी संपूर्ण विजय उस लड़ाईमें कैसे हुई।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जैसा दक्षिण अफ्रीकामें हुआ था वैसा ही यहां भी होगा; क्योंकि तपस्या पर, सत्य पर, अहिंसा पर मेरी अटल और अविचल श्रद्धा है। मेरा अक्षरशः यह विश्वास है कि सत्यका पालन करनेवाले मनुष्यके सामने सारे जगतकी सम्पत्ति आकर खड़ी हो जाती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके निकट वैरभाव नहीं रह सकता — इस वचनको भी मैं अक्षरशः सत्य मानता हूं। मैं इस सूत्रका उपासक हूं कि जो लोग दुःख सहन करते हैं, उनके लिए इस दुनियामें कुछ भी असम्भव नहीं है। कितने ही सेवकोंमें मैं इन तीनों बातोंका सुमेल और समन्वय सधा हुआ देखता हूं। उनकी साधना कभी निष्फल हो ही नहीं सकती, ऐसा मेरा निरपवाद अनुभव है।

लेकिन कोई कहेगा कि दक्षिण अफ्रीकामें मिली सम्पूर्ण विजयका अर्थ तो इतना ही है कि हिन्दुस्तानी वहां जैसे थे वैसे ही रह गये। ऐसा कहनेवाला व्यक्ति अज्ञानी कहा जायगा। अगर दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रहकी लड़ाई न लड़ी गई होती, तो आज न केवल दक्षिण अफ्रीकासे बल्कि सारे ब्रिटिश उपनिवेशोंसे हिन्दुस्तानियोंके पैर उखड़ जाते और उनकी खोज-खबर लेनेवाला भी कोई न होता। लेकिन यह उत्तर पर्याप्त

या संतोषकारक नहीं माना जायगा। यह तर्क भी किया जा सकता है कि यदि सत्याग्रह न किया गया होता और यथासंभव समझाइससे काम लेकर संतोष मान लिया गया होता, तो आज जो स्थिति हिन्दुस्तानियोंकी दक्षिण अफ्रीकामें है वह न हुई होती। यद्यपि इस तर्कमें कोई सार नहीं है, फिर भी जहा केवल तर्कों और अनुमानोंके ही प्रयोग हों, वहा यह कहना कठिन होता है कि किसके तर्क अथवा किसके अनुमान उत्तम है। अनुमान लगानेका सबको अधिकार है। परन्तु जिसका उत्तर न दिया जा सके ऐसी बात तो यह है कि जिस शस्त्रसे जो वस्तु प्राप्त की जाती है, उसी शस्त्रसे उस वस्तुकी रक्षा की जा सकती है।

'काबे'[1] अर्जुन लूटियो वही धनुष वही बाण।'

जिस अर्जुनने शिवजीको पराजित किया, जिसने कौरवोंका सारा मद उतार दिया, वही अर्जुन जब कृष्णरूपी सारथिसे रहित हो गया तब वह लुटेरोंकी एक टोलीको अपने गांडीव धनुषसे हरा नहीं सका! यही बात दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियों पर भी चरितार्थ होती है। अभी भी वे संग्राममें जूझ रहे हैं। परन्तु जिस सत्याग्रहके बल पर वे विजयी हुए थे, उस शस्त्रको यदि वे खो बैठे हों, तो अंतमें बाजी हार जायेंगे। सत्याग्रह उनका सारथि था; और वही सारथि लड़ाईमें उनकी सहायता कर सकता है।

नवजीवन, ५-७-'२५ मो० क० गांधी

---

१. लुटेरोंने।

अनुक्रमणिका

दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास

प्रथम खण्ड

१

भूगोल

अफ्रीका संसारके बड़ेसे बड़े महाद्वीपोंमें से एक है। हिन्दुस्तान भी एक महाद्वीपके जैसा देश माना जाता है। परन्तु अफ्रीकाके भूभागमें से केवल क्षेत्रफलकी दृष्टिसे चार या पाच हिन्दुस्तान बन सकते हैं। दक्षिण अफ्रीका अफ्रीकाके ठेठ दक्षिण विभागमें स्थित है। हिन्दुस्तानके समान अफ्रीका भी एक प्रायद्वीप ही है। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाका बड़ा भाग समुद्रसे घिरा हुआ है। अफ्रीकाके बारेमें सामान्यतः यह माना जाता है कि वहा ज्यादासे ज्यादा गरमी पड़ती है; और एक दृष्टिसे यह बात सच है। भूमध्य-रेखा अफ्रीकाके मध्यसे होकर जाती है और इस रेखाके आसपासके देशोंमें पड़नेवाली गरमीकी कल्पना हिन्दुस्तानके लोगोंको नहीं आ सकती। ठेठ हिन्दुस्तानके दक्षिणमें जिस गरमीका अनुभव हम करते हैं, उससे हमें भूमध्य-रेखाके आसपासके प्रदेशोंकी गरमीकी थोडी कल्पना हो सकती है। परन्तु दक्षिण अफ्रीकामें ऐसा कुछ नही है, क्योंकि वह भूभाग भूमध्य-रेखासे बहुत दूर है। उसके बहुत बडे भागकी आबहवा इतनी सुन्दर और ऐसी समशीतोष्ण है कि वहा यूरोपकी जातियां आरामसे रह-बस सकती हैं, जब कि हिन्दुस्तानमें बसना उनके लिए लगभग असभव है। फिर, दक्षिण अफ्रीकामें तिब्बत अथवा काश्मीर जैसे बड़े ऊचे प्रदेश तो हैं, परन्तु वे तिब्बत अथवा काश्मीरकी तरह दससे चौदह हजार फुट ऊचे नही है। इसलिए वहाकी आबहवा सूखी और सहन हो सके इतनी ठडी रहती है। यही कारण है कि दक्षिण अफ्रीकाके कुछ भाग क्षयसे पीड़ित रोगियोंके लिए अति उत्तम माने जाते हैं। ऐसे भागोंमें से एक भाग दक्षिण अफ्रीकाकी सुवर्णपुरी जोहानिसबर्ग है। जमीनके जिस टुकड़े पर जोहानिसबर्ग शहर बसा हुआ है, वह आजसे ५० वर्ष पहले बिल्कुल वीरान और सूखे घासवाला प्रदेश था। परन्तु जब वहां सोनेकी खदानोंकी खोज हुई तब मानो जादूके प्रतापसे टपाटप घर बाधे

जाने लगे; और आज तो वहां असंख्य विशाल सुशोभित प्रासाद खड़े हो गये हैं। वहांके धनी लोगोंने स्वयं पैसा खर्च करके दक्षिण अफ्रीकाके उपजाऊ भागोंसे और यूरोपसे भी, एक एक पेड़के पन्द्रह पन्द्रह रुपये देकर, पेड़ मंगाये हैं और वहां लगाये हैं। पिछला इतिहास न जाननेवाले यात्रीको आज वहां जाने पर ऐसा ही लगेगा कि ये पेड़ उस शहरमें जमानोंसे चले आ रहे होंगे।

दक्षिण अफ्रीकाके सारे विभागोंका वर्णन मैं यहां नहीं देना चाहता। जिन विभागोंका हमारे विषयके साथ सम्बन्ध है, उन्हींका थोड़ा वर्णन मैं यहां देता हूं। दक्षिण अफ्रीकामें दो हुकूमतें हैं: (१) ब्रिटिश, और (२) पुर्तगाली। पुर्तगाली भाग डेलागोआ बे कहा जाता है। हिन्दुस्तानसे जानेवाले जहाजोंके लिए वह दक्षिण अफ्रीकाका पहला बन्दरगाह कहा जायगा। वहांसे दक्षिणकी ओर आगे बढ़ें तो पहला ब्रिटिश उपनिवेश नेटाल आता है। उसका बन्दरगाह पोर्ट नेटाल कहलाता है। परन्तु हम उसे डरबनके नामसे जानते हैं और दक्षिण अफ्रीकामें भी सामान्यतः वह इसी नामसे जाना जाता है। वह नेटालका सबसे बड़ा शहर है। पीटर-मेरित्सबर्ग नेटालकी राजधानी है। वह डरबनसे अन्दरके भागमें लगभग ६० मीलके अन्तर पर समुद्रकी सतहसे लगभग दो हजार फुटकी ऊंचाई पर बसी हुई है। डरबनकी आबहवा कुछ हद तक बम्बईकी आबहवासे मिलती-जुलती मानी जायगी। बम्बईकी अपेक्षा वहांकी हवामें ठंडक जरूर कुछ अधिक है। नेटालको छोड़ कर आगे जाने पर ट्रान्सवाल आता है। ट्रान्सवालकी धरती आज दुनियाको अधिकसे अधिक सोना देती है। कुछ ही वर्ष पूर्व वहां हीरेकी खदानें भी मिली हैं, जिनमें से एकमें संसारका सबसे बड़ा हीरा निकला है। संसारके इस सबसे बड़े हीरेका नाम खदानके मालिक कलीननके नाम पर रखा गया है। यह कलीनन हीरा कहा जाता है। इस हीरेका वजन ३००० कैरेट अर्थात् १$\frac{3}{4}$ एवोईर्डुपोइज पौंड है; जब कि कोहिनूर हीरेका आजका वजन लगभग १०० कैरेट है और रूसके ताजके हीरे 'ऑर्लफ' का वजन लगभग २०० कैरेट है।

यद्यपि जोहानिसबर्ग सुवर्णपुरी है और हीरोंकी खदानें भी उसके निकटमें ही हैं, फिर भी वह ट्रान्सवालकी राजधानी नहीं है। ट्रान्सवालकी

राजधानी है प्रिटोरिया। वह जोहानिसबर्गसे ३६ मील दूर है और उसमें मुख्यतः शासक और राजनीतिक लोग तथा उनसे सम्बन्धित लोग ही रहते हैं। इस कारणसे प्रिटोरियाका वातावरण तुलनामें शान्त कहा जायगा, जब कि जोहानिसबर्गका वातावरण अतिशय अशान्त माना जायगा। जिस प्रकार हिन्दुस्तानके किसी छोटेसे गांवसे या कहिये कि छोटेसे शहरसे बम्बई पहुंचते ही वहांकी दौड़धूप, धांधली और अशान्तिसे आदमी घबरा उठता है, उसी प्रकार प्रिटोरियासे जानेवाला आदमी जोहानिसबर्गके दृश्यसे घबरा उठता है। जोहानिसबर्गके नागरिक चलते नही परन्तु दौड़ते-से मालूम होते हैं, ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। किसीके पास किसीकी ओर देखने जितना भी समय नही होता; सब कोई इसी विचारमें डूबे हुए मालूम होते हैं कि कमसे कम समयमें ज्यादासे ज्यादा धन कैसे कमाया जा सकता है! ट्रान्सवालको छोड़ कर यदि अधिक भीतरी प्रदेशमें ही पश्चिमकी ओर हम जायें, तो ऑरेंज फ्री स्टेट अथवा ऑरेंजियाका उपनिवेश आता है। उसकी राजधानीका नाम ब्लूमफोंटीन है। वह अत्यन्त शान्त और छोटासा शहर है। ऑरेंजियामें ट्रान्सवालकी तरह सोने और हीरेकी खदानें नही हैं। उस उपनिवेशमें थोड़े घंटोंकी रेलयात्रा करनेके बाद ही हम केप कॉलोनीकी सीमा पर पहुच जाते हैं। केप कॉलोनी दक्षिण अफ्रीकाका सबसे बड़ा उपनिवेश है। उसकी राजधानी केप टाउन-के नामसे पुकारी जाती है, जो केप कॉलोनीका सबसे बड़ा बन्दरगाह है। वह केप ऑफ गुड होप ('शुभ आशाका अन्तरीप') नामक अन्तरीप पर स्थित है। उसका यह नाम पुर्तगालके राजा जॉनने रखा था, क्योंकि वास्को डी गामा द्वारा उसकी खोज होने पर राजाके मनमें यह आशा बंधी थी कि अब उसकी प्रजा हिन्दुस्तान पहुंचनेका एक नया और अधिक सरल मार्ग प्राप्त कर सकेगी। हिन्दुस्तान उस युगके समुद्री अभियानोंका चरम लक्ष्य माना जाता था।

ये चार मुख्य ब्रिटिश उपनिवेश हैं। इनके सिवा ब्रिटिश हुकूमतके 'संरक्षण' में कुछ ऐसे प्रदेश हैं, जहां दक्षिण अफ्रीकाके — यूरोपियनोंके आगमनसे पहलेके — मूल निवासी रहते हैं।

दक्षिण अफ्रीकाका मुख्य उद्योग खेती ही माना जायगा। खेतीके लिए वह देश उत्तम है। उसके कुछ भाग तो अत्यन्त उपजाऊ और सुन्दर हैं। अनाजोंमें अधिकसे अधिक मात्रामें और आसानीसे पकनेवाला अनाज मकई है; और मकई दक्षिण अफ्रीकाके हब्शी लोगोंका मुख्य आहार है। कुछ भागोंमें गेहूं भी पैदा होता है। फलोंके लिए तो दक्षिण अफ्रीका बड़ा विख्यात है। नेटालमें अनेक जातिके और बहुत सुन्दर तथा सरस केले, पपीते और अनन्नास पकते हैं और वह भी इतनी बहुतायतसे कि गरीबसे गरीब आदमीको भी वे मिल सकते हैं। नेटालमें और अन्य उपनिवेशोंमें नारंगी, संतरे, 'पीच' (आड़ू) और 'एप्रिकोट' (जरदालू) इतनी बड़ी मात्रामें पैदा होते हैं कि हजारों लोग मामूली-सी मेहनत करें तो भी गावोंमें वे बगैर पैसेके ये फल पा सकते हैं। केप कॉलोनी तो अंगूरोंकी और 'प्लम' (एक जातिका बड़ा बेर) की ही भूमि है। वहांके जैसे सरस अंगूर दूसरे उपनिवेशोंमें शायद ही होते हों। मौसममें उनकी कीमत इतनी कम होती है कि गरीब आदमी भी भरपेट अंगूर खा सकता है। और यह तो कभी हो ही नहीं सकता कि जहां जहां हिन्दुस्तानियोंकी आबादी हो वहां आमके पेड़ न हों। हिन्दुस्तानियोंने दक्षिण अफ्रीकामें आमके पेड़ लगाये। इसका नतीजा यह है कि आज वहां काफी मात्रामें आम भी खानेको मिल सकते हैं। उनकी कुछ जातियां जरूर बम्बईकी हाफुस-पायरी जैसी जातियोंमें होड़ लगा सकती हैं। साग-भाजी भी उस उपजाऊ भूमिमें खूब पैदा होती है; और ऐसा कहा जा सकता है कि शौकीन हिन्दुस्तानियोंने वहां लगभग सभी तरहकी साग-भाजी पैदा की है।

पशु भी वहां काफी सख्यामें हैं, ऐसा कहा जा सकता है। वहांके गाय-बैल हिन्दुस्तानके गाय-बैलोंसे ज्यादा कद्दावर और ज्यादा ताकतवर होते हैं। गोरक्षाका दावा करनेवाले हिन्दुस्तानमें असख्य गायों और बैलोंको हिन्दुस्तानके लोगोंकी तरह ही दुबले-पतले और कमजोर देखकर मैं लज्जित हुआ हूं और मेरा हृदय अनेक बार रोया है। दक्षिण अफ्रीकामें मैंने कभी दुर्बल गायें या बैल देखे हों ऐसा मुझे याद नहीं है, यद्यपि मैं सारे भागोंमें लगभग अपनी आखें खुली रखकर घूमा हूं।

कुदरतने दूसरी कई देनें तो इस भूमिको दी ही हैं, परन्तु सृष्टि-सौन्दर्यसे इस भूमिको सुशोभित करनेमें भी उसने कोई कमी नही रखी है। डरबनका दृश्य बहुत सुन्दर माना जाता है। परन्तु केप कॉलोनी उससे कही अधिक सुन्दर है। केप टाउन 'टेबल माउन्टेन' नामक न तो अधिक नीचे और न अधिक ऊंचे पहाड़की तलेटीमें बसा हुआ है। दक्षिण अफीकाको पूजनेवाली एक विदुषी महिला उस पहाड़के विषयमें लिखी अपनी कवितामें कहती है कि जिस अलौकिकताका अनुभव मैंने टेबल माउन्टेनमें किया है वैसी अन्य किसी पहाड़में मैंने अनुभव नही की। इस कथनमें अतिशयोक्ति हो सकती है। मैं मानता हूं कि इसमें अतिशयोक्ति है। परन्तु उस विदुषी महिलाकी एक बात मेरे गले उतर गई है। वह कहती है कि टेबल माउन्टेन केप टाउनके निवासियोंके मित्रका काम करता है। बहुत ऊंचा न होनेके कारण वह पहाड़ भयकर नही लगता। लोगोंको दूरसे ही उसका पूजन नहीं करना पड़ता, बल्कि वे पहाड पर ही मकान बनवाकर वहा रहते हैं; और ठीक समुद्र-तट पर होनेके कारण समुद्र अपने स्वच्छ जलसे उसका पाद-पूजन करता है तथा उसका चरणामृत पीता है। बालक और बूढे, स्त्रियां और पुरुष सब निर्भय हो कर लग-भग सारे पहाड़में घूम सकते हैं और हजारों नागरिकोंकी आवाजोंसे साराका सारा पहाड़ प्रतिदिन गूंज उठता है। विशाल वृक्ष और सुगधित तथा रग-बिरंगे फूल समूचे पहाड़को इतना अधिक सवार और सजा देते हैं कि मनुष्यको उसकी सुषमा और शोभा देखने और उसमें घूमनेसे कभी तृप्ति ही नही होती।

दक्षिण अफीकामें इतनी बड़ी नदियां नही हैं जिनकी तुलना हमारी गगा-यमुनाके साथ की जा सके। जो थोड़ी नदिया वहां हैं, वे हमारे यहाकी नदियोंकी तुलनामें छोटी हैं। उस देशमें अनेक स्थानों पर नदियोंका पानी पहुंचता ही नही। ऊंचे प्रदेशोंमें नदियोंसे नहरे भी कैसे ले जाई जायं? और जहा समुद्र जैसी विशाल नदियां न हों वहां नहरें हो भी कैसे सकती हैं? दक्षिण अफीकामें जहां जहां पानीकी कुदरती तंगी है वहां पाताल-कुएं खोदे जाते हैं और उनमें से खेतोंकी सिंचाई की जा सके इतना पानी पवन-चक्कियों और भाफके एंजिनों द्वारा खीचा

जाता है। खेतीको वहांकी सरकारकी ओरसे काफी मदद मिलती है। किसानोंको सलाह देने और उनका मार्गदर्शन करनेके लिए सरकार अपने कृषिशास्त्रियोंको उनके पास भेजती है। अनेक स्थानों पर सरकार किसानोंके लाभके लिए खेतीके विविध प्रयोग करती है। वह नमूनेके फार्म चलाती है, किसानोंको अच्छे पशुओं और अच्छे बीजकी सुविधा देती है, बहुत ही थोड़ी कीमतमें पाताल-कुएं खुदवा देती है और किस्तोंमें उसका मूल्य चुकानेकी सुविधा किसानोंको देती है। इसी प्रकार सरकार खेतोंके आसपास लोहेके कटीले तारोंकी बाड़ भी करा देती है।

दक्षिण अफ्रीका भूमध्य-रेखाके दक्षिणमें है और हिन्दुस्तान उस रेखाके उत्तरमें है, इसलिए वहांका समूचा वातावरण — जलवायु हिन्दुस्तानियोंको उलटा मालूम होता है। वहांकी ऋतुएं भी हिन्दुस्तानसे उलटी होती हैं। उदाहरणके लिए, हमारे देशमें जब गरमीका मौसम होता है तब वहां सरदीका मौसम रहता है। बरसातका कोई निश्चित नियम वहां है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। किसी भी समय बरसात वहां गिर सकती है। सामान्यतः २० इंचसे अधिक बरसात वहां नहीं होती।

२

इतिहास

अफ्रीकाके भूगोल पर दृष्टिपात करते हुए पहले प्रकरणमें हमने जिन भौगोलिक विभागोंकी संक्षिप्त चर्चा की, वे प्राचीन कालसे चले आ रहे हैं ऐसा पाठक न मान लें। अत्यन्त प्राचीन कालमें दक्षिण अफ्रीकाके निवासी कौन लोग रहे होंगे, यह निश्चित रूपसे पता नहीं लगाया जा सका है। यूरोपियन लोग दक्षिण अफ्रीकामें आकर बसे उस समय वहां हबशी रहते थे। ऐसा माना जाता है कि अमेरिकामें जिस समय गुलामीके अत्याचारका बोलबाला था, उस समय अमेरिकासे भागकर कुछ हबशी दक्षिण अफ्रीकामें आकर बस गये थे। वे लोग अलग अलग जातियोंके नामसे पहचाने जाते हैं — जैसे, जूलू, स्वाजी, बसूटो, बेकवाना

आदि। उनकी भाषायें भी अलग अलग हैं। ये हबशी ही दक्षिण अफ्रीकाके मूल निवासी माने जाते हैं। परन्तु दक्षिण अफ्रीका इतना बड़ा देश है कि आज हबशियोंकी जितनी आबादी वहां है उससे बीस या तीस गुनी आबादी उसमें आसानीसे समा सकती है। रेल द्वारा डरबनसे केप टाउन जानेके लिए लगभग १८०० मीलकी यात्रा करनी होती है। समुद्री मार्गसे भी दोनोंके बीचका अंतर १००० मीलसे कम नहीं है। पहले प्रकरणमें बताये गये चार उपनिवेशोंका कुल क्षेत्रफल ४७३००० वर्गमील है।

इस विशाल भूभागमें हबशियोंकी आबादी १९१४ में लगभग ५० लाख और गोरोंकी आबादी लगभग १३ लाख थी। जूलू जातिके लोग हबशियोंमें ज्यादासे ज्यादा कद्दावर और सुन्दर कहे जा सकते हैं। 'सुन्दर' विशेषणका उपयोग मैंने हबशियोंके बारेमें जान-बूझकर किया है। गोरी चमडी और नुकीली नाकको हम सुन्दरताका लक्षण मानते हैं। यदि इस अन्धविश्वासको हम घडी भर एक ओर रख दें, तो हमें ऐसा नहीं लगेगा कि जूलूको गढनेमें ब्रह्माने कोई कसर रहने दी है। स्त्रियां और पुरुष दोनों ऊंचे और ऊंचाईके अनुपातमें विशाल छातीवाले होते हैं। उनके सपूर्ण शरीरके स्नायु सुव्यवस्थित और बहुत बलवान होते हैं। उनकी पिंडलियां और भुजायें मांसल और सदा गोलाकार ही दिखाई देती हैं। कोई स्त्री या पुरुष झुक कर या कूबड़ निकाल कर शायद ही चलता देखा जाता है। उनके होंठ जरूर बड़े और मोटे होते हैं; परन्तु वे सारे शरीरके आकारके अनुपातमें होते हैं, इसलिए मैं तो नहीं कहूंगा कि वे जरा भी बेडौल लगते हैं। आखें उनकी गोल और तेजस्वी होती हैं। नाक चपटी और बड़े मुंह पर शोभा दे इतनी बड़ी होती है और उनके सिरके घुंघराले बाल उनकी सीसम जैसी काली और चमकीली चमड़ी पर बड़े सुशोभित हो उठते हैं। अगर हम किसी जूलूसे पूछें कि दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाली जातियोंमें सबसे सुन्दर वह किसे मानता है, तो वह अपनी जातिके लिए ही ऐसा दावा करेगा। और उसके इस दावेको मैं जरा भी अनुचित नहीं मानूंगा। आज यूरोपमें सैन्डो और दूसरे पहलवान अपने शागिर्दोंकी भुजाओं, हाथ आदि अवयवोंके विकासके लिए जो प्रयत्न करते हैं, वैसा कोई प्रयत्न

किये बिना कुदरती रूपमें ही इस जातिके अवयव मजबूत और सुडौल दिखाई देते हैं। भूमध्य-रेखाके नजदीक रहनेवाली जातियोंकी चमड़ी काली ही हो, यह कुदरतका नियम है। और कुदरत जो जो आकार गढ़ती है उसमें सौन्दर्य ही होता है ऐसा हम यदि मानें, तो सौन्दर्यके विषयमें हमारे संकुचित और एकदेशीय विचारोंसे हम मुक्त हो जायगे। इतना ही नही, परन्तु हिन्दुस्तानमें हमें अपनी ही चमड़ी थोड़ी काली होने पर जो अनुचित लज्जा और घृणा मालूम होती है, उससे भी हम मुक्त हो जायगे।

ये हबशी घास-मिट्टीके बने गोल कूबों (झोंपड़ियों) में रहते हैं। हर कूबेकी एक ही गोल दीवाल होती है और उसके ऊपर घासका छप्पर होता है। इस छप्परका आधार कूबेके भीतर खड़े एक खम्भे पर होता है। कूबेका एक नीचा दरवाजा होता है, जिसमें झुक कर ही जाया जा सकता है। यही दरवाजा कूबेमें हवाके आने-जानेका साधन होता है। उसमें किवाड़ शायद ही कहीं होते हैं। हमारी तरह वे लोग भी दीवालको और कूबेकी फर्शको मिट्टी और लीद या गोबरसे लीपते हैं। ऐसा माना जाता है कि वे लोग कोई भी चौकोन चीज नही बना सकते। उन्होंने अपनी आंखोंको केवल गोल चीजें देखने और बनानेकी ही तालीम दी है। कुदरत रेखागणितकी सीधी लकीरें और सीधी आकृतियां बनाती नही देखी जाती। और कुदरतके इन निर्दोष बालकोंका ज्ञान कुदरतके उनके अनुभव पर आधार रखता है।

मिट्टीके इस महलमे साज-सामान भी उसके अनुरूप ही होता है। यूरोपीय सभ्यताने दक्षिण अफ्रीकामें प्रवेश किया उससे पहले तो वहाके हबशी लोग पहनने-ओढ़ने और सोने-बैठनेके लिए चमड़ेका ही उपयोग करते थे। कुरसी, टेबल, संदूक वगैरा चीजें रखने जितनी जगह भी उस महलमें नही होती थी; और आज भी ये चीजें उसमें नही होती, ऐसा बहुत हद तक कहा जा सकता है। अब उन्होंने घरमें कम्बलोंका उपयोग शुरू किया है। ब्रिटिश सत्ताकी स्थापनासे पहले हबशी स्त्री-पुरुष दोनों लगभग नग्न अवस्थामें ही घूमते-फिरते थे। आज भी गावोंमें बहुत लोग इसी अवस्थामें रहते हैं। वे अपने गुप्त भागोंको एक चमड़ेसे ढंक लेते

है। कुछ लोग तो इतना भी नहीं करते। परन्तु इसका अर्थ कोई पाठक यह न करे कि इस कारणसे वे लोग अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं रख सकते। जहां बहुत बड़ा समुदाय किसी रिवाजके वश होकर चलता हो वहां दूसरे समुदायको वह रिवाज अनुचित लगे, तो भी यह बिलकुल संभव है कि पहले समुदायकी दृष्टिमें अपने रिवाजमें कोई दोष न हो। इन हबशियोंको एक-दूसरेकी ओर देखते रहनेकी फुरसत ही नहीं होती। शुकदेवजी जब नग्न अवस्थामें स्नान कर रही स्त्रियोंके बीच होकर निकल गये तब न तो स्वयं उनके मनमें कोई विकार उत्पन्न हुआ और न उन निर्दोष स्त्रियोंको किसी प्रकारका क्षोभ हुआ अथवा लज्जित होने जैसा कुछ लगा, ऐसा भागवतकार कहते हैं। और इस वर्णनमें मुझे कुछ भी अलौकिक नहीं लगता। हिन्दुस्तानमें आज ऐसे अवसर पर हममें से कोई मनुष्य इतनी स्वच्छता और निर्विकारताका अनुभव नहीं कर सकता, यह कोई मनुष्य-जातिकी पवित्रताके प्रयत्नकी मर्यादाको नहीं बताता, परन्तु हमारे अपने दुर्भाग्य और पतनको ही बताता है। हम लोग इन हबशियोंको जो जंगली मानते हैं वह हमारे अभिमानके कारण। वास्तवमें हम मानते हैं वैसे जंगली वे नहीं है।

ये हबशी जब शहरमें आते हैं तब उनकी स्त्रियोंके लिए यह नियम बना हुआ है कि छातीसे घुटनों तकका भाग उन्हें ढाकना ही चाहिये। इस नियमके कारण इन स्त्रियोंको इच्छा न होने पर भी ऐसा वस्त्र अपने शरीर पर लपेटना पड़ता है। इसके फलस्वरूप दक्षिण अफ्रीकामें इस नापके कपड़ेकी खूब खपत होती है और वैसी लाखों चादरें या कमलियां यूरोपसे हर साल वहां आती हैं। पुरुषोंके लिए कमरसे घुटनों तकका भाग ढाकना अनिवार्य है, इसलिए उन्होंने तो यूरोपके उतरे हुए कपड़े पहननेका रिवाज अपना लिया है। जो लोग ऐसा नहीं करते वे नाड़ेवाला जांघिया पहनते हैं। ये सब कपड़े यूरोपसे ही वहां आते हैं।

इन हबशियोंका मुख्य आहार मकई है। मिलने पर वे मांस भी खाते हैं। सौभाग्यसे वे लोग मिर्च-मसालोंसे बिलकुल अनजान हैं। उनके भोजनमें मसाला डाला गया हो अथवा हलदीका रंग भी आ गया हो, तो वे नाक सिकोड़ेंगे; और जो लोग पूरे जंगली कहे जाते हैं, वे तो ऐसे

खानेको छुएंगे भी नहीं। साबित उबाली हुई मकईके साथ थोड़ा नमक मिला कर एक बारमें एक पौंड मकई खा जाना किसी साधारण जूलूके लिए जरा भी आश्चर्यकी बात नहीं है। वे लोग मकईका आटा पीसते हैं, उसे पानीमें उबालते हैं और उसकी लपसी बनाकर खानेमें संतोष मानते हैं। जब कभी मांस मिल जाता है तब उसे कच्चा या पक्का — उबाला हुआ या आग पर भुना हुआ — केवल नमकके साथ वे लोग खा जाते हैं। चाहे जिस प्राणीका मांस खानेमें उन्हें कोई हिचक नहीं होती।

उनकी भाषाओंके नाम जातियोंके नाम पर ही होते हैं। लेखन-कला उनमें गोरोंने ही आरंभ की है। हबशी वर्णमाला या ककहरे जैसी कोई चीज नहीं है। अब हबशी भाषाओंमें बाइबल आदि पुस्तकें रोमन लिपिमें छापी गई हैं। जूलू भाषा अत्यन्त मधुर और मीठी है। उसके अधिकतर शब्दोंके अंतमें 'आ'का उच्चार होता है। इसकी वजहसे भाषा-का नाद कानोंको मुलायम और मधुर लगता है। उसके शब्दोंमें अर्थ और काव्य दोनों होते हैं, ऐसा मैंने पढ़ा है और सुना है। जिन थोड़ेसे शब्दोंका मुझे अनायास ज्ञान प्राप्त हुआ है, उनके आधार पर भाषा-विषयक उपर्युक्त मत मुझे उचित मालूम हुआ है। शहरों और उपनिवेशों-के जो यूरोपियन नाम मैंने दिये हैं, उन सबके मधुर और काव्यमय हबशी नाम तो हैं ही। ये नाम याद न होनेसे मैं यहां नहीं दे सका हूं।

ईसाई पादरियोंके मतानुसार हबशियोंका कोई धर्म ही नहीं था, और आज भी नहीं है। परन्तु यदि हम धर्मका विस्तृत और विशाल अर्थ करें तो यह कहा जा सकता है कि हबशी ऐसी अलौकिक शक्तिको अवश्य मानते और पूजते हैं, जिसे वे समझ नहीं सकते। इस शक्तिसे वे लोग डरते भी हैं। उन्हें इस सत्यका भी अस्पष्ट भान है कि शरीरके नाशके साथ मनुष्यका सर्वथा नाश नहीं हो जाता। यदि हम नीतिको धर्मका आधार मानें, तो नीतिमें विश्वास रखनेवाले होनेके कारण हब-शियोंको धार्मिक भी माना जा सकता है। सच और झूठका उन्हें पूरा पूरा भान है। अपनी स्वाभाविक अवस्थामें वे लोग सत्यका जितना पालन करते हैं उतना गोरे या हम लोग करते हैं या नहीं यह शंका-स्पद है। उनके मन्दिर या मन्दिर जैसे कोई स्थान नहीं होते। अन्य

प्रजाओं और जातियोंकी तरह उन लोगोंमें भी अनेक प्रकारके अंध-विश्वास देखनेमें आते हैं।

पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि शरीरकी ताकतमें संसार-की किसी भी जातिसे घटिया न ठहरनेवाली यह जाति सचमुच इतनी डरपोक है कि किसी गोरे बालकको देखकर भी डर जाती है। अगर कोई आदमी हबशीके सामने पिस्तौलका निशाना बाधे, तो या तो वह भाग जायगा या इतना मूढ़ हो जायगा कि उसमें भागनेकी भी ताकत नहीं रह जायगी। इसका कारण तो है ही। मुट्ठीभर गोरे आकर इतनी बड़ी और जंगली जातिको वशमें कर सके हैं, इसमें कोई जादू अवश्य होना चाहिये ऐसा उनके मनमें बैठ गया है। वे लोग भाले और तीर-कमानका उपयोग तो अच्छी तरह जानते थे। परन्तु ये हथियार उनसे छीन लिये गये हैं। और बन्दूक न तो किसी दिन उन्होंने देखी और न कभी चलाई। यह बात उनकी समझमें ही नहीं आती कि जिस बन्दूकको न तो दियासलाई दिखानी होती, न हाथकी अगुली चलानेके सिवा दूसरी कोई गति करनी पड़ती, उसकी छोटीसी नलीसे एकाएक आवाज कैसे निकलती है, आग कैसे भड़क उठती है और गोलीके लगते ही पल भरमें आदमीके प्राण कैसे उड़ जाते हैं! इसलिए हबशी बन्दूक चलानेवाले आदमीके डरसे हमेशा घबराया हुआ रहता है। उसने और उसके बाप-दादोंने इस बातका अनुभव किया है कि बन्दूककी इन गोलियोंने अनेकों निराधार और निर्दोष हबशियोंके प्राण लिये हैं। परन्तु उनमें से अधिकतर लोग आज भी इसका कारण नहीं जानते।

इस जातिमें धीरे धीरे 'सभ्यता' का प्रवेश हो रहा है। एक ओर भले पादरी अपनी बुद्धि और समझके अनुसार ईसा मसीहका सन्देश उन लोगोंके पास पहुचाते हैं। वे हबशियोंके लिए स्कूल खोलते हैं और उन्हें सामान्य अक्षर-ज्ञान देते हैं। उनके प्रयत्नसे कुछ चरित्रवान हबशी भी तैयार हुए हैं। लेकिन बहुतसे हबशी, जो आज तक अक्षर-ज्ञानकी कमीके कारण और सभ्यताके परिचयके अभावमें अनेक प्रकारकी अनीतियोंसे मुक्त थे, आज ढोंगी और पाखंडी भी बन गये हैं। सभ्यताके संपर्कमें आये हुए हबशियोंमें से शायद ही कोई शराबकी बुराईसे बचा

हो। और जब उनके लोहाजैसे शरीरमें नशेका प्रवेश होता है तब वे पूरे पागल बन जाते हैं और न करने जैसा सब कुछ कर डालते हैं। सभ्यताके बढ़नेके साथ आवश्यकताओंका बढ़ना उतना ही निश्चित है जितना दो और दो मिलकर चार होना। हबशियोंकी आवश्यकतायें बढ़ानेके लिए कहिये अथवा उन्हें श्रमका मूल्य सिखानेके लिए कहिये, प्रत्येक हबशी पर मुंड-कर (पोल-टैक्स) और झोपड़ी-कर (हट-टैक्स) लगाया गया है। यह कर यदि उन पर न लगाया जाय तो अपने खेतोंमें रहनेवाली यह जाति जमीनके भीतर सैकड़ों गज गहरी खदानोंमें सोना या हीरे निकालनेके लिए न उतरे। और यदि खदानोंके लिए हबशियोंकी मेहनतका लाभ न मिले, तो सोना या हीरे पृथ्वीके गर्भमें ही पड़े रहें। इसी तरह यदि उन पर ऐसा कर न लगाया जाय, तो यूरोपियनोंको दक्षिण अफ्रीकामें नौकर मिलने कठिन हो जाय। इसका नतीजा यह हुआ है कि खदानोंमें काम करनेवाले हजारों हबशियोंको अन्य रोगोंके साथ एक प्रकारका क्षयरोग भी हो जाता है, जिसे 'माइनर्स थाइसिस' कहा जाता है। यह रोग प्राण-घातक होता है। उसके पंजेमें फंसनेके बाद कुछ ही लोग उबर पाते हैं। ऐसे हजारों आदमी अपने बाल-बच्चोंसे दूर खदानोंमें एक साथ रहें, तो उस स्थितिमें वे संयमका कितना पालन कर सकते हैं, यह पाठक आसानीसे सोच सकते हैं। इसके फलस्वरूप जो रोग (उपदंश आदि) फैलते हैं, उनके शिकार भी ये लोग हो जाते हैं। दक्षिण अफ्रीकाके विचारशील गोरे भी इस गंभीर प्रश्न पर विचार करने लगे हैं। उनमें से कुछ लोग अवश्य यह मानते हैं कि सभ्यताका प्रभाव इस जाति पर सब मिलाकर अच्छा पड़ा है, ऐसा दावा शायद ही किया जा सके। परन्तु सभ्यताका बुरा प्रभाव तो इस जाति पर हर आदमी देख सकता है।

जिस महान देशमें ऐसी निर्दोष जाति रहती थी वहां आजसे लगभग ४०० वर्ष पहले डच लोगोंने अपनी छावनी डाली। वे लोग गुलाम तो रखते ही थे। कुछ डच अपने जावा उपनिवेशसे मलायी गुलामोंको लेकर दक्षिण अफ्रीकाके उस भागमें पहुंचे, जिसे हम केप कॉलोनीके नामसे जानते हैं। ये मलायी लोग मुसलमान हैं। उनमें डच लोगोंका

रक्त है और इसी प्रकार डच लोगोंके कुछ गुण भी हैं। वे अलग अलग तो सारे दक्षिण अफ्रीकामें फैले दिखाई देते हैं, परन्तु उनका मुख्य केन्द्र केप टाउन ही माना जायगा। आज उनमें से कुछ मलायी गोरोंकी नौकरी करते हैं और दूसरे स्वतंत्र धन्धा करते हैं। मलायी स्त्रियां बड़ी उद्यमी और होशियार होती हैं। उनका रहन-सहन अधिकतर साफ-सुथरा देखा जाता है। स्त्रियां धोबीका और सिलाईका काम बहुत अच्छा कर सकती हैं। पुरुष कोई छोटा-मोटा व्यापार करते हैं। बहुतेरे इक्का या तांगा चलाकर अपना गुजर करते हैं। कुछ लोगोंने उच्च अंग्रेजी शिक्षण भी लिया है। उनमें से एक डॉ० अब्दुल रहमान केप टाउनमें मशहूर हैं। वे केप टाउनकी पुरानी धारासभामें भी पहुच सके थे। नये संविधानके अनुसार मुख्य धारासभामें जानेका यह अधिकार छीन लिया गया है।

डच लोगोंका थोड़ा वर्णन करते करते बीचमें मलायी लोगोंका वर्णन भी प्रसंगवश आ गया। लेकिन अब हम यह देखें कि डच लोग कैसे आगे बढ़े। डच जितने बहादुर लड़वैये थे और हैं, उतने ही कुशल किसान भी थे और आज भी हैं। उन्होंने देखा कि उनके आसपासका देश खेतीके लिए बहुत अच्छा है। उन्होंने यह भी देखा कि वहांके मूल निवासी सालमें थोड़े ही समय काम करके आसानीसे अपना निर्वाह कर सकते हैं। उन्होंने सोचा: इन लोगोंसे मेहनत क्यों न कराई जाय? डच लोगोंके पास उनकी अपनी कला थी, बन्दूक थी और वे यह भी जानते थे कि दूसरे प्राणियोंकी तरह मनुष्योंको कैसे वशमें किया जा सकता है। उनकी मान्यता यह थी कि ऐसा करनेमें उनका धर्म बिलकुल बाधक नहीं होता। इसलिए अपने कार्यके औचित्यके बारेमें जरा भी शंकाशील हुए बिना उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके हबशियोंकी मेहनतसे खेती वगैरा काम शुरू कर दिये।

जिस प्रकार डच लोग दुनियामें अपना विस्तार करनेके लिए अच्छे अच्छे प्रदेश खोज रहे थे, उसी प्रकार अंग्रेज भी खोज रहे थे। धीरे धीरे अंग्रेज भी दक्षिण अफ्रीकामें आये। अंग्रेज और डच चचेरे भाई तो थे ही। दोनोंके स्वभाव एकसे, दोनोंके लोभ भी एकसे। जब एक ही कुम्हारके बनाये हुए बरतन एक जगह इकट्ठे होते हैं तब उनमें से कुछ

टकरा कर फूटने ही हैं। इसी प्रकार ये दोनों जातियां अपने पांव फैलाते फैलाते और धीरे धीरे हबशियोंको वशमें करते करते आपसमें टकरा गईं। दोनोंके बीच झगड़े हुए, युद्ध भी हुए। मजूबाकी पहाड़ी पर अंग्रेजोंकी हार भी हुई। यह मजूबाका घाव अंग्रेजोंके मनमें बना रहा, जिसने पक कर एक फोड़ेका रूप ले लिया; और यह फोड़ा उस जग-प्रसिद्ध बोअर-युद्धमें फूटा, जो सन् १८९९ से १९०२ तक चला। और जब जनरल क्रोन्जेको लॉर्ड रॉबर्ट्सने हरा दिया तब उन्होंने महारानी विक्टोरियाको तार किया. 'मजूबाका बदला हमने ले लिया।' परन्तु जब (बोअर-युद्धसे पूर्व) इन दोनोंके बीच पहली मुठभेड़ हुई तब डचोंमें से बहुतेरे लोग अंग्रेजोंकी नाममात्रकी सत्ता भी स्वीकार करनेको तैयार नहीं थे; इसलिए वे दक्षिण अफ्रीकाके भीतरी प्रदेशोंमें चले गये। इसके फलस्वरूप ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटका जन्म हुआ।

ये ही डच लोग दक्षिण अफ्रीकामें 'बोअर' के नामसे पुकारे जाने लगे। बालक जिस तरह अपनी मासे चिपटा रहता है वैसे ही अपनी भाषासे चिपटे रह कर बोअरोंने उसे सुरक्षित रखा है। हमारी स्वतंत्रताका हमारी भाषाके साथ अत्यन्त निकटका सम्बन्ध है, यह बात उनकी रग-रगमें समा गई है। इस भाषाने ऐसा नया रूप धारण कर लिया है, जो वहांके लोगोंके लिए सुविधाजनक हो। बोअर लोग हॉलैण्डके साथ अपना निकट सम्बन्ध नहीं रख पाये, इसलिए वे संस्कृतसे निकलनेवाली प्राकृत भाषाओंकी तरह मूल डचसे निकलनेवाली अपभ्रंश डच भाषा बोलने लगे। परन्तु अब वे अपने बालकों पर अनावश्यक बोझ नहीं डालना चाहते, इसलिए इस प्राकृत बोलीको ही उन्होंने स्थायी रूप दे दिया है; और वह 'टाल' के नामसे जानी जाती है। उसी भाषामें वहांकी पुस्तकें लिखी जाती हैं। बालकोंको शिक्षा उसी भाषामें दी जाती है और धारासभामें बोअर सदस्य अपने भाषण भी 'टाल' भाषामें ही देते हैं। यूनियनकी रचनाके बाद समूचे दक्षिण अफ्रीकामें दोनों भाषायें — टाल या डच और अंग्रेजी — एकसा पद भोगती हैं। वह भी इस हद तक कि वहांके सरकारी गजट और धारासभाकी सारी कार्रवाई अनिवार्य रूपसे दोनों भाषाओंमें छपती है।

बोअर लोग सीधे-सादे, भोले और धर्म-परायण हैं। वे अपने विशाल खेतोंमें रहते हैं। हम वहांके खेतोंके क्षेत्रफलकी कल्पना नही कर सकते। हमारे किसानोंके खेत दो या तीन बीघा जमीनवाले होते हैं। इससे छोटे खेत भी हमारे यहा होते हैं। लेकिन वहाके खेतोंका अर्थ है एक एक किसानके अधिकारमें सैकड़ों या हजारों बीघा जमीन। इतनी बड़ी बड़ी जमीनोंको तुरन्त जोतनेका लोभ भी ये किसान नही रखते। और यदि कोई उनसे तर्क करता है तो वे कहते हैं: "भले बिन-जोती पड़ी रहे। जिस जमीनमें हम खेती नहीं करते उसमें हमारे बच्चे करेंगे।"

प्रत्येक बोअर लड़नेमें पूरा कुशल होता है। वे लोग आपसमें कितने ही क्यों न लड़ें-झगड़ें, परन्तु अपनी स्वतत्रता उन्हें इतनी प्रिय है कि जब कभी उस पर आक्रमण होता है तब सारे ही बोअर तैयार हो जाते हैं और एक योद्धाके समान बहादुरीसे लड़ते हैं। उन्हे लम्बी-चौड़ी कवायद और तालीमकी जरूरत नहीं होती, क्योंकि लड़ना तो सारी बोअर जातिका स्वभाव अथवा गुण ही है। जनरल स्मट्स, जनरल डी वेट और जनरल हर्ज़ोग तीनों बड़े वकील और बड़े किसान हैं; और तीनों उतने ही बड़े योद्धा भी हैं। जनरल बोथाके पास ९००० एकड़का खेत था। खेतीकी सारी पेचीदगियोंको वे जानते थे। जब वे सधिवार्ताओंके लिए यूरोप गये थे तब उनके विषयमें ऐसा कहा गया था कि भेड़ोंकी परीक्षा करनेमें उनके जैसा कुशल यूरोपमें भी शायद ही कोई होगा। ये ही जनरल बोथा स्व० प्रेसिडेन्ट क्रूगरके स्थान पर आये थे। उनका अंग्रेजीका ज्ञान बहुत सुन्दर था। फिर भी जब इग्लैंडमें वे ब्रिटिश सम्राट् और मंत्रि-मंडलसे मिले तो उन्होंने हमेशा अपनी मातृभाषामें ही उनसे बातचीत करना पसद किया। कौन कह सकता है कि उनका ऐसा करना उचित नही था? अंग्रेजी भाषाका अपना ज्ञान बतानेके लिए वे कोई गलती करनेका खतरा भला क्यों उठाते? अंग्रेजीमें उपयुक्त शब्द खोजनेके लिए वे अपनी विचारधाराको भंग करनेका साहस क्यों करते? ब्रिटिश मंत्रि-मंडल केवल अनजानमें ही अंग्रेजी भाषाके किसी अपरिचित मुहावरेका प्रयोग करे और उसका अर्थ न समझनेके कारण

वे स्वयं कुछका कुछ उत्तर दे बैठें, शायद घबरा जायं, और इस कारण उनके कार्यको हानि पहुंचे—ऐसी गंभीर गलती वे क्यों करने लगे?

जिस प्रकार बोअर पुरुष बहादुर और सरल हैं, उसी प्रकार बोअर स्त्रियां भी बहादुर और सरल हैं। बोअर-युद्धके समय बोअर लोगोंने अपना खून बहाया था, यह कुरबानी वे अपनी स्त्रियोंकी हिम्मत और उनके प्रोत्साहनसे ही कर सके थे। बोअर स्त्रियोंको न तो अपने वैधव्यका भय था और न भविष्यका भय था।

मैंने ऊपर कहा है कि बोअर लोग धर्म-परायण हैं, ईसाई हैं। परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे ईसा मसीहके नये करार (न्यू टेस्टामेन्ट) में विश्वास करते हैं। सच पूछा जाय तो यूरोप ही कहां नये करारमें विश्वास करता है? परन्तु यूरोपमें नये करारका आदर करनेका दावा जरूर किया जाता है, यद्यपि बहुत थोड़े यूरोपवासी ईसा मसीहके शांतिधर्मको जानते हैं और उसका पालन करते हैं। परन्तु ऐसा कहा जा सकता है कि बोअर लोग तो नये करारको केवल नामसे ही जानते हैं। पुराने करार (ओल्ड टेस्टामेन्ट) को वे श्रद्धा और भक्तिसे पढ़ते हैं और उसमें छपे युद्धोंके वर्णनोंको कठाग्र करते हैं। मूसा पैगम्बरकी 'आंखके बदले आंख और दांतके बदले दांत' की शिक्षामें वे पूरी तरह विश्वास करते हैं। और जैसा उनका विश्वास है वैसा ही उनका व्यवहार है।

बोअर स्त्रियां समझती थीं कि उनके धर्मका ऐसा आदेश है कि अपनी स्वतंत्रताकी रक्षाके लिए बड़ेसे बड़ा दुःख भी सहन करना पड़े तो उन्हें करना चाहिये; इसलिए उन्होंने धीरज और आनन्दके साथ सारी आपत्तियां झेलीं। बोअर स्त्रियोंको झुकाने और उनके जोशको तोड़नेके उपाय करनेमें लॉर्ड किचनरने कोई कमी नहीं रखी। उन्हें अलग अलग कैम्पोंमें बन्द रखा गया। वहां उन्हें असह्य कष्टोंमें से गुजरना पड़ा। खाने-पीनेकी तंगी भोगनी पड़ी। कड़ाकेकी सरदी और भयंकर गरमीकी यातनायें सहनी पड़ीं। कभी कोई शराब पीकर पागल बना हुआ या विषय-वासनाके आवेशमें होश भूला हुआ सैनिक इन अनाथ स्त्रियों पर हमला भी कर देता था। इन कैम्पोंमें अनेक तरहके दूसरे

उपद्रव भी खड़े हो जाते थे। फिर भी बहादुर बोअर स्त्रियां झुकी नहीं। अन्तमें राजा एडवर्डने स्वयं ही लॉर्ड किचनरको लिखा कि, "यह सब मुझसे सहा नहीं जाता। यदि बोअरोंको झुकानेका हमारे पास यही एक उपाय हो, तो इसके बजाय मैं उनके साथ कैसी भी सन्धि करना पसंद करूंगा। इस युद्धको आप जल्दी ही खतम कर दें।"

जब इन सारे दुःखों और यातनाओंकी पुकार इंग्लैंड पहुंची तब ब्रिटिश जनताका मन भी दुःखसे भर गया। बोअरोंकी बहादुरीसे अंग्रेज जनता आश्चर्यचकित हो गई। इतनी छोटीसी बोअर जातिने सारी दुनियामें अपना साम्राज्य फैलानेवाली ब्रिटिश सत्ताको छका दिया, यह बात अंग्रेज जनताके मनमें चुभा करती थी। परन्तु जब इन कैम्पोंमें बन्द की हुई बोअर स्त्रियोंके असह्य दुःखोंकी आवाज इन स्त्रियोंके मारफत नहीं, उनके पुरुषोंके मारफत भी नहीं — वे तो रणक्षेत्रमें जूझ रहे थे — परन्तु दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले कुछ इने-गिने उदार-चरित अंग्रेज स्त्री-पुरुषोंके मारफत इंग्लैंड पहुंची, तब अंग्रेज जनता विचारमें पड़ गई। स्व० सर हेनरी कैम्पबेल-बैनरमैनने अंग्रेज जनताके हृदयको पहचाना और उन्होंने बोअर-युद्धके खिलाफ गर्जना की। स्व० स्टेडने सार्वजनिक रूपमें ईश्वरसे यह प्रार्थना की, और दूसरोंको ऐसी प्रार्थना करनेके लिए प्रेरित किया, कि इस युद्धमें ईश्वर अंग्रेजोंको हरा दे। वह दृश्य चमत्कारिक था। बहादुरीसे भोगा हुआ सच्चा कष्ट पत्थर जैसे हृदयको भी पिघला देता है, यह ऐसे दुःख अर्थात् तपस्याकी महिमा है; और इसीमें सत्याग्रहकी कुंजी है।

इसके फलस्वरूप फ्रीनिखनकी सन्धि हुई और अन्तमें दक्षिण अफ्रीकाके चारों उपनिवेश एक शासन-तंत्रके नीचे आ गये। यद्यपि अखबार पढ़नेवाला हर हिन्दुस्तानी इस सन्धिके बारेमें जानता होगा, फिर भी एक दो बातें ऐसी हैं जिनकी कल्पना भी अनेकोंको शायद नहीं होगी। फ्रीनिखनकी सन्धि होते ही दक्षिण अफ्रीकाके चारों उपनिवेश परस्पर जुड़ गये हों ऐसा नहीं है। प्रत्येक उपनिवेशकी अपनी धारासभा थी। उसका मंत्रि-मण्डल इस धारासभाके प्रति पूरी तरह जिम्मेदार नहीं था। ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटकी शासन-पद्धति 'क्राउन कॉलोनी' की शासन-पद्धति जैसी थी। ऐसा संकुचित अधिकार जनरल बोथाको या जनरल स्मट्सको

कभी सन्तोष नही दे सकता था। फिर भी लॉर्ड मिल्नरने 'बिना दूल्हेकी बारातवाली' नीति अपनाना उचित माना। जनरल बोथा और जनरल स्मट्स धारासभासे अलग रहे। उन्होंने असहयोग कर दिया। सरकारके साथ कोई भी सम्बन्ध रखनेसे उन्होने साफ इनकार कर दिया। लॉर्ड मिल्नरने तीखा भाषण किया और कहा कि जनरल बोथाको ऐसा मान लेनेकी जरूरत नही कि सारी जिम्मेदारीका भार उन्ही पर है। उनके बिना भी देशका राजकाज चल सकता है।

मैंने बिना किसी सकोचके बोअरोंकी बहादुरी, उनके स्वातन्त्र्य-प्रेम और उनके आत्मत्यागके बारेमें लिखा है। किन्तु मेरा आशय पाठको पर यह छाप डालनेका नही था कि सकट-कालमे भी उनके बीच मतभेद पैदा नही होते थे अथवा उनमें कोई कमजोर मनवाले लोग होते ही नही थे। बोअरोंमें भी आसानीसे खुश हो जानेवाला एक पक्ष लॉर्ड मिल्नर खड़ा कर सके थे; और उन्होंने यह मान लिया था कि इस पक्षकी मददसे वे धारासभाको स्वय सफल बना सकेंगे। कोई नाटककार भी मुख्य पात्रके बिना अपने नाटकको रगमच पर सफल नही बना सकता; तब फिर इस कठिन संसारमें राजकाज चलानेवाला कोई पुरुष मुख्य पात्रको भूल कर सफल होनेकी आशा रखे, तो वह पागल ही माना जायगा। यही दशा सचमुच लॉर्ड मिल्नरकी हुई। और यह भी कहा जाता था कि उन्होंने जनरल बोथाको धमकी तो दी थी, परन्तु ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटका शासन जनरल बोथाके बिना चलाना इतना कठिन हो गया कि लॉर्ड मिल्नर अपने बगीचेमें अकसर चिन्तातुर और व्याकुल अवस्थामें देखे जाते थे! जनरल बोथाने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि फ्रीनि-खनके सधिपत्रका अर्थ मैंने निश्चित रूपसे यह समझा था कि बोअर लोगोंको अपनी आतरिक व्यवस्था करनेका पूरा अधिकार तुरन्त मिल जायगा। उन्होने यह भी कहा कि यदि ऐसा न होता तो मैंने सधिपत्र पर कभी भी हस्ताक्षर न किये होते। लॉर्ड किचनरने उत्तरमें यह कहा कि मैंने ऐसा कोई विश्वास जनरल बोथाको नही दिलाया था। मैंने इतना ही कहा था कि जैसे जैसे बोअर प्रजा विश्वासपात्र सिद्ध होती जायगी वैसे वैसे उसे क्रमशः अधिक स्वतंत्रता मिलती जायगी। अब इन

दोनोंके बीच न्याय कौन करे? यदि कोई पंच द्वारा निर्णय करानेकी बात कहता, तो भी जनरल बोथा उसे क्यों मानने लगे? उस समय इंग्लैंडकी बड़ी (साम्राज्य) सरकारने जो न्याय किया वह संपूर्णतया उसकी प्रतिष्ठाको बढ़ानेवाला था। उस सरकारने यह बात स्वीकार की कि सामनेवाला पक्ष — और उसमें भी निर्बल पक्ष — समझौतेका जो अर्थ समझा हो वह अर्थ बलवान पक्षको मान्य रखना ही चाहिये। न्याय और सत्यके सिद्धान्तके अनुसार तो सदा वही अर्थ सच्चा होगा। मेरे कथनका अपने मनमें मैंने चाहे जो अर्थ मान रखा हो, फिर भी उसकी जो छाप पढ़नेवालों या सुननेवालोंके मन पर पड़ती हो उसी अर्थमें मैंने अपना वचन कहा है या अपना लेख लिखा है, ऐसा मुझे उनके सामने स्वीकार करना ही चाहिये। बहुत बार हम व्यवहारमें इस सुवर्ण-नियमका पालन नहीं करते, इसी कारणसे हमारे अनेक लड़ाई-झगड़े पैदा होते हैं और सत्यके नाम पर अर्धसत्यका — अर्थात् सच कहा जाय तो ड्योढ़े असत्यका — उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार जब सत्यकी — इस उदाहरणमें जनरल बोथाकी — संपूर्ण विजय हुई, तब उन्होंने अपना कार्य हाथमें लिया। इसके फलस्वरूप चारों उपनिवेश एकत्र हुए और दक्षिण अफ्रीकाको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। यूनियन जैक उसका ध्वज है और नकशोंमें उस प्रदेशका रंग लाल दिखाया जाता है; फिर भी ऐसा कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि दक्षिण अफ्रीका संपूर्ण रूपमें स्वतन्त्र ही है। ब्रिटिश साम्राज्य दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारकी सम्मतिके बिना एक पैसा भी दक्षिण अफ्रीकासे ले नहीं सकता। इतना ही नहीं, ब्रिटिश मन्त्रियोंने यह भी स्वीकार किया है कि यदि दक्षिण अफ्रीका ब्रिटिश ध्वज हटा देना चाहे और नामसे भी स्वतन्त्र होना चाहे, तो कोई उसे ऐसा करनेसे रोक नहीं सकता। फिर भी यदि आज तक दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंने यह कदम नहीं उठाया, तो उसके लिए अनेक प्रबल कारण हैं। एक तो यह कि बोअर प्रजाके नेता चतुर और सयाने हैं। ब्रिटिश साम्राज्यके साथ वे इस प्रकारकी भागीदारी अथवा ऐसा सम्बन्ध बनाये रखें, जिसमें उन्हें किसी तरहकी हानि न उठानी पड़े, तो इसे वे अनुचित नहीं मानते। लेकिन इसके सिवा दूसरा एक

व्यावहारिक कारण भी है। वह यह कि नेटालमें अंग्रेजोंकी संख्या अधिक है; केप कालोनीमें भी अंग्रेजोंकी संख्या बहुत है, परन्तु बोअरोंसे अधिक नहीं; और जोहानिसबर्गमें केवल अंग्रेजोंका ही प्राधान्य है। ऐसी दशामें यदि बोअर जाति समस्त दक्षिण अफ्रीकामें स्वतंत्र प्रजासत्ताक राज्य स्थापित करना चाहे, तो घरमें ही लड़ाई शुरू हो जाय और शायद उसमें से गृहयुद्ध भी भड़क उठे। इसलिए दक्षिण अफ्रीका आज भी ब्रिटिश साम्राज्यका एक डोमीनियन (अधिराज्य) माना जाता है।

दक्षिण अफ्रीकाके यूनियनका संविधान किस प्रकार रचा गया, यह भी जानने जैसी बात है। चारों उपनिवेशोंकी धारासभाओंके प्रतिनिधियोंने एकमत होकर यूनियनके संविधानका मसौदा तैयार किया और ब्रिटिश पार्लियामेन्टको उसे अक्षरशः स्वीकार करना पड़ा। ब्रिटिश लोकसभाके एक सदस्यने संविधानके मसौदेमें पाये गये एक व्याकरण-दोषकी ओर सदस्योंका ध्यान खींचा और कहा कि ऐसा दोषयुक्त शब्द संविधानसे निकाल देना चाहिये। परन्तु स्व० सर हेनरी कैम्पबेल-बैनरमैनने सदस्यके सुझावको अस्वीकार करते हुए कहा कि राज्यका शासन शुद्ध व्याकरणसे नहीं चल सकता; यह संविधान ब्रिटिश मंत्रि-मंडल तथा दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारके मंत्रियोंके बीच हुए सलाह-मशविरेके परिणाम-स्वरूप रचा गया है; अतः उसमें व्याकरणका दोष भी दूर करनेका अधिकार ब्रिटिश पार्लियामेन्टके लिए सुरक्षित नहीं रखा गया है। इसका नतीजा यह हुआ कि संविधान जिस रूपमें था उसी रूपमें उसे लोकसभा और लॉर्ड-सभाने मान्य रखा।

इस सम्बन्धमें एक तीसरी बात भी ध्यान देने योग्य है। यूनियनके संविधानमें कुछ धारायें ऐसी है, जो तटस्थ पाठकको जरूर निरर्थक मालूम होगी। उनकी वजहसे खर्च भी बहुत बढ गया है। यह बात संविधानके रचयिताओंके ध्यानसे बाहर भी नही थी। परन्तु उन लोगोंका उद्देश्य संपूर्णता सिद्ध करना नही था, बल्कि आपसी समझौतेसे एकमत होना और संविधानको सफल बनाना था। इसी कारणसे अभी यूनियनकी चार राजधानियां मानी जाती हैं, क्योंकि कोई भी उपनिवेश अपनी राजधानीका महत्त्व छोडनेको तैयार नही है। चारों उपनिवेशोंकी स्थानीय

धारासभायें भी रखी गई हैं। चारों उपनिवेशोंके लिए गवर्नर जैसा कोई पदाधिकारी तो होना ही चाहिये, इसलिए चार प्रान्तीय अधिकारी भी स्वीकार किये गये हैं। सब कोई यह समझते हैं कि चार स्थानीय धारासभायें, चार राजधानियां और चार प्रान्तीय शासक बकरीके गलेके स्तनोंकी तरह निरुपयोगी और केवल आडम्बर बढ़ानेवाले ही हैं। परन्तु इससे दक्षिण अफ्रीकाका शासन चलानेवाले व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञ डरनेवाले थोड़े ही थे? इस व्यवस्थामें आडम्बर होते हुए भी और उसके कारण खर्च अधिक होने पर भी चारों उपनिवेशोंकी एकता वांछनीय थी। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके राजनीतिज्ञोंने बाहरी दुनियाकी टीकाओंकी चिन्ता किये बिना खुदको जो उचित लगा वही किया और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा उसे स्वीकार कराया।

इस तरह दक्षिण अफ्रीकाका यह अतिशय संक्षिप्त इतिहास मैंने पाठकोंकी जानकारीके लिए यहां देनेका प्रयत्न किया है। मुझे लगा कि इसके बिना सत्याग्रहके महान संग्रामका रहस्य समझाया नहीं जा सकता। मूल विषय पर आनेसे पहले अब हमें यह देखना होगा कि हिन्दुस्तानी लोग दक्षिण अफ्रीकामें कैसे आये और वहां सत्याग्रहका आरम्भ होनेके पूर्व वे अपनी कठिनाइयों और संकटोंसे कैसे जूझे।

–

३

दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानियोंका आगमन

पिछले प्रकरणमें हम यह देख चुके हैं कि अंग्रेज नेटालमें आकर कैसे बसे थे। वहां उन्होंने जूलुओंसे कुछ अधिकार और रिआयतें प्राप्त कीं। अनुभवसे उन्होंने यह समझ लिया कि नेटालमें गन्ने, चाय और कॉफीका सुन्दर उत्पादन हो सकता है। बड़े पैमाने पर ये फसलें पैदा करनेके लिए हजारों मजदूरोंकी जरूरत थी। सौ-पचास अंग्रेज परिवार ऐसी सहायताके बिना ये फसलें पैदा नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने हबशियोंको काम करनेके लिए ललचाया और डराया भी। परन्तु अब गुलामीका कानून रद हो चुका था, इसलिए वे इस प्रयत्नमें सफल हो सकने जितना बल हबशियों पर आजमा नहीं सके। हबशियोंको बहुत मेहनत करनेकी आदत नहीं होती। छह माहकी साधारण मेहनतसे वे अपना निर्वाह भलीभांति कर सकते हैं। तब फिर किसी मालिकके साथ वे लम्बी मुद्दतके लिए क्यों बंधें? लेकिन जब तक स्थायी मजदूर न मिलें तब तक अंग्रेज अपना यह ध्येय पूरा नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने भारत सरकारके साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और मजदूरोंकी पूर्तिके लिए हिन्दुस्तानकी सहायता मांगी। भारत सरकारने नेटालकी मांग स्वीकार की और उसके फलस्वरूप हिन्दुस्तानी मजदूरोंका पहला जहाज १६ नवम्बर, १८६० को नेटाल पहुंचा। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें यह तारीख उल्लेखनीय मानी जायगी, क्योंकि यदि यह घटना न घटी होती तो दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानी न पहुंचे होते और वहां सत्याग्रहकी लड़ाई भी न हुई होती। और उस स्थितिमें यह इतिहास लिखनेकी आवश्यकता ही खड़ी न हुई होती।

मेरी दृष्टिसे नेटालके अंग्रेजोंकी यह मांग स्वीकार करनेमें भारत सरकारने गंभीरतासे सोचा नहीं। हिन्दुस्तानके अंग्रेज अधिकारी जाने-अनजाने नेटालके अपने भाइयोंके पक्षमें हो गये। यह सच है कि

इकरारनामेमें मजदूरोंकी रक्षाकी यथासंभव अधिकसे अधिक शर्तें दाखिल करके उनके खाने-पीनेकी सामान्य सुविधायें कर दी गई थीं। परन्तु उसमें इस बातका पूरा खयाल तो नहीं ही रखा गया कि इस प्रकार सुदूर देशमें जानेवाले अपढ मजदूरों पर यदि कोई दु:ख या संकट आ पड़े, तो उससे वे कैसे मुक्ति पा सकेंगे। और इन प्रश्नों पर तो बिलकुल नहीं सोचा गया कि हिन्दुस्तानी मजदूरोंके धर्मका वहां क्या होगा अथवा वे अपनी नीतिकी रक्षा वहां कैसे करेंगे? हिन्दुस्तानके अंग्रेज अधिकारियोंने यह भी नहीं सोचा कि कानूनसे भले ही गुलामीकी प्रथाका अंत आ गया हो, परन्तु मालिकोंके हृदयसे दूसरोंको गुलाम बनानेका लोभ तो दूर नहीं हुआ है। अधिकारियोंको यह बात समझनी चाहिये थी, परन्तु वे समझे नहीं, कि ये मजदूर सुदूर देशमें जाकर एक निश्चित अवधिके लिए गुलाम बन जायंगे। सर विलियम विलसन हटरने, जिन्होंने इन मजदूरोंकी स्थितिका गहरा अध्ययन किया था, इस स्थितिकी तुलना करते हुए दो शब्दोंका या शब्द-समूहका प्रयोग किया था। नेटालके ही हिन्दुस्तानी मजदूरोंके बारेमें एक बार उन्होंने लिखा था कि वे अर्ध-गुलामीकी स्थितिमें रहते हैं। दूसरी बार अपने एक पत्रमें उन्होंने लिखा था कि नेटालके हिन्दुस्तानी मजदूरोंकी स्थिति लगभग गुलामीकी हद तक पहुंच गई है। और नेटालके एक कमीशनके समक्ष साक्षी देते हुए वहांके एक बड़ेसे बड़े यूरोपियन, स्व० श्री एस्कांबने भी यही बात स्वीकार की थी। ऐसे तो अनेकों प्रमाण नेटालके अग्रणी यूरोपियनोंके मुखसे ही दिये जा सकते हैं। और उनमें से अधिकांश प्रमाण भारत सरकारके सामने इस विषयमें पेश की गई अरजियोंमें एकत्र किये गये हैं। लेकिन जो होना था वही हुआ। जो जहाज इन मजदूरोंको हिन्दुस्तानसे नेटाल ले गया, वही जहाज मजदूरोंके साथ सत्याग्रहके महान वृक्षका बीज भी नेटाल ले गया।

इन मजदूरोंको नेटालसे सम्बन्धित हिन्दुस्तानी दलालोंने कैसे ठगा, कैसे दलालोंके भुलावेमें आकर ये लोग नेटाल गये, नेटाल पहुंचने पर इनकी आंख कैसे खुली, आंख खुलने पर भी ये लोग नेटालमें क्यों रहे, क्यों दूसरे हिन्दुस्तानी भी इनके बाद वहां गये, वहां जाकर इन्होंने धर्म

और नीतिके समस्त बन्धन कैसे तोड़ डाले अथवा ये बन्धन कैसे टूट गये, कैसे इन अभागे मजदूरोंमें विवाहिता स्त्री और वेश्याके बीचका भेद बिलकुल मिट गया — यह सारी कहानी इस छोटीसी पुस्तकमें लिखी ही नहीं जा सकती।

ये हिन्दुस्तानी मजदूर नेटालमें 'एग्रीमेन्ट' पर गये हुए मजदूरोंके नामसे पहचाने जाते थे। इस परसे ये मजदूर अपने आपको 'गिरमिटिया' कहने लगे। इसलिए अब आगे 'एग्रीमेन्ट'को हम 'गिरमिट' कहेंगे और उसके आधार पर गये हुए मजदूरोंको 'गिरमिटिया' कहेंगे।

जब नेटालमें गिरमिटियोंके जानेके समाचार मोरीशियसमें फैले तब ऐसे मजदूरोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हिन्दुस्तानी व्यापारी नेटाल जानेको ललचाये। मोरीशियस नेटाल और हिन्दुस्तानके बीचमें पड़ता है। मोरीशियस द्वीपमें हजारों हिन्दुस्तानी व्यापारी और मजदूर रहते हैं। उनमें से एक व्यापारी स्व० अबूबकर आमदने नेटालमें अपनी पेढ़ी खोलनेका विचार किया। उस समय नेटालके अंग्रेजोंको भी इसकी कल्पना नहीं थी कि हिन्दुस्तानी व्यापारी क्या क्या करनेकी शक्ति रखते हैं, न उन्हें इस बातकी परवाह ही थी। अंग्रेजोंने गिरमिटियोंकी मददसे गन्ने, चाय, कॉफी वगैराकी बड़ा मुनाफा देनेवाली फसलें पैदा की, गन्नेसे शक्कर तैयार की और अचरजमें डाल दे इतने कम समयमें वे थोड़ी थोड़ी मात्रामें ये तीनों चीजें दक्षिण अफ्रीकाको मुहैया करने लगे। उन्होंने इतना धन कमाया कि अपने लिए बड़े बड़े महल खड़े कर लिये और जंगलमें मंगल कर दिया। ऐसे समय सेठ अबूबकर जैसा सरल, प्रामाणिक और चतुर व्यापारी उनके बीच आकर बसा, यह उन्हें अखरा नहीं। इतना ही नहीं, परन्तु एक अंग्रेज भी साझेदारके नाते उनके साथ पेढ़ीमें जुड़ गया! अबूबकर सेठने व्यापार चलाया, जमीन खरीदी और उनकी बहुत बड़ी कमाईकी अफवाहें हिन्दुस्तानमें उनके वतन पोरबन्दर तथा उसके आसपासके गांवोंमें फैली। इसके फलस्वरूप दूसरे मेमन नेटाल पहुंचे। उनके पीछे पीछे सूरतके बोहरे भी वहां जा पहुंचे। और इन व्यापारियोंको मुनीमोंकी जरूरत तो थी ही। इसलिए गुजरात और काठियावाड़ (सौराष्ट्र) के हिन्दू मुनीम भी नेटाल पहुंच गये।

इस प्रकार नेटालमें दो वर्गके हिन्दुस्तानी हो गये: (१) स्वतंत्र व्यापारी और उनका स्वतंत्र नौकर-वर्ग; (२) गिरमिटिया हिन्दुस्तानी। समय पाकर गिरमिटियोंके बाल-बच्चे हुए। गिरमिटके कानूनके अनुसार उनकी यह सन्तान यद्यपि मजदूरी करनेके लिए बंधी हुई नहीं थी, फिर भी इस कानूनकी कुछ कड़ी धाराओंका बुरा असर तो उस पर पड़ा ही। गुलामीका दाग गुलामोंकी सन्तानको लगे बिना कैसे रहता? ये गिरमिटिया मजदूर पाच वर्षके इकरार पर नेटाल जाते थे। पाच वर्ष बीत जानेके बाद वहा मजदूरी करनेको वे बंधे नही थे। इकरार पूरा होनेके बाद स्वतत्र मजदूरी या व्यापार करना हो तो वैसा करनेका और नेटालमें स्थायी रूपसे बसना हो तो वहा बसनेका उन्हे अधिकार था। कुछ लोगोंने इस अधिकारका उपयोग किया और कुछ लोग हिन्दुस्तान लौट आये। जो हिन्दुस्तानी नेटालमे ही रहे वे 'फ्री इडियन्स' के नामसे पुकारे जाने लगे। हम उन्हे गिरमिट-मुक्त अथवा सक्षेपमे मुक्त हिन्दुस्तानी कहेंगे। इस भेदको समझ लेना आवश्यक है। क्योंकि जो अधिकार पूर्ण स्वतत्र हिन्दुस्तानी — जिनका वर्णन ऊपर आ गया है — भोगते थे, वे सब अधिकार गिरमिटसे मुक्त हुए इन हिन्दुस्तानियोंको नहीं थे। उदाहरणके लिए, ये लोग एक जगहसे दूसरी जगह जाना चाहे तो इसके लिए उन्हें परवाना लेना ही चाहिये ऐसा नियम था। वे विवाह करे और उस विवाहको कानूनी दृष्टिसे जायज मनवाना चाहे, तो यह जरूरी था कि उस विवाहको वे गिरमिटियोंकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त अधिकारीके दफ्तरमें दर्ज करायें। इनके सिवा भी दूसरे कड़े अंकुश उन लोगों पर लगे हुए थे।

ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटमें सन् १८८०–१८९० के वर्षोंमें बोअरोंके प्रजा-सत्ताक राज्य थे। प्रजा-सत्ताक राज्यका अर्थ भी यहा स्पष्ट कर देना जरूरी है। यहा प्रजा-सत्ताक राज्यका अर्थ गोरा-सत्ताक राज्य है। हबशी प्रजाका उसके साथ कोई सम्बन्ध हो ही नही सकता था। हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने देखा कि वे केवल गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंके साथ ही व्यापार नही कर सकते, परन्तु हबशियोंके साथ भी कर सकते हैं। हिन्दुस्तानी व्यापारी हबशी लोगोंके लिए बडे सुविधाजनक सिद्ध हुए। गोरे व्यापारियोंसे हबशी अतिशय डरते थे। गोरे

व्यापारी हबशियोंके साथ व्यापार तो करना चाहते थे, परन्तु हबशी ग्राहकोंसे वे मीठी जबान बोलेंगे ऐसी आशा ग्राहक रख ही नहीं सकते थे। अगर हबशी ग्राहकको अपने पैसेका पूरा बदला मिल जाता, तो वह अपना अहोभाग्य समझता था। परन्तु कुछ लोगोंको ऐसा कड़वा अनुभव भी हुआ कि चार शिलिंगकी चीज खरीदनेके लिए एक पौंड उन्होंने गल्ले पर रखा, लेकिन सोलह शिलिंग लौटानेके बजाय गोरे व्यापारीने चार शिलिंग ही लौटाये या कुछ भी न लौटाया। गरीब हबशी ग्राहक अधिक रकम मांगता या हिसाबकी भूल बताता, तो बदलेमें उसे भद्दी गालियां मिलतीं। इतनेसे ही छूट जाता तो भी बेचारा अपनी खैर मनाता; वर्ना भद्दी गालियोंके साथ उसे गोरे व्यापारीका घूसा या लात भी खानी पड़ती थी! मेरा यह कहनेका बिलकुल आशय नहीं है कि सारे अंग्रेज व्यापारी हबशियोंके साथ ऐसा व्यवहार करते थे। परन्तु इतना जरूर कहा जा सकता है कि ऐसे उदाहरण काफी संख्यामें देखनेको मिलते थे। इसके विपरीत, हिन्दुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहकसे मीठी जबान तो बोलता ही था; परन्तु उसके साथ विनोद भी करता था। हबशी ग्राहक भोले होते थे और दुकानके भीतर आकर चीजोंको हाथमें उठाकर देखना-परखना चाहते थे। हिन्दुस्तानी व्यापारी यह सब सहन करता था। यह सच है कि वह परमार्थकी दृष्टिसे ऐसा नहीं करता था; इसमें उसकी दृष्टि स्वार्थपूर्ण ही थी। मौका मिलने पर हिन्दुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहकोंको ठगे बिना नहीं रहता, परन्तु हबशियोंमें हिन्दुस्तानी व्यापारीकी प्रियताका कारण उसकी मिठास थी। इसके सिवा, हबशी ग्राहक हिन्दुस्तानी व्यापारीसे बिलकुल नहीं डरते थे, उलटे ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि जब किसी हिन्दुस्तानी व्यापारीने हबशी ग्राहकोंको ठगनेका प्रयत्न किया और इसका पता उन्हें चल गया, तो उनके हाथों व्यापारीको मार भी खानी पड़ी है। और उनकी गालियां तो हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने अनेकों बार सुनी हैं। इस प्रकार हिन्दुस्तानियों और हबशियोंके इस सम्बन्धमें डरनेके मौके तो हिन्दुस्तानियोंको ही आये हैं। अंतमें परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको हबशियोंकी ग्राहकी बहुत लाभदायक मालूम हुई। और हबशी तो सारे दक्षिण अफ्रीकामें फैले हुए थे।

हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने सुना था कि ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटमें बोअर लोगोंके साथ भी व्यापार किया जा सकता है। बोअर लोग सरल, भोले और आडम्बर-रहित होते हैं; वे हिन्दुस्तानी व्यापारियोंके ग्राहक बननेमें शर्मिन्दा नहीं होंगे। ऐसा सोचकर कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटकी दिशामें भी प्रयाण किया। वहां जाकर उन्होंने दुकानें खोलीं। उन दिनों वहां रेलकी सुविधा नहीं थी, इसलिए व्यापारमें खूब मुनाफा मिल सकता था। हिन्दुस्तानी व्यापारियोंकी कल्पना सच निकली; उन्हें बोअरों और हबशियोंकी बहुत बड़ी ग्राहकी मिलने लगी। अब बचा केवल केप कॉलोनी। वहां भी कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारी जा पहुंचे और अच्छी कमाई करने लगे। इस प्रकार थोड़ी थोड़ी संख्यामें चारों उपनिवेशोंमें हिन्दुस्तानी कौम बंट गई।

इस समय पूर्ण स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंकी संख्या वहां ४० से ५० हजारके बीच और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियों तथा उनकी सन्तानोंकी संख्या लगभग एक लाख है।

४

मुसीबतोंका सिंहावलोकन – १

नेटाल

नेटालके गोरे मालिकोंको सिर्फ गुलामोंकी जरूरत थी। ऐसे मजदूर उन्हें पुसा नहीं सकते थे, जो गिरमिटकी अवधि पूरी करनेके बाद स्वतंत्र हो सकें और कुछ अंशमें भी उनके साथ स्पर्धा कर सकें। ये गिरमिटिया मजदूर नेटाल इसलिए गये थे कि हिन्दुस्तानमें खेतीके धन्धेमें या दूसरे किसी धन्धेमें वे सफल नहीं हो पाये थे। फिर भी वे ऐसे नहीं थे कि खेतीकी उन्हें कोई कल्पना ही न हो अथवा जमीन या खेतीकी कीमत न समझ सकें। उन्होंने देखा कि नेटालमें यदि वे सिर्फ साग-भाजी भी पैदा करें, तो काफी अच्छी कमाई कर सकते हैं; और यदि जमीनका एक छोटासा टुकड़ा भी ले लें, तब तो उससे और ज्यादा कमाई कर सकते

व्यापारी हबशियोंके साथ व्यापार तो करना चाहते थे, परन्तु हबशी ग्राहकोंसे वे मीठी जबान बोलेंगे ऐसी आशा ग्राहक रख ही नहीं सकते थे। अगर हबशी ग्राहकको अपने पैसेका पूरा बदला मिल जाता, तो वह अपना अहोभाग्य समझता था। परन्तु कुछ लोगोंको ऐसा कड़वा अनुभव भी हुआ कि चार शिलिंगकी चीज खरीदनेके लिए एक पौंड उन्होंने गल्ले पर रखा, लेकिन सोलह शिलिंग लौटानेके बजाय गोरे व्यापारीने चार शिलिंग ही लौटाये या कुछ भी न लौटाया! गरीब हबशी ग्राहक अधिक रकम मांगता या हिसाबकी भूल बताता, तो बदलेमें उसे भद्दी गालियां मिलती। इतनेसे ही छूट जाता तो भी बेचारा अपनी खैर मनाता; वर्ना भद्दी गालियोंके साथ उसे गोरे व्यापारीका घूसा या लात भी खानी पड़ती थी! मेरा यह कहनेका बिलकुल आशय नहीं है कि सारे अंग्रेज व्यापारी हबशियोंके साथ ऐसा व्यवहार करते थे। परन्तु इतना जरूर कहा जा सकता है कि ऐसे उदाहरण काफी सख्यामें देखनेको मिलते थे। इसके विपरीत, हिन्दुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहकसे मीठी जबान तो बोलता ही था; परन्तु उसके साथ विनोद भी करता था। हबशी ग्राहक भोले होते थे और दुकानके भीतर आकर चीजोंको हाथमें उठाकर देखना-परखना चाहते थे। हिन्दुस्तानी व्यापारी यह सब सहन करता था। यह सच है कि वह परमार्थकी दृष्टिसे ऐसा नहीं करता था; इसमें उसकी दृष्टि स्वार्थपूर्ण ही थी। मौका मिलने पर हिन्दुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहकोंको ठगे बिना नहीं रहता; परन्तु हबशियोंमें हिन्दुस्तानी व्यापारीकी प्रियताका कारण उसकी मिठास थी। इसके सिवा, हबशी ग्राहक हिन्दुस्तानी व्यापारीसे बिलकुल नहीं डरते थे, उलटे ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि जब किसी हिन्दुस्तानी व्यापारीने हबशी ग्राहकोंको ठगनेका प्रयत्न किया और इसका पता उन्हें चल गया, तो उनके हाथों व्यापारीको मार भी खानी पड़ी है! और उनकी गालियां तो हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने अनेकों बार सुनी हैं। इस प्रकार हिन्दुस्तानियों और हबशियोंके इस सम्बन्धमें डरनेके मौके तो हिन्दुस्तानियोंको ही आये हैं। अंतमें परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको हबशियोंकी ग्राहकी बहुत लाभदायक मालूम हुई। और हबशी तो सारे दक्षिण अफ्रीकामें फैले हुए थे।

हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने सुना था कि ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटमें बोअर लोगोंके साथ भी व्यापार किया जा सकता है। बोअर लोग सरल, भोले और आडम्बर-रहित होते हैं; वे हिन्दुस्तानी व्यापारियोंके ग्राहक बननेमें शर्मिन्दा नहीं होंगे। ऐसा सोचकर कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटकी दिशामें भी प्रयाण किया। वहां जाकर उन्होंने दुकानें खोलीं। उन दिनों वहां रेलकी सुविधा नहीं थी, इसलिए व्यापारमें खूब मुनाफा मिल सकता था। हिन्दुस्तानी व्यापारियोंकी कल्पना सच निकली; उन्हें बोअरों और हबशियोंकी बहुत बड़ी ग्राहकी मिलने लगी। अब बचा केवल केप कॉलोनी। वहां भी कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारी जा पहुंचे और अच्छी कमाई करने लगे। इस प्रकार थोड़ी थोड़ी संख्यामें चारों उपनिवेशोंमें हिन्दुस्तानी कौम बंट गई।

इस समय पूर्ण स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंकी संख्या वहां ४० से ५० हजारके बीच और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियों तथा उनकी सन्तानोंकी संख्या लगभग एक लाख है।

४

मुसीबतोंका सिंहावलोकन – १

नेटाल

नेटालके गोरे मालिकोंको सिर्फ गुलामोंकी जरूरत थी। ऐसे मजदूर उन्हें पुसा नहीं सकते थे, जो गिरमिटकी अवधि पूरी करनेके बाद स्वतंत्र हो सकें और कुछ अंशमें भी उनके साथ स्पर्धा कर सकें। ये गिरमिटिया मजदूर नेटाल इसलिए गये थे कि हिन्दुस्तानमें खेतीके धन्धेमें या दूसरे किसी धन्धेमें वे सफल नहीं हो पाये थे। फिर भी वे ऐसे नहीं थे कि खेतीकी उन्हें कोई कल्पना ही न हो अथवा जमीन या खेतीकी कीमत न समझ सकें। उन्होंने देखा कि नेटालमें यदि वे सिर्फ साग-भाजी भी पैदा करें, तो काफी अच्छी कमाई कर सकते हैं; और यदि जमीनका एक छोटासा टुकड़ा भी ले लें, तब तो उससे और ज्यादा कमाई कर सकते

है। इसलिए बहुतसे गिरमिटिया इकरारसे मुक्त होनेके बाद नेटालमें कोई न कोई छोटा-मोटा धन्धा करने लगे। इससे सब मिलाकर तो नेटाल जैसे देशके निवासियोंको लाभ ही हुआ। अनेक तरहकी साग-भाजी पैदा होने लगी, जो योग्य किसानोंके अभावमें पहले पैदा नहीं होती थी। जो साग-भाजी कहीं कहीं थोडी मात्रामें पैदा होती थी वह अब बड़ी मात्रामें पैदा होने लगी। इससे साग-भाजीके भाव एकदम उतर गये। लेकिन यह बात धनी गोरोंको अच्छी नहीं लगी। उन्हें लगा कि आज तक जिसे वे अपना एकाधिकार मानते थे, उसमें अब हिस्सा बटानेवाले पैदा हो गये हैं। इस कारणसे इन गरीब गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध एक आन्दोलन नेटालमें शुरू हो गया। पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक ओर तो गोरे लोग अधिकाधिक संख्यामें मजदूरोंकी मांग करते थे, हिन्दुस्तानसे जितने भी गिरमिटिया आते थे वे सब नेटालमें खप जाते थे; और दूसरी ओर जो हिन्दुस्तानी गिरमिट-मुक्त होते थे उन पर अनेक तरहके प्रतिबन्ध लगानेका आन्दोलन चलाते थे। यही था हिन्दुस्तानियोंकी होशियारी और जी-तोड़ मेहनतका बदला!

इस आन्दोलनने अनेक रूप ग्रहण किये थे। गोरोंके एक वर्गने यह मांग की कि गिरमिटसे मुक्त होनेवाले मजदूरोंको वापस हिन्दुस्तान भेज देना चाहिये और इसलिए पुराने इकरारनामेको बदल कर नये इकरारनामेमें नये आनेवाले मजदूरोंसे यह शर्त लिखवानी चाहिये कि या तो गिरमिटकी अवधि पूरी हो जाने पर वे हिन्दुस्तान लौट जायेंगे या फिरसे गिरमिटमें दाखिल हो जायेंगे। दूसरे वर्गने यह विचार प्रकट किया कि गिरमिटसे मुक्त होने पर हिन्दुस्तानी मजदूर अगर फिरसे गिरमिटमें दाखिल न होना चाहें, तो उनसे भारी वार्षिक मुण्ड-कर लिया जाय। इन दोनों वर्गोंका उद्देश्य तो एक ही था: यह कि किसी भी युक्तिसे गिरमिट-मुक्त वर्गके लिए नेटालमें स्वतंत्रतासे रहना सर्वथा असंभव कर दिया जाय। आन्दोलनकारियोंने इतना होहल्ला मचाया कि अंतमें नेटाल सरकारने एक कमीशन नियुक्त कर दिया। दोनों वर्गोंकी मांग बिलकुल अनुचित थी; और गिरमिट-मुक्त मजदूरोंका अस्तित्व आर्थिक दृष्टिसे नेटालकी समस्त प्रजाके लिए पूर्णतया लाभदायी था। इसलिए कमीशनके

समक्ष जो भी स्वतंत्र प्रमाण आये, वे सब उपरोक्त दोनों वर्गोंके विरुद्ध थे। इसके फलस्वरूप तत्काल तो विरुद्ध पक्षोंकी दृष्टिसे इस आन्दोलनका कोई परिणाम नहीं आया; परन्तु जैसे आग बुझनेके बाद भी अपनी थोड़ी-बहुत निशानी छोड़ जाती है उसी तरह इस आन्दोलनने भी अपनी थोड़ी-बहुत छाप नेटाल सरकार पर अवश्य डाली। दूसरा कुछ हो भी कैसे सकता था? नेटालकी गोरी सरकार गोरोंके धनिक वर्गकी हिमायती थी। उसने भारत सरकारके साथ इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार आरंभ किया और आन्दोलनकारियोंके दोनों पक्षोंकी सूचनायें उसके सामने रखी। लेकिन भारत सरकार एकदम ऐसी सूचनायें कैसे स्वीकार करती, जिनके फलस्वरूप गिरमिटिया मजदूर नेटालमें हमेशाके लिए गुलामीमें फंसे रहें? गिरमिटके मातहत हिन्दुस्तानियोंको इतनी दूर भेजनेका एक कारण या बहाना यह था कि गिरमिट पूरी होने पर गिरमिटिया लोग स्वतंत्र बनकर अपनी शक्तियोंका वहां पूरा विकास करेंगे और उसके फलस्वरूप अपनी आर्थिक स्थिति सुधारेंगे। नेटाल उस समय तक क्राउन कॉलोनी ही था, इसलिए कॉलोनियल ऑफिस उसके शासनके लिए पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता था। अतः नेटाल उस ऑफिससे भी अपनी अन्यायपूर्ण इच्छाएं और मांगें पूरी करनेमें मदद पानेकी आशा नहीं रख सकता था। इस कारणसे और ऐसे अन्य कारणोंसे नेटालमें उत्तरदायी शासनका अधिकार प्राप्त करनेका आन्दोलन आरंभ हुआ। उत्तरदायी शासनकी यह सत्ता नेटालको सन् १८९३ में मिली। अब नेटालको अपनी ताकतका अनुभव होने लगा। कॉलोनियल ऑफिसको भी नेटालकी चाहे जैसी मांगें स्वीकार करनेमें अब अधिक कठिनाई नहीं मालूम हुई। नेटालकी इस नई अर्थात् उत्तरदायी सरकारने भारत सरकारसे सलाह-मशविरा करनेके लिए अपने प्रतिनिधि हिन्दुस्तानमें भेजे। उनकी मांग यह थी कि प्रत्येक गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी पर २५ पौंड अर्थात् रु० ३७५ का वार्षिक मुंड-कर लगाया जाय। इसका अर्थ यही हुआ कि कोई भी हिन्दुस्तानी मजदूर इतना भारी कर भर नहीं सकता था और इसलिए स्वतंत्र मनुष्यके नाते नेटालमें रह नहीं सकता था। हिन्दुस्तानके तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड एल्गिनको २५ पौंडकी रकम बहुत ज्यादा भारी लगी और अन्तमें

है। इसलिए बहुतसे गिरमिटिया इकरारसे मुक्त होनेके बाद नेटालमें कोई न कोई छोटा-मोटा धन्धा करने लगे। इससे सब मिलाकर तो नेटाल जैसे देशके निवासियोंको लाभ ही हुआ। अनेक तरहकी साग-भाजी पैदा होने लगी, जो योग्य किसानोंके अभावमें पहले पैदा नहीं होती थी। जो साग-भाजी कहीं कहीं थोडी मात्रामें पैदा होती थी वह अब बडी मात्रामें पैदा होने लगी। इससे साग-भाजीके भाव एकदम उतर गये। लेकिन यह बात धनी गोरोंको अच्छी नहीं लगी। उन्हें लगा कि आज तक जिसे वे अपना एकाधिकार मानते थे, उसमें अब हिस्सा बटानेवाले पैदा हो गये हैं। इस कारणसे इन गरीब गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध एक आन्दोलन नेटालमें शुरू हो गया। पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक ओर तो गोरे लोग अधिकाधिक संख्यामें मजदूरोंकी माग करते थे, हिन्दुस्तानसे जितने भी गिरमिटिया आते थे वे सब नेटालमें खप जाते थे; और दूसरी ओर जो हिन्दुस्तानी गिरमिट-मुक्त होते थे उन पर अनेक तरहके प्रतिबन्ध लगानेका आन्दोलन चलाते थे। यही था हिन्दुस्तानियोंकी होशियारी और जी-तोड मेहनतका बदला!

इस आन्दोलनने अनेक रूप ग्रहण किये थे। गोरोंके एक वर्गने यह माग की कि गिरमिटसे मुक्त होनेवाले मजदूरोंको वापस हिन्दुस्तान भेज देना चाहिये और इसलिए पुराने इकरारनामेको बदल कर नये इकरारनामेमें नये आनेवाले मजदूरोंसे यह शर्त लिखवानी चाहिये कि या तो गिरमिटकी अवधि पूरी हो जाने पर वे हिन्दुस्तान लौट जायेंगे या फिरसे गिरमिटमें दाखिल हो जायेंगे। दूसरे वर्गने यह विचार प्रकट किया कि गिरमिटसे मुक्त होने पर हिन्दुस्तानी मजदूर अगर फिरसे गिरमिटमें दाखिल न होना चाहे, तो उनसे भारी वार्षिक मुण्ड-कर लिया जाय। इन दोनों वर्गोंका उद्देश्य तो एक ही था: यह कि किसी भी युक्तिसे गिरमिट-मुक्त वर्गके लिए नेटालमें स्वतंत्रतासे रहना सर्वथा असंभव कर दिया जाय। आन्दोलनकारियोंने इतना होहल्ला मचाया कि अंतमें नेटाल सरकारने एक कमीशन नियुक्त कर दिया। दोनों वर्गोंकी माग बिलकुल अनुचित थी; और गिरमिट-मुक्त मजदूरोंका अस्तित्व आर्थिक दृष्टिसे नेटालकी समस्त प्रजाके लिए पूर्णतया लाभदायी था। इसलिए कमीशनके

समक्ष जो भी स्वतंत्र प्रमाण आये, वे सब उपरोक्त दोनों वर्गोंके विरुद्ध थे। इसके फलस्वरूप तत्काल तो विरुद्ध पक्षोंकी दृष्टिसे इस आन्दोलनका कोई परिणाम नहीं आया; परन्तु जैसे आग बुझनेके बाद भी अपनी थोड़ी-बहुत निशानी छोड़ जाती है उसी तरह इस आन्दोलनने भी अपनी थोड़ी-बहुत छाप नेटाल सरकार पर अवश्य डाली। दूसरा कुछ हो भी कैसे सकता था? नेटालकी गोरी सरकार गोरोंके धनिक वर्गकी हिमायती थी। उसने भारत सरकारके साथ इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार आरंभ किया और आन्दोलनकारियोंके दोनों पक्षोंकी सूचनायें उसके सामने रखीं। लेकिन भारत सरकार एकदम ऐसी सूचनायें कैसे स्वीकार करती, जिनके फलस्वरूप गिरमिटिया मजदूर नेटालमें हमेशाके लिए गुलामीमें फंसे रहें? गिरमिटके मातहत हिन्दुस्तानियोंको इतनी दूर भेजनेका एक कारण या बहाना यह था कि गिरमिट पूरी होने पर गिरमिटिया लोग स्वतंत्र बनकर अपनी शक्तियोंका वहां पूरा विकास करेंगे और उसके फलस्वरूप अपनी आर्थिक स्थिति सुधारेंगे। नेटाल उस समय तक क्राउन कॉलोनी ही था, इसलिए कॉलोनियल ऑफिस उसके शासनके लिए पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता था। अतः नेटाल उस ऑफिससे भी अपनी अन्यायपूर्ण इच्छाएं और मांगें पूरी करनेमें मदद पानेकी आशा नहीं रख सकता था। इस कारणसे और ऐसे अन्य कारणोंसे नेटालमें उत्तरदायी शासनका अधिकार प्राप्त करनेका आन्दोलन आरंभ हुआ। उत्तरदायी शासनकी यह सत्ता नेटालको सन् १८९३ में मिली। अब नेटालको अपनी ताकतका अनुभव होने लगा। कॉलोनियल ऑफिसको भी नेटालकी चाहे जैसी मांगें स्वीकार करनेमें अब अधिक कठिनाई नहीं मालूम हुई। नेटालकी इस नई अर्थात् उत्तरदायी सरकारने भारत सरकारसे सलाह-मशविरा करनेके लिए अपने प्रतिनिधि हिन्दुस्तानमें भेजे। उनकी मांग यह थी कि प्रत्येक गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी पर २५ पौंड अर्थात् रु० ३७५ का वार्षिक मुंड-कर लगाया जाय। इसका अर्थ यही हुआ कि कोई भी हिन्दुस्तानी मजदूर इतना भारी कर भर नहीं सकता था और इसलिए स्वतंत्र मनुष्यके नाते नेटालमें रह नहीं सकता था। हिन्दुस्तानके तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड एल्गिनको २५ पौंडकी रकम बहुत ज्यादा भारी लगी और अन्तमें

अनुसार उन्हें भी नेटालकी धारासभाके सदस्य बननेका और सदस्य चुननेका अधिकार है। अतः कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने अपने नाम भी मतदाताओंकी सूचीमें दर्ज कराये। इस स्थितिको नेटालके राजनीतिक क्षेत्रके गोरे बरदाश्त नहीं कर सके; क्योंकि उन्हें यह चिन्ता होने लगी कि यदि इस प्रकार हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति नेटालमें मजबूत हो जाय और उनकी प्रतिष्ठा बढ़े, तो उनकी स्पर्धामें गोरे यहां टिक नहीं सकेंगे। इससे नेटालकी उत्तरदायी सरकारका पहला कदम स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंके बारेमें ऐसा कानून बनाना था, जिससे एक भी नया हिन्दुस्तानी नेटालमें मतदाता न बन सके। सन् १८९४ में इस विषयका पहला बिल नेटालकी धारासभामें आया। इस बिलमें हिन्दुस्तानियोंको हिन्दुस्तानियोंके नाते ही मतदानके अधिकारसे वंचित रखनेका सिद्धान्त स्वीकार किया गया था। नेटालमें रंगभेदके आधार पर हिन्दुस्तानियोंके बारेमें बनाया गया यह पहला कानून था। हिन्दुस्तानी जनताने इसका विरोध किया। एक रातमें अरजी तैयार हुई। उस पर चार सौ आदमियोंके हस्ताक्षर लिये गये। यह अरजी पहुंचते ही नेटालकी धारासभा चौंक उठी। लेकिन बिल तो पास हुआ ही। उस समय लॉर्ड रिपन उपनिवेशोंके मंत्री थे। उनके पास हिन्दुस्तानियोंकी जो अरजी गई, उसमें दस हजार लोगोंके हस्ताक्षर थे। दस हजार हस्ताक्षरोंका अर्थ था नेटालके लगभग सारे स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंके हस्ताक्षर। लॉर्ड रिपनने नेटाल धारासभाके बिलको अस्वीकार कर दिया और कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य कानूनमें रंगभेदको स्वीकार नहीं कर सकता। हिन्दुस्तानियोंकी यह विजय कितनी महत्त्वपूर्ण थी, इसकी कल्पना पाठकोंको आगे चलकर अधिक हो सकेगी। इसके उत्तरमें नेटाल सरकारने धारासभामें एक नया बिल पेश किया। उसमें से रंगभेद तो निकल गया, किन्तु परोक्ष रूपसे आक्रमण उसमें भी हिन्दुस्तानियों पर ही किया गया था। हिन्दुस्तानी कौम उसके खिलाफ भी लड़ी, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। यह नया बिल द्वि-अर्थी था। उसका अर्थ स्पष्ट करानेके लिए कौम यदि चाहती तो अंतिम अदालत तक अर्थात् प्रिवी कौंसिल तक लड़ सकती थी; परन्तु ऐसा करना उसने उचित नहीं समझा। मुझे आज भी लगता है कि प्रिवी कौंसिल तक उसका न

रखना उचित ही था। कानूनमें रंगभेदको नहीं घुसने दिया गया, यह कोई मामूली बात नहीं थी।

परन्तु नेटालके गोरे मालिकों या नेटाल सरकारको इतनेसे सन्तोष नहीं हुआ। हिन्दुस्तानियोंकी राजनीतिक सत्ताको नेटालमें जमनेसे रोकना उनके लिए एक आवश्यक कदम था। लेकिन उनकी नजर असलमें तो हिन्दुस्तानियोंके व्यापार पर और स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंके आगमन पर ही थी। ३० करोड़ लोगोंकी आबादीवाला हिन्दुस्तान अगर नेटालकी दिशामें उलट पड़े, तो नेटालके गोरोंका क्या होगा — वे तो समुद्रमें ही बह जायंगे! इस भयसे वहांके गोरे बेचैन हो उठे थे। उस समय नेटालकी आबादीका अनुपात लगभग इस प्रकार था: ४ लाख हबशी, ४० हजार गोरे, ६० हजार गिरमिटिया मजदूर, १० हजार गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी और १० हजार स्वतंत्र हिन्दुस्तानी। गोरोंके भयके लिए कोई ठोस कारण तो नहीं थे, लेकिन डरे हुए मनुष्योंको उदाहरणों या दलीलोंसे कभी समझाया ही नहीं जा सकता। हिन्दुस्तानकी लाचार हालातका और हिन्दुस्तानियोंके रीति-रिवाजोंका ज्ञान उन्हें नहीं था, इसलिए उनके मनमें यह भ्रम था कि जैसे साहसी और जैसे शक्तिशाली हम स्वयं हैं वैसे ही हिन्दुस्तानी भी होने चाहिये। अतः उन्होंने केवल त्रैराशिकका हिसाब लगा लिया था। इसमें उन्हें दोषी कैसे माना जाय? हिन्दुस्तानकी करोड़ोंकी आबादीकी तुलनामें अपनी छोटी संख्याको देखकर उनका इस प्रकार भयभीत होना स्वाभाविक ही था। जो भी हो, परन्तु इसका परिणाम यह आया कि नेटालकी धारासभाने दूसरे जो दो कानून पास किये, उनमें भी मतदान-सम्बन्धी हिन्दुस्तानियोंकी लड़ाईमें मिली विजयके फलस्वरूप रंगभेदको उसे दूर रखना पड़ा; और गर्भित भाषाका उपयोग करके उसे अपना ध्येय सिद्ध करना पड़ा। इसके फलस्वरूप विरोध करनेवाले हिन्दुस्तानियोंकी इज्जत कुछ हद तक बनी रही। हिन्दुस्तानी कौम इस बार भी डट कर लड़ी, परन्तु कानून तो दोनों ही धारासभामें पास हुए। एक कानूनसे तो हिन्दुस्तानियोंके व्यापार पर कड़ा अंकुश लगा दिया गया और दूसरे कानूनसे नेटालमें हिन्दुस्तानियोंके प्रवेश पर। पहले कानूनका आशय यह था कि कानूनके अनुसार नियुक्त किये गये अधि-

कारीकी इजाजतके बिना किसीको व्यापारका परवाना नहीं मिल सकता। परन्तु व्यवहारमें चाहे जो गोरा जाकर अधिकारीसे परवाना प्राप्त कर सकता था, जब कि हिन्दुस्तानीको वह बड़ी मुसीबतोंके बाद मिलता था; इसके लिए हिन्दुस्तानीको वकील करना होता था और दूसरा खर्च भी करना पड़ता था। इसलिए ढीले-पोचे हिन्दुस्तानी तो व्यापारके परवानेके बिना ही रह जाते थे। दूसरे कानूनकी मुख्य शर्त यह थी कि जो हिन्दुस्तानी यूरोपकी किसी भी भाषामें नेटालमें प्रवेश करनेकी अरजी लिख सके, वही नेटालमें प्रवेश पा सकता है। इसलिए इस कानूनने करोड़ों हिन्दुस्तानियोंके लिए नेटालका दरवाजा बिलकुल बन्द कर दिया। मैं जाने-अनजाने नेटाल सरकारके साथ अन्याय न कर बैठूं, इसलिए मुझे यह बता देना चाहिये कि जो हिन्दुस्तानी इस कानूनके पास होनेसे पूर्व तीन वर्ष तक नेटालमें रह चुका हो, वह अगर नेटाल छोड़कर हिन्दुस्तान या दूसरे स्थानमें जाता और वहांसे नेटाल लौटता, तो यूरोपकी कोई भाषा जाने बिना भी अपनी पत्नी और नाबालिग बच्चोंके साथ वह नेटालमें प्रवेश कर सकता था।

इसके सिवा, नेटालमें गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों तथा स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों पर दूसरे भी कानूनी और कानूनसे बाहरके प्रतिबन्ध लगे हुए थे। लेकिन उनमें पाठकोंको उतारना मैं जरूरी नहीं मानता। इस पुस्तकके विषयको समझनेके लिए जितनी बातें आवश्यक मालूम होती हैं उतनी ही यहां देनेका मेरा विचार है। दक्षिण अफ्रीकाके प्रत्येक उपनिवेशमें बसनेवाले हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिका इतिहास बहुत विस्तारसे दिया जा सकता है; परन्तु ऐसा इतिहास देना इस पुस्तकका उद्देश्य नहीं है।

५

मुसीबतोंका सिंहावलोकन – २

ट्रांसवाल और अन्य उपनिवेश

नेटालकी तरह दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे उपनिवेशोंमें भी हिन्दुस्तानियोंके प्रति गोरोंकी नापसंदगी कम-ज्यादा मात्रामें १८८० से पहले ही बढ़ने लगी थी। केप कॉलोनीके सिवा दूसरे उपनिवेशोंमें गोरोंकी एक ही राय बनी थी कि मजदूरोंके नाते तो हिन्दुस्तानी बड़े अच्छे हैं; परन्तु बहुतेरे गोरोंके मनमें यह बात स्वयंसिद्ध सत्यकी तरह जम गई थी कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंके आनेसे दक्षिण अफ्रीकाको केवल नुकसान ही होता है। ट्रान्सवाल प्रजासत्ताक राज्य था। वहांके प्रेसिडेन्टके सामने हिन्दुस्तानियोंका यह कहना हास्यास्पद बनने जैसा था कि हम ब्रिटिश प्रजाजन कहलाते हैं। हिन्दुस्तानियोंको कोई भी शिकायत करनी हो तो वे केवल प्रिटोरिया स्थित ब्रिटिश राजदूत (एजेन्ट) के सामने ही कर सकते थे। ऐसा होते हुए भी आश्चर्यकी बात तो यह है कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश साम्राज्यसे बिलकुल अलग होने पर ब्रिटिश राजदूत हिन्दुस्तानियोंकी जो मदद कर सकता था, वह ट्रान्सवालके ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत आ जाने पर बिलकुल खतम हो गई। जिस समय लॉर्ड मोर्ले भारत-मंत्री थे उन दिनों ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंकी वकालत करनेके लिए एक प्रतिनिधि-मंडल उनके पास गया था। तब लॉर्ड मोर्लेने उसके सदस्योंसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा था: 'आप जानते हैं कि उत्तरदायी शासन-तंत्रवाले उपनिवेशों पर बड़ी (साम्राज्य) सरकारका नियंत्रण बहुत कम है। स्वतंत्र राज्योंको बड़ी सरकार युद्धकी धमकी दे सकती है — उनके साथ युद्ध भी कर सकती है, परन्तु उपनिवेशोंके साथ तो सिर्फ सलाह-मशविरा ही हो सकता है। उनके साथ बड़ी सरकारका सम्बन्ध रेशमकी डोरसे बंधा हुआ है, जो थोड़ा भी खींचनेसे टूट सकता है। उनके साथ बलसे तो काम लिया ही नहीं जा सकता; हां, कलसे (युक्तिसे) जो

कुछ करना संभव है उतना सब करनेका मैं आपको विश्वास दिलाता हूं।' जब ट्रान्सवालके विरुद्ध युद्ध घोषित किया गया तब लॉर्ड लैन्ड्सडाउन, लॉर्ड सेलबोर्न वगैरा ब्रिटिश अधिकारियोंने कहा था कि युद्ध करनेके अनेक कारणोंमें एक कारण ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंकी दुःखद स्थिति भी है।

अब हम देखें कि ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंका दुःख क्या था। ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानी पहले-पहल सन् १८८१ में दाखिल हुए थे। स्व० सेठ अबूबकरने ट्रान्सवालकी राजधानी प्रिटोरियामें दुकान खोली और उसके एक मुख्य मुहल्लेमें जमीन भी खरीदी। उसके बाद दूसरे हिन्दुस्तानी व्यापारी भी एकके बाद एक वहां पहुंचे। उनका व्यापार धड़ल्लेसे चलने लगा, इस कारण गोरे व्यापारियोंको उनसे ईर्ष्या होने लगी। अखबारोंमें हिन्दुस्तानियोंके खिलाफ लेख, पत्र वगैरा लिखे जाने लगे और धारासभामें यह माग करनेवाली अरजियां पेश की गई कि हिन्दुस्तानियोंको ट्रान्सवालसे बाहर निकाल दिया जाय और उनका व्यापार बन्द कर दिया जाय। ट्रान्सवाल जैसे बिलकुल नये देशमें गोरोंकी धनतृष्णाका कोई पार नहीं था। वे नीति और अनीतिके बीचका भेद शायद ही जानते थे। धारासभामें उन्होंने जो अरजियां पेश की थी, उनमें ऐसे वाक्य लिखे गये थे: "ये लोग (हिन्दुस्तानी व्यापारी) मानवीय सभ्यताको जानते ही नहीं। वे बदचलनीसे होनेवाले रोगोंसे सड़ रहे हैं। हर औरतको वे अपना शिकार समझते हैं। उनका विश्वास है कि औरतोंमें आत्मा होती ही नहीं।" इन चार वाक्योंमें चार झूठ भरे हैं। ऐसे दूसरे बहुतेरे नमूने पेश किये जा सकते हैं। जैसे ये गोरे थे वैसे ही धारासभामें उनके प्रतिनिधि थे। हमारे व्यापारी क्या जानें कि उनके खिलाफ कैसा बेहूदा और अन्यायपूर्ण आन्दोलन चल रहा है? अखबार तो वे पढते ही नहीं थे। गोरोंके अखबारी प्रचार और अरजियों द्वारा किये जानेवाले आन्दोलनका असर धारासभा पर पड़ा और धारासभामें एक बिल पेश हुआ। इसका पता जब अग्रणी हिन्दुस्तानियोंको चला तो वे लोग चौंके। वे स्व० प्रेसिडेन्ट क्रूगरके पास पहुंचे। प्रेसिडेन्टने हिन्दुस्तानी नेताओंको घरमें प्रवेश भी नहीं करने दिया। घरके आंगनमें ही उन्हें खड़ा रखा और

उनकी थोड़ी-बहुत बातें सुननेके बाद उनसे कहा: "तुम लोग इस्माईलकी सन्तान हो, इसलिए तुम ईसोकी सन्तानकी गुलामी करनेके लिए ही पैदा हुए हो। हम लोग ईसोकी सन्तान माने जाते हैं, इसलिए तुम्हें हमारे बराबर बनानेवाले समान अधिकार तो कभी मिल ही नही सकते। हम जो अधिकार तुम्हे दें उन्हीसे तुम्हे सन्तोष मानना चाहिये।" प्रेसिडेन्टके इस उत्तरमें कोई द्वेष या रोष था, ऐसा हम नहीं कह सकते। प्रेसिडेन्ट क्रूगरको इसी प्रकारकी शिक्षा मिली थी; बचपनसे ही उन्हे बाइबलके पुराने करारमें कही हुई बातें सिखाई गई थी और उन्होंने विश्वाससे उन बातोंको स्वीकार कर लिया था। और, जिस मनुष्यका जो विश्वास हो वैसा ही वह शुद्ध मनसे कहे, तो इसमें उसका दोष कैसे निकाला जाय? परन्तु ऐसे निखालस और शुद्ध अज्ञानका भी बुरा असर तो होता ही है। उसका नतीजा यह आया कि १८८५ मे एक बहुत कड़ा कानून उतावलीसे धारासभामें पास हुआ; मानो हजारो हिन्दुस्तानी तत्काल ट्रान्सवालको लूटनेकी ताकमें बैठे हो! ब्रिटिश राजदूतको हिन्दुस्तानी नेताओंकी प्रेरणासे इस कानूनके खिलाफ कदम उठाने पड़े। यह मामला उपनिवेश-मंत्री तक पहुचा। इस कानूनके अनुसार जो हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें व्यापार करनेके लिए आकर बसे, उसके लिए २५ पौंड देकर अपना नाम दर्ज कराना जरूरी था; कोई हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें एक इच भी जमीन नही खरीद सकता था, और मतदाता तो वह बन ही नही सकता था। यह सब इतना अनुचित और अन्यायपूर्ण था कि ट्रान्सवाल सरकार तर्कसे इसका बचाव नही कर सकती थी। ट्रान्सवाल सरकार और ब्रिटिश सरकारके बीच एक सन्धि हुई थी, जिसे 'लदन कन्वेन्शन' कहा जाता था। उसकी १४वी धारा ब्रिटिश प्रजाजनोंके अधिकारोंकी रक्षासे सम्बन्ध रखती थी। उस धाराके अनुसार बड़ी (साम्राज्य) सरकारने इस कानूनका विरोध किया। ट्रान्सवाल सरकारने यह तर्क दिया कि उसने जो कानून पास किया है, उसके लिए बड़ी सरकारने ही पहलेसे स्पष्ट या गर्भित संमति दी थी।

इस प्रकार ब्रिटेन और ट्रान्सवालकी सरकारके बीच मतभेद पैदा होनेसे यह झगड़ा पचके समक्ष रखा गया। पचका निर्णय शिथिल था।

उसने दोनों सरकारोंको खुश रखनेका प्रयत्न किया। नतीजा यह हुआ कि इस मामलेमें भी हिन्दुस्तानियोंको नुकसान उठाना पड़ा। लाभ इतना ही हुआ, यदि उसे लाभ कहा जा सके तो, कि अधिक नुकसान उठानेके बजाय उन्हें कम नुकसान उठाना पड़ा। पंचके उपर्युक्त निर्णयके अनुसार कानूनमें सुधार १८८६ में हुआ। उसके फलस्वरूप २५ पौंडके बदले ३ पौंड लेनेका निर्णय हुआ; और जमीन बिलकुल न खरीद सकनेकी जो कड़ी शर्त थी उसे रद करके यह शर्त रखी गई कि हिन्दुस्तानी लोग ऐसे ही लोकेशन, बाड़े या मुहल्लेमें जमीन खरीद सकते हैं, जो ट्रान्सवाल सरकार उनके लिए पहलेसे नियत कर दे। इस धाराका अमल करनेमें भी सरकारने मनमें चोरी रखी। इसलिए ऐसे बाड़ोंमें भी पूर्ण स्वामित्वकी जमीनें खरीदनेके अधिकार सरकारने हिन्दुस्तानियोंको नहीं दिये। ऐसे हर शहरमें, जहां हिन्दुस्तानियोंकी बस्ती थी, ये बाड़े शहरसे बहुत दूर और गन्दीसे गन्दी जगहमें रखे गये थे। वहां पानीको और रोशनीकी कमसे कम सुविधा होती थी; पाखानोंकी सफाईका भी यही हाल था। इसलिए हम हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालकी पंचम (अछूत) जाति बन गये थे। इस कारणसे इन बाड़ोंमें और हिन्दुस्तानके ढेढ़वाड़ोंमें कोई फर्क नहीं था, ऐसा कहा जा सकता है। जिस तरह हिन्दू यह मानते हैं कि भंगी, चमार या ढेढ़को छूनेसे अथवा उसके पड़ोसमें रहनेसे वे अपवित्र हो जाते हैं, उसी प्रकार ट्रान्सवालके गोरे यह मानते थे कि हिन्दुस्तानियोंके स्पर्शसे या उनके पड़ोसमें रहनेसे वे अपवित्र हो जायंगे। इसके सिवा, १८८५ के इस कानून नं० ३ का ट्रान्सवालकी सरकारने यह अर्थ किया कि हिन्दुस्तानी लोग व्यापार भी इन्हीं लोकेशनों या बाड़ोंमें कर सकते हैं। यह अर्थ सही है या नहीं इसका निर्णय करनेकी जिम्मेदारी पंचने ट्रान्सवालके न्यायालय पर छोड़ दी थी, इसलिए हिन्दुस्तानी व्यापारियोंकी स्थिति ट्रान्सवालमें बड़ी विषम बन गई। इस सबके बावजूद कहीं सलाह-मशविरा करके, कहीं अदालतमें मुकदमे लड़कर, तो कहीं अपने थोड़े-बहुत प्रभावका उपयोग करके हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने अपनी स्थितिको काफी हद तक संभाल रखा। बोअर-युद्ध छिड़ा उस समय वहांके हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति ऐसी दुःखद और अनिश्चित थी।

अब हम फ्री स्टेटमें हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिकी जांच करेंगे। वहा मुश्किलसे दस या पन्द्रह हिन्दुस्तानी दुकाने खुली होंगी कि गोरोंने हिन्दुस्तानियोंके खिलाफ जबरदस्त आन्दोलन छेड़ दिया। वहाकी धारासभाने सावधानीसे काम करके हिन्दुस्तानियोंकी जड़ ही उखाड़ दी। उसने एक कड़ा कानून पास किया और हिन्दुस्तानियोंको नामका मुआवजा देकर प्रत्येक हिन्दुस्तानी व्यापारीको फ्री स्टेटसे निकाल दिया। उस कानूनके अनुसार कोई हिन्दुस्तानी व्यापारी जमीनके मालिक या किसानके नाते फ्री स्टेटमे बस ही नही सकता था। और, मतदाता तो वह कभी हो ही नहीं सकता था। खास इजाजत लेकर मजदूरके नाते या होटलके वेटरके नाते ही कोई हिन्दुस्तानी वहा बस सकता था! ऐसी इजाजत भी हर-एक अर्जदारको नही मिल सकती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कोई प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी दो-चार दिनके लिए भी फ्री स्टेटमें रहना चाहे, तो बडी मुश्किलसे ही रह सकता था। बोअर-युद्ध छिड़ा उस समय वहा लगभग चालीस वेटरोंके सिवा दूसरे कोई हिन्दुस्तानी नही थे।

केप कॉलोनीमें भी थोड़ा-बहुत आन्दोलन तो अखबारोंमें हिन्दुस्तानियोंके खिलाफ चला ही करता था। उदाहरणके लिए, हिन्दुस्तानी बालक सरकारी स्कूलो वगैरामे नहीं जा सकते थे। हिन्दुस्तानी यात्रियोंको होटलोंमें ठहरनेकी जगह शायद ही मिल पाती थी। इस तरह हिन्दुस्तानियोंके साथ अपमानजनक व्यवहार केप कॉलोनीमें भी होता था। परन्तु व्यापार या जमीनकी मालिकीके बारेमे बहुत समय तक हिन्दुस्तानियोंको वहा कोई मुसीबत नही उठानी पड़ी।

केप कॉलोनीमें ऐसी स्थिति क्यो थी, इसके कारण मुझे यहा बताने चाहिये। एक कारण तो यह था कि मुख्यत. केप टाउनमें और सामान्यत: केप कॉलोनीमें, जैसा कि हम पहले देख चुके है, मलायी लोगोंकी काफी आबादी थी। मलायी लोग स्वयं मुसलमान थे, इसलिए हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके साथ उनके सम्बन्ध तुरन्त ही बंध गये; और हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके मारफत हिन्दुस्तानियोंका थोड़ा-बहुत सम्बन्ध मलायी लोगोंके साथ बधना स्वाभाविक ही था। इसके सिवा, हिन्दुस्तानी मुसलमानोंमें से कुछ लोगोंने मलायी स्त्रियोंके साथ विवाह-सम्बन्ध जोड़ लिया। मलायी

लोगोंके खिलाफ तो कोई कानून केप कॉलोनीकी सरकार बना ही नहीं सकती थी। केप कॉलोनी उन लोगोंकी जन्मभूमि थी; और भाषा भी उनकी डच थी। डच लोगोंके साथ ही वे पहलेसे रहे-बसे थे, इसलिए रहन-सहनमें मलायी लोगोंने बहुत कुछ उनका अनुकरण कर लिया था। इन सब कारणोंसे केप कॉलोनीमें हमेशा ही कमसे कम रंगद्वेष रहा है।

फिर, केप कॉलोनी सबसे पुराना उपनिवेश होनेके कारण तथा दक्षिण अफ्रीकाका शैक्षणिक और सांस्कृतिक केन्द्र होनेके कारण वहां सयाने, विनयशील और उदार हृदयके गोरे भी पैदा हुए। मेरी मान्यताके अनुसार तो संसारमें एक भी ऐसा स्थान और एक भी ऐसी जाति नहीं है, जहां और जिसमें उचित अवसर प्राप्त होने पर और अच्छे संस्कार तथा शिक्षा मिलने पर सुन्दरसे सुन्दर मानव-पुष्प न खिल सकें। सौभाग्यसे दक्षिण अफ्रीकामें मैंने हर जगह ऐसे उत्तम मानव देखे हैं। परन्तु केप कॉलोनी-में ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत अधिक थी। उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध और विद्वान थे श्री मेरीमैन, जो दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन माने जाते थे। १८७२ में केप कॉलोनीको उत्तरदायी शासन-तंत्र प्राप्त हुआ तबसे वे उसके प्रत्येक मंत्रि-मंडलके सदस्य रहे और १९१० में दक्षिण अफ्रीकाका यूनियन स्थापित हुआ उस समय वे उसके अंतिम मंत्रि-मंडलके प्रधानमंत्री थे। दूसरे दो परिवार थे — संपूर्ण श्राइनर परिवार और मोल्टीनो परिवार। ये दोनों परिवार श्री मेरीमैनके समकक्ष नहीं तो उनसे दूसरे नंबर पर तो आते ही थे। सर जॉन मोल्टीनो १८७२ के प्रथम मंत्रि-मंडलके प्रधान-मंत्री थे। श्री डब्ल्यू० पी० श्राइनर एक प्रख्यात एडवोकेट थे। कुछ समयके लिए वे एटर्नी-जनरल रहे और आगे चलकर मंत्रि-मंडलके प्रधानमंत्री भी रहे थे। इनकी प्रतिभाशाली बहन ऑलिव श्राइनर दक्षिण अफ्रीकाकी एक लोकप्रिय महिला थी और जहां जहां अंग्रेजी भाषा बोली जाती है वहां वहां वे विदुषीके नाते विख्यात थी। मनुष्य-मात्र पर उनका अपार प्रेम था। जब भी देखिये उनकी आंखोंसे प्रेमकी वर्षा होती रहती थी। उन्होंने 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक लिखी तबसे वे 'ड्रीम्स' की लेखिकाके रूपमें प्रसिद्ध हो गई। उनकी सादगी इतनी बढ़ी हुई थी कि एक विख्यात परिवारकी विदुषी महिला होते हुए भी घरमें वे बरतन तक अपने हाथसे साफ करती

थी। श्री मेरीमैनने और श्राइनर तथा मोल्टीनो परिवारोंने सदा ही हबशियोंका पक्ष लिया था। जब जब हबशियोंके अधिकारों पर गोरोंका आक्रमण होता था, तब तब ये तीनों उनकी जोरदार हिमायत और बचाव करते थे। उनका यह प्रेम हिन्दुस्तानियोंकी ओर भी मुड़ता था, यद्यपि ये तीनों हबशियों और हिन्दुस्तानियोंके बीच भेद रखते थे। उनका तर्क यह था कि हबशी दक्षिण अफ्रीकामें गोरे आकर बसे उसमे बहुत पहलेके वतनी हैं, इसलिए गोरे हबशियोंके स्वाभाविक अधिकार छीन नहीं सकते। परन्तु हिन्दुस्तानियोंके बारेमें न्यायपूर्वक उनकी प्रतिस्पर्धाके भयको टालनेके लिए कुछ कानून बनाये जाय, तो यह केवल अन्यायकी बात नहीं कही जायगी। फिर भी उनकी सहानुभूति तो हिन्दुस्तानियोंके प्रति ही रहती थी। स्व० गोपाल कृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीकामें आये थे उस समय उनके सम्मानमें दक्षिण अफ्रीकाकी जो पहली सभा केप टाउनके टाउन-हॉलमें हुई थी, उसके अध्यक्ष श्री श्राइनर थे। श्री मेरीमैनने भी गोखलेके साथ बड़ी मिठास और विनयसे बाते की थी और हिन्दुस्तानियोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की थी। केप टाउनके अखबारोंमें भी अन्य उपनिवेशोंकी अपेक्षा बहुत कम पक्षपात था। वे हिन्दुस्तानियोंके उतने विरुद्ध नही थे।

श्री मेरीमैन और श्राइनरके बारेमें मैंने जो कुछ लिखा है वैसा दूसरे यूरोपियनोके बारेमें भी लिखा जा सकता है। यहा तो मैंने केवल उदाहरणके रूपमें उपर्युक्त सर्वमान्य और प्रख्यात नाम ही दिये हैं। यह सच है कि ऐसे कारणोंसे केप कॉलोनीमें रंगद्वेष अन्य उपनिवेशोंसे हमेशा कम रहा है, फिर भी जो हवा दक्षिण अफ्रीकाके तीन उपनिवेशोंमें हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध निरंतर बहती रहती थी उसकी गंध केप कॉलोनीमें पहुचे बिना कैसे रह सकती थी? इसलिए वहा भी नेटालके जैसे हिन्दुस्तानियोंके प्रवेश और व्यापार पर प्रतिबन्ध लगानेवाले कानून — इमिग्रेशन रेस्ट्रिक्शन एक्ट और डीलर्स लाइसेन्सेज एक्ट — पास हुए।

इसलिए ऐसा कहा जा सकता है कि दक्षिण अफ्रीकाका जो द्वार पहले हिन्दुस्तानियोंके लिए बिलकुल खुला था, वह बोअर-युद्धके समय लगभग बन्द हो गया था। ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंके प्रवेश पर लगी हुई तीन

पौंडकी फीसके सिवा दूसरा कोई नियंत्रण नहीं था। परन्तु जब नेटाल और केप कॉलोनीके बन्दरगाह हिन्दुस्तानियोंके लिए बन्द हो गये तब दक्षिण-अफ्रीकाके भीतरी भागमें स्थित ट्रान्सवाल जानेवाले हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानसे जाकर कहां उतरते? एक रास्ता था। वे पुर्तगाली बन्दरगाह डेलागोआ वे पर उतर कर ट्रान्सवाल जा सकते थे। परन्तु वहां भी कम या अधिक मात्रामें ब्रिटिश उपनिवेशोंका अनुकरण किया गया था। इसलिए इतना कह देना चाहिये कि अनेक कठिनाइयां उठाकर या रिश्वत देकर इक्के-दुक्के हिन्दुस्तानी ही नेटाल और डेलागोआ वे बन्दरगाहों पर उतर कर ट्रान्सवाल जा सकते थे।

६

हिन्दुस्तानियोंने क्या किया?

१

हिन्दुस्तानी जनताकी स्थिति पर विचार करते हुए पिछले प्रकरणोंमें हम कुछ हद तक यह देख चुके हैं कि हिन्दुस्तानियोंने अपने ऊपर होनेवाले आक्रमणोंका कैसे सामना किया। परन्तु सत्याग्रहकी उत्पत्तिकी कल्पना अच्छी तरह करानेके लिए इस सम्बन्धमें एक अलग प्रकरण देना जरूरी है कि हिन्दुस्तानी जनताकी सुरक्षाके लिए क्या क्या प्रयत्न किये गये।

सन् १८९३ तक दक्षिण अफ्रीकामें ऐसे स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंकी संख्या बहुत कम थी, जो काफी शिक्षित कहे जा सकें और हिन्दुस्तानी जनताके हितोंके लिए लड़ सकें। अंग्रेजी जाननेवाले हिन्दुस्तानियोंमें मुख्यतः क्लार्क थे। वे अपने धन्धेकी जरूरतें पूरी करने लायक अंग्रेजी जानते थे, परन्तु अरजियां तैयार नहीं कर सकते थे। इसके सिवा, उन्हें अपना सारा समय अपने मालिकोंको देना पड़ता था। अंग्रेजीकी शिक्षा पाया हुआ दूसरा वर्ग ऐसे हिन्दुस्तानियोंका था, जो दक्षिण अफ्रीकामें ही पैदा हुए थे। ये अधिकतर गिरमिटियोंकी सन्तान थे। और इनमें से बड़ी संख्याके लोग

थोड़ी भी योग्यता प्राप्त कर लेने पर कानूनी अदालतोंमें दुभाषियोंके रूपमें सरकारी नौकरी कर लेते थे। इसलिए वे हिन्दुस्तानियोंके हितोंके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेके सिवा और कुछ नही कर सकते थे। यही उनकी बडीसे बड़ी सेवा थी।

इनके अलावा, गिरमिटिया मजदूरों और गिरमिट-मुक्त मजदूरोंका वर्ग मुख्यतः उत्तर प्रदेश और मद्रास राज्यसे वहां आया था। हम यह भी देख चुके है कि स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंमें गुजरातके मुख्यत: मुसलमान व्यापारी और हिन्दू मुनीम या मेहता थे। इनके सिवा कुछ पारसी व्यापारी और क्लार्क भी थे। परन्तु सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी संख्या संभवतः तीस या चालीससे ऊपर नही थी। स्वतंत्र व्यापारियोंके वर्गमें एक चौथा दल सिन्धी व्यापारियोंका था। समूचे दक्षिण अफ्रीकामें दो सौ या इससे कुछ अधिक सिन्धी होंगे। ऐसा कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानके बाहर वे जहा जहां जाकर बसे हैं वहां वहां उनका व्यापार एक ही प्रकारका होता है। वे 'फैंसी गुड्ज़' के व्यापारियोंके नाते पहचाने जाते है। 'फैंसी गुड्ज़' में वे लोग खास तौर पर रेशम, जरी वगैराका सामान, बम्बईकी नक्काशीवाली सीसम, चदन और हाथीदातकी तरह-तरहकी पेटियां और ऐसा ही दूसरा घरेलू सामान बेचते हैं। और उनके ग्राहक प्रायः गोरे लोग ही होते हैं।

गिरमिटिया मजदूरोंको गोरे लोग 'कुली' के नामसे ही पुकारते थे। कुलीका अर्थ है बोझ ढोनेवाला मजदूर। यह नाम दक्षिण अफ्रीकामें इतना प्रचलित हो गया है कि गिरमिटिया खुद भी अपनेको 'कुली' कहनेमे नही हिचकिचाते! बादमें तो यह नाम सारे ही हिन्दुस्तानियोके लिए चल पड़ा। सैकडो गोरे हिन्दुस्तानी वकील और हिन्दुस्तानी व्यापारीको क्रमसे 'कुली' वकील और 'कुली' व्यापारी कहते थे। कुछ गोरे तो ऐसा मानते या समझते ही नही थे कि इस विशेषणका प्रयोग करनेमें कोई दोष है। और बहुतसे गोरे केवल तिरस्कार प्रकट करनेके लिए ही 'कुली' शब्दका प्रयोग करते थे। इसलिए स्वतंत्र हिन्दुस्तानी अपनेको गिरमिटियोसे अलग मनवानेका प्रयत्न करते थे। ऐसे कारणोसे और हम हिन्दुस्तानसे ही अपने साथ जिन्हे ले जाते हैं उन कारणोसे स्वतत्र हिन्दुस्तानियोंके वर्ग तथा

गिरमिटिया और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंके वर्गके बीच दक्षिण अफ्रीकामे एक भेद खड़ा हो रहा था।

दुःखके इस समुद्रको रोकनेका कार्य स्वतंत्र हिन्दुस्तानी वर्गने और मुख्यतः मुसलमान व्यापारियोंने अपने हाथमे लिया था। परन्तु गिरमिटिया मजदूरों या गिरमिट-मुक्त मजदूरोंका सीधा सहयोग लेनेका प्रयत्न जान-बूझकर ही नही किया गया; ऐसा प्रयत्न करनेकी बात उस समय किसीको सभवतः सूझी भी नही थी। सूझती भी तो इस वर्गको शामिल करनेमें काम बिगड़नेका भय बना रहता। इसके सिवा, माना यह गया था कि मुख्य आक्रमण तो स्वतंत्र हिन्दुस्तानी व्यापारी वर्ग पर ही हो रहा है, इसलिए सुरक्षाके प्रयत्नने ऐसा सकुचित रूप धारण कर लिया था। इस तरहकी मुसीबतें होने पर भी, अंग्रेजीका ज्ञान न होने पर भी और हिन्दुस्तानमें सार्वजनिक कार्यका कोई अनुभव न होने पर भी यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंका यह वर्ग अपने दु.खोंके सामने अच्छी तरह जूझा। उन्होंने गोरे वकील-बैरिस्टरोंकी सहायता ली, अरजिया तैयार करवाई और भेजी, कभी कभी शासकोंके पास शिष्ट-मण्डल भी भेजे और जहां जहा सभव हुआ और उन्हे सूझा वहा वहा अन्यायका विरोध किया। यह स्थिति १८९३ तक रही।

इस पुस्तकको समझनेके लिए पाठकोंको कुछ खास तारीखें याद रखनी होंगी। पुस्तकके अंतमें मुख्य मुख्य घटनायें उनकी तारीखोंके साथ परिशिष्टमें दी गई हैं। उसे समय समय पर पाठक देखते रहेंगे, तो सत्याग्रहकी लड़ाईका स्वरूप और रहस्य समझनेमें उन्हें सहायता मिलेगी। सन् १८९३ तक ऑरेंज फ्री स्टेटमें हमारी हस्ती मिट चुकी थी। ट्रान्सवालमें १८८५ के कानून नंबर ३ पर अमल हो रहा था। नेटालमें ऐसे कदम उठानेके बारेमें सोचा जा रहा था, जिनके परिणाम-स्वरूप केवल गिरमिटिया मजदूर ही उपनिवेशमें रह सकें और बाकीके हिन्दुस्तानियोंको निकाला जा सके, और यह ध्येय पूरा करनेके लिए उत्तरदायी शासनकी सत्ता प्राप्त कर ली गयी थी।

अप्रैल १८९३ में मैंने दक्षिण अफ्रीका जानेके लिए हिन्दुस्तान छोड़ा था। मुझे गिरमिटियोंके इतिहासका कोई ज्ञान नहीं था। मैं केवल स्वार्थ-

बुद्धिसे ही वहां गया था। डरबनमें पोरबन्दरके मेमनोंकी दादा अब्दुल्लाके नाम पर चल रही एक प्रसिद्ध पेढ़ी थी। उतनी ही प्रसिद्ध पेढ़ी उनके प्रतिस्पर्धी और पोरबन्दरके मेमन तैयब हाजी खानमहमदकी प्रिटोरियामें थी। दुर्भाग्यसे इन प्रतिस्पर्धियोंके बीच एक बड़ा मुकदमा चल रहा था। दादा अब्दुल्लाके साझेदारने, जो पोरबन्दरमें था, यह सोचा कि मेरे जैसा नया बैरिस्टर भी दक्षिण अफ्रीका चला जाय तो उनके मुकदमेमें कुछ अधिक सुविधा हो जायगी। उन्हें इस बातका कोई डर नहीं था कि मेरे जैसा सर्वथा अनभिज्ञ और नौसिखुआ वकील उनका मुकदमा बिगाड़ देगा। कारण यह था कि मुझे कोई अदालतमें जाकर उनका मुकदमा नहीं लड़ना था। मुझे तो उनके नियुक्त किये हुए धुरन्धर वकीलों और बैरिस्टरोंको समझानेका काम यानी दुभाषियेका काम ही करना था। मुझे नये नये अनुभव प्राप्त करनेका शौक था। यात्रा भी मुझे पसंद थी। बैरिस्टरके नाते मेरे पास मुकदमे लानेवाले दलालोंको कमीशन देना मुझे जहरकी तरह लगता था। काठियावाड़ (सौराष्ट्र) की खटपटों और षड्‌यंत्रोंसे मैं अकुला उठा था। और एक ही वर्षके इकरार पर मुझे दक्षिण अफ्रीका जाना था। मैंने सोचा कि इस इकरारको स्वीकार करनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं है। और इसमें खोना तो मुझे कुछ था ही नहीं, क्योंकि मेरे जाने-आने और वहां रहनेका सारा खर्च दादा अब्दुल्ला ही देनेवाले थे। ऊपरसे १०५ पौंडकी मेरी फीस भी वे देनेवाले थे। यह सारी बात मेरे स्वर्गीय बड़े भाईके मारफत हुई थी; वे मेरे लिए पिताके समान थे। उनकी सुविधा मेरी भी सुविधा थी। उन्हें मेरे दक्षिण अफ्रीका जानेकी बात पसंद आई। इसलिए मैं मई १८९३ मे डरबन जा पहुंचा।

बैरिस्टरके ठाटबाटका तो पूछना ही क्या? अपनी मान्यताके अनुसार फ्रॉक-कोट, नेकटाई वगैरा पोशाक पहनकर बड़ी शानसे मैं जहाजसे डरबन बन्दरगाह पर उतरा। परन्तु उतरते ही मेरी आंखें कुछ खुल गई। दादा अब्दुल्लाके जिन साझेदारसे पोरबन्दरमें मेरी बात हुई थी, उन्होंने नेटालका जो वर्णन किया था उससे बिलकुल उलटा ही दृश्य वहां मेरे देखनेमें आया। इसमें उनका कोई दोष नहीं था। इसके पीछे उनका भोलापन, उनकी सादगी और वास्तविक परिस्थितियोंका उनका अज्ञान था। नेटालमें

हिन्दुस्तानियोंको जो कष्ट भोगने पड़ते थे, उनकी कोई कल्पना उन्हें नही थी। और गोरोंका जो व्यवहार तीव्र अपमानोंसे भरा था, वह उन्हें अपमानजनक नहीं लगता था। मैंने तो पहले ही दिन यह देख लिया कि हमारे लोगोंके साथ गोरोंका व्यवहार बहुत ही अशिष्ट और अपमानपूर्ण है।

नेटालमें उतरनेके बाद पन्द्रह दिनोंमें ही अदालतोंमें मुझे जो कड़वा अनुभव हुआ, ट्रेनमें जो मुसीबतें उठानी पड़ी, रास्तेमें जो मार खानी पड़ी, होटलोंमें ठहरनेकी जगह पानेमें जो तकलीफें सहनी पड़ीं — होटलोंमें जगह पाना लगभग असंभव था — उन सबके वर्णनमें मैं यहां नहीं जाऊंगा। इतना ही कहूंगा कि वे सब अनुभव मेरी रग-रगमें समा गये थे। मैं तो केवल एक ही मुकदमेके लिए वहां गया था। उसमें मेरी दृष्टि स्वार्थ और कुतूहलकी थी। इसलिए उस एक वर्षमें तो मैं ऐसे दु:खोंका केवल साक्षी और अनुभव करनेवाला ही रहा। मेरे कर्तव्यका आरंभ वहींसे हुआ। मैंने देखा कि स्वार्थकी दृष्टिसे दक्षिण अफ्रीका मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं रखता। जहां अपमान और तिरस्कार हो वहां पैसे कमाने या मुसाफिरी करनेका मुझे जरा भी लोभ नहीं था, बल्कि ऐसा करना मुझे बिलकुल नापसन्द था। मैं धर्म-संकटमें पड़ गया। मेरे समक्ष दो मार्ग खुले थे। एक मार्ग था : जिन परिस्थितियोंका ज्ञान मुझे हिन्दुस्तानमें नहीं हो सका था उनका ज्ञान दक्षिण अफ्रीकामें होनेके कारण सेठ दादा अब्दुल्लाके साथ हुए इकरारसे मुक्त होकर हिन्दुस्तान लौट जाना। दूसरा था : चाहे जैसी मुसीबतें सह कर भी हाथमें लिया हुआ काम पूरा करना। कड़ाकेकी सर्दीमें मैरित्सबर्ग स्टेशन पर रेलवे पुलिसके धक्के खाकर, मुसाफिरी रोककर और रेलसे उतर कर मैं वेटिंग-रूममें बैठा था। मेरा सामान कहां है, इसका पता मुझे नहीं था। किसीसे पूछनेकी मेरी हिम्मत नहीं होती थी। कहीं फिर अपमान हो तो? कहीं फिर मार खानी पड़े तो? ऐसी स्थितिमें सर्दीसे कांपते कांपते नींद तो आती ही कैसे? मन विचारोंके चक्र पर घूमने लगा। सोचते सोचते बहुत रात बीते मैंने यह निश्चय किया कि "यहांसे भाग जाना कायरता होगी। हाथमें लिया हुआ अपना काम मुझे पूरा करना ही चाहिये। व्यक्तिगत अपमान सहकर और मार खानी पड़े तो मार खाकर भी मुझे प्रिटोरिया पहुंचना ही चाहिये।" प्रिटोरिया

मेरे लिए केन्द्रस्थान था; वह मेरा लक्ष्य था। वहीं दादा अब्दुल्लाका मुकदमा लड़ा जा रहा था। अपना काम करते हुए हिन्दुस्तानियोंके दुःख दूर करनेके लिए कोई उपाय मैं कर सकूं तो मुझे करने चाहिये। इस निश्चयके बाद मुझे कुछ शांति मिली, मेरे भीतर कुछ शक्ति भी आई। परन्तु मैं सो नहीं पाया।

सवेरा होते ही मैंने दादा अब्दुल्लाकी पेढ़ीको और रेलवेके जनरल मैनेजरको तार किया। दोनों स्थानोंसे मुझे जवाब मिले। दादा अब्दुल्लाने और उस समय नेटालमें रहनेवाले उनके साझेदार सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम झवेरीने सख्त कदम उठाये। उन्होंने अलग अलग स्थानों पर अपने हिन्दुस्तानी दलालोंको मेरी देखभाल रखनेके बारेमें तार कर दिये। वे जनरल मैनेजरसे भी मिले। स्थानीय दलालको किये गये तारके फलस्वरूप मैरित्सबर्गके हिन्दुस्तानी व्यापारी मुझसे मिले। उन्होंने मुझे हिम्मत बधाई और कहा कि आपके जैसे कड़वे अनुभव हम सबको हुए हैं। परन्तु हम ऐसे अनुभवोंके आदी हो गये हैं, इसलिए हम इनकी परवाह नहीं करते। व्यापार करना और भावुक मन रखना — दोनों बातें साथ साथ कैसे चल सकती हैं? इसलिए पैसेके साथ अपमान हो तो उस अपमानको भी पेटीमें जमा करनेका सिद्धान्त हमने स्वीकार कर लिया है! उसी स्टेशन पर मुख्य द्वारसे हिन्दुस्तानियोंके आनेकी मनाही, टिकट मिलनेमें होनेवाली कठिनाई वगैराका वर्णन भी इन व्यापारियोंने मेरे सामने किया। उस रात जो ट्रेन आई उससे मैं प्रिटोरियाके लिए रवाना हुआ। मेरा किया हुआ निश्चय सच्चा है या झूठा, इसकी अन्तर्यामी प्रभुने पूरी पूरी परीक्षा की। प्रिटोरिया पहुंचते पहुंचते मुझे अधिक अपमान और अधिक मार सहन करनी पड़ी। लेकिन इन सबने केवल मुझे अपने निश्चयमें दृढ़ ही बनाया।

इस प्रकार १८९३ में मुझे अनायास दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी दुःखद स्थितिका भलीभांति अनुभव हुआ। मौका मिलने पर मैं प्रिटोरिया-के हिन्दुस्तानियोंसे इस बारेमें बातचीत करता था, सारी स्थिति उन्हें समझाता था। परन्तु इससे ज्यादा मैंने कुछ नहीं किया। मुझे लगा कि दादा अब्दुल्लाके मुकदमेका ध्यान रखना और दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंके दुःख दूर करानेका प्रयत्न करना — ये दोनों कार्य एकसाथ नहीं हो सकते।

मैंने समझ लिया कि दोनों कार्य साथ-साथ करनेका अर्थ होगा दोनोंको बिगाड़ना। यह सब करते करते १८९४ का साल आ गया, मुकदमा भी पूरा हो गया। मैं डरबन लौट आया। मैंने हिन्दुस्तान जानेकी तैयारी की। दादा अब्दुल्लाने मेरी बिदाईके अवसर पर एक समारोह भी किया। वहां किसीने 'नेटाल मर्क्युरी' मेरे हाथमें रखा। उस अखबारमें नेटालकी धारासभाकी कार्रवाईकी जो विस्तृत रिपोर्ट छपी थी, उसमें 'हिन्दुस्तानियोंका मताधिकार'—इंडियन फ्रेन्चाइज़—शीर्षकके नीचे मैंने कुछ पंक्तियां पढीं। स्थानीय सरकार हिन्दुस्तानियोंको धारासभाके सदस्य चुननेके मताधिकारसे वंचित करनेवाला एक बिल तुरन्त ही पेश करने जा रही थी। मैंने समझ लिया कि यह हिन्दुस्तानियोंके सारे अधिकार छीन लेनेकी बुनियाद है। धारासभाके भाषणोंमें ही सरकारका यह इरादा स्पष्ट दिखाई पड़ता था। समारोहमें आये हुए सेठों और दूसरे लोगोंके सामने मैंने वह रिपोर्ट पढ़कर सुनाई और यथाशक्ति उसका अर्थ उन्हें समझाया। इस सम्बन्धमें सारे तथ्य तो मैं जानता नहीं था। मैंने सुझाया कि इस आक्रमणका सामना करनेके लिए हिन्दुस्तानियोंको जबरदस्त लड़ाई छेड़नी चाहिये। उन्होंने मेरी बात मान ली। परन्तु ऐसी लड़ाई लड़नेकी अपनी अशक्ति दिखाई और मुझसे वहीं रहनेका आग्रह किया। मैंने यह लड़ाई लड़ने तक अर्थात् एक-दो महीने तक नेटालमें रुकना कबूल किया। उसी रात धारासभामें भेजनेके लिए एक अरजी मैंने तैयार की। सरकारको एक तार इस आशयका किया कि बिलके अधिक वाचनकी कार्रवाई मुलतवी रखी जाय। तुरन्त एक कमेटी नियुक्त की गई। सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम कमेटीके अध्यक्ष बनाये गये। ऊपरका तार उन्हींके नामसे भेजा गया। बिलका अगला वाचन दो दिन तक मुलतवी रहा। वह अरजी दक्षिण अफ्रीकाकी धारासभाओंमें से नेटालकी धारासभामें भेजी गई हिन्दुस्तानियोंकी सर्व-प्रथम अरजी थी। उसका काफी असर हुआ। परन्तु बिल धारासभामें पास हो गया। उसका अंत क्या हुआ, यह मैं चौथे प्रकरणमें बता चुका हूं। दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंका इस तरहकी लड़ाई लड़नेका यह पहला अनुभव था, इसलिए उनमें खूब उत्साह पैदा हुआ। प्रतिदिन सभायें होती थीं। दिनोदिन अधिक लोग उनमें सम्मिलित होते

थे। इस कार्यके लिए जितना धन जरूरी था उससे अधिक धन एकत्र हुआ था। नकलें करने, हस्ताक्षर लेने वगैराके काममें मदद करनेके लिए अनेक स्वयंसेवक मिल गये, जो बिना पैसा लिये और अपना पैसा खर्च करके भी काम करते थे। इस लड़ाईमें गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंकी प्रजा भी उत्साह और उमंगसे शामिल हुई थी। ये सब अंग्रेजी जाननेवाले और सुन्दर अक्षर लिखनेवाले नौजवान थे। उन्होने रात-दिनकी परवाह किये बिना नकले करनेका और दूसरा काम बड़े उत्साहसे किया। एक माहके भीतर तो १०००० हस्ताक्षरोंवाली अरजी लॉर्ड रिपनको भेजी गई; और मेरा तात्कालिक कार्य पूरा हुआ।

अब मैंने घर लौटनेके लिए सबसे बिदा मागी। लेकिन इस लड़ाईने हिन्दुस्तानियोंमें इतना गहरा रस पैदा कर दिया था कि वे मुझे आने ही नही देते थे। उन्होने कहा: "आप ही हमें समझाते है कि यह नेटाल सरकारका यहां हमारा जडमूलसे अंत करनेका पहला कदम है। कौन जाने विलायतसे हमारी अरजी पर उपनिवेश-मंत्रीका क्या उत्तर आता है? हमारा उत्साह तो आप देख चुके हैं। काम करनेके लिए हम तैयार है— हमारी ऐसी इच्छा भी है। हमारे पास पैसा भी है। लेकिन हमारा कोई मार्गदर्शक नही होगा, तो इतना किया-कराया भी बेकार हो जायगा। इसलिए हम मानते हैं कि यहां रहना आपका धर्म है।" मुझे भी लगा कि हिन्दुस्तानियोंके हितोंकी रक्षाके लिए कोई स्थायी सस्था खड़ी हो जाय तो अच्छा रहे। लेकिन मैं कहा रहूं और कैसे रहू? उन लोगोंने मुझे वेतन देनेकी बात सुझाई, परन्तु वेतन लेनेसे मैंने साफ इनकार कर दिया। सार्वजनिक कार्य बड़े बड़े वेतन लेकर नही किया जा सकता। उस पर मै तो इस आन्दोलनकी बुनियाद डालनेवाला था। उस समयके अपने विचारोंके अनुसार मैंने सोचा कि मुझे ऐसी तड़क-भड़क और शान-शौकतसे रहना चाहिये, जो एक बैरिस्टरको शोभा दे और हिन्दुस्तानी कौमकी प्रतिष्ठाको बढ़ाये। किन्तु उसका मतलब होता भारी खर्च। एक ओर हिन्दुस्तानियोंकी सेवा करनेवाली संस्थाके कार्यके लिए लोगों पर दबाव डालकर उनसे पैसे निकलवाना तथा संस्थाकी प्रवृत्तियां बढाना और दूसरी ओर मेरी आजीविकाके लिए उस संस्था पर निर्भर रहना — यह दो परस्पर विरोधी

बातोंका संगम हुआ माना जाता। ऐसा करनेसे मेरी काम करनेकी शक्ति भी घटती। इस कारणसे और ऐसे ही दूसरे कारणोंसे सार्वजनिक सेवाके लिए पैसा — वेतन — लेनेसे मैंने साफ इनकार कर दिया। परन्तु मैंने उन्हें यह सुझाया: "यदि आपमें से प्रमुख व्यापारी अपनी वकालत करनेका काम मुझे सौंपें और उसके लिए पेशगी 'रिटेनर' (वकील-फीस) दें, तो मैं यहां रहनेको तैयार हूं। आपको एक वर्षका 'रिटेनर' पेशगी देना चाहिये। हम एक वर्ष तक परस्पर अनुभव करें, अपने कामका लेखा-जोखा निकालें और फिर ठीक लगे तो आगे भी इसी तरह काम चलायें।" मेरे इस सुझावका सब लोगोंने स्वागत किया।

मैंने नेटालकी सुप्रीम कोर्टमें वकालतकी सनद लेनेकी अरजी पेश की। नेटालकी लॉ सोसायटी अर्थात् वकील-मण्डलने मेरी अरजीका विरोध किया। उसकी एकमात्र दलील यह थी कि नेटालके कानूनके अर्थके अनुसार काले या गेहूए रंगके लोगोंको वकालतकी सनद किसी भी हालतमें नहीं दी जा सकती। मेरी अरजीकी हिमायत नेटालके प्रसिद्ध वकील स्व० श्री एस्कंबने की, जो एटर्नी-जनरल थे और बादमें नेटालके प्रधानमंत्री रहे थे। लम्बे समयसे वहां यह प्रथा चली आ रही थी कि वकील-मण्डलका प्रमुख बैरिस्टर कोई फीस लिये बिना वकालतकी सनदकी अरजियां कोर्टके सामने पेश करे। इस प्रथाके अनुसार श्री एस्कंबने मेरी अरजीकी हिमायत करना स्वीकार किया। वे दादा अब्दुल्लाके बड़े वकील भी थे। वकील-मण्डलकी दलील सीनियर कोर्टने रद कर दी और मेरी अरजी स्वीकार की। इस प्रकार वकील-मण्डलका विरोध, उसके न चाहने पर भी, दूसरी बार मेरी प्रसिद्धिका कारण बन गया। दक्षिण अफ्रीकाके अखबारोंने नेटालके वकील-मण्डलका मजाक उड़ाया और कुछ अखबारोंने मुझे बधाई भी दी।

सेठ अब्दुल्ला हाजी आदमकी अध्यक्षतामें जो अस्थायी कमेटी नियुक्त की गई थी, उसे अब स्थायी रूप दे दिया गया। मैंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके एक भी अधिवेशनमें भाग नहीं लिया था, परन्तु उसके बारेमें पढ़ा जरूर था। हिन्दके दादा, दादाभाई नौरोजी, के दर्शन मैंने किये थे; मैं उनकी पूजा करता था। इसलिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका भक्त तो मैं था ही। इस कांग्रेसके नामको लोकप्रिय बनानेकी वृत्ति भी मेरे मनमें

थी। मेरे जैसा अनुभवहीन नौजवान नया नाम तो क्या खोजता! गलती करनेका भारी डर भी मनमें सदा बना रहता था। इसलिए मैंने स्थायी कमेटीको यह सलाह दी कि वह अपना नाम 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' रखे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सम्बन्धी अपना अधूरा ज्ञान मैंने अधूरे रूपमें नेटालके हिन्दुस्तानियोंके सामने रखा। आखिर १८९४ के मई या जून मासमें नेटाल इंडियन कांग्रेसकी स्थापना हुई। भारतीय कांग्रेस और नेटाल कांग्रेसमें यह भेद था कि नेटाल कांग्रेस वर्षमें पूरे ३६५ दिन काम करती थी। इसके सदस्य वे ही लोग हो सकते थे, जो वर्षमें कमसे कम ३ पौंडका चंदा दे सकते थे। अधिकसे अधिक रकम तो दाता जो भी दे वह स्वीकार की जाती थी। अधिक रकम लेनेका आग्रह भी खूब रखा जाता था। पांच-सात सदस्य तो वर्षके २४ पौंड देनेवाले भी निकल आये। १२ पौंड देनेवालोंकी संख्या काफी थी। एक महीनेमें नेटाल कांग्रेसके करीब ३०० सदस्य बन गये थे। उनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सभी धर्मके और सभी प्रान्तोंके — अर्थात् जिन जिन प्रान्तोंके लोग नेटालमें थे उनमें से सब प्रान्तोंके — लोग थे। पहले वर्ष तो बड़े जोशसे काम चला। बड़े बड़े व्यापारी अपनी सवारियोंमें बैठकर दूर दूरके गांवोंमें नये सदस्य बनाने और चन्दा वसूल करनेके लिए पहुंच जाते थे। मांगते ही सब लोग अपना चन्दा दे नहीं देते थे। उन्हें समझाना पड़ता था। इस तरह लोगोंको समझानेमें एक प्रकारकी राजनीतिक तालीम मिलती थी और लोग परिस्थितियोंसे परिचित हो जाते थे। इसके सिवा, महीनेमें एक बार तो नेटाल कांग्रेसकी बैठक होती ही थी। उसमें उस माहका पाई-पाईका हिसाब सुनाया जाता था और सदस्य उसे मंजूर करते थे। उस माहमें हुई सारी घटनायें भी सुनाई जाती थीं और उन्हें 'मिनट-बुक' में दर्ज किया जाता था। सदस्य विविध प्रकारके प्रश्न पूछते थे। नये विषयों और नये कामोंके बारेमें सलाह-मशविरा होता था। इस सबका एक लाभ यह होता था कि जो लोग ऐसी सभाओंमें कभी बोलते नहीं थे वे भी बोलने लग जाते थे। भाषण भी व्यवस्थित और विवेकपूर्ण ही करने होते थे। यह सब एक बिलकुल नया अनुभव था। हिन्दुस्तानियोंने इसमें खूब रस लिया। इस बीच यह खबर आई कि

लॉर्ड रिपनने नेटालके बिलको अस्वीकार कर दिया है। इससे लोगोंका हर्ष और विश्वास दोनों बढ़े।

जिस प्रकार बाहरी आन्दोलन चल रहा था उसी प्रकार हिन्दुस्तानी कौममें भीतरी सुधार करनेका आन्दोलन भी चल रहा था। हिन्दुस्तानियोंके रहन-सहनके खिलाफ समूचे दक्षिण अफ्रीकामें गोरे जोरदार आन्दोलन करते रहते थे। वे हमेशा यह तर्क किया करते थे कि हिन्दुस्तानी बहुत गंदे हैं, वे बड़े कजूस हैं, जिस मकानमें व्यापार करते हैं उसीमें रहते हैं, उनके मकान गंदे और हवा-प्रकाशसे रहित होते हैं, वे अपने सुख और आरामके लिए भी पैसा खर्च नहीं करते — ऐसे कजूस और गंदे हिन्दुस्तानियोंके साथ व्यापारमें शुद्ध, विविध प्रकारकी आवश्यकताओंवाले तथा उदार स्वभावके गोरे कैसे प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं? इसलिए मकानोंकी सफाई और स्वच्छताके बारेमें, मकान और दुकान अलग अलग रखनेके बारेमें, कपड़ोंको साफ-सुथरा रखनेके बारेमें और बड़ी कमाई करनेवाले व्यापारियोंको शोभा दे ऐसा रहन-सहन अपनानेके बारेमें नेटाल कांग्रेसकी सभाओंमें भाषण होते थे, वाद-विवाद चलते थे और सूचनायें भी दी जाती थी। यह सारी कारवाई मातृभाषामें (गुजरातीमें) ही होती थी।

पाठक समझ सकते हैं कि इन सब बातोंसे लोगोंको स्वाभाविक रूपमें कितनी व्यावहारिक शिक्षा और कितना राजनीतिक अनुभव मिलता होगा। नेटाल कांग्रेसके अधीन गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंकी सन्तान अर्थात् नेटालमें ही पैदा हुए अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीय नौजवानोंकी सुविधाके लिए एक शिक्षा-मंडल (नेटाल इंडियन एज्युकेशनल एसोसियेशन) की भी स्थापना की गई। उसका चन्दा नाममात्रका रखा गया था। इस मंडलका मुख्य उद्देश्य था इन नौजवानोंको एकत्र करना, हिन्दुस्तानके प्रति उनमें प्रेम उत्पन्न करना और उन्हें हिन्दुस्तानका सामान्य ज्ञान देना। मंडलका दूसरा उद्देश्य था इन नौजवानोंको यह बताना कि स्वतंत्र हिन्दुस्तानी व्यापारी उन्हें अपने ही आदमी मानते हैं और व्यापारियोंमें उनके प्रति आदरकी भावना उत्पन्न करना। नेटाल कांग्रेसके पास अपना खर्च चलानेके बाद एक बड़ी रकम जमा हो गई थी। इस रकमसे जमीन खरीदी गई, जिससे आज तक कांग्रेसको आय होती रहती है।

इन सारी तफसीलोंमें मैं जान-बूझ कर उतरा हूं। ऊपरकी बातें विस्तारसे जाने बिना पाठक यह बात पूरी तरह समझ नहीं सकते कि सत्याग्रहका जन्म स्वाभाविक रूपमें कैसे हुआ और हिन्दुस्तानी कौम उसके लिए कैसे तैयार हुई। नेटाल कांग्रेस पर कैसी कैसी आपत्तियां आईं, सरकारी अधिकारियोंने उस पर किस प्रकार आक्रमण किये और उन आक्रमणोंमें वह कैसे बची, यह और ऐसा ही दूसरा जानने योग्य इतिहास मुझे छोडना पड़ रहा है। परन्तु एक बात यहा बता देना जरूरी है। हिन्दुस्तानी कौम अतिशयोक्तिसे सदा बचती रहती थी। कौमको उसके दोष और खामियां बतानेकी हमेशा कोशिश की जाती थी। गोरोंकी दलीलोंमें जितना सत्य होता उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया जाता था; और स्वतन्त्रता तथा स्वाभिमानकी रक्षा करते हुए गोरोंके साथ सहयोग करनेके प्रत्येक अवसरका स्वागत किया जाता था। हिन्दुस्तानियोंके आन्दोलनका जितना विवरण दक्षिण अफ्रीकाके अखबार ले सकते थे उतना उनमें दिया जाता था और वहांके अखबारोंमें हिन्दुस्तानियों पर जो अनुचित आक्रमण किये जाते थे उनका उत्तर भी उन अखबारों तक पहुचाया जाता था।

नेटालमें जैसे नेटाल इंडियन कांग्रेस थी वैसे ही ट्रान्सवालमें भी हिन्दुस्तानियोंकी एक सस्था थी। ट्रान्सवालकी यह सस्था नेटाल कांग्रेससे बिलकुल स्वतन्त्र थी। इन दोनोंके विधानोंमें भी कुछ फर्क था। परन्तु इस चर्चामें यहा मैं नही उतरूगा। ऐसी ही एक सस्था केप टाउनमें भी थी। उसका विधान नेटाल और ट्रान्सवालकी सस्थाओंसे भिन्न था। फिर भी तीनोंका कार्य लगभग एक ही प्रकारका माना जा सकता है।

१८९४ का वर्ष समाप्त हुआ। नेटाल कांग्रेसका एक वर्ष भी १८९५ के मध्यमें पूरा हो गया। मेरा वकालतका काम मुवक्किलोंको पसंद आया। इसके फलस्वरूप नेटालमें मेरे रहनेका समय भी बढ गया। १८९६ में हिन्दुस्तानी कौमकी इजाजत लेकर मैं छह महीनोंके लिए हिन्दुस्तान आया। परन्तु पूरे छह महीने मैं रह भी नहीं पाया था कि नेटालसे तार आ गया और मुझे तुरन्त नेटाल लौट जाना पड़ा। १८९६-९७ की घटनाओंकी चर्चा हम अलग प्रकरणमें करेंगे।

७. हिन्दुस्तानियोंने क्या किया?

२

१८९६ तक नेटाल इंडियन कांग्रेसका कार्य स्थिर और स्थायी हो गया। मैंने लगभग ढाई साल नेटालमें बिताये और इस अरसेमें अधिकतर राजनीतिक कार्य ही किया। अब मैंने सोचा कि अगर मुझे और ज्यादा दक्षिण अफ्रीकामें रहना हो, तो अपने परिवारको हिन्दुस्तानसे लाकर साथ रखना जरूरी है। हिन्दुस्तानकी एक छोटीसी यात्रा कर आनेका भी मेरा मन हुआ। यह इच्छा भी मनमें थी कि हिन्दुस्तानमें रहते हुए भारतीय नेताओंको नेटालमें और दक्षिण अफ्रीकाके अन्य उपनिवेशोंमें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिकी संक्षिप्त कल्पना करा दी जाय। कांग्रेसने मुझे छह महीनेकी छुट्टी दी और मेरी जगह पर नेटालके प्रसिद्ध व्यापारी स्व० आदमजी मियाखान उसके मंत्री नियुक्त हुए। उन्होंने कांग्रेसका कार्य बड़ी कुशलतासे चलाया। वे अंग्रेजी काफी अच्छी जानते थे और अनुभवसे अंग्रेजीका अपना कामचलाऊ ज्ञान उन्होंने बहुत बढ़ा लिया था। गुजरातीका अध्ययन उनका साधारण था। उनका व्यापार मुख्यतः हबशियोंमें चलता था, इसलिए जूलू भाषाका और उनके रीति-रिवाजोंका उन्हें बड़ा अच्छा ज्ञान हो गया था। उनका स्वभाव शांत और बहुत मिलनसार था। वे जरूरी हो उतना ही बोलते थे। यह सब लिखनेका उद्देश्य इतना ही है कि जिम्मेदारीका पद संभालनेके लिए जितनी आवश्यकता अंग्रेजी भाषाके ज्ञानकी अथवा दूसरी बड़ी विद्वत्ताकी होती है, उससे कहीं अधिक आवश्यकता सचाई, शांति, सहनशीलता, दृढ़ता, समय-सूचकता, साहस और व्यावहारिक बुद्धिकी होती है। जिस मनुष्यमें इन सुन्दर और उदात्त गुणोंका अभाव हो, उसमें उत्तम कोटिकी विद्वत्ता हो तो भी सामाजिक कार्यमें उसका कोई मूल्य नहीं है।

१८९६ के मध्यमें मैं हिन्दुस्तान लौटा। मैं कलकत्तेके रास्ते होकर आया, क्योंकि उस समय नेटालसे कलकत्ता जानेवाले जहाज आसानीसे मिलते थे। गिरमिटिया मजदूर कलकत्तेसे या मद्राससे जहाज पर सवार होते थे। कलकत्तेसे बम्बई आते हुए रास्तेमें मैं ट्रेन चूक गया, इसलिए एक दिन मुझे अलाहाबाद रुकना पड़ा। वहींसे मैंने अपना कार्य शुरू कर दिया। मैं 'पायोनियर' के श्री चेजनीसे मिला। उन्होंने मेरे साथ सौजन्यतापूर्वक बातें कीं। उन्होंने ईमानदारीसे मुझे बता दिया कि उनकी सहानुभूति उपनिवेशोंमें बसे हुए गोरोंके साथ है। परन्तु यदि मैं कुछ लिखूं तो उसे पढ़ जानेका और अपने पत्रमें उस पर टिप्पणी लिखनेका वचन उन्होंने दिया। इसे मैंने काफी माना।

हिन्दुस्तानमें रहते हुए मैंने दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति पर प्रकाश डालनेवाली एक पुस्तिका लिखी। उस पर लगभग सारे ही भारतीय अखबारोंने सपादकीय टिप्पणी लिखी। उसके दो संस्करण छपवाने पड़े। उसकी पाच हजार प्रतिया मैंने देशके विभिन्न स्थानो पर भिजवाईं। इसी समय मैंने हिन्दुस्तानके नेताओंके दर्शन किये: बम्बईमें सर फिरोजशाह मेहता, न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी, महादेव गोविन्द रानडे आदिके; पूनामें लोकमान्य तिलक और उनके मडलके तथा प्रो० भाडारकर, गोपाल कृष्ण गोखले और उनके मंडलके। बम्बईसे आरंभ करके पूना और मद्रासमें मैंने भाषण भी किये। इन सबके ब्योरेमें यहा मैं नही जाना चाहता।

परन्तु पूनाका एक पवित्र संस्मरण देनेका लोभ मैं नही रोक सकता, यद्यपि हमारे विषयके साथ उसका कोई सम्बन्ध नही है। वहांकी सार्वजनिक सभा लोकमान्य तिलकके हाथमें थी और स्व० गोखलेजीका सम्बन्ध डेक्कन सभाके साथ था। सबसे पहले मैं तिलक महाराजसे मिला। उनसे जब मैंने पूनामें सभा करनेकी बात कही तो उन्होंने मुझसे पूछा: तुम गोपालरावसे मिले हो?

पहले तो मैं समझा नही कि उनका मतलब किस गोपालरावसे है। इसलिए उन्होंने फिर पूछा: क्या तुम श्री गोखलेसे मिले हो? उन्हें जानते हो?

मैंने कहा: अभी मैं उनसे मिला नहीं हूं। केवल नामसे ही उन्हें जानता हूं। लेकिन मेरा उनसे मिलनेका इरादा है।

लोकमान्य: तुम हिन्दुस्तानकी राजनीतिसे परिचित नहीं मालूम होते।

मैं बोला: इंग्लैंडसे पढ़कर लौटनेके बाद मैं हिन्दुस्तानमें बहुत कम रहा और उस समय भी राजनीतिक विषयोंसे मैं बिलकुल दूर रहा। मैं मानता था कि यह काम मेरी शक्तिसे बाहर है।

लोकमान्य: तब तो मुझे तुम्हें थोड़ी जानकारी देनी होगी। पूनामें दो पक्ष हैं: एक सार्वजनिक सभाका और दूसरा डेक्कन सभाका।

मैंने कहा: इस विषयमें मैं कुछ जानता हूं।

लोकमान्य: यहां सभा करना तो आसान है। लेकिन मैं देखता हूं कि तुम अपना प्रश्न सारे पक्षोंके सामने रखना चाहते हो और सब पक्षोंकी मदद भी तुम लेना चाहते हो। यह बात मुझे पसंद है। परन्तु यदि तुम्हारी सभामें सार्वजनिक सभाका कोई सदस्य अध्यक्ष बना, तो डेक्कन सभाका कोई सदस्य उसमें नहीं आयेगा। और यदि डेक्कन सभाका कोई सदस्य अध्यक्ष होगा, तो सार्वजनिक सभाके सदस्य सभामें नहीं आयेंगे। इस कारणसे तुम्हें कोई तटस्थ अध्यक्ष खोजना चाहिये। मैं तो इस विषयमें केवल सुझाव ही दे सकता हूं। दूसरी कोई मदद मुझसे नहीं हो सकेगी। तुम प्रोफेसर भांडारकरको जानते हो? न जानते हो तो भी तुम उनके पास जाओ। वे तटस्थ पुरुष माने जाते हैं। वे राजनीतिक कार्योंमें भाग भी नहीं लेते। लेकिन शायद तुम उन्हें अपनी सभाका अध्यक्ष बननेको ललचा सकोगे। श्री गोखलेसे इस सम्बन्धमें बात करना। उनकी भी सलाह लेना। बहुत सभव है कि वे भी मेरे जैसी ही सलाह तुम्हें देंगे। यदि प्रो० भांडारकर जैसे सज्जन सभाके अध्यक्ष हो जायं, तो मेरा विश्वास है कि सभाको सफल बनानेका काम दोनों पक्ष अपने हाथमें ले लेंगे। हमारी तो इसमें तुम्हें पूरी मदद मिलेगी।

लोकमान्यकी यह सलाह लेनेके बाद मैं गोखलेजीके पास गया। इस प्रथम मिलापमें ही उन्होंने मेरे हृदय पर कैसे अधिकार कर लिया, यह तो मैं अन्यत्र लिख चुका हूं। जिज्ञासु पाठकोंको 'यंग इंडिया' या

'नवजीवन' की फाइल पढ़ लेनी चाहिये।[1] लोकमान्यकी सलाह गोखलेजी-को भी पसंद आई। मैं तुरन्त प्रोफेसर भांडारकरके पास गया। उन विद्वान् बुजुर्गके दर्शन किये। नेटालके हिन्दुस्तानियोंकी कहानी ध्यानसे सुनकर उन्होंने कहा: "तुम देखते हो कि मैं सार्वजनिक जीवनमें शायद ही भाग लेता हूं। अब मैं बूढ़ा हो गया हूं। फिर भी तुम्हारी बातोंने मेरे मन पर गहरा प्रभाव डाला है। सभी पक्षोंकी मदद लेनेका तुम्हारा विचार मुझे पसंद है। तुम नौजवान हो और हिन्दुस्तानकी राजनीतिक परिस्थितियोंसे अनभिज्ञ हो। इसलिए दोनों पक्षोंके सदस्योंसे कहना कि मैंने तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। जब उनमें से कोई सभा होनेकी सूचना मुझे करेंगे तब मैं जरूर हाजिर हो जाऊंगा।" और पूनामें सुन्दर सभा हुई। दोनों पक्षोंके नेता उसमें उपस्थित रहे और दोनों पक्षोंके नेताओंने उसमें भाषण किये।

इसके बाद मैं मद्रास गया। वहां मैं जस्टिस सुब्रह्मण्यम् अय्यर, श्री पी० आनन्दचार्लु, 'हिन्दू' के तत्कालीन संपादक श्री जी० सुब्रह्मण्यम्, 'मद्रास स्टैन्डर्ड' के सम्पादक श्री परमेश्वरम् पिल्ले, प्रख्यात वकील भाष्यम् आयंगर, श्री नॉर्टन आदिसे मिला। वहां भी एक बड़ी सभा हुई। मद्राससे मैं कलकत्ता गया। वहां मैं सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, महाराजा ज्योतीन्द्र मोहन टागोर, 'इंग्लिशमैन' के संपादक स्व० श्री सॉन्डर्स और दूसरे लोगोंसे मिला। कलकत्तेमें सभाकी तैयारियां चल रही थीं, इतनेमें — नवम्बर १८९६ में — नेटालसे मुझे तार मिला: "तुरन्त आइये।" मैं समझ गया कि वहां हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध कोई न कोई नया आन्दोलन शुरू हुआ होगा। इसलिए मैं कलकत्तेका कार्य पूरा किये बिना ही लौट पड़ा और बम्बईसे मिलनेवाले पहले ही जहाज पर अपने परिवारके साथ सवार हो गया। यह जहाज दादा अब्दुल्लाकी पेढ़ीने खरीदा था। अपने अनेक साहसोंमें से नेटाल और पोरबन्दरके बीच जहाज चलानेका उनका यह पहला साहस था। उस जहाजका नाम 'कुरलैंड' था। मेरा टिकट 'कुरलैंड' का था। इस जहाजके रवाना होनेके तुरन्त बाद उसी दिन पर्शियन कंपनीका एक जहाज 'नादरी' भी बम्बईसे नेटालके लिए रवाना

---

१. देखिये 'यंग इंडिया', १३-७-'२१; 'नवजीवन', २८-७-'२१।

हुआ था। दोनों जहाजोंमें दक्षिण अफ्रीका जानेवाले लगभग ८०० मुसाफिर रहे होंगे।

हिन्दुस्तानमें दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिके बारेमें मैंने जो आन्दोलन किया था उसने इतना बड़ा महत्त्व ग्रहण कर लिया कि हिन्दुस्तानके अधिकतर प्रमुख अखबारोंने उस पर टिप्पणियां लिखी थी और रूटरने उसके सम्बन्धमें कई तार विलायत भेजे थे। इसका पता मुझे नेटाल पहुंचने पर चला। विलायत पहुंचे हुए उन तारोंके आधार पर रूटरके वहांके प्रतिनिधिने एक संक्षिप्त तार दक्षिण अफ्रीका भी भेजा था। उस तारमें हिन्दुस्तानमें मैंने जो कुछ कहा उसे कुछ अतिशयोक्तिका रूप दे दिया गया था। ऐसी अतिशयोक्ति हम बहुत बार देखते हैं। इस तरहकी अतिशयोक्ति हमेशा जान-बूझ कर नही की जाती। अनेक कार्योंमें व्यस्त रहनेवाले लोग, जिनके अपने पूर्वाग्रह और पहलेसे बंधे हुए विचार होते हैं, किसी चीजको ऊपर ऊपरसे पढ लेते हैं और फिर उसके आधार पर एक सार तैयार करते है, जो कभी कभी आंशिक रूपमें उनकी कल्पनाकी उपज होता है। फिर इस सारके विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न अर्थ लगाये जाते है। यह सब अनायास ही होता रहता है। सार्वजनिक कार्योंके साथ जुड़ा हुआ यह एक खतरा है और यह उनकी मर्यादा भी है। हिन्दुस्तानमें रहते हुए मैंने नेटालके गोरोंकी टीका की थी, उन पर आरोप लगाये थे; गिरमिटिया मजदूरों पर लगाये गये ३ पौंडके मुड-करकी मैंने बहुत कड़े शब्दोंमें निन्दा की थी। बालासुंदरम्[1] नामक एक निर्दोष गिरमिटिये पर उसके मालिकने हमला किया था। इससे उसके शरीर पर जो अनेक घाव हो गये थे, उन्हें मैंने अपनी आंखोंसे देखा था। उसका सारा केस मेरे हाथमें था। बालासुंदरम्के कष्टोंका चित्रण मैं अपनी शक्तिके अनुसार काफी अच्छा कर सका था। जब मेरे भाषणोंका तोड़ा-मरोडा हुआ रूटरका सार नेटालके गोरोंने पढा, तो वे मुझ पर आग-बबूला हो उठे। खूबी तो यह है कि इस विषयमें

१. मूल गुजरातीमें यहा गिरमिटियेका नाम सुब्रह्मण्यम् दिया गया है, जो गलत लगता है। 'आत्मकथा' में बालासुन्दरम् नाम है, जो सच्चा है।

मैंने नेटालमें जो कुछ लिखा था, वह हिन्दुस्तानमें जो कुछ लिखा और कहा उससे अधिक तीखा और अधिक विस्तृत था। हिन्दुस्तानमें एक भी बात मैंने ऐसी नहीं कही, जिसमें थोडी भी अतिशयोक्ति रही हो। परन्तु अपने अनुभवसे मैं यह जानता था कि किसी भी घटनाका वर्णन जब हम किसी अपरिचित व्यक्तिके सामने करते हैं तब जितना अर्थ हम उसे देते हैं उसकी अपेक्षा अपरिचित श्रोता अथवा पाठक उसमें अधिक अर्थ देखता है। इस कारणसे हिन्दुस्तानमें मैंने जान-बूझ कर नेटालका चित्र कुछ हद तक हलका ही चित्रित किया था। लेकिन नेटालमें मैं जो कुछ लिखता था उसे बहुत कम गोरे पढ़ते थे और उसकी परवाह तो उनसे भी कम गोरे करते थे। हिन्दुस्तानमें मेरे कहे या लिखे हुए शब्दोंके बारेमें इससे उलटा ही असर हो सकता था और हुआ। रूटरकी सार-रूप रिपोर्ट तो हजारों गोरे पढते थे। फिर, जो विषय तारमें उल्लेख करने योग्य माना गया हो उसका महत्त्व वस्तुतः जितना होता है उससे अधिक माना जाता है। नेटालके गोरोंने सोचा कि मेरे कार्यका हिन्दुस्तानमें उतना ही प्रभाव पडा है जितना उन्होंने माना है और इसलिए शायद गिरमिटकी प्रथा बन्द हो जायगी, जिससे सैंकड़ों गोरे मालिकोंको नुकसान पहुंचेगा। इसके सिवा, उन लोगोंको लगा कि हिन्दुस्तानके सामने नेटालके गोरे कलंकित हो गये हैं।

इस प्रकार नेटालके गोरे मेरे विरुद्ध उत्तेजित हो रहे थे तभी उन्होंने सुना कि मैं अपने परिवारके साथ 'कुरलैंड' में नेटाल लौट रहा हूं, जिसमें ३००–४०० हिन्दुस्तानी यात्री हैं। और उसके साथ उतने ही हिन्दुस्तानी यात्रियोंको लानेवाला 'नादरी' जहाज भी है। इस समाचारने आगमें घी डालनेका काम किया। इससे गोरे और ज्यादा उत्तेजित हो गये। नेटालके गोरोंने बड़ी बड़ी सभायें कीं। लगभग सभी अग्रगण्य गोरोंने उनमें भाग लिया। सभाओंमें मुख्यतः मेरे खिलाफ और सामान्यतः हिन्दुस्तानी यात्रियोंके खिलाफ सख्त टीकायें हुईं। 'कुरलैंड' और 'नादरी' के आगमनको 'नेटाल पर होनेवाले आक्रमण' का रूप दिया गया। सभामें भाषण करनेवाले लोगोंने इसका यह अर्थ निकाला कि मैं इन दोनों जहाजोंके ८०० यात्रियोंको अपने साथ नेटाल ला रहा

हूं। और सभाके लोगोंको यह भी समझाया गया कि नेटालको स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंसे भर देनेके प्रयत्नका मेरा यह पहला कदम है। सभामें एकमतसे यह प्रस्ताव पास हुआ कि दोनों जहाजोंके यात्रियोंको और मुझे नेटालकी भूमि पर उतरने न दिया जाय। यदि नेटाल सरकार इन यात्रियोंको न रोके या नहीं रोक सके, तो इस सम्बन्धमें सभामें नियुक्त की गई गोरोंकी कमेटी कानूनको अपने हाथमें ले ले और अपने ही बलसे हिन्दुस्तानियोंको उतरनेसे रोके। दोनों जहाज एक ही दिन नेटालके डरबन बन्दरगाह पर पहुंचे।

पाठकोंको यह स्मरण होगा कि हिन्दुस्तानमें प्लेगके दर्शन पहले-पहल १८९६ में हुए थे। नेटाल सरकारके पास हमें बाकायदा हिन्दुस्तान लौटा देनेका कोई साधन नहीं था। उस समय तक प्रवेश-प्रतिबन्धक कानून (इमिग्रेशन रेस्ट्रिक्शन एक्ट) अस्तित्वमें नहीं आया था। नेटाल सरकारकी संपूर्ण सहानुभूति गोरोंकी उपर्युक्त कमेटीके साथ ही थी। नेटाल सरकारके एक मंत्री स्व० श्री एस्कंब उस कमेटीके कार्यमें पूरा भाग लेते थे। कमेटीको भड़कानेका काम भी वे ही करते थे। प्रत्येक बन्दरगाहमें यह नियम होता है कि किसी जहाजमें छुतहे रोगका उपद्रव हो अथवा कोई जहाज ऐसे बन्दरगाहसे आ रहा हो जहां छुतहा रोग फैला हो, तो उस जहाजको अमुक समयके लिए 'क्वारन्टीन' में रखा जाय — अर्थात् जहाजके साथका संपर्क तोड़ दिया जाय और यात्रियों, माल वगैराको अमुक समय तक उतारनेकी मनाही कर दी जाय। ऐसा प्रतिबन्ध स्वास्थ्यके नियमोंके आधार पर ही और बन्दरगाहके स्वास्थ्य-अधिकारीकी आज्ञासे ही लगाया जा सकता है। नेटाल सरकारने प्रतिबन्ध लगानेके इस अधिकारका केवल राजनीतिक उपयोग — इसीलिए दुरुपयोग — किया और जहाजोंके यात्रियोंमें कोई भी छुतहा रोग न होते हुए भी दोनों जहाजोंको २३ दिन तक डरबन बन्दरगाहके प्रवेश-मार्ग पर लटकाये रखा। इस बीच गोरोंकी कमेटीका काम जारी रहा। दादा अब्दुल्ला 'कुरलैंड' के मालिक थे और 'नादरी' के एजेन्ट थे। उन्हें कमेटीने खूब डराया-धमकाया। कुछ गोरोंने दोनों जहाजोंको वापिस हिन्दुस्तान ले जानेके लिए उन्हें प्रलोभन दिये और वापिस न ले जानेकी स्थितिमें उनके

व्यापारको भी धक्का पहुचानेका डर दिखाया। लेकिन पेढ़ीके साझेदार कायर नही थे। उन्होंने धमकी देनेवाले गोरोंको सुना दिया: "हमारा सारा व्यापार चौपट हो जायगा, हम बरबाद हो जायेंगे, तब तक हम लड़ेंगे। लेकिन डर कर इन निर्दोष और असहाय मुसाफिरोंको वापस भेजनेका गुनाह हम नही करेंगे। आप यह समझ ले कि जैसे आपको अपने देशका अभिमान है वैसे ही हमें भी अपने देशका कुछ अभिमान होगा।" इस पेढ़ीके पुराने वकील श्री एफ़० ए० लॉटन भी साहसी और बहादुर थे।

संयोगवश इसी अरसेमें स्व० श्री मनसुखलाल हीरालाल नाजर (सूरतके कायस्थ तथा स्व० श्री नानाभाई हरिदासके भानजे) दक्षिण अफ्रीका पहुचे। मैं उन्हे पहचानता नही था। उनके जानेका भी मुझे कोई पता नही था। मेरे लिए यह कहना शायद ही जरूरी हो कि 'नादरी' और 'कुरलैंड' जहाजोंके मुसाफिरोंको दक्षिण अफ्रीका लानेमें मेरा बिलकुल हाथ नही था। उनमें से अधिकतर लोग दक्षिण अफ्रीकाके पुराने निवासी थे। और बहुतसे लोग तो ट्रान्सवाल जानेके लिए इन जहाजों पर चढ़े थे। गोरोंकी कमेटीने इन मुसाफिरोंके लिए भी धमकी-भरी चेतावनिया भिजवाईं। कैप्टनोंने मुसाफिरोंको वे चेतावनियां पढ़ सुनाईं। उनमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा था कि: "नेटालके गोरे अत्यन्त उत्तेजित हो गये हैं। उनकी उत्तेजित स्थितिको जानते हुए भी यदि हिन्दुस्तानी मुसाफिर जहाजोंसे उतरनेका प्रयत्न करेंगे, तो बन्दरगाह पर कमेटीके लोग खड़े रहेंगे और एक एक हिन्दुस्तानीको समुद्रमें फेंक देंगे।" 'कुरलैंड'के मुसाफिरोंको इस चेतावनीका अनुवाद करके मैंने सुनाया। 'नादरी' के मुसाफिरोंको वहाके किसी अंग्रेजी जाननेवाले मुसाफिरने इनका अनुवाद सुनाया। दोनों ही जहाजोंके मुसाफिरोंने वापिस जानेमें साफ इनकार कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि: "बहुतसे मुसाफिरोंको ट्रान्सवाल जाना है। जो लोग नेटालमें उतरना चाहते है, उनमें से भी बहुतसे तो नेटालके पुराने निवासी हैं। जो भी हो, हममें से हरएक हिन्दुस्तानीको नेटालमें उतरनेका कानूनी अधिकार है और कमेटीकी धमकियोंके बावजूद अपना यह अधिकार सिद्ध करनेके लिए मुसाफिर हर हालतमें यहा उतरेंगे।"

नेटालकी सरकार भी थक गई थी। अनुचित और अन्यायी प्रतिबन्ध आखिर कितने दिन तक लगाया जा सकता था? २३ दिन पूरे हो गये। लेकिन न तो दादा अब्दुल्ला अपनी बातसे डिगे और न हिन्दुस्तानी मुसाफिर डिगे। इसलिए २३ दिनके बाद प्रतिबन्ध उठा लिया गया और जहाजोंको बन्दरगाहके भीतर आनेकी इजाजत मिली। इस बीच श्री एस्कंबने उत्तेजित बनी हुई कमेटीको शांत किया। उन्होंने एक सभा करके नेटालके गोरोंसे कहा: "डरबनमें यूरोपियनोंने सुन्दर एकता और हिम्मत दिखाई। आपसे जितना बना उतना आपने किया। सरकारने भी आपकी मदद की। उसने २३ दिन तक हिन्दुस्तानियोंको प्रतिबन्धमें रखा। आपने अपनी भावनाओं और अपने जोशका जो प्रदर्शन किया वह काफी है। इसका इंग्लैंडकी बड़ी सरकार पर गहरा असर होगा। आपके कार्यसे नेटाल सरकारका काम सरल हो गया है। अब अगर आप बलका उपयोग करके एक भी हिन्दुस्तानी मुसाफिरको उतरनेसे रोकेंगे, तो अपने कामको आप खुद ही नुकसान पहुंचायेंगे। आप नेटाल सरकारकी स्थितिको विषम बना देंगे। ऐसा करके भी आप हिन्दुस्तानियोंको रोकनेमें सफल नहीं होंगे। मुसाफिरोंका तो कोई अपराध है ही नहीं। उनमें स्त्रियां और बालक भी हैं। वे बम्बईसे जहाज पर चढ़े उस समय उन्हें आपकी भावनाओंका कोई ज्ञान ही नहीं था। इसलिए अब आपको मेरी सलाह मानकर बिखर जाना चाहिये और मुसाफिरोंके उतरनेमें जरा भी रुकावट नहीं डालनी चाहिये। लेकिन मैं इतना वचन आपको देता हूं कि भविष्यमें आनेवाले हिन्दुस्तानियोंके बारेमें नियंत्रण लगानेकी सत्ता नेटाल सरकार धारासभासे प्राप्त कर लेगी।" यहां मैंने श्री एस्कंबके भाषणका सार ही दिया है। श्री एस्कंबके श्रोतागण उनके भाषणसे निराश तो हुए। परन्तु नेटालके गोरों पर उनका बड़ा प्रभाव था, इसलिए उनके कहनेसे सब गोरे बिखर गये। और दोनों जहाज बन्दरगाह पर आये।

मेरे बारेमें श्री एस्कंबने कहलवाया कि मैं दिनमें जहाज न छोड़ूं। शामको वे बन्दरगाहके सुपरिन्टेन्डेन्टको मुझे लिवाने भेजेंगे। उसीके साथ मैं घर जाऊं। परन्तु मेरा परिवार किसी भी समय उतर सकता है।

यह कोई बाकायदा हुक्म नहीं था, बल्कि कैप्टनको जहाजसे मुझे उतरने न देनेकी सलाह थी तथा मेरे सिर पर झूल रहे खतरेकी चेतावनी थी। कैप्टन मुझे जबरन् तो रोक ही नहीं सकता था। लेकिन मैंने यह माना कि मुझे इस सुझावको स्वीकार करना चाहिये। अपने बाल-बच्चोंको घर न भेज कर मैंने डरबनके प्रसिद्ध व्यापारी तथा मेरे पुराने मुवक्किल और मित्र पारसी रुस्तमजीके यहां यह कहकर भेज दिया कि मैं वहीं तुमसे मिलूंगा। मुसाफिरोंके उतर जाने पर श्री लॉटन — दादा अब्दुल्ला-के वकील और मेरे मित्र — आये और मुझसे मिले। उन्होंने मुझसे पूछा: "आप अभी तक क्यों नहीं उतरे?" मैंने उनसे श्री एस्कबके पत्रकी बात कही। वे बोले: "मुझे तो शाम तक राह देखना और बादमें अपराधी या चोरकी तरह शहरमें प्रवेश करना पसंद नहीं है। आपको यदि कोई डर न हो, तो अभी ही मेरे साथ चलिये। मानो कुछ हुआ ही न हो इस प्रकार हम पैदल ही शहरमें होकर चले जायंगे।" मैंने कहा: "मैं नहीं मानता कि मुझे किसी तरहका डर है। मेरे समक्ष शिष्टता-अशिष्टताका प्रश्न केवल यही है कि श्री एस्कबकी सूचना — सलाह — को स्वीकार करना चाहिये या नहीं। और यह भी थोड़ा सोच लेना चाहिये कि जहाजके कैप्टनकी इसमें कोई जिम्मेदारी है या नहीं।" श्री लॉटन हंस कर बोले: "मि० एस्कबने आपके लिए ऐसा क्या किया है कि जिससे उनकी सलाह पर आपको थोड़ा भी ध्यान देना पड़े? इसके सिवा, उनकी सलाहमें केवल भलमनसाहत ही है और कोई भेद नहीं है, ऐसा विश्वास करनेके लिए आपके पास क्या कारण है? शहरमें क्या क्या हुआ है और उसमें इन महाशयका कितना हाथ रहा है, यह मैं आपसे ज्यादा जानता हूं। (मैंने बीचमें सिर हिलाया।) लेकिन हम मान लें कि श्री एस्कबने भले आशयसे ही आपको यह सलाह दी है। फिर भी मेरा यह निश्चित मत है कि उनकी सलाह पर अमल करनेसे आपकी प्रतिष्ठाको धक्का लगेगा। इसलिए मेरी तो आपको यह सलाह है कि यदि आप तैयार हों तो इसी समय मेरे साथ चले चलिये। कैप्टन तो हमारे अपने ही आदमी हैं, इसलिए उनकी जिम्मेदारी हमारी जिम्मेदारी है। उनसे पूछनेवाले सिर्फ दादा अब्दुल्ला ही हो सकते

है। मैं जानता हूं कि वे इस विषयमें क्या सोचेंगे, क्योंकि उन्होंने इस लड़ाईमें बहुत बड़ी बहादुरी दिखाई है।" मैंने कहा: "तब हम चले। मुझे कोई तैयारी नहीं करनी है। मुझे केवल अपनी पगड़ी ही सिर पर रखनी है। कैप्टनसे कह दें और हम लोग निकल पड़ें।" हमने कैप्टनकी इजाजत ले ली।

श्री लॉटन डरबनके बड़े पुराने और प्रसिद्ध वकील थे। मैं हिन्दुस्तान गया उससे पहले ही मेरा उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बंध गया था। अपने कठिन मुकदमोंमें मैं उन्हींकी मदद लेता था और बहुत बार बड़े वकीलके रूपमें उन्हींको रखता था। वे साहसी थे और कद्दावर शरीरवाले थे।

हमारा रास्ता डरबनके बड़ेसे बड़े मुहल्लेमें होकर जाता था। हम रवाना हुए उस समय शामके चार या साढ़े चार बजे होंगे। आकाशमें हलके बादल थे, लेकिन सूरजको ढकनेके लिए वे काफी थे। पैदल रुस्तमजीके घर तक पहुंचनेके लिए कमसे कम एक घंटेका रास्ता था। हम जहाजसे उतरे ही थे कि कुछ गोरे लड़कोंने हमें देख लिया। बड़ी उमरके आदमी उनमें कोई नहीं थे। सामान्यतः बन्दरगाह पर जितने लोग रहा करते थे उतने ही वहां दिखाई देते थे। अपने ढंगकी पगड़ी पहननेवाला केवल मैं ही था, इसलिए उन लड़कोंने मुझे तुरन्त पहचान लिया। वे 'गांधी', 'गांधी', 'इसको मारो', 'इसको घेर लो' चिल्लाते चिल्लाते हमारी ओर आये। कुछ लड़के कंकड़-पत्थर भी फेंकने लगे। अब कुछ अधेड़ उमरके गोरे भी उनमें मिल गये। धीरे धीरे आक्रमणकारियोंकी भीड़ बढ़ने लगी। श्री लॉटनको लगा कि पैदल जानेमें खतरेका सामना करना होगा। इसलिए उन्होंने रिक्शा बुलाई। रिक्शाका अर्थ है मनुष्य द्वारा खींची जानेवाली छोटी गाड़ी। मैं तो किसी दिन रिक्शामें बैठा ही नहीं था, क्योंकि जिस सवारीको मनुष्य खींचते हों उसमें बैठनेसे मुझे बड़ी नफरत थी। फिर भी आज मुझे लगा कि रिक्शामें बैठ जाना मेरा धर्म है। परन्तु ईश्वर जिसे बचाना चाहता है वह नीचे गिरना चाहे तो भी गिर नहीं सकता, ऐसा अपने जीवनमें तो पांच-सात बार आई कठिनाइयोंमें मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। उन कठिनाइयोंमें मैं गिरा नहीं, इसका श्रेय मैं स्वयं तो बिलकुल नहीं ले सकता। दक्षिण अफ्रीकामें रिक्शा

खींचनेवाले हबशी ही होते हैं। गोरे लड़कों और बड़ी उमरके गोरोंने रिक्शावालेको धमकी दी कि तू अगर इस आदमीको रिक्शामें बैठायेगा, तो हम तुझे पीटेंगे और तेरी रिक्शा तोड़ डालेंगे। इसलिए रिक्शावाला 'खा' (नहीं) कह कर भाग गया और मैं रिक्शामें नहीं बैठ पाया।

अब हमारे सामने पैदल ही जानेके सिवा दूसरा कोई रास्ता न रह गया। जैसे जैसे हम आगे बढ़ते गये वैसे वैसे गोरोंकी भीड़ भी बढ़ती ही चली गई। हम दोनों मुख्य मार्ग वेस्ट स्ट्रीटमें पहुंचे तब तक तो छोटे-बड़े सैकड़ों गोरे इकट्ठे हो गये। एक बलवान गोरेने श्री लॉटनको हाथोंमें उठाकर मुझसे अलग कर दिया। इसलिए अब वे मेरे पास तक पहुचनेकी स्थितिमें नहीं रहे। मुझ पर गालियोंकी और पत्थरोंकी या जो कुछ भी गोरोंके हाथ लगा उसकी वर्षा होने लगी। मेरी पगड़ी सिरसे नीचे गिरा दी गई। इसी बीच एक कद्दावर मोटा गोरा मेरे पास आया। पहले उसने मुझे एक जोरका थप्पड़ लगाया, फिर एक लात जमाई। मैं चक्कर खाकर गिरनेवाला ही था कि रास्तेके पासके एक मकानके आगनकी जाली मेरे हाथमें आ गई। वहा मैंने थोड़ा दम लिया और चक्कर मिटने पर आगे बढ़ा। जिन्दा मुकाम पर पहुचनेकी आशा मैं लगभग छोड़ चुका था। लेकिन इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय भी मेरा हृदय इन मारनेवाले गोरोंको जरा भी दोषी नहीं मानता था।

ऐसी मुसीबतमें मैं अपना रास्ता तय कर रहा था कि इतनेमें डरबनके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टकी पत्नी मेरे सामनेसे निकली। हम एक-दूसरेको भलीभांति जानते थे। वह एक बहादुर महिला थी। आकाशमें बादल छाये हुए थे और अब तो सूरज भी ढल रहा था, फिर भी उस महिलाने मेरी रक्षाके लिए अपना छाता खोला और वह मेरी बगलमें रहकर चलने लगी। किसी महिलाका अपमान, और उसमें भी डरबनके बहुत पुराने और लोकप्रिय पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टकी पत्नीका अपमान तो गोरे कर ही नहीं सकते थे—उसे कोई चोट भी नहीं पहुंचा सकते थे। इसलिए उसे बचा कर जो मार मुझ पर पड़ती थी वह बहुत हलकी ही होती थी। इतनेमें मुझ पर हो रहे इस आक्रमणका पता पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टको चल गया। उन्होंने मेरी रक्षाके लिए पुलिस-

दल भेजा, जिसने आकर मुझे घेर लिया। हमारा रास्ता पुलिस-थानेके पास होकर जाता था। जब हम वहां पहुंचे तो मैंने देखा कि पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट हमारी प्रतीक्षामें ही खड़े थे। उन्होंने मुझे पुलिस-थानेमें ही जानेकी सलाह दी। मैंने उनका उपकार माना, लेकिन थानेमें जानेसे इनकार कर दिया। मैंने कहा: "मुझे किसी भी हालतमें अपने मुकाम पर पहुंचना होगा। डरबनके लोगोंकी न्यायवृत्ति पर और अपने सत्य पर मुझे विश्वास है। आपने मेरी रक्षाके लिए जो पुलिस-दल भेजा, उसके लिए मैं आपका बड़ा आभारी हूं। श्रीमती एलेक्ज़ेन्डरने भी मेरी रक्षा की है।"

वहांसे मैं किसी अधिक कठिनाई और कष्टके बिना सही-सलामत रुस्तमजीके घर पहुंच गया। उनके घर पहुंचते पहुंचते लगभग शाम हो गई थी। 'कुरलैंड' जहाजके डॉक्टर दाजी बरजोर रुस्तमजी सेठके यहीं थे। उन्होंने मेरा इलाज शुरू किया। मेरे घावोंकी परीक्षा की। घाव ज्यादा तो नहीं थे। एक गुप्त चोट पड़ी थी, वही ज्यादा तकलीफ दे रही थी। लेकिन अभी मुझे शांतिसे आराम करनेका अधिकार नहीं मिला था। रुस्तमजी सेठके मकानके सामने हजारों गोरे इकट्ठे हो गये थे। रात पड़ जानेसे लुच्चे-लफंगे लोग भी उनमें शरीक हो गये थे। उन लोगोंने रुस्तमजीसे कहलवाया कि अगर तुम गांधीको हमारे हवाले नहीं करोगे, तो हम उसके साथ तुम्हें और तुम्हारी दुकानको भी जला कर खाक कर देंगे। लेकिन रुस्तमजी किसीके डराये डर जायें ऐसे हिन्दुस्तानी नहीं थे। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट एलेक्ज़ेन्डरको इस बातका पता चला, तो वे अपनी खुफिया पुलिसके साथ आकर चुपकेसे गोरोंकी भीड़में पैठ गये। एक बेंच मंगाकर उस पर खड़े हो गये। इस तरह लोगोंके साथ बात-चीत करनेके बहाने उन्होंने रुस्तमजीके मकानके दरवाजे पर कब्जा कर लिया, ताकि उसे तोड़ कर कोई भीतर न घुस सके। ठीक जगहों पर खुफिया पुलिस तो तैनात कर ही दी थी। वहां पहुंचते ही उन्होंने अपने एक कर्मचारीसे कह दिया था कि वह हिन्दुस्तानीकी पोशाक पहन कर और मुंहको रंग कर हिन्दुस्तानी व्यापारीका वेश बना ले। साथ ही उसे यह हुक्म दिया था कि वह आकर मुझसे मिले और कहे कि: "अगर आप अपने मित्रकी, उनके मेहमानोंकी, उनके मालकी और अपने

परिवारको रक्षा करना चाहते हों, तो आपको हिन्दुस्तानी पुलिसकी पोशाक पहन कर पारसी रुस्तमजीके गोदाममें होते हुए गोरोंकी भीड़में से ही मेरे आदमीके साथ चुपकेसे निकल जाना चाहिये और पुलिस-थाने पर पहुंच जाना चाहिये। इस गलीके कोने पर आपके लिए गाड़ी तैयार रखी गई है। आपको और दूसरोंको बचानेका मेरे पास सिर्फ एक यही रास्ता है। भीड़ इतनी अधिक उत्तेजित हो गई है कि उसे नियंत्रणमें रखनेका मेरे पास कोई साधन नहीं है। अगर आप यहांसे जल्दी नहीं निकल जायेंगे, तो यह मकान जमींदोस्त कर दिया जायगा। इतना ही नहीं, मेरे लिए इस बातका अंदाज लगाना भी संभव नहीं है कि आपके इस मकानमें रहनेसे जान-मालका कितना नुकसान होगा।"

मैंने स्थितिको तुरन्त समझ लिया। मैंने जल्दीसे हिन्दुस्तानी सिपाही-की पोशाक पहनी और रुस्तमजीके मकानसे बाहर निकल गया। वह पुलिस अफसर और मैं सही-सलामत पुलिस-थानेमें पहुंच गये। इस बीच पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री एलेक्ज़ेन्डर अपने प्रासंगिक गीतोंसे और भाषणोंसे भीड़का मनोरंजन करते रहे। जब उन्हें मेरे पुलिस-थानेमें पहुंचनेका संकेत मिल गया तब उन्होंने गंभीर बनकर भीड़से पूछा:

"आप लोग क्या चाहते हैं?"

"हम गांधीको चाहते हैं।"

"गांधीको लेकर आप क्या करेंगे?"

"हम उसे जलायेंगे।"

"उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

"उसने हमारे बारेमें हिन्दुस्तानमें बहुतेरी झूठी बातें कही हैं और वह नेटालमें हजारों हिन्दुस्तानियोंको घुसाना चाहता है।"

"लेकिन गांधी बाहर न निकले, तो आप क्या करेंगे?"

"तो हम इस मकानको जला डालेंगे।"

"मकानमें तो गांधीकी पत्नी और बच्चे भी हैं। दूसरे स्त्री-पुरुष भी हैं। स्त्रियों और बच्चोंको जलानेमें भी आपको शर्म नहीं आयेगी?"

"इसका दोष आप पर होगा। आप हमें ऐसा करनेके लिए लाचार बना दें, तो हम क्या करें? हम दूसरे किसीको चोट पहुंचाना नहीं

चाहते। गांधीको हमें सौंप दीजिये, बस इतनेसे हमें सन्तोष हो जायगा। आप गुनहगारको हमें न सौंपें और उसे पकड़नेमें दूसरोंको होनेवाले नुकसानकी जिम्मेदारी हम पर डालें, यह कहांका न्याय है?"

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टने मुसकुरा कर भीड़के लोगोंको यह खबर सुनाई कि मैं तो उनके बीचसे ही होकर दूसरी जगह सुरक्षित रूपमें पहुंच गया हूं। लोग यह सुन कर खिलखिला कर हंस पड़े और चिल्लाने लगे: "यह झूठ है, सरासर झूठ है!"

श्री एलेक्ज़ेन्डरने उनसे कहा . "यदि आप अपने बूढ़े पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टकी बातका भरोसा न करें, तो आप अपनी पसन्दके तीन-चार आदमियोंकी एक कमेटी बना दें। दूसरे सब लोग मुझे यह वचन दीजिये कि कोई मकानके अन्दर नहीं घुसेंगे और यदि कमेटी गांधीको मकानमें न खोज सके तो आप सब शांतिसे अपने अपने घर लौट जायंगे। आज उत्तेजित होकर आपने पुलिसकी सत्ताको स्वीकार नहीं किया, इसमें बदनामी पुलिसकी नहीं लेकिन आपकी हुई है। इसलिए पुलिसने आपके साथ चाल चली; वह आपके बीचसे आपके शिकारको निकाल कर ले गई और आप सब हार गये। इसके लिए पुलिसको तो आप दोष नहीं ही देंगे। जिस पुलिसको आपने ही नियुक्त किया है, उसने अपने कर्तव्यका पालन किया है।"

यह सारी बातचीत पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टने इतनी मिठाससे, इतने विनोदमें और इतनी दृढ़तासे की कि भीड़के लोगोंने मांगा हुआ वचन उन्हें दे दिया। उन्होंने कमेटी बनाई। कमेटीने पारसी रुस्तमजीके घरका कोना कोना छान डाला और बाहर आकर लोगोंसे कहा: "सुपरिन्टेन्डेन्टकी बात सच है। उन्होंने हमें हरा दिया है।" लोग सब निराश तो हुए, लेकिन अपना वचन उन्होंने पाला। उन्होंने रुस्तमजीके मकानको कोई नुकसान नहीं पहुंचाया। सब अपने अपने घर चले गये। वह १३ जनवरी, १८९७ का दिन था।

उसी दिन सवेरे मुसाफिरों पर लगे प्रतिबन्धके उठते ही डरबनके एक अखबारका संवाददाता जहाज पर मेरे पास आकर सारी बातें मुझसे पूछ गया था। मुझ पर लगाये गये सारे आरोपोंके बारेमें पूरा स्पष्टीकरण

देना मेरे लिए बहुत आसान था। मैंने सारे उदाहरण देकर संवाददाताके सामने यह सिद्ध कर दिया था कि हिन्दुस्तानमें मैंने जरा भी अतिशयोक्ति नही की। जो कुछ मैंने वहा किया वह मेरा धर्म था। अपने धर्मका पालन यदि मैंने न किया होता, तो मैं मनुष्य-जातिमे अपनी गिनती कराने लायक भी न रह जाता। ये सारी बातें दूसरे दिन पूरी पूरी डरबनके अखबारोंमें छपी और सयाने व समझदार गोरोने अपनी गलती स्वीकार की। अखबारोंने नेटालके यूरोपियनोंकी स्थितिके बारेमे अपनी सहानुभूति प्रकट की, परन्तु उसके साथ मेरे कार्यका भी उन्होंने पूरा समर्थन किया। इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी और मेरे साथ हिन्दुस्तानी कौमकी प्रतिष्ठा भी बढी। यूरोपियनोंके सामने यह भी सिद्ध हुआ कि गरीब हिन्दुस्तानी भी नामर्द और कायर नही हैं और हिन्दुस्तानी व्यापारी अपने व्यापारकी परवाह किये विना स्वाभिमानके खातिर और स्वदेशके खातिर लड़ सकते हैं।

यद्यपि इससे कौमको बडा दु ख सहना पड़ा, दादा अब्दुल्लाको तो बहुत बडा नुकसान उठाना पड़ा, फिर भी मैं मानता हू कि अतमे इससे लाभ ही हुआ। कौमको भी अपनी शक्तिका थोड़ा अदाज लगा और उसका आत्म-विश्वास बढा। मुझे भी अधिक अनुभव हुआ और अधिक तालीम मिली। आज जब मैं उन दिनोंका विचार करता हूं तो मुझे लगता है कि ईश्वर उस समय मुझे सत्याग्रहके लिए तैयार कर रहा था।

नेटालकी घटनाओका असर इग्लैंडमें भी हुआ। श्री चैम्बरलेनने नेटाल सरकारको तार किया कि जिन गोरोंने मुझ पर आक्रमण किया उन पर कोर्टमें मुकदमा चलाया जाना चाहिये और मुझे न्याय मिलना चाहिये।

श्री एस्कंब उस समय नेटाल सरकारके एटर्नी-जनरल थे। उन्होंने मुझे बुलाया। श्री चैम्बरलेनके तारकी बात कही, गोरोंके आक्रमणसे मुझे जो चोट पहुची उसके लिए दु ख प्रकट किया और मैं खतरेसे बच गया इसके लिए अपनी खुशी बताई। उन्होंने यह भी कहा. "मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि ऐसा मैं बिलकुल नही चाहता था कि आपको या आपकी कौमके किसी भी आदमीको चोट पहुचे। यूरोपियनोंके आक्रमणसे आपको चोट पहुचनेका मुझे डर था, इसी कारणसे मैंने आपके पास यह सूचना भेजी थी कि दिनमें न उतर कर आप रातको जहाजसे उतरें। लेकिन मेरी

सूचना आपको ठीक नही लगी। आपने मि० लॉटनकी सलाह मानी, इसके लिए मैं आपको जरा भी दोषी नही मानता। आपको जो उचित लगा उसे करनेका आपको पूरा अधिकार था। मि० चैम्बरलेनकी मांगके साथ नेटाल सरकार पूरी तरह सहमत है। हम चाहते हैं कि अपराधियोंको दंड मिले। क्या आक्रमण करनेवालोंमें से आप किसीको पहचान सकते हैं ?"

मैंने उत्तर दिया : "सभव है, एक-दो आदमियोंको मैं पहचान सकू। परन्तु यह बात आगे बढे इसके पहले ही मुझे कह देना चाहिये कि मैंने अपने मनमें कभीका निश्चय कर लिया है कि मैं अपने पर हुए इस हमलेके बारेमें किसीके खिलाफ अदालतमें शिकायत करूगा ही नहीं। हमला करनेवाले लोगोंका तो मैं इसमें कोई दोष भी नहीं देखता। उन्हें तो जो कुछ जानकारी मिली वह उनके नेताओंकी ओरसे मिली थी। वह सच थी या झूठ, इसकी जाच करनेके लिए वे बैठे नहीं रह सकते थे। मेरे विषयमें जो कुछ उन्होंने सुना वह सब उन्हें सही लगा हो, तो उनका उत्तेजित होना और आवेशमें आकर न करने जैसी बातें भी कर डालना स्वाभाविक था। इसमें मैं उन लोगोंका दोष नही मानता। लोगोंकी उत्तेजित बनी हुई भीड़ तो इसी तरह न्याय प्राप्त करती आई है। अगर इस मामलेमें किसीका दोष हो, तो वह इस सम्बन्धमें रची गई कमेटीका है और स्वयं आपका है और इसलिए नेटाल सरकारका है। रूटरने चाहे जैसा तार किया हो, परन्तु जब आप यह जानते थे कि मैं यहा आ रहा हूं तब आपका और कमेटीका कर्तव्य हो जाता था कि आप लोगोंने जो जो शंकायें हिन्दुस्तानके मेरे कार्योंके बारेमें अपने मनमें खडी कर ली थीं उनके सम्बन्धमें मुझसे पूछते, मेरे उत्तर सुनते और उसके बाद जो उचित मालूम होता वह करते। अब मुझ पर जो आक्रमण हुआ उसके लिए मैं आप पर या कमेटी पर तो मुकदमा चला ही नहीं सकता। और यदि मुकदमा चलाना संभव हो, तो भी ऐसा न्याय मैं कोर्टके द्वारा प्राप्त नहीं करना चाहूंगा। नेटालके गोरोंके अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिए आपको जैसे कदम उठाना उचित लगा वैसे आपने उठाये। यह राजनीतिक विषय है। मुझे भी राजनीतिक क्षेत्रमें ही आपसे लड़ना होगा और आपको तथा नेटालके गोरोंको यह बताना होगा कि हिन्दुस्तानी कौम ब्रिटिश साम्राज्यके एक बड़े भागके

रूपमें गोरोंको किसी तरहकी हानि पहुंचाये बिना केवल अपने स्वाभिमान और अधिकारोंकी रक्षा करना चाहती है।"

श्री एस्कम्बने कहा "आपने जो कुछ कहा उसे मैं समझा हूं और वह मुझे अच्छा भी लगा है। आप अपने आक्रमणकारियों पर मुकदमा नही चलाना चाहते, यह सुननेके लिए मैं तैयार नही था। और यदि आप उन लोगों पर मुकदमा चलाना चाहते, तो मैं जरा भी नाराज न होता। लेकिन जब आपने मुकदमा न चलानेका अपना निर्णय बता दिया है, तो मुझे यह कहनेमें सकोच नही होता कि आपने सही निर्णय किया है। इतना ही नही, अपने इस सयमसे आप अपनी कौमकी अधिक सेवा करेंगे। इसके साथ मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिये कि आप अपने इस कदमसे नेटाल सरकारको विषम स्थितिमें बचा लेंगे। आप चाहेंगे तो हम आपके आक्रमणकारियोंकी गिरफ्तारी वगैरा तो करेंगे, परन्तु आपसे यह कहना शायद ही जरूरी हो कि इससे गोरे फिर भडक उठेंगे और तरह तरहकी टीकायें होंगी। और यह सब कोई भी सरकार कभी पसंद नही करेगी। परन्तु यदि मुकदमा न चलानेके बारेमें आपने अतिम निर्णय कर लिया हो, तो आपको अपना यह विचार बतानेवाला एक पत्र मुझे लिख देना चाहिये। केवल हमारी बातचीतका सार ही मि० चैम्बरलेनके पास भेजकर मैं अपनी सरकारका बचाव नही कर सकता। मुझे तो आपके पत्रका भावार्थ ही तार द्वारा उनके पास भेजना होगा। लेकिन मैं यह नही कहता कि ऐसा पत्र आप इसी समय लिख दें। आप अपने मित्रोंसे इस विषयमें विचार-विमर्श करें। मि० लॉटनकी भी सलाह लें। यह सब कर लेनेके बाद भी आप अपने निर्णय पर दृढ रहें, तो ही आप मुझे उपयुक्त आशयका पत्र लिखें। लेकिन इतना मैं आपसे कह दू कि अपने पत्रमें आक्रमणकारियो पर मुकदमा न चलानेकी जिम्मेदारी स्पष्ट रूपमें आपको स्वय अपने सिर लेनी होगी। तभी मैं आपके इस पत्रका उपयोग कर सकूंगा।"

मैंने उनसे कहा: "मुझे कल्पना नही थी कि आपने इस घटनाके सम्बन्धमें मुझे बुलाया है। इस विषयमें न तो मैंने किसीसे विचार-विमर्श किया है, और न किसीसे विचार-विमर्श करनेकी मेरी इच्छा है। जब मैंने श्री लॉटनके साथ जहाजसे उतरने और आगे बढनेका निर्णय किया तभी अपने

मनमें ठान लिया था कि गोरे मुझे कोई भी कष्ट क्यों न दें, मैं उसका बुरा नहीं मानूंगा। इसलिए आक्रमणकारियों पर मुकदमा चलानेका कोई प्रश्न ही नहीं रहता। मेरे मन यह धार्मिक प्रश्न है। और आपके कहे अनुसार मैं भी यह मानता हूं कि मेरे इस संयमसे न केवल मेरी कौमकी सेवा होगी, परन्तु मुझे स्वयं भी उससे लाभ होगा। इसलिए मैं सारी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर इसी समय आपका मांगा हुआ पत्र लिख देना चाहता हूं।"

और मैंने श्री एस्कंबसे एक कोरा कागज मांगकर वही पत्र लिखा और उन्हें दे दिया।

८

हिन्दुस्तानियोंने क्या किया?

३

इंग्लैंडमें कार्य

पाठक पिछले प्रकरणोंमें यह देख चुके हैं कि हिन्दुस्तानी कौमने अपनी स्थितिको सुधारनेके लिए कुछ प्रयत्न किये और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई। जिस प्रकार दक्षिण अफ्रीकामें कौमने अपने सारे अंगोंका विकास करनेका *यथाशक्ति प्रयत्न किया, उसी प्रकार हिन्दुस्तान और इंग्लैंडसे* जितनी मदद मिल सकती थी उतनी पानेका प्रयत्न भी उसने किया। हिन्दुस्तानके कार्यके बारेमें तो मैं थोड़ा लिख चुका हूं। अब यह बताना चाहिये कि इंग्लैंडसे मदद लेनेके बारेमें क्या किया गया। सबसे पहले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके साथ सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक था। इसलिए हिन्दुस्तानके दादा श्री दादाभाई नौरोजीको और ब्रिटिश कमेटीके अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्नको सारी घटनाओंका ब्योरेवार वर्णन करनेवाले साप्ताहिक पत्र लिखे जाते थे। और जब जब अरजियोंकी नकलें वगैरा भेजनेका मौका आता तब तब कमेटीके डाकखर्चमें और

सामान्य खर्चमें मदद करनेके लिए कमसे कम १० पौंडकी रकम भेजी जाती थी।

यहां मैं दादाभाई नौरोजीका एक पवित्र संस्मरण दे दूं। दादाभाई ब्रिटिश कमेटीके अध्यक्ष नहीं थे। फिर भी हमने सोचा कि उनके द्वारा ही कमेटीको पैसे भेजना उचित होगा, और वे हमारी ओरसे भेजे हुए पैसे कमेटीके अध्यक्षको दे दें। परन्तु पहली ही बार हमने जो पैसे भेजे उन्हें दादाभाईने लौटा दिया और सुझाया कि कमेटीके नामके पैसे और पत्र आपको सीधे सर विलियम वेडरबर्नके पास ही भेजने चाहिये। दादाभाई स्वयं तो यथाशक्ति हमारी सहायता करते ही थे, परन्तु उनका कहना था कि कमेटीकी प्रतिष्ठा तभी बढ़ेगी जब हम सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा ही काम लेंगे। मैंने यह भी देखा कि दादाभाई इतने बूढ़े होते हुए भी अपने पत्र-व्यवहारमें बड़े नियमित रहते थे। उन्हें कुछ अधिक न लिखना होता तो कमसे कम पत्रकी पहुच तो वे लौटती डाकसे भेज ही देते थे और उसमें प्रोत्साहनकी एक पंक्ति अवश्य रहती थी। ऐसे पत्र भी वे स्वयं ही लिखते थे और उनकी नकल अपनी टिश्यु-पेपर बुकमें कर लेते थे।

पिछले एक प्रकरणमें मैं यह भी बता चुका हू कि हमने अपनी संस्थाको 'कांग्रेस' का नाम तो दिया था, परन्तु हमारा इरादा अपने प्रश्नोंको किसी एक पार्टीके प्रश्न बनानेका कभी नहीं रहा। इसलिए दादाभाई जानें इस ढंगसे हमारा पत्र-व्यवहार दूसरी पार्टियोंके लोगोंके साथ भी चलता था। उनमें दो सज्जन मुख्य थे: एक सर मंचेरजी भावनगरी और दूसरे सर विलियम विल्सन हन्टर। सर मंचेरजी भावनगरी उस समय ब्रिटिश पार्लियामेन्टके सदस्य थे। उनसे हमें अच्छी मदद मिलती थी, वे सदा हमें महत्त्वपूर्ण सूचनायें भी देते रहते थे। लेकिन दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंके प्रश्नका महत्त्व हिन्दुस्तानियोंसे भी पहले समझनेवाले और उनकी बहुमूल्य सहायता करनेवाले यदि कोई थे तो वे सर विलियम विल्सन हन्टर थे। वे 'टाइम्स' के हिन्दुस्तानी विभागके संपादक थे। हमने दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिके बारेमें उन्हें प्रथम पत्र लिखा तभीसे वे उस विभागमें हिन्दुस्तानियोंके प्रश्नकी उसके सच्चे स्वरूपमें सार्वजनिक चर्चा करने लगे थे; और हमारे ध्येयके समर्थनमें अनेक सज्जनोंको

व्यक्तिगत पत्र भी लिखते थे। जब कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता तब उनका पत्र लगभग प्रति सप्ताह हमें मिलता था। उनका जो पहला उत्तर आया उसमें उन्होंने लिखा था . "आपकी बताई स्थितिके बारेमें पढ़कर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। *आप अपनी लड़ाई विनयसे, शांतिसे* और बिना किसी अतिशयोक्तिके लड रहे हैं। इस प्रश्नमें मेरी सहानुभूति संपूर्ण रूपमें आपके साथ है। आपको न्याय मिले इसके लिए मैं अपनी शक्तिभर व्यक्तिगत रूपमें और सार्वजनिक रूपमें सब-कुछ कर गुजरूंगा। मेरा विश्वास है *कि इस मामलेमें हम एक इंच भी पीछे* नहीं हट सकते। आपकी माग ऐसी है कि कोई निष्पक्ष मनुष्य उसमें काटछाट करनेकी बात सुझा ही नहीं सकता।" 'टाइम्स' मे इस विषयमें जो पहला लेख उन्होंने लिखा था, उसमें भी अपने पत्रके लगभग यही शब्द उद्धृत किये थे। अंत तक उनका यही रुख हमारे प्रश्नके बारेमें रहा। लेडी हन्टरने अपने एक पत्रमें लिखा था कि अपनी मृत्युसे कुछ समय पूर्व ही दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंके प्रश्न पर *लिखी जानेवाली* एक लेखमालाकी रूपरेखा उन्होंने तैयार की थी।

श्री मनसुखलाल नाजरका नाम मैं पिछले प्रकरणमें दे चुका हूं। हिन्दुस्तानियोंका प्रश्न अधिक अच्छे ढंगसे समझानेके लिए कौमकी ओरसे उन्हें इग्लैंड भेजा गया था। उन्हें यह सूचना की गई थी कि वे सब पार्टियोंको अपने साथ रखकर यह काम करें। इग्लैंडके अपने निवास-कालमें वे सदा स्व० सर विलियम विल्सन हन्टर, सर मचेरजी भावनगरी और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके सपर्कमें रहे। वे भारतीय सिविल सर्विसके सेवा-निवृत्त अधिकारियों, भारत-मंत्रीके कार्यालय तथा उपनिवेश-मंत्रीके कार्यालयके सपर्कमें भी रहते थे। इस प्रकार अपने प्रयत्नमें उन्होंने एक भी दिशा ऐसी नहीं छोड़ी, जहां उनकी पहुंच हो सकती थी। इस सबका परिणाम स्पष्ट रूपमें यह आया कि हिन्दुस्तानके बाहर बसनेवाले हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिने बड़ी (साम्राज्य) सरकारकी दृष्टिमें प्रथम श्रेणीका महत्त्व ग्रहण कर लिया। और उसका अच्छा तथा बुरा असर दूसरे उपनिवेशों पर भी पड़ा। अर्थात् जिन जिन उपनिवेशोंमें हिन्दुस्तानी लोग बसे हुए थे वहा वे अपनी स्थितिके महत्त्वके प्रति जाग्रत

बन गये और वहांके यूरोपियन निवासी उस खतरेके प्रति सजग हो गये, जो उनके खयालसे हिन्दुस्तानी लोग उपनिवेशोंमें यूरोपियनोंके प्रभुत्वको पहुचा सकते थे।

९

बोअर-युद्ध

जिन पाठकोंने पिछले प्रकरण ध्यानसे पढे होंगे उन्हें इस बातका खयाल होगा कि बोअर-युद्धके समय दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी दशा कैसी थी। उस समय तक अपनी दशाको सुधारनेके लिए उन्होंने जो जो प्रयत्न किये, उनका वर्णन भी किया जा चुका है।

डॉ० जेमिसनकी सोनेकी खदानोंके मालिकोंके साथ जो गुप्त मंत्रणा हुई थी, उसके अनुसार उन्होंने १८९९ में जोहानिसवर्ग पर धावा बोल दिया। दोनोंकी आशा तो यह थी कि जोहानिसबर्ग पर अधिकार कर लेनेके बाद ही बोअर-सरकारको इस धावेका पता चलेगा। पर ऐसी आशा रखनेमें डॉ० जेमिसन तथा उनके मित्रोंने बहुत बडी गलती की। दूसरी गलती उन्होंने यह आशा रखकर की कि हमारे षड्यन्त्रका भडाफोड हो गया, तो भी रोडेशियामें तालीम पाये हुए निशानेबाजो (शार्प-शूटर्स) के सामने अनाडी बोअर किसान कुछ कर नहीं सकेंगे। उन्होंने गलतीसे यह भी मान लिया था कि जोहानिसबर्गकी आबादीका बहुत बड़ा भाग उनका स्वागत ही करेगा। उन भले डॉक्टरकी यह आशा भी पूरी नहीं हुई। प्रेसिडेन्ट क्रूगरको सारे षड्यन्त्रका पूरा पता चल गया था। उन्होंने अत्यन्त शाति, कुशलता और गुप्त रीतिसे डॉ० जेमिसनका सामना करनेकी तैयारिया कर ली थी और जो लोग उनके साथ षड्यन्त्रमें शरीक हुए थे, उन्हे गिरफ्तार करनेकी भी पूरी तैयारी कर ली थी। इसलिए डॉ० जेमिसन जोहानिसबर्गके निकट पहुचे उसके पहले ही बोअर-सेनाने अपनी गोलियोंने उनका स्वागत किया। इस सेनाके सामने डॉ० जेमिसनकी टुकडी टिक हो नहीं सकती थी। जोहानिसबर्गमें कोई सरकारके खिलाफ विद्रोह

न कर सके, इसके लिए भी प्रेसिडेण्ट क्रूगर संपूर्ण रूपमें तैयार थे। इसके फलस्वरूप शहरकी आबादीमें से कोई आदमी सिर उठानेकी हिम्मत नहीं कर सका। प्रेसिडेन्ट क्रूगरकी सारी कार्रवाईसे जोहानिसबर्गके करोड़पति स्तब्ध रह गये। प्रेसिडेन्टकी इतनी सुन्दर तैयारीका परिणाम यह हुआ कि धावेको पीछे धकेलनेमें पैसेका कमसे कम खर्च हुआ और प्राणोंकी भी कमसे कम हानि हुई।

डॉ० जेमिसन और उनके सब मित्र — सोनेकी खदानोंके मालिक — पकड़ लिये गये और तुरन्त उन पर मुकदमा चलाया गया। कुछ लोगोंको फांसीकी सजा हुई। इन अपराधियोंमें से अधिकतर तो करोड़पति ही थे। लेकिन बड़ी (साम्राज्य) सरकार उनके लिए कुछ नहीं कर सकी, क्योंकि उन्होंने दिन-दहाड़े धावा बोलनेका अपराध किया था। प्रेसिडेन्ट क्रूगरका महत्त्व एकदम बढ़ गया। उपनिवेश-मंत्री श्री चैम्बरलेनने उन्हें दीन वचनवाला तार किया और प्रेसिडेन्ट क्रूगरके दयाभावको जाग्रत करके इन सब करोड़पतियोंके लिए दयाकी भीख मांगी। प्रेसिडेन्ट क्रूगर अपना दाव खेलनेमें अत्यन्त कुशल थे। उन्हें इस बातका कोई भय था ही नहीं कि दक्षिण अफ्रीकाकी कोई भी शक्ति उनके हाथसे राजसत्ता छीन सकती है। डॉ० जेमिसन तथा उनके मित्रोंका षड्‌यंत्र उनकी अपनी दृष्टिसे तो बड़ी कुशलतापूर्वक रचा गया था, परन्तु प्रेसिडेन्ट क्रूगरकी दृष्टिमें वह बालिशताका काम था। इसलिए उन्होंने श्री चैम्बरलेनकी नम्र प्रार्थना स्वीकार कर ली और न केवल किसीको फांसीकी सजा नहीं दी, बल्कि सबको संपूर्ण क्षमा करके मुक्त कर दिया!

लेकिन उछालेके साथ ऊपर आया हुआ अन्न पेटमें कब तक टिक सकता है; वह तो बाहर निकलेगा ही। प्रेसिडेन्ट क्रूगर भी जानते थे कि डॉ० जेमिसनका धावा तो गंभीर रोगका एक सामान्य-सा लक्षण भर था। जोहानिसबर्गके करोड़पति अपनी बदनामीको किसी भी तरह धोनेका प्रयत्न न करें, यह असंभव था। इसके सिवा, जिन सुधारोंके लिए डॉ० जेमिसनके आक्रमणकी योजना बनाई गई थी, उनमें से तो अभी तक एक भी सुधार नहीं किया गया था। इस कारणसे यह संभव नहीं था कि जोहानिसबर्गके करोड़पति शांत रहें। उनकी मांगोंके लिए दक्षिण अफ्रीका

स्थित ब्रिटिश हाई कमिश्नर लॉर्ड मिल्नरकी पूरी सहानुभूति थी। साथ ही, श्री चैम्बरलेनने भी ट्रान्सवालका द्रोह करनेवाले डॉ० जेमिसन तथा करोड़-पतियोंके प्रति दिखाई गई प्रेसिडेन्ट क्रूगरकी महान उदारताकी स्तुति करते हुए उनका ध्यान सुधारोंकी आवश्यकता पर खींचा था। सब कोई यह मानते थे कि युद्धके सिवा इस झगडेका निपटारा कभी हो ही नहीं सकेगा। खदानोंके मालिकोंकी मांगें इस प्रकारकी थीं कि उनका अंतिम परिणाम ट्रान्सवालमें बोअरोंके प्रभुत्वका नाश होनेमें ही आता। दोनों पक्ष जानते थे कि इसका अंतिम परिणाम युद्ध ही होगा, इसलिए दोनों युद्ध-की तैयारी कर रहे थे। उस समय दोनों पक्षोंका शब्दयुद्ध देखने जैसा था। जब प्रेसिडेन्ट क्रूगर अधिक हथियार और युद्ध-सामग्री मंगाते थे तब ब्रिटिश एजेन्ट उन्हें चेतावनी देता था कि आत्मरक्षाके लिए अंग्रेज सर-कारको भी दक्षिण अफ्रीकामें थोड़ी सेना लानेके लिए मजबूर होना पड़ेगा। जब ब्रिटिश सेना दक्षिण अफ्रीकामें आती थी तब प्रेसिडेन्ट क्रूगर अंग्रेजोंको ताना मारते थे और युद्धकी अधिक तैयारियां करनेमें लग जाते थे। इस प्रकार एक पक्ष दूसरे पर आरोप लगाता था और दोनों युद्धकी तैयारी भी करते जाते थे।

जब प्रेसिडेन्ट क्रूगरने पूरी तैयारी कर ली तब उन्हें लगा कि अब बैठे रहनेका अर्थ होगा खुद होकर शत्रुकी शरणमें जाना। ब्रिटिश साम्राज्य-के पास धनका और पशुबलका अखूट भण्डार है; ब्रिटिश साम्राज्य धीरे धीरे तैयारी करते हुए और प्रेसिडेन्ट क्रूगरको खदान-मालिकोंकी शिकायतें दूर करनेके लिए समझाते हुए लम्बा समय निकाल सकता है और दुनियाको यह दिखा सकता है कि प्रेसिडेन्ट क्रूगर खदान-मालिकोंकी शिकायतें दूर करते ही नहीं, इसलिए हमें मजबूर होकर युद्ध करना पड़ा है। ऐसा कहकर वह इतनी जबरदस्त तैयारीके साथ युद्ध करेगा कि प्रेसिडेन्ट क्रूगर युद्धमें उनका मुकाबला कर ही न सकें और दीन तथा अपमानित होकर ब्रिटिश साम्राज्यकी मांगें स्वीकार करनेके लिए विवश हो जायं। जिस प्रजाका १८ से ६० वर्षकी आयुका समग्र पुरुष-वर्ग युद्ध करनेमें कुशल हो, जिसकी स्त्रियां भी इरादा कर लें तो युद्धमें लड़नेकी क्षमता रखती हों, जिस प्रजामें राष्ट्रीय स्वतंत्रता एक धार्मिक सिद्धान्त मानी जाती हो, वह प्रजा

चक्रवर्ती राजाके बल और सत्ताके सामने भी ऐसी दीन नहीं बन सकती। और, बोअर प्रजा सचमुच ऐसी ही बहादुर थी।

ऑरेंज फ्री स्टेटके साथ प्रेसिडेन्ट क्रूगरने पहले ही समझौता कर लिया था। इन दोनों बोअर राज्योंकी नीति और कार्य-पद्धति एक ही थी। प्रेसिडेन्ट क्रूगर बिलकुल नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश मागें पूरी तरह स्वीकार कर ली जायं; खदान-मालिकोंको सन्तोष हो इस हद तक भी वे इन मागोंको स्वीकार नहीं करना चाहते थे। इसलिए दोनों राज्योंने सोचा कि जब युद्ध अनिवार्य ही है तो ऐसी स्थितिमें जितना भी समय जायगा उतना ब्रिटिश साम्राज्यको युद्धकी तैयारीके लिए देनेके बराबर होगा। इस पर प्रेसिडेन्ट क्रूगरने अपनी अंतिम विचार और अंतिम मागें लॉर्ड मिलनरको बता दी। इसके साथ ही उन्होंने ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटकी सीमा पर सेना तैनात कर दी। इसका परिणाम युद्धके सिवा दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता था। ब्रिटिश साम्राज्यके समान चक्रवर्ती राज्य इस धमकीके सामने झुक ही नहीं सकता था। प्रेसिडेन्ट क्रूगरके 'अल्टीमेटम' का समय पूरा हुआ और बोअर-सेना बिजलीकी गतिसे आगे बढ़ी। उसने लेडीस्मिथ, किम्बरली और मेफेकिंग पर घेरा डाल दिया। इस प्रकार १८९९ में इस महान युद्धका आरम्भ हुआ। पाठक यह तो जानते ही हैं कि इस युद्धके कारणोंमें — अर्थात् ब्रिटिश मागोंमें — एक कारण बोअर-राज्योंमें हिन्दुस्तानियोंकी दुर्दशा भी थी।

अब दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंके सामने यह महान प्रश्न खड़ा हुआ कि उन्हें इस मौके पर क्या करना चाहिये। बोअरोंका समूचा पुरुष-वर्ग तो युद्धमें चला गया। वकीलोंने वकालत छोड़ी, किसानोंने खेत छोड़े, व्यापारियोंने व्यापार छोड़ा और नौकरोंने नौकरी छोड़ी। अंग्रेजोंके पक्षमें बोअरों जितने तो नहीं, परन्तु केप कॉलोनी, नेटाल और रोडेशियामें असैनिक वर्गोंके लोग बड़ी संख्यामें स्वयंसेवक बने। अनेक बड़े अंग्रेज वकील-बैरिस्टर और अंग्रेज व्यापारी स्वयंसेवकोंमें भरती हो गये। जिस अदालतमें मैं वकालत करता था उसमें अब मुझे बहुत कम वकील दिखाई देते थे। अनेक बड़े वकील युद्धकार्यमें जुट गये। हिन्दुस्तानियों पर जो आक्षेप लगाये जाते थे, उनमें से एक यह था : "ये लोग दक्षिण अफ्रीकामें केवल पैसे

जमा करने ही आते हैं। ये हम पर (अंग्रेजों पर) निरे बोझ बने हुए हैं। जिस प्रकार दीमक लकड़ीमें घुस जाती है और कुरेद कुरेद कर उसे बिलकुल खोखला बना देती है, उसी प्रकार ये हिन्दुस्तानी हमारे कलेजे कुरेद कर खानेके लिए ही यहां आये हैं। देश पर यदि आक्रमण हो, हमारे घरबार लुटनेका मौका आये, तो ये लोग हमारी थोड़ी भी मदद करनेवाले नहीं हैं। उस समय न केवल हमें शत्रुओंसे अपनी रक्षा करनी होगी, परन्तु अपने साथ इन लोगोंकी भी रक्षा करनी पड़ेगी।" इस आक्षेपके बारेमें भी हम सब हिन्दुस्तानियोंने गहरा विचार किया। हम सबको लगा कि इस समय यह सिद्ध कर दिखानेका एक सुन्दर अवसर हमें मिला है कि इस आक्षेपमें कोई सचाई नहीं है--वह निराधार है। लेकिन दूसरी ओर कुछ लोगोंने नीचेके विचार भी सामने रखे.

"अंग्रेज और बोअर दोनों ही हमें एकसे तकलीफ देते हैं। ट्रान्सवाल-में ही हमें दुःख भोगना पड़ता है और नेटाल व केप कॉलोनीमें नहीं भोगना पड़ता, ऐसी बात नहीं है। भेद केवल दुःखकी मात्राका है। फिर, हमारी कौम तो गुलामोंकी कौम कही जाती है। हम जानते हैं कि बोअरों जैसी एक छोटीसी कौम अपने अस्तित्वके लिए अंग्रेजोंसे लड़ रही है। यह जानते हुए भी हम उसके नाशका कारण कैसे बन सकते हैं? और अंतमें यदि व्यवहारकी दृष्टिसे देखें, तो कोई यह भविष्य-वाणी नहीं कर सकता कि बोअर लोग इस युद्धमें हारनेवाले हैं। वे युद्धमें यदि जीत गये, तो क्या हमसे बदला लिये बिना रहेंगे?"

यह दलील जोरदार भाषामें सामने रखनेवाला एक सबल पक्ष हमारे बीच था। मैं खुद भी इस दलीलको समझ सका था और उसे आवश्यक महत्त्व भी देता था। फिर भी मुझे वह जंची नहीं। मैंने उसका खंडन अपने मनमें और कौमके लोगोंके सामने इस तरह किया:

"दक्षिण अफ्रीकामें हमारा अस्तित्व केवल ब्रिटिश प्रजाजनोंके नाते ही है। हर अरजीमें हमने ब्रिटिश प्रजाजनोंके रूपमें ही अपने अधिकार मांगे हैं। हमने ब्रिटिश प्रजाजन होनेमें गौरव माना है अथवा अपने शासकों और दुनियाको यह मानने दिया है कि ब्रिटिश प्रजाजन होनेमें हमारा गौरव है। हमारे शासकोंने भी हमारे अधिकारोंका बचाव इसीलिए

किया है कि हम ब्रिटिश प्रजाजन हैं। दक्षिण अफ्रीकामें अंग्रेज हमें दुःख देते हैं, इस कारणसे उनके और हमारे घरबार नष्ट होनेका मौका आने पर भी यदि हम हाथ पर हाथ धरे प्रेक्षकोंकी तरह तमाशा देखते रहें, तो यह हमारे मनुष्यत्वके लिए शोभाकी बात नहीं है। इतना ही नहीं, यह मनोवृत्ति हमारे दुःखोंमें वृद्धि करनेवाली सिद्ध होगी। जिस आक्षेपको हमने गलत माना है उसे गलत सिद्ध करनेका अनायास हमें जो अवसर मिला है, उसे हाथसे जाने देनेका अर्थ होगा स्वयं उस आक्षेपको सिद्ध करना। उसके बाद अगर हम पर अधिक दुःख पड़ें और अंग्रेज हमें अधिक ताने मारें और हमसे अधिक नफरत करें, तो यह आश्चर्यकी बात नहीं होगी। वह तो हमारा ही दोष कहा जायगा। अंग्रेजोंने जितने आक्षेप हम पर लगाये हैं वे बिलकुल निराधार हैं — उन पर दलील करने जैसा भी कुछ नहीं है — ऐसा कहना अपने आपको धोखा देना है। यह सच है कि हम ब्रिटिश साम्राज्यमें गुलामोंके समान हैं, परन्तु आज तकका हमारा प्रयत्न ब्रिटिश साम्राज्यमें रहकर गुलामीको दूर करनेका रहा है। हिन्दुस्तानके सारे नेता ऐसा ही करते हैं। हम लोग भी ऐसा ही कर रहे हैं। और यदि हम ब्रिटिश साम्राज्यके सदस्योंके रूपमें ही अपनी स्वतन्त्रता और उन्नति सिद्ध करना चाहते हों, तो इस समय हमें भी तन-मन-धनसे इस युद्धमें अंग्रेजोंकी सहायता करके यह ध्येय सिद्ध करनेका सुवर्ण अवसर मिला है। बोअरोंका पक्ष न्यायका पक्ष है, ऐसा बहुत हद तक कहा जा सकता है। परन्तु किसी राज्यतंत्रके भीतर रहते हुए प्रजाका प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वतंत्र विचारोंको आचरणमें नहीं उतार सकता। राज्यके अधिकारीगण जितने भी कार्य करते हैं वे सब उचित ही होते हैं ऐसा नहीं। फिर भी जब तक प्रजाजन अमुक राज्यको स्वीकार करते हैं तब तक उस राज्यके कार्योंका समर्थन करना और उनमें राज्यकी सहायता करना उनका स्पष्ट कर्तव्य है।

"इसके सिवा, प्रजाका कोई भाग यदि राज्य या सरकारके किसी कार्यको धार्मिक दृष्टिसे अनीतिपूर्ण समझता हो, तो उस कार्यमें विघ्न डालनेसे पहले या सहायता देनेसे पहले राज्यको ऐसे अनीतिपूर्ण कार्यसे बचानेका संपूर्ण प्रयत्न प्राणोंको संकटमें डालकर भी उस भागको करना

चाहिये। ऐसा हमने कुछ किया नहीं है। ऐसा धर्म-संकट हमारे सामने सदा भी नहीं हुआ है और ऐसे किसी सार्वजनिक और व्यापक कारणसे हम इस युद्धमें भाग नहीं लेना चाहते, यह न तो किसीने कहा है और न माना है। इसलिए प्रजाके नाते हमारा सामान्य धर्म तो यही है कि युद्धके गुण-दोषका विचार किये बिना जो युद्ध हो रहा है उसमें यथा-शक्ति सहायता करे। अतमें, यदि बोअर-राज्य युद्धमें जीतें—और वे हारेंगे ही ऐसा माननेका हमारे पास कोई कारण नहीं है—तो हम चूल्हेसे निकलकर भट्ठीमें गिरेंगे और फिर तो वे हमसे मनमाना बदला लेंगे, ऐसा कहना या विश्वास करना बहादुर बोअरोंके साथ और स्वयं अपने साथ भी अन्याय करना है। यह तो केवल हमारी कायरताकी निशानी मानी जायगी। ऐसा सोचना भी हमारी वफादारीको बट्टा लगाना है। क्या कोई अंग्रेज एक क्षणके लिए भी ऐसा सोच सकता है कि अंग्रेज हार गये तो उसका क्या होगा? युद्धके मैदानमें जानेवाला कोई भी मनुष्य अपना मनुष्यत्व खोये बिना ऐसी दलील कर ही नहीं सकता।"

यह दलील मैंने १८९९ में की थी, और आज भी उसमें परिवर्तन करनेका कोई कारण मुझे दिखाई नहीं देता। मेरा कहनेका मतलब यह है कि जो मोह उस समय ब्रिटिश साम्राज्यके बारेमें मुझे था और हमारी स्वतंत्रताकी जो आशा ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत रहकर उस समय मैंने बांधी थी वह मोह और वह आशा आज भी बनी रहती, तो मैं अक्षरशः यही दलील दक्षिण अफ्रीकामें करता और वैसी स्थितिमें यहां हिन्दुस्तानमें भी करता। इस दलीलके अनेक खण्डन मैंने दक्षिण अफ्रीकामें और उसके बाद इंग्लैंडमें भी सुने थे। फिर भी अपने इन विचारोंको बदलनेका कोई कारण मुझे नहीं दिखाई पड़ा। मैं जानता हूं कि मेरे आजके विचारोंका प्रस्तुत विषयके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु ऊपरका भेद बतानेके दो सबल कारण हैं। एक तो यह है कि इस पुस्तकको उतावलीमें पढना चाहनेवाले पाठकोंसे यह आशा रखनेका मुझे कोई अधिकार नहीं कि वे इसे धैर्यसे और ध्यानसे पढेंगे। ऐसे पाठकोंके लिए मेरे आजके कार्योंके साथ उपर्युक्त विचारोंका मेल बैठाना कठिन होगा। दूसरा कारण यह कि उस विचारसरणीमें भी सत्यका ही आग्रह

है। हम भीतर जैसे हैं वैसे ही बाहर दिखाई दें और उसके अनुसार व्यवहार करें, यह धार्मिक आचरणकी अंतिम सीढ़ी नहीं किन्तु पहली सीढ़ी है। इस नींवके बिना धार्मिक जीवनकी इमारत खड़ी करना असंभव है।

अब हम फिर अपने इतिहासकी ओर मुड़ें।

मेरी ऊपरकी दलील अनेक लोगोंको पसंद आई। पाठक यह न मान लें कि मेरी अकेलेकी ही यह दलील थी। फिर, इस दलीलसे पहले भी युद्धमें भाग लेनेकी इच्छा रखनेवाले अनेक हिन्दुस्तानी थे। लेकिन अब व्यावहारिक प्रश्न यह खड़ा हुआ: युद्धकी इस भयंकर आंधीमें हिन्दुस्तानियोंकी कमजोर आवाजको कौन सुनेगा? हिन्दुस्तानियोंके सहायताके प्रस्तावका कितना महत्त्व आंका जायगा? हथियार तो हममें से किसीने कभी उठाये ही नहीं थे। युद्धमें सैनिकोंसे भिन्न काम करनेके लिए भी तालीम जरूरी थी। कदमसे कदम मिलाकर एक तालमें कूच करना भी तो हममें से किसीको नहीं आता था। इसके सिवा, सेनाके साथ लंबी मंजिलें तय करना, अपना अपना सामान खुद उठाकर चलना — यह भी हमारे लिए कठिन था। इसके सिवा, गोरे हम सबको 'कुली' ही मानेंगे, हमारा अपमान भी करेंगे, हमें तिरस्कारकी नजरसे देखेंगे। यह सब कैसे बरदाश्त किया जाय? और अगर हम सेनामें भरती होनेकी मांग करें, तो उस मांगको स्वीकार कैसे करायें? इन प्रश्नों पर सोचने-विचारनेके बाद अंतमें हम इस निश्चय पर आये कि अपना प्रस्ताव स्वीकार करानेके लिए हमें जोरदार प्रयत्न करना चाहिये; कामका अनुभव हमें अधिक काम करना सिखायेगा, यदि हमारे भीतर इच्छा होगी तो सेवा करनेकी शक्ति ईश्वर देगा; मिला हुआ काम कैसे पूरा होगा, इसकी चिन्ता हमें छोड़ देनी चाहिये; यथाशक्ति तालीम लेनी चाहिये और एक बार सेवा-धर्म स्वीकार करनेका निश्चय कर लेनेके बाद मान-अपमानका विचार छोड़ देना चाहिये; और यदि अपमान हो तो उसे सहन करके भी सेवा करनी चाहिये।

अपनी मांग स्वीकार करानेमें हमें बेहद मुश्किलोंका सामना करना पड़ा। इसका इतिहास रसप्रद है, लेकिन उसे देनेका यह स्थान नहीं है। इसलिए यहां मैं इतना ही कह देता हूं कि हममें से मुख्य लोगोंने

घायलों और बीमारोंकी सार-संभाल करनेकी तालीम ली। हमने अपनी शारीरिक क्षमताके बारेमें डॉक्टरोंके प्रमाणपत्र लिये और एक पत्र द्वारा युद्धमें जानेकी अपनी मांग सरकारके सामने रखी। हमारे इस पत्रका और मांग स्वीकार करनेके हमारे आग्रहका सरकार पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। पत्रका उत्तर देते हुए सरकारने हमारा आभार माना, परन्तु उस समय हमारी मांग स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। इस बीच बोअरोंकी शक्ति बढ़ती गई। उनका आक्रमण एक भयंकर बाढ़की तरह हुआ और नेटालकी राजधानी तक उनके आ पहुंचनेका भय खड़ा हो गया। हर जगह घायल और मृत सैनिकोंके ढेर लग गये थे। अपनी मांग स्वीकार करानेका हमारा प्रयत्न जारी ही था। अतमें एम्बुलेन्स कोर (घायलोंको उठानेवाले और उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाले दल) के रूपमें हमारी सेवायें स्वीकार की गई। हमने तो अपने पत्रमें अस्पतालोंके पाखाने साफ करने या झाड़ू लगानेका काम स्वीकार करनेकी बात भी लिख दी थी। इसलिए एम्बुलेन्स कोर बनानेकी बात हमें स्वागतके योग्य लगे, यह स्वाभाविक था। हमारा प्रस्ताव स्वतंत्र और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंके विषयमें ही था। परन्तु हमने सुझाया था कि गिरमिटिया हिन्दुस्तानियोंको भी उनके साथ शामिल करना अच्छा होगा। उस समय तो सरकारको अधिकसे अधिक मनुष्योंकी जरूरत थी। इसलिए उसने गिरमिटिया मजदूरोंके गोरे मालिकोंकी कोठियोंमें पहुंच कर उनसे अपने मजदूरोंको एम्बुलेन्स कोरमें भरती होने देनेकी विनती की। इसके फलस्वरूप लगभग ११०० हिन्दुस्तानियोंका एक बड़ा और शानदार दल डरबनसे युद्धके मोर्चे पर जानेके लिए रवाना हुआ। रवाना होते समय हमें श्री एस्कंबके, जिनसे पाठक परिचित हो चुके हैं और जो नेटालके गोरे स्वयंसेवकोंके मुखिया थे, धन्यवाद और आशीर्वाद प्राप्त हुए!

अंग्रेजी अखबारोंको तो यह सब चमत्कार जैसा ही लगा। उन्हें यह आशा नहीं थी कि हिन्दुस्तानी लोग इस युद्धमें कोई भाग लेंगे। एक अंग्रेजने वहांके एक प्रमुख दैनिकमें हिन्दुस्तानियोंकी स्तुति करनेवाली एक कविता लिखी। उसकी टेककी एक पंक्तिका आशय यह था: 'अंतमें तो हम सब एक ही साम्राज्यके बालक हैं।'

इस दलमें लगभग ३०० से ४०० गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी रहे होंगे, जो स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंके प्रयत्नोंसे भरती हुए थे। इनमें से ३७ आदमी नेता माने जाते थे, क्योंकि उनके हस्ताक्षरोंसे उपर्युक्त प्रस्ताव सरकारके पास गया था और दूसरोंको एकत्र करनेवाले भी वे ही थे। इन नेताओंमें बैरिस्टर थे और मुनीम थे। बाकीके लोगोंमें राज, सुतार जैसे कारीगर और सामान्य मजदूर वगैरा थे। उनमें हिन्दू, मुसलमान, मद्रासी और उत्तर भारतीय — इस प्रकार सब धर्मों और सब प्रान्तोंके लोग थे। कहा जा सकता है कि व्यापारी-वर्गमें से एम्बुलेन्स दलमें कोई नही था। परन्तु व्यापारियोंने पैसेकी काफी मदद दी थी।

ऐसे दलके लोगोंको फौजी भत्ता तो मिलता है, परन्तु उनकी दूसरी जरूरतें भी होती हैं। ये जरूरतें पूरी हो जाय, तो कैम्पके कठोर जीवनमें उन लोगोंको कुछ राहत मिल जाती है। इस तरहकी जरूरतें पूरी करनेकी जिम्मेदारी हिन्दुस्तानी व्यापारी-वर्गने अपने सिर ले ली। इसके सिवा, जिन घायल सैनिकोंकी हमें सेवा-शुश्रूषा करनी होती थी, उनके लिए मिठाई, सिगरेट वगैरा चीजें मुहैया करनेमें भी व्यापारियोंने अच्छी मदद की। जब कभी हम शहरोंके पास अपनी छावनी डालते थे, तब वहांके व्यापारी हमारी ऐसी जरूरतें पूरी करनेमें पूरा हाथ बंटाते थे।

इस एम्बुलेन्स दलमें जो गिरमिटिया मजदूर शरीक हुए थे, उनके साथ उनकी कोठियोंसे अंग्रेज सरदार देखरेखके लिए भेजे गये थे। लेकिन काम तो हम सबका एक ही था। सबको साथ रहना होता था। इसलिए गिरमिटिया मजदूर हमें देखकर बड़े प्रसन्न हुए। और उस पूरे दलकी व्यवस्था स्वाभाविक रूपमें हमारे ही हाथोंमें आ गई। इस कारणसे यह संपूर्ण एम्बुलेन्स दल हिन्दुस्तानी कौमका ही माना गया और उसके कामका यश हिन्दुस्तानी कौमको ही मिला। सच पूछा जाय तो गिरमिटियोंके इस दलमें भरती होनेका श्रेय कौम नही ले सकती, उसका श्रेय तो कोठियोंके गोरे मालिक ही ले सकते हैं। लेकिन इसमें कोई शंका नहीं कि इस दलके बन जानेके बाद उसकी सुव्यवस्थाका श्रेय तो स्वतंत्र हिन्दुस्तानी ही — अर्थात् हिन्दुस्तानी कौम ही ले सकती है। और यह बात जनरल बुलरने अपने खरीतों (डिस्पेचों) में स्वीकार की थी।

हमें बीमारो और घायलोंकी सार-संभालकी तालीम देनेवाले डॉ० बूथ भी मेडिकल सुपरिन्टेन्डेन्टके रूपमें हमारे दलके साथ थे। वे एक भले पादरी थे और भारतीय ईसाइयोंमें काम करते थे, परन्तु वे सबके साथ घुलमिल जाते थे। और ऊपर मैंने जिन ३७ नेताओंकी बात कही है उनमें से अधिकतर लोग इन भले पादरीके शिष्य थे। हिन्दुस्तानियोंके एम्बुलेन्स दलकी तरह यूरोपियनोंका भी एक एम्बुलेन्स दल बनाया गया था और दोनो दलोको एक ही जगह काम करना होता था।

युद्धमें सहायता करनेका हमारा प्रस्ताव बिना किसी शर्तके सरकारके सामने रखा गया था। परन्तु स्वीकृति-पत्रमें यह कहा गया था कि हमें तोप या बन्दूककी मारकी सीमाके भीतर काम नही करना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि युद्धके मैदानमें जो सैनिक घायल हों, उन्हें सेनाके साथ रहनेवाला स्थायी एम्बुलेन्स दल उठाकर सेनाके बहुत पीछे लाकर छोड जाय, उसके बाद हम उन्हें संभालें। गोरोंका और हम हिन्दुस्तानियोंका अस्थायी एम्बुलेन्स दल तैयार करनेका कारण यह था कि जनरल बुलर लेडीस्मिथमें बोअर-सेनासे घिरे हुए जनरल व्हाइटको मुक्त करानेका महाप्रयत्न करनेवाले थे; और उसमें स्थायी एम्बुलेन्स दल व्यवस्था कर सके उससे कही अधिक सख्यामें सैनिकोंके घायल होनेकी आशंका थी। युद्ध ऐसे प्रदेशमें हो रहा था जहां रणक्षेत्र और केन्द्रीय अस्पतालके बीच पक्की सडकें भी नही थीं। इसलिए घायल हुए सैनिकोंको घोडागाडी वगैरामें अस्पताल तक ले जाना असभव था। केन्द्रीय अस्पताल हमेशा किसी रेलवे स्टेशनके पास और रणक्षेत्रसे सात-आठ मीलसे लेकर पच्चीस मील तक दूर रखा जाता था।

हमें जल्दी ही काम करनेका अवसर मिल गया, और वह काम हमारी अपेक्षासे ज्यादा कठिन था। घायलोंको उठाकर सात-आठ मील तक ले जाना तो हमारे लिए सामान्य बात थी। परन्तु कभी कभी हमें बुरी तरह जख्मी हुए सैनिकों और अफसरोंको पच्चीस पच्चीस मील तक भी उठा कर ले जाना पड़ता था। रास्तेमें उन्हें दवा देनी होती थी। कूच सवेरे ८ बजे शुरू होती थी; और ५ बजे शाम तक केन्द्रीय अस्पतालमें पहुचना जरूरी होता था। यह बड़ा कठिन

काम कहा जायगा। ऐसा मौका एक ही बार आया जब एक दिनमें घायलोंको उठाकर हमें पच्चीस मीलका रास्ता तय करना पड़ा। इसके सिवा, युद्धके आरम्भमें ब्रिटिश सेनाको हार पर हार खानी पड़ी और बहुत बड़ी तादादमें सैनिक घायल हुए। इस कारणसे हमें तोप-बन्दूकोंकी मारके भीतर न ले जानेका विचार भी अधिकारियोंको छोड़ देना पड़ा। लेकिन इतनी बात मुझे कहनी चाहिये कि जब ऐसा मौका आया उस समय हमसे कह दिया गया कि 'आप लोगोंके साथ हुई शर्तके अनुसार हम आपको ऐसे खतरेकी जगह नही भेजना चाहते जहा आप पर गोले बरसें। इसलिए अगर आप इस खतरेमें पड़ना न चाहें, तो जनरल बुलरका आपको मजबूर करनेका बिलकुल विचार नही है। परन्तु यदि आप स्वेच्छासे यह खतरा उठाना चाहे, तो सरकार अवश्य ही आपका उपकार मानेगी।' हम तो खतरा उठानेको तैयार ही थे। खतरेके स्थानसे बाहर रहना हमें जरा भी पसंद नही था। अत. हम सबने इस अवसरका स्वागत किया। लेकिन न तो हममें से किसीको गोलीका घाव लगा और न दूसरी कोई चोट पहुची।

हमारे दलको अनेक सुखद अनुभव हुए। लेकिन उन सबको देनेका यह स्थान नही है। फिर भी इतना कहना चाहिये कि हमारे इस दलको, जिसमें अनाड़ी माने जानेवाले गिरमिटिया मजदूर भी थे, यूरोपियनोंके अस्थायी एम्बुलेन्स दलके सदस्यों और सेनाके गोरे सैनिकोंके सम्पर्कमें कई बार आना पड़ता था, परन्तु हममें से किसीको भी ऐसा नही लगा कि गोरे हमारे साथ रूखा बरताव करते हैं या हमारा अपमान करते है। गोरोंके अस्थायी दलमें तो दक्षिण अफ्रीकामें बसे हुए गोरे ही थे। उन्होंने युद्धसे पहले हिन्दुस्तानी-विरोधी आन्दोलनमें भाग लिया था। लेकिन उन पर आई हुई विपत्तिके समय हिन्दुस्तानी लोग अपने निजी दुःखोंको भूल कर उनकी मदद करनेके लिए निकल पड़े है, इस ज्ञान और इस दृश्यने उस समय तो उनके हृदयोंको भी पिघला दिया। जनरल बुलरके खरीतोंमें हमारे कार्यकी प्रशंसा की गई थी, यह बात पहले कही जा चुकी है। हमारे एम्बुलेन्स दलके ३७ नेताओंको युद्धके तमगे भी दिये गये थे।

जब लेडीस्मिथको बोअरोंके घेरेसे मुक्त करानेका जनरल बुलरका आक्रमण पूरा हो गया तब — अर्थात् लगभग दो महीनोंमें — हमारा दल तथा गोरोंका दल भी बिखेर दिया गया। वैसे युद्ध तो उसके बाद बहुत लम्बा चला। हम फिरसे जुड़नेके लिए सदा तैयार रहते थे; और हमारे दलको बिखेरनेवाले हुक्ममें हमसे कहा गया था कि यदि फिरसे इतने बड़े पैमाने पर जोरकी सैनिक कार्रवाई करना जरूरी हुआ, तो सरकार हमारा उपयोग अवश्य करेगी।

दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंने बोअर-युद्धमें जो भाग लिया वह तुलनामें बहुत मामूली कहा जायगा। यह कहना गलत नहीं होगा कि प्राणोंकी हानि तो उन्होंने बिलकुल नहीं उठाई। फिर भी सहायता करनेकी शुद्ध इच्छाका असर हुए बिना नहीं रहता। और जब ऐसी इच्छाकी किसीने आशा न रखी हो उस समय यदि उसका अनुभव हो, तब तो उसकी कीमत दूनी आंकी जाती है। बोअर-युद्धके समय अंग्रेजोंके मनमें हिन्दुस्तानियोंके बारेमें ऐसी सुन्दर भावना बनी रही।

यह प्रकरण पूरा करनेसे पहले एक जानने जैसी घटना मुझे यहां बता देनी चाहिये। लेडीस्मिथमें घिरे हुए लोगोंमें अंग्रेजोंके साथ वहां बसनेवाले इक्के-दुक्के हिन्दुस्तानी भी थे। उनमें से कुछ व्यापारी थे; बाकीके सब गिरमिटिया मजदूर थे — जो या तो रेलवेमें काम करते थे या अंग्रेजोंके घरोंमें नौकर थे। उनमें से एक गिरमिटिया था परभुसिंग। घिरे हुए लोगोंमें से प्रत्येक आदमीको लेडीस्मिथके सैनिक अधिकारीने कोई न कोई कार्य सौंपा था। एक अतिशय खतरनाक और उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य 'कुली' कहे जानेवाले परभुसिंगके हाथमें था। लेडीस्मिथके पासकी एक पहाड़ी पर बोअरोंकी पोम-पोम नामक एक तोप रखी हुई थी। उसके गोलोंसे लेडीस्मिथके अनेक मकान नष्ट हो गये थे; कुछ लोग जानसे भी मारे गये थे। उस तोपमें से गोला छूटे और दूरके निशाने तक पहुंचे, इसमें एक-दो मिनट तो लगते ही थे। यदि इतने समयकी चेतावनी भी घिरे हुए नागरिकोंको मिल जाय, तो गोला निशान तक पहुंचे उसके पहले वे कोई न कोई रक्षाका स्थान खोज लें और अपने प्राण बचा लें। परभुसिंगको एक पेड़के नीचे बैठना होता

था। तोपका चलना शुरू होते ही वह पेड़के नीचे बैठ जाता था और तोप चलती रहती तब तक वहीं बैठा रहता था। उसे यह काम सौंपा गया था कि तोपवाली पहाड़ीको सतत देखता रहे और ज्यों ही तोपसे निकलती ज्वालाको देखे त्यों ही घंटा बजा दे। प्राण-घातक गोला छूटनेकी चेतावनीका घंटा बजते ही लेडीस्मिथके नागरिक अपनी अपनी रक्षाकी जगहमें छिप कर उसी तरह प्राण बचा लेते थे, जैसे बिल्लीको देखकर चूहे अपने बिलमें घुस जाते हैं और जान बचा लेते हैं।

परभुसिंगकी इस अमूल्य सेवाकी प्रशंसा करते हुए लेडीस्मिथके सैनिक अधिकारीने कहा था कि 'परभुसिंगने इतनी निष्ठासे कार्य किया कि एक बार भी घंटा बजाना वह चूका नहीं।' यह कहना शायद ही जरूरी हो कि खुद परभुसिंगका जीवन तो सदा खतरेमें ही रहता था। उसकी बहादुरीकी कहानी न सिर्फ नेटालमें प्रसिद्ध हुई, बल्कि भारतके तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड कर्जनके कानों तक भी पहुंची। उन्होंने परभुसिंगको देनेके लिए एक काश्मीरी अंगरखा भेजा और नेटाल सरकारको लिखा कि अधिकसे अधिक प्रसिद्धिके साथ, कारण बताकर, परभुसिंगको यह अंगरखा भेंट किया जाय। यह काम डरबनके मेयरको सौंपा गया था। उन्होंने डरबनके टाउन-हॉलके कौंसिल चेम्बरमें आम सभा करके परभुसिंगको वह अंगरखा भेंट किया। यह उदाहरण हमें दो बातें सिखाता है: १ किसी भी आदमीको हलका या तुच्छ नहीं मानना चाहिये; २. चाहे जैसा डरपोक आदमी भी अवसर आने पर वीर बन सकता है।

१०

युद्धके बाद

बोअर-युद्धका सबसे महत्त्वपूर्ण भाग सन् १९०० में समाप्त हो गया था। लेडीस्मिथ, किम्बरली और मेफेकिंगकी मुक्ति बोअर-सेनासे हो चुकी थी। जनरल क्रोन्जे पारडीबर्गमें हार चुके थे। बोअरों द्वारा जीता हुआ ब्रिटिश उपनिवेशोंका संपूर्ण भाग ब्रिटिश साम्राज्यके हाथमें फिरसे आ चुका था। लॉर्ड किचनरने ट्रान्सवाल और ऑरेन्ज फ्री स्टेट पर भी अधिकार कर लिया था। अब सिर्फ वानर-युद्ध (गुरीला वारफेयर) बाकी रहा था।

मैंने सोचा कि दक्षिण अफ्रीकामें मेरा कार्य अब पूरा हो गया है। मैं एक महीनेके बदले छह वर्ष वहां रहा। कार्यकी रूपरेखा हमारे सामने अच्छी तरह निश्चित हो चुकी थी। फिर भी हिन्दुस्तानी कौमको राजी किये बिना मैं दक्षिण अफ्रीका छोड़ नहीं सकता था। मैंने हिन्दुस्तान जाकर वहां लोकसेवा करनेका अपना इरादा साथियोंको बताया। दक्षिण अफ्रीकामें मैंने स्वार्थके बजाय सेवाधर्मका सबक सीखा था। मुझे सेवाधर्मकी ही लगन लगी थी। श्री मनसुखलाल नाजर दक्षिण अफ्रीकामें थे ही; श्री खान भी वहां थे। कुछ हिन्दुस्तानी नवयुवक दक्षिण अफ्रीकासे इंग्लैंड जाकर बैरिस्टर हो आये थे। ऐसी स्थितिमें वहांसे मेरा हिन्दुस्तान लौटना किसी भी तरह अनुचित नहीं कहा जा सकता था। ये सारी दलीलें मैंने अपने साथियोंके सामने रखीं, फिर भी एक शर्त पर मुझे हिन्दुस्तान लौटनेकी इजाजत मिली: दक्षिण अफ्रीकामें कोई भी अकल्पित कठिनाई खड़ी हो और कौमको मेरी उपस्थिति जरूरी मालूम हो, तो कौम मुझे किसी भी समय वापस बुला सकती है और मुझे तुरन्त दक्षिण अफ्रीका लौटना पड़ेगा। मेरा यात्रा-खर्च और दक्षिण अफ्रीकाका निवास-खर्च उठानेकी जिम्मेदारी कौमके लोगोंने ले ली। यह शर्त मैंने मान ली और मैं हिन्दुस्तान लौट आया।

मैंने बम्बईमें बैरिस्टरी करनेका निर्णय कर लिया। इसके पीछे मुख्य हेतु स्व० गोखलेकी सलाह और मार्गदर्शनमें सार्वजनिक कार्य करना था; दूसरा हेतु था सार्वजनिक कार्य करते हुए आजीविका कमाना। इसलिए मैंने चेम्बर (कमरे) किरायें पर लिये। मेरी वकालत भी थोड़ी चलने लगी। दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंके साथ मेरा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध बंध गया था कि उस देशसे हिन्दुस्तान लौटे हुए मुवक्किल ही मुझे इतना काम दे देते थे, जिनसे अपना जीवन-निर्वाह मैं आसानीसे कर सकूं। लेकिन मेरे नसीबमें स्थिर और शांत जीवन बिताना लिखा ही नहीं था। मुश्किलसे तीन-चार महीने मैं बम्बईमें स्थिर रहा होऊंगा कि दक्षिण अफ्रीकासे यह जरूरी तार आया: "यहांकी स्थिति गंभीर है। श्री चैम्बरलेन कुछ समयमें आयेंगे। आपकी उपस्थिति जरूरी है।"

मैंने बम्बईका ऑफिस और घर समेट लिये। और पहले जहाजसे मैं दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गया। १९०२ का अंत निकट था। १९०१ के अंतमें मैं हिन्दुस्तान लौटा था। १९०२ के मार्च-अप्रैलमें मैंने बम्बईमें ऑफिस खोला। तारके आधार पर मैं वहांकी सारी परिस्थिति तो नहीं जान सका। लेकिन मैंने अंदाज लगाया कि मुसीबत कोई ट्रान्सवालमें ही खड़ी हुई होगी। अपने परिवारको मैं साथ नहीं ले गया था, क्योंकि मैंने सोचा था कि चार-छह महीनोंमें मैं हिन्दुस्तान लौट सकूंगा। लेकिन डरबन पहुंचकर सारी बातें सुनते ही मैं आश्चर्यचकित हो गया। हममें से अनेक लोगोंको यह आशा थी कि बोअर-युद्धके बाद समस्त दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति जरूर सुधर जायगी। कमसे कम ट्रान्सवाल और ऑरेन्ज फ्री स्टेटमें तो कोई मुसीबत नहीं रहनी चाहिये, क्योंकि जब बोअर-युद्ध छिड़ा उस समय लॉर्ड लेन्सडाउन, लॉर्ड सेल्बर्न और ब्रिटेनके अन्य ऊंचे सत्ताधारियोंने यह कहा था कि इस युद्धका एक कारण बोअरों द्वारा हिन्दुस्तानियोंके साथ किया जानेवाला बुरा व्यवहार भी है। प्रिटो-रियाके ब्रिटिश एजेन्ट (राजदूत) भी मेरे समक्ष अनेक बार कह चुके थे कि यदि ट्रान्सवाल ब्रिटिश उपनिवेश बन जाय, तो वहांके हिन्दु-स्तानियोंके सारे दुःख दूर हो जायं। गोरोंका भी यही विश्वास था कि राज्यसत्ता बदल जाने पर ट्रान्सवालके पुराने (विरोधी) कानून हिन्दुस्तानियों

पर किसी हालतमें लागू नही किये जा सकते। यह बात इस सीमा तक सर्वमान्य हो गई थी कि जमीन नीलाम करनेवाले जो कर्मचारी बोअर-युद्धसे पूर्व हिन्दुस्तानियो द्वारा लगाई हुई बोली कभी भी कबूल नही करते थे, वे अब खुलेआम उसे कबूल करने लगे। बहुतसे हिन्दुस्तानियोने इस तरह नीलाममें जमीनें खरीदी भी। लेकिन जब वे लोग अपनी जमीनोंका दस्तावेज रजिस्टर कराने तहसीलमें गये, तो तहसीलके अधिकारीने १८८५ के कानून नं० ३ का हवाला दे कर जमीनोंकी रजिस्ट्री करनेसे इनकार कर दिया! मैं डरबनके बन्दरगाह पर उतरा तब इतना तो मैंने सुन लिया। हिन्दुस्तानी नेताओंने मुझसे कहा कि आपको ट्रान्सवाल जाना होगा। लेकिन पहले श्री चैम्बरलेन डरबन आयेंगे। यहांके (नेटालके) हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिसे भी उन्हे परिचित कराना जरूरी है। यहाका काम पूरा करके उनके पीछे ही पीछे आपको ट्रान्सवाल जाना होगा।

नेटालमे हिन्दुस्तानियोंका एक प्रतिनिधि-मंडल श्री चैम्बरलेनसे मिला। उन्होंने उसकी सारी बाते शांति और धीरजसे सुनी और नेटालके मंत्रि-मंडलसे हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिके बारेमे बातचीत करनेका वचन दिया। नेटालमे बोअर-युद्धसे पूर्व जो कानून पास हो चुके थे, उनमें तुरन्त सुधार होनेकी मैंने स्वय तो कोई आशा नही रखी थी। इन कानूनोंकी चर्चा मै पिछले प्रकरणोंमें कर चुका हू।

पाठक यह तो जानते ही है कि बोअर-युद्धसे पहले कोई भी हिन्दुस्तानी किसी भी समय ट्रान्सवालमें जा सकता था। लेकिन अब मैंने देखा कि वह स्थिति नही रह गई थी। उस समयका यह प्रतिबन्ध गोरों और हिन्दुस्तानियों दोनों पर एकसा लागू होता था। ट्रान्सवालकी स्थिति अभी भी ऐसी थी कि यदि अधिक संख्यामें लोग वहा घुस जाते, तो अन्न और वस्त्र भी सबको पूरे नही मिल सकते थे; क्योंकि युद्धका अंत होनेके बाद भी सब दुकानें फिरसे खुली नही थी। दुकानोंका ज्यादातर माल बोअर-सरकार हड़प कर गई थी। इसलिए मैंने मनमें सोचा कि यह प्रतिबन्ध यदि अमुक समयके लिए ही लगाया गया हो, तब तो डरनेका कोई कारण नही है। लेकिन गोरों और हिन्दुस्तानियोंको ट्रान्स-

वालमें प्रवेश करनेका जो परवाना लेना पड़ता था, उसे देनेकी रीतिमें फर्क था। और, यह फर्क शंका और भयका कारण बन गया। परवाना देनेके दफ्तर दक्षिण अफ्रीकाके अलग अलग बन्दरगाहोंमें खोले गये थे। ऐसा कहा जा सकता है कि गोरोंको तो मांगते ही परवाने मिल सकते थे। परन्तु हिन्दुस्तानियोंके लिए ट्रान्सवालमें एक एशियाटिक विभाग खोला गया था।

ऐसा अलग विभाग खोलनेकी यह नई घटना थी। पहले उस विभागके अधिकारीको हिन्दुस्तानी लोग अरजी करते थे। उस अरजीके मंजूर होनेके बाद डरबन या दूसरे बन्दरगाहसे सामान्यतः परवाने मिल सकते थे। यदि मुझे भी ऐसी अरजी करनी होती तो श्री चैम्बरलेनके ट्रान्सवाल छोड़नेसे पहले परवाना मिलनेकी आशा ही नहीं रखी जा सकती थी। ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी वैसा परवाना प्राप्त करके मेरे पास भेज नहीं सके थे। यह उनकी शक्तिसे बाहरकी बात थी। मेरे परवानेका आधार उन्होंने डरबनकी मेरी जान-पहचान पर ही रखा था। परवाना देनेवाले अधिकारीको तो मैं जानता नहीं था, लेकिन डरबनके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टको जानता था। इसलिए उन्हें साथ ले जाकर उनके द्वारा अधिकारीसे मेरा परिचय करवाया। सन् १८९३ के सालमें एक बरस मैं ट्रान्सवालमें रहा था, यह बताकर मैंने परवाना लिया और मैं प्रिटोरिया पहुंचा।

प्रिटोरियामें मैंने दूसरा ही वातावरण देखा। मैंने समझ लिया कि एशियाटिक विभाग एक भयानक विभाग है और वह केवल हिन्दुस्तानियोंको दबानेके लिए ही खोला गया है। उसमें नियुक्त किये गये अधिकारी उस वर्गके थे, जो बोअर-युद्धके समय सेनाके साथ हिन्दुस्तानसे दक्षिण अफ्रीका आये थे और अपना नसीब आजमानेके लिए वहीं बस गये थे। उनमें से कुछ अधिकारी रिश्वत खाते थे। ऐसे दो अधिकारियों पर रिश्वत खानेके अपराधमें मुकदमे भी चले थे। पंचने तो दोनोंको निर्दोष बता कर छोड़ दिया था, परन्तु रिश्वत खानेके बारेमें कोई संदेह न रह जानेसे उन्हें नौकरीसे अलग कर दिया गया था। पक्षपातका तो कोई पार ही नहीं था। और, जहां ऐसा कोई विभाग अलगसे खोला

जाता है वहां, और यदि वह प्रचलित अधिकारों पर अंकुश लगानेके लिए ही खोला गया हो तब तो, उसका झुकाव अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए तथा अंकुश लगानेका अपना फर्ज वह पूरी तरह अदा कर रहा है यह दिखानेके लिए सदा नये अंकुश खोजनेकी ओर ही रहता है। एशियाटिक विभागके बारेमें ठीक ऐसा ही हुआ।

मैंने देखा कि मुझे अपने कामका फिरसे श्रीगणेश करना पड़ेगा। एशियाटिक विभागको तुरन्त इस बातका पता नही चला कि मैं ट्रान्सवालमें कैसे दाखिल हुआ। मुझसे पूछनेकी एकाएक उसकी हिम्मत नहीं हुई। मै मानता हू कि इतना विश्वास तो उसे था ही कि मैं चोरीसे कभी प्रवेश नही करूगा। परोक्ष रूपसे उसने यह जान भी लिया कि परवाना मुझे कैसे मिला। प्रिटोरियाका हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल भी श्री चैम्बरलेनके पास जानेको तैयार हुआ। उनके सामने पेश की जानेवाली अरजी तो मैंने तैयार की। परन्तु एशियाटिक विभागने मुझे श्री चैम्बरलेनके सामने नही जाने दिया। इस स्थितिमें हिन्दुस्तानी नेताओंको लगा कि उन्हें भी श्री चैम्बरलेनसे मिलने नही जाना चाहिये। पर मुझे उनका यह विचार पसंद नही आया। मैंने उनसे कहा कि मेरा जो अपमान हुआ उसे मुझे पी जाना चाहिये; और उन्हे सलाह दी कि मेरे अपमानकी उन्हें भी परवाह नहीं करनी चाहिये। अरजी तो तैयार है ही। उसे श्री चैम्बरलेनको सुनाना जरूरी है। उस समय हिन्दुस्तानी बैरिस्टर श्री जॉर्ज गॉडफ्रे वहां उपस्थित थे। उन्हे श्री चैम्बरलेनके सामने अरजी पढनेके लिए तैयार किया गया। हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल गया। वहां मेरे विषयमें बात निकली। श्री चैम्बरलेनने कहा: "मि० गाधीसे मै डरबनमें मिल चुका हू। इसलिए यहा मैंने उनसे मिलनेसे इनकार कर दिया, ताकि ट्रान्सवालकी बात मै ट्रान्सवालके लोगोंसे ही सुन सकू।" मेरी दृष्टिसे उनका यह उत्तर जलती आगमें घी डालने जैसा था। श्री चैम्बरलेन एशियाटिक विभागकी सिखाई हुई बात बोले थे। जो हवा हिन्दुस्तानमें फैली हुई थी वही एशियाटिक विभागने ट्रान्सवालमें फैला दी। गुजराती (या हिन्दुस्तानी) लोग यह बात जानते ही होंगे कि अंग्रेज अधिकारी हिन्दुस्तानमें बम्बईके रहनेवाले लोगोंको चम्पारनमें परदेशी

मानते हैं। इस न्यायसे एशियाटिक विभागने श्री चैम्बरलेनको यह सिखाया कि डरबनमें रहनेवाला मैं ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंकी बात क्या जान सकता हूं। उस विभागके अधिकारियोंको क्या पता कि मैं ट्रान्सवालमें रह चुका था और न रहा होऊं तो भी ट्रान्सवालकी सारी परिस्थितिसे पूरी तरह परिचित था। प्रश्न सिर्फ एक ही था: 'ट्रान्सवालकी परिस्थितिसे अधिकसे अधिक परिचित कौन था?' इस प्रश्नका उत्तर हिन्दुस्तानी कौमने मुझे ठेठ हिन्दुस्तानसे ट्रान्सवाल बुला कर दे ही दिया था। लेकिन यह कोई नया अनुभव नही है कि सत्ताधारियोंके सामने बुद्धि पर आधारित दलीलें नही चल सकतीं। उस समय श्री चैम्बरलेन स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियोंके प्रभावमें इतने ज्यादा थे और वहाके गोरोंको सन्तुष्ट करनेके लिए इतने आतुर थे कि उनसे न्याय पानेकी आशा बिलकुल नही थी या बहुत कम थी। फिर भी हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मडल केवल यह सोच कर उनसे मिलने गया कि गलतीसे या आहत स्वाभिमानकी भावनाके कारण न्यायप्राप्तिका एक भी सही उपाय आजमाये बिना रह न जाय।

परन्तु मेरे सामने १८९४ से भी अधिक विषम परिस्थिति खडी हो गई। एक दृष्टिसे तो मुझे ऐसा लगा कि श्री चैम्बरलेनके दक्षिण अफ्रीका छोडते ही मैं हिन्दुस्तान लौट सकता हूं। दूसरी ओर मैं स्पष्ट रूपसे यह देख सका कि दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानी कौमकी भयकर स्थितिमें देखते हुए भी यदि मैं हिन्दुस्तानमे व्यापक क्षेत्रमें जनताकी सेवा करनेके अभिमानसे लौट जाऊ, तो सेवाधर्मकी जो झाकी मुझे दक्षिण अफ्रीकामें हुई है वह दूषित हो जायगी। मैंने सोचा कि कौम पर मंडरानेवाले विपत्तिके बादल बिखर न जाय अथवा सारे प्रयत्नोंके बावजूद विपत्तिके बादल अधिक गहरे बन हिन्दुस्तानी कौम पर टूट कर हम सबका नाश न कर दें तब तक मुझे ट्रान्सवालमे ही रहना चाहिये — फिर उसका अर्थ जीवन-भर दक्षिण अफ्रीकामें रहना ही क्यों न हो। मैंने कौमके नेताओंके साथ इस आशयकी बात की और १८९४ की तरह इस बार भी वकालतसे जीवन-निर्वाह चलानेका अपना निश्चय मैंने उन्हें बताया। कौमके लोग तो यही चाहते थे।

मैंने तुरन्त ट्रान्सवालमें वकालत करनेकी अरजी पेश की। मुझे थोड़ा भय था कि नेटालकी तरह यहांका वकील-मंडल भी मेरी अरजीका विरोध करेगा, परन्तु वह भय निराधार सिद्ध हुआ। मुझे वकालतकी सनद मिल गई और जोहानिसबर्गमें मैंने ऑफिस खोला। ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंकी सबसे ज्यादा आबादी जोहानिसबर्गमें ही थी। इसलिए मेरी आजीविका तथा सार्वजनिक सेवा दोनों दृष्टियोंसे जोहानिसबर्ग ही मेरे लिए अनुकूल केन्द्र था। एशियाटिक विभागकी सड़ांध और भ्रष्टाचारका कड़वा अनुभव प्रतिदिन मुझे हो रहा था और ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी मण्डल (ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन) की संपूर्ण शक्ति यह सड़ांध दूर करनेमें ही खर्च हो रही थी। अब १८८५ का कानून नं० ३ रद करानेकी बात दूरका ध्येय बन गई। तात्कालिक ध्येय एशियाटिक ऑफिसके रूपमें जो तेज बाढ़ डुबानेके लिए हमारी ओर बढ़ी चली आ रही थी उससे अपने आपको बचाना था। हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मण्डल लॉर्ड मिल्नरसे, वहां आये हुए लॉर्ड सेल्बर्नसे, ट्रान्सवालके लेफ्टिनेंट गवर्नर सर आर्थर लॉलीसे — जो बादमें मद्रासके गवर्नर हो गये थे, और इनसे नीची श्रेणीके अधिकारियोंसे मिले और उनके सामने अपनी शिकायतें पेश कीं। मैं अकेला तो सरकारी अधिकारियोंसे बहुत बार मिलता था। यहां वहां कुछ राहत हमें मिलती थी, परन्तु वह सब फटे हुए कपड़ोंमें पैबन्द लगाने जैसा था। हमें कुछ वैसा ही सन्तोष इन छोटी-छोटी राहतोंसे मिलता था जैसा लुटेरे हमारा सारा धन लूट कर ले जायं और बादमें हमारे रोने-गिड़गिड़ानेसे पसीज कर थोड़ा धन लौटा दें उस समय हमें मिल सकता है। इस आन्दोलनके फलस्वरूप ही जिन जिन अधिकारियोंके नौकरीसे बरखास्त होनेकी बात मैं पहले लिख चुका हूं उन पर कोर्टमें मुकदमा चला था। हिन्दुस्तानियोंके प्रवेशके बारेमें अपना जो भय मैं पहले बता चुका हूं वह सच साबित हुआ। गोरोंके लिए ट्रान्सवालमें आनेका परवाना लेना जरूरी न रहा, लेकिन हिन्दुस्तानियों पर परवानेका बन्धन बना ही रहा। ट्रान्सवालकी भूतपूर्व सरकारने कानून जितना सख्त बनाया था उतना सख्त उसका अमल नहीं होता था। यह स्थिति बोअर-सरकारकी उदारता या भलमनसाहतके कारण

नहीं, परन्तु उसके प्रशासन-विभागकी लापरवाहीके कारण खड़ी हुई थी। और उस विभागके अधिकारी भले हों तो भी अपनी भलमनसाहतके उपयोगका जितना अवकाश उन्हें बोअर-सरकारके शासनमें मिलता था, उतना ब्रिटिश सरकारके शासनमें नहीं मिल सकता। ब्रिटिश राज्यतंत्र पुराना होनेके कारण दृढ़ तथा व्यवस्थित हो गया है, और उसके अधीन अधिकारियोंको यंत्रकी तरह काम करना पड़ता है। उन लोगोंकी कार्य करनेकी स्वतंत्रता पर एकके बाद दूसरे चढ़ते-उतरते अंकुश लगे रहते हैं। इसलिए यदि ब्रिटिश संविधानमें राज्य-पद्धति उदार हो, तो प्रजाको उस उदार पद्धतिका अधिकसे अधिक लाभ मिल सकता है; और यदि वह पद्धति अत्याचारी या कंजूस हो, तो उसकी नियंत्रित सत्ताके मातहत प्रजाको उसके दबावका भी पूरा पूरा अनुभव होता है। इससे उलटी स्थिति ट्रान्सवालकी भूतपूर्व सत्ताके जैसे राज्यतंत्रमें होती है। ऐसे तंत्रमें उदार कानूनोंका पूरा लाभ प्रजाको मिलने या न मिलनेका अधिकतर आधार सरकारी विभागोंके अधिकारियों पर रहता है। इस न्यायके अनुसार ट्रान्सवालमें जब ब्रिटिश सत्ता स्थापित हुई तब हिन्दुस्तानियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सारे ही कानूनोंका अमल दिनोंदिन ज्यादा कड़ा होने लगा। पहले जहां जहां कानूनकी पकड़से बचनेके मार्ग खुले थे वहां वहां ऐसे सब मार्ग बन्द कर दिये गये। जैसा हम पहले देख चुके हैं, एशियाटिक विभागकी कार्रवाई सख्त हुए बिना रह ही नहीं सकती थी। इसलिए पुराने कानून रद कराने का ध्येय एक ओर रह गया; फिलहाल तो हिन्दुस्तानी कौमको इसी दृष्टिसे प्रयत्न करना पड़ा कि उन कानूनोंकी सख्तीको अमलमें कम कैसे कराया जाय।

एक सिद्धान्तकी चर्चा हमें जल्दी या देरसे करनी ही पड़ेगी; और इस स्थान पर उसकी चर्चा करनेसे शायद हिन्दुस्तानियोंके दृष्टिकोणको तथा आगे चलकर खड़ी हुई परिस्थितिको समझना सुविधाजनक होगा। ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटमें ब्रिटिश झंडा लहराने लगा उसके बाद तुरन्त ही लॉर्ड मिलनरने एक कमेटी नियुक्त की। उसका कार्य था इन दोनों राज्योंके पुराने कानूनोंकी जांच करके ऐसे कानूनोंकी सूची तैयार करना, जो प्रजाकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगानेवाले हों या ब्रिटिश संवि-

धानकी भावनाके विरुद्ध हों। इस जाचमें हिन्दुस्तानियोंकी स्वतंत्रता पर हमला करनेवाले कानून स्पष्ट रूपमें सम्मिलित किये जा सकते थे। परन्तु यह जाच-कमेटी नियुक्त करनेके पीछे लॉर्ड मिल्नरका उद्देश्य हिन्दुस्तानियोंके दु:ख दूर करना नही, वल्कि अंग्रेजोंके दु:ख दूर करना था। उनकी इच्छा ऐसे कानूनोंको जल्दीसे जल्दी रद करानेकी थी, जो परोक्ष रूपमें अंग्रेजोंके रास्तेमें रुकावट डालते थे। इस कमेटीकी रिपोर्ट बहुत ही थोड़े समयमें तैयार हो गई; और ऐसा कहा जा सकता है कि अंग्रेजोंके हितोंके विरुद्ध जानेवाले अनेक छोटे-मोटे कानून एक ही हुक्मसे रद कर दिये गये।

उसी कमेटीने हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध जानेवाले कानूनोंकी भी सूची बना ली। ये सब कानून एक पुस्तकके रूपमें छापे गये, जिसका उपयोग या हमारी दृष्टिसे दुरुपयोग एशियाटिक विभाग आसानीसे करने लगा।

अब यदि हिन्दुस्तानी-विरोधी कानून उनमें हिन्दुस्तानियोंका नाम रखकर खास तौर पर उनके विरुद्ध न बनाये जाते, परन्तु सबको लागू हों इस प्रकार रचे जाते तथा उनका अमल करने या न करनेका चुनाव अधिकारियों पर छोड़ दिया जाता; अथवा इन कानूनोंमें ऐसे अंकुश रखे जाते जिनका अर्थ सार्वजनिक होता, परन्तु वह अर्थ करने पर उनका अधिक दबाव हिन्दुस्तानियो पर पड़ता, तो ऐसे कानूनोंसे भी कानून बनानेवालोंका उद्देश्य पूरा हो जाता और फिर भी वे कानून सार्वजनिक कहे जाते। उनके अमलसे किसीका अपमान न होता। और समय बीतने पर जब विरोधकी भावना मंद पड़ जाती उस समय उन कानूनोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन किये बिना — केवल उनके उदार अमलसे ही — उस कौमको राहत मिल जाती, जिसके विरुद्ध वे कानून बनाये गये थे। जिस तरह दूसरे प्रकारके कानूनोंको मैंने सार्वजनिक कानून कहा है, उसी तरह पहले प्रकारके कानून एकदेशीय अथवा जातीय कहे जा सकते हैं। दक्षिण अफ्रीकामें उन्हें रंगभेदके कानून कहा जाता है, क्योंकि उनमें चमड़ीका भेद करके काली या गेहुंए रंगकी चमड़ीवाली प्रजाओं पर गोरोंकी तुलनामें अधिक अंकुश लगाये जाते हैं। इसीको 'कलर-बार' अथवा रंग-भेद या रंग-द्वेष कहा जाता है।

प्रचलित कानूनोंमें से ही हम एक उदाहरण यहां लें। पाठकोंको स्मरण होगा कि नेटालमें मताधिकारसे सम्बन्धित जो पहला कानून पास हुआ और बादमें जो बड़ी (साम्राज्य) सरकार द्वारा अस्वीकार कर दिया गया, उसमें एक धारा ऐसी थी कि भविष्यमें किसी भी एशियाईको मतदानका अधिकार नहीं रहेगा। अब अगर ऐसे कानूनको बदलवाना हो तो लोकमत इतनी हद तक शिक्षित होना चाहिये कि अधिकतर लोग एशियाई लोगोंके न केवल विरुद्ध न हों, बल्कि उनके प्रति मित्रताकी भावना रखते हों। ऐसा सुअवसर किसी दिन आये तभी नया कानून पास करके रंगभेदके कलंकको मिटाया जा सकता है। यह है एकदेशीय या रंगभेदी कानूनका उदाहरण। नेटालका उपर्युक्त कानून रद होकर उसके स्थान पर जो दूसरा कानून पास हुआ, उसमें भी पहले कानून का मूल हेतु लगभग सिद्ध हो गया; परन्तु उसमें से रंगभेदका डंक दूर कर दिया गया और वह सार्वजनिक हो गया। इस दूसरे कानूनकी एक धाराका आशय इस प्रकार है: "जिस देशको पार्लियामेन्टरी फ्रेन्चाइज न हो — अर्थात् ब्रिटिश लोकसभाके सदस्य चुननेके मताधिकार जैसा मताधिकार न हो, उस देशके नागरिक नेटालमें मतदानके अधिकारी नहीं हो सकते।" इस धारामें कहीं भी हिन्दुस्तानियोंका या एशियाई लोगोंका नाम नहीं आया है। हिन्दुस्तानमें इग्लैंडके जैसा मताधिकार है या नहीं, इस विषयमें कानूनके पंडितोंके भिन्न भिन्न मत हो सकते हैं। लेकिन हम दलीलके लिए यह मान लें कि भारतमें उस समय — यानी १८९४ में — ऐसा मताधिकार नहीं था अथवा आज भी नहीं है; फिर भी नेटालमें मताधिकारियोंके नाम दर्ज करनेवाला अधिकारी यदि हिन्दुस्तानियोंके नाम दर्ज कर ले, तो कोई एकाएक ऐसा नहीं कह सकेगा कि उस अधिकारीने कानूनके खिलाफ काम किया है। सामान्य अनुमान हमेशा प्रजाके अधिकारके पक्षमें किया जाता है। इसलिए जब तक तत्कालीन सरकार विरोध न करना चाहे तब तक वह अधिकारी, उपर्युक्त कानून अस्तित्वमें हो तो भी, हिन्दुस्तानियों और दूसरे लोगोंके नाम मताधिकारियोंके पत्रकमें दर्ज कर सकता है। अतः मान लीजिये कि समय पाकर नेटालमें हिन्दुस्तानियोंके प्रति गोरोंकी घृणा मंद पड़ जाय और सरकारको

हिन्दुस्तानियोंका विरोध न करना हो, तो कानूनमें किसी भी तरहका परिवर्तन किये बिना हिन्दुस्तानियोंके नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज किये जा सकते हैं। सार्वजनिक कानूनकी यह खूबी है। दक्षिण अफ्रीकाके जिन दूसरे कानूनोंका मैं पिछले प्रकरणोंमें उल्लेख कर चुका हूं, उनसे ऐसे अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। अतः सयानी राजनीति यही मानी जायगी कि एकदेशीय कानून कमसे कम बनाये जाय — बिलकुल न बनाये जायं तो अति उत्तम होगा। एक बार कोई कानून बन जानेके बाद उसे बदलनेमें अनेक कठिनाइयां होती हैं। लोकमत बहुत अधिक शिक्षित बन जाता है तभी बने हुए कानून रद हो सकते हैं। जिस लोकतन्त्रमें हमेशा कानूनोंमें परिवर्तन होता ही रहता है, उस लोकतन्त्रको सुदृढ़ और सुव्यवस्थित नहीं कहा जा सकता।

अब हम ट्रान्सवालके एशियाई-विरोधी कानूनोंमें भरे हुए जहरका अंदाज अधिक अच्छी तरह लगा सकते हैं। वे सब कानून एकदेशीय थे। उनके अनुसार एशियाई लोग मत नहीं दे सकते थे; सरकार द्वारा निर्धारित किये हुए मुहल्लोंसे बाहर जमीनके मालिक नहीं बन सकते थे। वे कानून रद न हों तब तक अधिकारी-वर्ग हिन्दुस्तानियोंकी मदद बिलकुल नहीं कर सकता था। वे कानून सार्वजनिक नहीं थे, इसीलिए लॉर्ड मिलनर द्वारा नियुक्त जांच-कमेटी उन्हें दूसरे कानूनोंसे अलग निकाल सकी। लेकिन अगर वे सार्वजनिक कानून होते, तो अन्य कानूनोंके साथ वे भी — जिनमें एशियाई लोगोंका नाम तो नहीं था, परन्तु जिनका उपयोग एशियाइयोंके विरुद्ध ही किया जाता था — रद हो गये होते। तब अधिकारी लोग ऐसा कभी न कह पाते कि "हम क्या करें? हम लाचार हैं। जब तक नई धारासभा इन कानूनोंको रद न करे तब तक हमें तो उन पर अमल करना ही होगा।"

जब ये कानून अमलके लिए एशियाटिक विभागके हाथमें आये तब उसने पूरी सख्तीसे इन पर अमल शुरू कर दिया। इतना ही नहीं, उसने यह भी सुझाया कि यदि सरकार ऐसा मानती है कि ये कानून अमल करने लायक हैं, तो सरकारको उनमें एशियाई लोगोंके पक्षमें जान-बूझ कर रखे गये या असावधानीसे रह गये बच निकलनेके रास्तोंको बन्द

करनेकी अधिक सत्ता प्राप्त करनी चाहिये। यह तर्क तो सीधा और सरल मालूम होता है। ये कानून बुरे हों तो सरकारको इन्हें रद कर देना चाहिये; और यदि ये ठीक हों तो इनमें रहे हुए दोषोंको दूर कर देना चाहिये। मंत्रि-मण्डलने इन कानूनों पर अमल करनेकी नीति अपनाई थी। हिन्दुस्तानी कौमने बोअर-युद्धमें अंग्रेजोंके साथ खड़े रह कर अपने प्राणोंकी बाजी लगाई थी, परन्तु यह तो तीन-चार वर्ष पुरानी बात हो चुकी थी। ट्रान्सवालमें ब्रिटिश एजेन्ट (राजदूत) हिन्दुस्तानी प्रजाके लिए लड़ा था, परन्तु यह घटना पुराने राज्यतंत्रमें हुई थी। बोअर-युद्धका एक कारण हिन्दुस्तानियोंके साथ बोअरोंका बुरा व्यवहार भी है — ऐसी जो घोषणा की गई थी, वह तो स्थानीय परिस्थितियोंका अनुभव न रखने-वाले शासकों द्वारा दूरदर्शिताका उपयोग किये बिना की गई घोषणा थी। स्थानीय अनुभवने ट्रान्सवालके ब्रिटिश अधिकारियोंको स्पष्ट रूपसे दिखा दिया कि बोअर-राज्यके समय हिन्दुस्तानी-विरोधी जो कानून बनाये गये थे, वे न तो पर्याप्त थे और न व्यवस्थित थे। यदि हिन्दुस्तानी लोग जब चाहें तब ट्रान्सवालमें प्रवेश कर सकें और जहां भी चाहें वहां मनचाहा व्यापार कर सकें, तो अंग्रेज व्यापारियोंको बड़ा नुकसान होगा। इन दलीलोंने और ऐसी दूसरी दलीलोंने गोरों पर और मंत्रि-मण्डलके उनके प्रतिनिधियों पर दृढ़ अधिकार जमा लिया था। वे सब कमसे कम समयमें ज्यादासे ज्यादा धन एकत्र करना चाहते थे। इसमें हिन्दुस्तानी लोग उनके साझेदार बनें, यह उन्हें कैसे बरदाश्त होता? इसके साथ तत्त्वज्ञानका पाखंड भी मिल गया। दक्षिण अफ्रीकाके बुद्धिमान लोगोंको केवल व्यापार-की दृष्टिसे की जानेवाली स्वार्थपूर्ण दलील सन्तोष नहीं दे सकती थी। अन्याय करनेके लिए भी मनुष्यकी बुद्धि ऐसी दलीलें खोजती है, जो उसे उचित लगें। दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंकी बुद्धिने यही किया। जनरल स्मट्स तथा दूसरे लोगोंने जो दलीलें दीं, वे इस प्रकार थीं:

"दक्षिण अफ्रीका पश्चिमी सभ्यताका प्रतिनिधि है। हिन्दुस्तान पूर्वीय सभ्यताका केन्द्रस्थान है। इस युगके तत्त्वज्ञानी, विचारशील लोग, यह स्वीकार नहीं करते कि इन दो सभ्यताओंका समन्वय हो सकता है। इसलिए यदि इन दो प्रतिद्वन्द्वी सभ्यताओंका प्रतिनिधित्व करनेवाली

प्रजायें छोटे समुदायोंमें भी एक-दूसरेसे मिलें, तो उसका परिणाम विस्फोट ही हो सकता है — दोनोंका संघर्ष अनिवार्य है। पश्चिम सादगीका विरोधी है। पूर्वके लोग सादगीको जीवनमें प्रमुख स्थान देते हैं। ऐसी स्थितिमें इन दोनोंका मेल कैसे बैठ सकता है? इन दो सभ्यताओंमें से कौनसी सभ्यता अधिक *अच्छी है, यह देखना राजनीतिक यानी व्यावहारिक* पुरुषोंका काम नहीं है। पश्चिमकी सभ्यता अच्छी हो या बुरी, लेकिन पश्चिमकी प्रजायें उसीसे चिपटी रहना चाहती हैं। उस सभ्यताकी रक्षाके लिए पश्चिमकी प्रजाओंने अथक प्रयत्न किये हैं, खूनकी नदियां बहाई हैं और दूसरे भी अनेक तरहके कष्ट सहे हैं। इसलिए पश्चिमकी प्रजाओंको इस समय दूसरा रास्ता नहीं सूझ सकता। इस दृष्टिसे सोचने पर हिन्दुस्तानियों और यूरोपियनोंका प्रश्न न तो व्यापार-द्वेषका है और न वर्ण-द्वेषका। *यह प्रश्न केवल अपनी सभ्यताकी रक्षा करनेका अर्थात् आत्म-*रक्षाका ऊंचेसे ऊंचे प्रकारका अधिकार भोगनेका और उससे सम्बन्धित कर्तव्योंका पालन करनेका ही है। कुछ भाषण करनेवाले लोगोंको हिन्दुस्तानियोंके दोष निकालनेकी बात यूरोपियनोंको उभाड़नेके लिए भले ही पसंद आती हो, लेकिन राजनीतिक दृष्टिसे सोचनेवाले लोग तो यही मानते हैं और कहते हैं कि हिन्दुस्तानियोंके गुण ही दक्षिण अफ्रीकामें उनके दोष माने जाते हैं। हिन्दुस्तानी लोग अपनी सादगी, लम्बे समय तक मेहनत करनेके अपने धीरज, अपनी किफायतशारी, अपनी परलोक-परायणता, अपनी सहनशीलता आदि गुणोंके कारण ही दक्षिण अफ्रीकामें *अप्रिय बन गये हैं।* पश्चिमकी प्रजा साहसी, अधीर, दुनियावी जरूरतें बढ़ाने और उनकी पूर्ति करनेमें मग्न, खाने-पीनेकी शौकीन, शरीर-श्रम बचानेके लिए आतुर और उड़ाऊ स्वभावकी है। इसलिए उसे हमेशा यह डर बना रहता है कि यदि पूर्वीय सभ्यताके हजारों प्रतिनिधि दक्षिण अफ्रीकामें बसेंगे, तो पश्चिमके लोगोंको पीछे हटना ही होगा। दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाली पश्चिमकी प्रजा आत्महत्या करनेके लिए कभी तैयार नहीं होगी। और उस प्रजाके समर्थक, उसके नेता, उसे किसी भी समय ऐसे खतरेमें नहीं पड़ने देंगे।"

मैं मानता हूं कि यहां मैंने उपर्युक्त तर्क उसी रूपमें निष्पक्ष भावसे प्रस्तुत किया है, जैसा वह दक्षिण अफ्रीकाके अच्छेसे अच्छे और चरित्रवान गोरोंके द्वारा किया गया है। इस तर्कको मैंने ऊपर तत्त्वज्ञानका पाखंड कहा है; परन्तु उससे मैं यह सूचित नहीं करना चाहता कि *इस तर्कमें कोई सचाई नहीं है। व्यावहारिक दृष्टिसे, अर्थात् तात्कालिक* स्वार्थकी दृष्टिसे, तो उसमें काफी सचाई है। परन्तु तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे वह निरा पाखंड और ढोंग है। मेरी अल्प बुद्धिको तो ऐसा लगता है *कि किसी तटस्थ मनुष्यकी बुद्धि ऐसे निर्णयको स्वीकार नहीं करेगी।* कोई भी सुधारक अपनी सभ्यताको ऐसी लाचार स्थितिमें नहीं रखेगा, *जैसी लाचार स्थितिमें उपर्युक्त तर्क प्रस्तुत करनेवाले लोगोंने अपनी* सभ्यताको रखा है। जहां तक मैं जानता हूं, पूर्वके किसी भी तत्त्वज्ञानीको यह भय नहीं है कि पश्चिमकी प्रजा स्वतंत्रतासे पूर्वकी प्रजाके संपर्कमें आयेगी, तो पूर्वकी सभ्यता पश्चिमकी सभ्यताकी बाढ़में बालूकी तरह बह जायगी। जहां तक मैंने पूर्वीय तत्त्वज्ञानको समझा है, मुझे *तो यह दिखाई देता है कि पूर्वकी सभ्यता पश्चिमके स्वतंत्र समागमसे* निर्भय रहती है; इतना ही नहीं परन्तु ऐसे समागमका वह स्वागत करेगी। इससे उलटे उदाहरण यदि पूर्वमें पाये जायं, तो उनसे मेरे बताये हुए सिद्धान्त पर कोई आंच नहीं आती; क्योंकि मेरे सिद्धान्तके समर्थनमें अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु जो भी हो, पश्चिमके तत्त्वज्ञानियोंका यह दावा है कि *पश्चिमी सभ्यताका मूल सिद्धान्त सर्वोच्च* पशुबल पर आधारित है। यही कारण है कि उस सभ्यताके समर्थक पशुबलकी रक्षामें अपने समयका अधिकसे अधिक भाग खर्च करते हैं। उन लोगोंका तो यह भी सिद्धान्त है कि जो प्रजायें अपनी जरूरतें बढ़ायेंगी नहीं, उनका अन्तमें नाश ही होनेवाला है। इन सिद्धान्तोंका अनुसरण करके ही पश्चिमकी प्रजा दक्षिण अफ्रीकामें बसी है और अपनी संख्यासे अनेक गुनी अधिक संख्यावाले हबशियोंको उसने वशमें किया है। तब फिर उसे हिन्दुस्तानकी गरीब प्रजाका भय तो हो ही कैसे *सकता है? और पूर्वीय सभ्यताकी दृष्टिसे उस प्रजाको कोई वास्तविक* भय नहीं है, इसका उत्तम प्रमाण यह है कि हिन्दुस्तानी दक्षिण अफ्रीका-

में यदि सदा मजदूरोंके रूपमें ही रहते, तो गोरे कभी भी हिन्दुस्तानियों-के वहां बसनेके विरुद्ध आन्दोलन नहीं करते।

तब शेष कारण तो केवल व्यापार और रंगके ही रह जाते हैं। हजारों गोरोंने यह लिखा है और स्वीकार किया है कि हिन्दुस्तानियोंका व्यापार छोटे छोटे अंग्रेज व्यापारियोंको परेशान करता है और गेहुंए रंगवाली प्रजाके प्रति नफरतका भाव अभी तो गोरी प्रजाकी रग-रगमें पैठ गया है। संयुक्त राज्य अमेरिकाके कानूनमें तो सारे नागरिकोंको समान अधिकार दिये गये हैं, परन्तु वहां भी बूकर टी० वाशिंगटन जैसा उच्चतम पश्चिमी शिक्षा पाया हुआ, अत्यन्त चरित्रवान ईसाई और पश्चिमी सभ्यताको पूर्ण रूपसे अपनी बना लेनेवाला पुरुष प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्टके दरबारमें नहीं जा सकता था, और आज भी नहीं जा सकता। अमेरिकाके हबशियोंने पश्चिमकी सभ्यता स्वीकार कर ली है, वे ईसाई भी बन गये हैं। लेकिन उनकी काली चमड़ी उनका अपराध माना जाता है। और यदि संयुक्त राज्य अमेरिकाके राज्योंमें सामाजिक दृष्टिसे उनसे घृणा की जाती है और उनका तिरस्कार किया जाता है, तो दक्षिण अमेरिकाके राज्योंमें अपराधकी केवल शंका होने पर ही गोरे उन्हें जिन्दा जला डालते हैं। दक्षिण अमेरिकामें इस दण्डनीतिका एक विशेष नाम भी है, जो आज अंग्रेजी भाषामें प्रचलित हो गया है। वह शब्द है 'लिन्च लॉ'। 'लिन्च लॉ' का अर्थ ऐसी दण्डनीति है, जिसके अनुसार सजा पहले दी जाती है और अपराधकी जांच बादमें होती है। यह नाम 'लिन्च' नामक एक मनुष्यके नामके आधार पर पड़ा है, जिसने यह दण्डप्रथा आरंभ की थी।

इस तरह पाठक यह समझ लेंगे कि उपर्युक्त तात्त्विक माने जाने-वाले तर्कमें बहुत सार नहीं है। लेकिन पाठक इसका यह अर्थ भी न करें कि उपर्युक्त तर्क प्रस्तुत करनेवाले सब गोरे भिन्न विश्वास रखते हुए भी ऐसा तर्क करते हैं। उनमें से अनेक लोग सच्चे हृदयसे मानते हैं कि उनका यह तर्क तात्त्विक है। संभव है कि हम उनके जैसी स्थितिमें हों तो हम भी शायद ऐसा ही तर्क करें। कुछ ऐसे ही कारणसे यह लोकोक्ति प्रचलित हुई है — 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी।' यह अनुभव किसे

नही होगा कि हमारी अन्तर्वृत्तिका निर्माण जैसा हुआ होता है वैसा ही तर्क हमें सूझा करता है; और वह तर्क जब दूसरोंके गले नही उतरता तो हमें असंतोष होता है, हम अधीर बन जाते हैं और अंतमें हमें क्रोध आता है।

मैंने जान-बूझ कर इस प्रश्नकी इतनी बारीकीसे चर्चा की है। मै चाहता हू कि पाठक विभिन्न दृष्टियोको समझें और जो लोग आज तक ऐसा न करते आये हो वे विभिन्न दृष्टियोका आदर करने और उन्हें समझनेकी आदत डालें। सत्याग्रहका रहस्य जाननेके लिए और खास करके सत्याग्रहका प्रयोग करनेके लिए ऐसी उदारता और ऐसी सहनशीलता अत्यन्त आवश्यक है। इनके बिना सत्याग्रह संभव ही नही है। यह पुस्तक मैं केवल लिखनेके उद्देश्यसे ही नही लिख रहा हूं। इसके पीछे यह हेतु भी नही है कि दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासका एक पहलू भारतकी जनताके सामने रखा जाय। इस पुस्तकको लिखनेका मेरा हेतु यह है कि जिस सत्याग्रहके लिए मैं जीता हूं, जीना चाहता हू और जिसके लिए उतनी ही हद तक मैं मरनेको भी तैयार हूं, उस सत्याग्रहका जन्म कैसे हुआ और उसका सर्वप्रथम सामुदायिक प्रयोग कैसे किया गया — यह सब भारतीय जनता जाने, समझे और जितना पसंद करे उतना यथाशक्ति आचरणमें उतारे।

अब हम फिरसे अपनी कथाको आगे बढायें। हम यह देख चुके है कि ब्रिटिश सत्ताधारियोंने यह निर्णय किया था कि ट्रान्सवालमें नये हिन्दुस्तानियोंको आनेसे रोका जाय और पुरानोंकी स्थिति इतनी कठिन बना दी जाय कि वे घबरा कर ट्रान्सवाल छोड़ दें, और न छोड़ें तो भी वे लगभग मजदूर जैसे बनकर ही रह सकें। दक्षिण अफ्रीकाके कुछ महान माने जानेवाले राजनीतिक पुरुषोंने अनेक बार यह कहा था कि हिन्दुस्तानियोंको हम दक्षिण अफ्रीकामें केवल लकड़हारों और कांवरियोंके रूपमें ही रख सकते है। पहले जिस एशियाटिक विभागकी बात मैं लिख चुका हूं उसमें दूसरे गोरे अधिकारियोंके साथ हिन्दुस्तानमें किसी समय रह चुके और विभक्त जिम्मेदारी (डायर्की) के शोधक और प्रचारकके रूपमें प्रसिद्धि पाये हुए श्री लायनल कर्टिस भी थे। कुलीन परिवारके

ये नौजवान, उस समय १९०५-०६ में तो नौजवान ही थे, लॉर्ड मिलनरके विश्वस्त आदमी थे। प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक पद्धतिसे ही करनेका उनका दावा था। परन्तु वे बड़ी बड़ी गलतियां भी कर सकते थे। अपनी ऐसी एक गलतीसे उन्होंने जोहानिसबर्गकी म्युनिसिपैलिटीको १४००० पौंडके खड्डेमें उतार दिया था। उन्होंने यह सुझाव रखा कि ट्रान्सवालमें नये हिन्दुस्तानियोंको आनेसे रोकना हो, तो उस दिशामें पहला कदम यह उठाया जाना चाहिये कि दक्षिण अफ्रीकामें बसे हुए पुराने हिन्दुस्तानियोंके नाम इस ढंगसे रजिस्टर किये जायं कि एक हिन्दुस्तानीके बदले दूसरा हिन्दुस्तानी दक्षिण अफ्रीकामें घुस न सके, और अगर घुस भी जाय तो तुरन्त पकड़ लिया जाय। ट्रान्सवालमें ब्रिटिश सत्ता स्थापित होनेके बाद हिन्दुस्तानियोंको जो परवाने दिये जाते थे, उन पर या तो हिन्दुस्तानीके दस्तखत लिये जाते थे या दस्तखत न कर सकनेकी स्थितिमें उसके अंगूठेकी निशानी ली जाती थी। इसके बाद किसी अधिकारीने सुझाया कि परवानों पर हिन्दुस्तानियोंकी फोटो भी रहनी चाहिये। इस प्रकार फोटो, अंगूठेकी निशानी और दस्तखत — ये सब वैसे ही चल पड़े। इसके लिए कोई कानून बनाना जरूरी नहीं माना गया। इस कारण कौमके नेताओंको इन बातोंका तुरन्त पता भी नहीं चल सका था। धीरे धीरे ही उन्हें इन नई बातोंके दाखिल होनेका पता चला। उन्होंने कौमकी ओरसे सत्ताधारियोंको अर्जियां भेजीं; प्रतिनिधि-मण्डल भी भेजे। अधिकारियोंकी दलील यह थी कि कोई भी हिन्दुस्तानी किसी भी रीतिसे ट्रान्सवालमें प्रवेश करे, इसे हम स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए सब हिन्दुस्तानियोंके पास एक ही तरहके परवाने होने चाहिये और उनमें इतना ब्योरा होना चाहिये कि उन परवानोंके आधार पर उनके मालिक ही ट्रान्सवालमें आ सकें, दूसरे कोई न आ सकें। मैंने कौमको यह सलाह दी कि ऐसा कोई कानून तो नहीं है जिसके अनुसार ऐसे परवाने लेना हमारे लिए अनिवार्य हो; परन्तु जब तक शांतिरक्षाका कानून (पीस प्रिज़र्वेशन ऑर्डिनेन्स) मौजूद है तब तक अधिकारी हमसे परवाने अवश्य मांग सकते हैं। जिस तरह हिन्दुस्तानमें 'डिफेन्स ऑफ इंडिया एक्ट' — भारत रक्षा कानून — था, उसी तरह दक्षिण अफ्रीकामें शांतिरक्षाका

कानून था। जिस तरह हिन्दुस्तानमें डिफेन्स ऑफ इंडिया एक्ट केवल प्रजाको परेशान करनेके लिए ही लम्बी अवधि तक चालू रखा गया था, उसी तरह यह शांतिरक्षा कानून आवश्यकता पूरी हो जानेके बाद भी केवल हिन्दुस्तानियोंको परेशान करनेके लिए ही दक्षिण अफ्रीकामें लम्बे समय तक चालू रखा गया था। यह कहना गलत नही होगा कि गोरों पर शांतिरक्षा कानूनका सामान्यतः बिलकुल अमल नहीं होता था। अब यदि परवाने लेना अनिवार्य हो तो उन पर पहचानकी कोई निशानी होनी ही चाहिये। इसलिए जो हिन्दुस्तानी दस्तखत न कर सकते हों उनके लिए अंगूठेकी निशानी परवाने पर देना उचित ही होगा। पुलिस-वालोंने यह खोज निकाला है कि किन्ही भी दो मनुष्योंकी अंगुलियोंकी रेखायें एकसी कभी नही होतीं। उन्होंने अंगुलियोंकी आकृति और संख्याका वर्गीकरण किया है। इस विज्ञानका निष्णात व्यक्ति दो अंगूठोंकी छापकी तुलना करके एक-दो मिनटमें ही कह सकता है कि वे अंगूठे दो अलग व्यक्तियोंके हैं या एक ही व्यक्तिके है। लेकिन फोटो देनेकी बात मुझे बिलकुल पसंद नही थी; और मुसलमानोंकी दृष्टिसे तो फोटो देनेमें धार्मिक आपत्ति भी थी।

अन्तमें हिन्दुस्तानी कौम और सरकारके बीच हुई बातचीतका परिणाम यह आया: कौमने यह बात मान ली कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी अपना पुराना परवाना लौटा कर नया परवाना ले और नया आनेवाला हिन्दुस्तानी नये रूपमें ही परवाना ले। ऐसा करना हिन्दुस्तानियोंके लिए कानूनकी दृष्टिसे जरा भी अनिवार्य नहीं था, परन्तु उन्होंने इस आशासे स्वयं ही परवाने ले लिये कि उन पर नये अंकुश नही लगाये जायंगे, कौम सम्बन्धित लोगोंको यह दिखा सकेगी कि वह धोखेसे किसी भी नये हिन्दुस्तानीको ट्रान्सवालमें दाखिल नहीं करना चाहती और नये आनेवाले हिन्दुस्तानियोंको परेशान करनेके लिए शांतिरक्षा कानूनका अमल नहीं किया जायगा। ऐसा कहा जा सकता है कि लगभग सभी हिन्दुस्तानियोंने नये परवाने ले लिये थे। यह कोई ऐसी-वैसी बात नही मानी जायगी। जो काम करना कानूनकी दृष्टिसे हिन्दुस्तानी कौमके लिए जरा भी अनिवार्य न था, वह काम उसने संपूर्ण एकतासे बहुत ही जल्दी

कर दिखाया। यह कौमकी सचाई, व्यवहार-कुशलता, सयानपन, बुद्धिमानी और नम्रताका लक्षण था। और अपने इस कामसे कौमने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि ट्रान्सवालके किसी भी कानूनका किसी भी तरह उल्लंघन करनेका उसका बिलकुल इरादा नहीं था। हिन्दुस्तानियोंका ऐसा विश्वास था कि जो कौम सरकारके साथ इतनी सज्जनतासे व्यवहार करती है, उस कौमके साथ सरकार भी अच्छा व्यवहार करेगी, उसके प्रति आदर दिखायेगी और उसे दूसरे अधिकार भी देगी। ट्रान्सवालकी ब्रिटिश सरकारने इस सज्जनताका बदला कैसे चुकाया, यह हम अगले प्रकरणमें देख सकेंगे।

११

सज्जनताका बदला : खूनी कानून

पुराने और नये परवानोंकी अदला-बदली हुई तब तक हम १९०६ के सालमें पहुंच गये थे। १९०३ में मैंने ट्रान्सवालमें दूसरी बार प्रवेश किया था। उस वर्षके लगभग मध्यमें मैंने जोहानिसबर्गमें ऑफिस खोला था। इस प्रकार मेरे दो वर्ष एशियाटिक विभागके आक्रमणोंका विरोध करनेमें ही बीत गये। हम सबने यह मान लिया था कि परवानोंका मामला निबट जानेसे सरकारको सपूर्ण सन्तोष होगा और कौमको थोड़ी शांति मिलेगी। लेकिन कौमके नसीबमें तो शांति लिखी ही नहीं थी। पिछले प्रकरणमें मैं श्री लायनल कर्टिसका परिचय दे चुका हू। उन्हें ऐसा लगा कि हिन्दुस्तानियोंके केवल नये परवाने ले लेनेसे ही गोरोंका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। महान कार्य परस्पर समझौतेसे पूरे हों, यह उनकी दृष्टिसे काफी नहीं था। वे मानते थे कि ऐसे कार्योंके पीछे कानूनका बल भी होना चाहिये; तभी वे उचित ठहरते है और तभी उनके भीतर रहे सिद्धान्तोंकी रक्षा हो सकती है। श्री कर्टिस चाहते थे कि हिन्दुस्तानियों पर अंकुश लगानेके लिए कोई ऐसा कार्य किया जाय, जिसका प्रभाव समूचे दक्षिण अफ्रीका पर पड़े और अंतमें दूसरे उपनिवेश उसका

अनुकरण भी करें। उनका खयाल था कि जब तक दक्षिण अफ्रीकाका एक भी दरवाजा हिन्दुस्तानियोंके लिए खुला रहेगा तब तक ट्रान्सवाल सुरक्षित नही कहा जायगा। इसके सिवा, वे ट्रान्सवाल सरकार और हिन्दुस्तानियोंके बीच हुए समझौतेको हिन्दुस्तानी कौमकी प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला मानते थे। लेकिन उनका इरादा कौमकी प्रतिष्ठा बढ़ानेका नही बल्कि घटानेका था। उन्हें हिन्दुस्तानियोंकी सम्मतिकी कोई परवाह नही थी। वे तो हिन्दुस्तानियो पर बाहरी अंकुश लगा कर कानूनके आतंकसे कौमको थरथरा देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने एशियाटिक एक्टका मसौदा तैयार किया और सरकारको यह सलाह दी कि जब तक इस मसौदेके अनुसार कानून पास नही होगा, तब तक हिन्दुस्तानी लोग छिपे तौर पर ट्रान्सवालमें जरूर ही दाखिल होते रहेंगे और जो लोग इस तरह दाखिल होंगे उन्हें ट्रान्सवालसे बाहर निकालनेके लिए वर्तमान कानूनोंमें कोई भी व्यवस्था नहीं है। श्री कर्टिसकी ये दलीलें और उनका एशियाटिक एक्टका मसौदा ट्रान्सवाल सरकारको पसद आया। और उनके मसौदेके अनुसार ट्रान्सवालकी धारासभामें पेश किया जानेवाला बिल सरकारी गजटमें प्रकाशित हुआ।

इस बिलकी मैं विस्तारसे चर्चा करूं इसके पहले एक महत्त्वपूर्ण घटनाका वर्णन कुछ शब्दोंमें यहा कर देना आवश्यक है। मैं सत्याग्रह आन्दोलनका प्रेरक था, इसलिए यह आवश्यक है कि पाठक मेरे जीवनकी घटनाओंको पूरी तरह समझ लें। ट्रान्सवालमें इस तरह हिन्दुस्तानियों पर अधिक अंकुश लगानेके प्रयत्न जिन दिनों हो रहे थे उसी अरसेमें नेटालमें वहांके हबशियोका — जूलुओंका — विद्रोह जाग उठा। उस विस्फोटको विद्रोह कहा जा सकता है या नहीं, इस विषयमें मुझे शका थी; आज भी मुझे शंका है। फिर भी यह घटना विद्रोहके नामसे ही सदा नेटालमें पुकारी गई है। बोअर-युद्धके समान उस विद्रोहके समय भी नेटालमें रहनेवाले कई गोरे उसे शांत करनेके लिए स्वयंसेवकके रूपमें सेनामें भरती हुए थे। मै भी नेटालका ही निवासी माना जाता था; इसलिए मुझे लगा कि इस युद्धमें मुझे भी यथाशक्ति सहायता करनी चाहिये। हिन्दुस्तानी कौमकी इजाजत लेकर मैंने नेटाल सरकारको लिखा

कि मुझे घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाला दल (स्ट्रेचर-बेयरर कोर्प्स) खड़ा करने दिया जाय। मेरा प्रस्ताव सरकारने मान लिया। इसलिए मैंने जोहानिसबर्गका घर तोड़ दिया और अपने बाल-बच्चोंको नेटालके फिनिक्स आश्रममें भेज दिया, जहां 'इंडियन ओपीनियन' नामक साप्ताहिक चलाया जाता था और जहां मेरे सहयोगी मित्र रहते थे। ऑफिस मैंने बन्द नहीं किया, क्योंकि मैं जानता था कि यह सेवाकार्य लम्बे समय तक मुझे नहीं करना पड़ेगा।

२०–२५ आदमियोंका एक छोटासा दल खड़ा करके मैं नेटालकी सेनाके साथ जुड़ गया। इस छोटेसे दलमें भी लगभग सभी जातियों और सभी प्रान्तोंके हिन्दुस्तानी थे। इस दलने एक माह तक घायलोंकी सेवा-शुश्रूषाका कार्य किया। हमें करनेके लिए जो काम सौंपा गया था, उसके लिए मैंने सदा ही ईश्वरका उपकार माना। अनुभवसे मैंने देखा कि जो हबशी विद्रोहमें घायल होते थे उन्हें केवल हम लोग ही उठाते थे, वर्ना वे जहांके तहां पड़े पड़े दुःख भोगा करते थे। इन घायलोंके घावोंकी सार-संभाल और मरहम-पट्टी करनेमें एक भी गोरा हमारी मदद नहीं करता था। जिस सर्जनके मातहत हमें यह काम करना था, उसका नाम डॉ॰ सावेज था। वह अत्यन्त दयालु था। घायलोंको उठाकर अस्पतालमें ले आनेके बाद उनकी सार-संभाल करना हमारे क्षेत्रमें नहीं आता था। परन्तु हम तो यह समझ कर ही युद्धमें शरीक हुए थे कि जो भी काम हमें सौंपा जाय, वह हमारे क्षेत्रके भीतर ही है। उस भले और दयालु डॉक्टरने हमसे कहा कि मुझे एक भी गोरा इन घायलोंकी सार-संभाल करनेवाला नहीं मिलता। मैं किसी गोरेको यह काम करनेके लिए मजबूर करनेकी शक्ति नहीं रखता। इसलिए आप लोग यदि दया करके यह काम करेंगे, तो मैं आपका उपकार मानूंगा। हमने खुश हो कर जूलुओंकी सेवा-शुश्रूषाका काम हाथमें ले लिया। कुछ हबशियोंके घावोंकी पांच-पांच, छह-छह दिन तक मरहम-पट्टी नहीं की गई, इसलिए वे बदबू करने लगे थे। उनके घावोंको साफ करके मरहम-पट्टी करनेका काम हमारे सिर आया और हमने उसे बहुत ही पसंद किया। हबशी बेचारे हमारे साथ कुछ बोल तो नहीं सकते थे। परन्तु उनके हाव-भाव और

उनकी आंखोंसे प्रकट होनेवाली कृतज्ञतासे हम समझ सकते थे कि वे हमें ईश्वर द्वारा उनकी मददके लिए भेजे हुए दूत ही मानते थे। यह काम बड़ा कठिन था। कभी कभी तो हमें दिनमें चालीस चालीस मीलकी मंजिल तय करनी पड़ती थी।

एक महीनेमें हमारा यह काम पूरा हो गया। अधिकारियोंको हमारे कामसे सन्तोष हुआ। गवर्नरने हमें धन्यवाद और आभारका पत्र भी लिखा। हमारे दलके प्रत्येक सदस्यको एक विशेष पदक दिया गया था, जो इसी अवसरके उपलक्षमें तैयार किया गया था। इस दलके तीन सार्जेन्ट गुजराती थे। उनके नाम ये हैं: श्री उमियाशंकर शेलत, श्री सुरेन्द्रराय मेढ़ और श्री हरिशंकर जोशी। ये तीनों बड़े हृष्टपुष्ट थे और तीनोंने बहुत कड़ी मेहनत की थी। दूसरे हिन्दुस्तानियोंके नाम इस समय मुझे याद नहीं आते, लेकिन इतना अच्छी तरह याद है कि उन लोगोंमें एक पठान भी था। मुझे यह भी याद है कि हम लोग उस पठानके जितना ही बोझ उठा सकते थे और उसके साथ रह कर कूच भी कर सकते थे, यह बात उसे आश्चर्यकारक लगती थी।

इस दलका काम करते करते मेरे दो विचार परिपक्व हो गये, जो धीरे धीरे मेरे मनमें पक रहे थे। एक विचार तो यह कि सेवाधर्मको जीवनमें प्रमुख स्थान देनेवाले मनुष्यको ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य ही करना चाहिये। दूसरा यह कि सेवाधर्मका पालन करनेवाले मनुष्यको गरीबीका सदाके लिए वरण करना चाहिये। वह कोई ऐसा धन्धा न करे, जिसकी वजहसे सेवाधर्मका पालन करनेमें उसे कोई हिचकिचाहट होनेका मौका आये अथवा सेवाधर्मके पालनमें थोड़ी भी रुकावट हो।

इस दलमें मैं काम करता था तभी जैसे बने वैसे जल्दी ही ट्रान्सवाल आनेके बारेमें मुझे पत्र और तार मिलते रहे थे। इसलिए उसका काम पूरा होते ही फिनिक्सके सब मित्रोंसे मिल कर मैं तुरन्त जोहानिसबर्ग पहुंच गया। वहां ऑफिसमें मैंने ऊपर बताये एशियाटिक बिलका मसौदा पढ़ा। २२ अगस्त, १९०६ को प्रकाशित हुआ ट्रान्सवाल सरकारका वह असाधारण गजट ऑफिससे मैं घर ले गया, जिसमें बिलका मसौदा छपा था। मेरे मकानके पास एक छोटीसी पहाड़ी थी। अपने एक मित्रके

साथ उस टेकरी पर जाकर मैं 'इंडियन ओपीनियन' के लिए उस बिलका गुजराती अनुवाद करने लगा। जैसे जैसे मैं उस बिलकी धारायें पढ़ता गया, वैसे वैसे मैं कांपता गया। उसमें मैं हिन्दुस्तानियोंके प्रति द्वेष और घृणाके सिवा दूसरा कुछ नहीं देख सका। मुझे लगा कि अगर यह बिल पास हो गया और हिन्दुस्तानियोंने कायर बनकर उसे स्वीकार कर लिया, तो दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानी कौमके पैर जड़से उखड़ जायंगे। मैंने स्पष्ट रूपसे समझ लिया कि हिन्दुस्तानी कौमके लिए यह जीवन-मरणका प्रश्न है। मैंने यह भी समझ लिया कि कौम अरजियां पेश करनेसे अपने ध्येयमें यदि सफल न हो, तो उसे हाथ पर हाथ धरे चुपचाप बैठे नहीं रहना चाहिये। इस खूनी कानूनकी शरणमें जानेकी अपेक्षा उसका मर जाना बेहतर होगा। लेकिन मरा कैसे जाय? हिन्दुस्तानी कौम ऐसे कौनसे खतरेमें पड़े या कि पड़नेकी हिम्मत करे, जिससे उसके सामने जीत या मौतके सिवा तीसरा कोई रास्ता ही न रह जाय? मेरे सामने तो मानो ऐसी भयंकर दीवाल खड़ी हो गई, जिसके पार कोई रास्ता सूझता ही नहीं था। जिस बिलके मसौदेने मुझे जड़से हिला दिया, उसकी तफसील पाठकोंको जाननी ही चाहिये। उसका सार नीचे दिया जाता है:

ट्रान्सवालमें रहनेका अधिकार रखनेवाले प्रत्येक हिन्दुस्तानी पुरुष, स्त्री और आठ वर्षके अथवा आठ वर्षसे ऊपरके बालक-बालिकाओंको एशियाटिक विभागके दफ्तरमें नाम लिखा कर परवाना ले लेना चाहिये। ये परवाने लेते समय अपने पुराने परवाने वहांके अधिकारियोंको सौंप देने चाहिये। अरजीमें हर हिन्दुस्तानीको अपना नाम, पता, जाति, उमर वगैरा लिखना चाहिये। नाम दर्ज करनेवाले अधिकारी (रजिस्ट्रार) को अर्जदारके शरीर पर कोई खास निशानियां हों तो उन्हें लिख लेना चाहिये और अर्जदारकी सब अंगुलियों और अंगूठेकी छाप लेनी चाहिये। निश्चित की हुई अवधिके भीतर जो हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुष इस तरह अरजी न करें, उनके ट्रान्सवालमें रहनेके अधिकार रद्द हो जायंगे। अरजी न करना कानूनके अनुसार अपराध माना जायगा। इस अपराधके लिए जुर्माना किया जा सकता है, जेलकी सजा हो सकती है और कोई कोर्ट उचित

समझे तो अपराधीको देशनिकालेकी सजा भी दे सकती है। बच्चोंकी अरजी माता-पिताको देनी चाहिये; और निशानियां लिखाने और अंगुलियों वगैराकी छाप देनेके लिए बच्चोंको अधिकारियोंके सामने ले जानेकी जिम्मेदारी भी माता-पिताकी होगी। अगर माता-पिताने अपनी यह जिम्मेदारी अदा न की हो, तो सोलह वर्षकी उमर हो जाने पर बच्चोंको यह जिम्मेदारी खुद अदा करनी चाहिये। और अगर वे यह जिम्मेदारी अदा न करें, तो जिस जिस सजाके पात्र माता-पिता हो सकते हैं, उसी सजाके पात्र सोलह वर्षकी उमरको पहुंचे हुए नौजवान भी माने जायंगे। जो परवाना अर्जदारको दिया जाय उसे कोई पुलिस अधिकारी जब और जहां मांगे तब और वहां बताना अनिवार्य होगा। यह परवाना पेश न करना अपराध माना जायगा और उस अपराधके लिए कोर्ट जुर्मानेकी या कैदकी सजा कर सकती है। इस परवानेकी मांग रास्ते चलते यात्रीसे भी की जा सकती है। परवानोंकी जांच करनेके लिए पुलिस अधिकारी लोगोंके घरोंमें भी प्रवेश कर सकते हैं। किसी बाहरके स्थानसे आकर ट्रान्सवालमें प्रवेश करते समय हिन्दुस्तानी स्त्री या पुरुषको जाच करनेवाले अधिकारीके सामने अपना परवाना पेश करना ही चाहिये। कोई हिन्दुस्तानी अदालतमें किसी कामसे जाय या माल-ऑफिसमें व्यापारका अथवा सायकल रखनेका अनुमति-पत्र लेने जाय, तो वहा भी अधिकारी उससे परवाना मांग सकता है। कहनेका अर्थ यह कि कोई हिन्दुस्तानी किसी भी सरकारी दफ्तरमें उस दफ्तरसे सम्बन्धित किसी कामके सिलसिलेमें जाय, तो वहांका अधिकारी हिन्दुस्तानीकी प्रार्थना सुननेसे पहले उससे परवाना मांग सकता है। यह परवाना अधिकारीके सामने पेश करनेसे इनकार करना या परवाना रखनेवाले आदमीसे मांगी जानेवाली परवाना-सम्बन्धी कोई भी जानकारी अधिकारीको देनेसे इनकार करना भी अपराध माना जायगा और उसके लिए भी कोर्ट अपराधीको जुर्मानेकी या कैदकी सजा कर सकती है।

जहां तक मैं जानता हूं, इस प्रकारका कानून दुनियाके किसी भी हिस्सेमें स्वतंत्र मानवोंके लिए नहीं बनाया गया होगा। मैं जानता हूं कि नेटालके गिरमिटिया हिन्दुस्तानियोंके लिए बनाये हुए परवानेके कानून बहुत

कड़े है, लेकिन वे बेचारे तो स्वतंत्र मानव माने ही नहीं जाते। फिर भी यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त बिलकी तुलनामें उन लोगोंके लिए बने हुए परवानोंके कानून नरम हैं और उन कानूनोंको तोड़नेकी सजा इस बिलमें बताई गई सजाके सामने कुछ भी नहीं है। इस बिलके अनुसार कोई लाखोंका व्यापार करनेवाला हिन्दुस्तानी व्यापारी भी देश-निकालेकी सजा पा सकता है। अर्थात् इस बिलकी धाराओंको भंग करनेसे उसकी आर्थिक स्थिति जड़मूलसे नष्ट हो सकती है। और धैर्य रखनेवाले पाठक आगे चल कर देखेंगे कि इस बिलकी कुछ धाराओंको भंग करनेसे हिन्दुस्तानियोंको देशनिकालेकी सजा भी हुई थी। हिन्दुस्तानमें जरायम-पेशा जातियोंके लिए कुछ कड़े कानून हैं। इस बिलकी तुलना उन कानूनोंके साथ आसानीसे हो सकती है; और तुलना करने पर सब मिलाकर यह बिल सख्तीमें उन कानूनोंसे किसी भी प्रकार घटिया नहीं कहा जा सकता। इस बिलमें हाथोंकी दसों अंगुलियोंकी छाप लेनेकी जो धारा थी, वह तो दक्षिण अफ्रीकामें बिलकुल नई ही चीज थी। मुझे इस सम्बन्धमें कुछ साहित्य पढ़ना चाहिये, ऐसा सोचकर मैं एक पुलिस अधिकारी श्री हेनरीकी लिखी 'फिंगर इम्प्रेशन्स' (अंगुलियोंकी निशानियां) नामक पुस्तक पढ़ गया। उसमें मैंने देखा कि इस प्रकार अंगुलियोंकी छाप कानूनन् तो केवल अपराधियोंकी ही ली जाती है। इसलिए जबरदस्ती हिन्दुस्तानियोंकी दस अंगुलियोंकी छाप लेनेकी बात मुझे अत्यन्त भयंकर लगी। स्त्रियों और सोलह वर्षके भीतरके बालकोंके परवानोंकी प्रथा भी इस बिलके द्वारा पहले-पहल दाखिल की गई थी।

दूसरे दिन अग्रगण्य हिन्दुस्तानियोंको एकत्र करके मैंने उन्हें यह बिल अक्षरशः समझाया। इसके फलस्वरूप उन लोगों पर बिलका वही असर हुआ, जो मुझ पर हुआ था। उनमें से एक मित्र तो जोशमें आकर बोल उठे: "मेरी पत्नीसे जो आदमी परवाना मांगने आयेगा, उसे मैं तो वहींका वहीं गोलीसे उड़ा दूंगा। भले बादमें मेरा जो भी होना हो होता रहे।" मैंने उन्हें शांत किया। फिर सबसे कहा: "यह संकट बड़ा गंभीर है। यह बिल अगर पास हो गया और हमने उसे स्वीकार कर लिया, तो उसका अनुकरण समूचे दक्षिण अफ्रीकामें होगा। मुझे तो

दक्षिण अफ्रीकामें हमारी हस्तीको मिटाना ही उसका एकमात्र उद्देश्य मालूम होता है। यह बिल इस दिशामें उठाया जानेवाला कोई अन्तिम कदम नहीं है, परन्तु हमें सता सता कर दक्षिण अफ्रीकासे भगा देनेका पहला कदम है। इसलिए हमारी जिम्मेदारी केवल ट्रान्सवालमें बसनेवाले दस-पन्द्रह हजार हिन्दुस्तानियोंकी सुरक्षितता तक ही सीमित नहीं है; उसमें दक्षिण अफ्रीकामें बसी हुई समस्त हिन्दुस्तानी कौमकी सुरक्षितताका समावेश होता है। और, यदि हम इस बिलका गूढ़ अर्थ पूरी तरह समझ लें, तब तो सारे हिन्दुस्तानकी प्रतिष्ठाको बचानेकी जिम्मेदारी भी हम पर आ जाती है। क्योंकि इस बिलसे केवल हमारा ही अपमान नहीं होता, परन्तु सारे हिन्दुस्तानका अपमान होता है। अपमानका अर्थ ही है निर्दोष मनुष्यके स्वाभिमानका भंग होना। हम ऐसे कानूनके पात्र हैं, यह कोई भी नहीं कह सकता। हम निर्दोष हैं; और हिन्दुस्तानी प्रजाके एक भी निर्दोष सदस्यका अपमान समस्त प्रजाका अपमान है। इसलिए ऐसे कठिन अवसर पर हम यदि उतावली करेंगे, अधीर बन जायंगे और गुस्सा करेंगे, तो केवल इतना करनेसे हम इस आक्रमणसे बच नहीं सकेंगे। परन्तु यदि हम शांतिसे अपनी रक्षाके उपाय खोजकर समय पर उन्हें काममें लेंगे, एक होकर रहेंगे और अपमानका विरोध करने पर आ पड़नेवाले दुःख भी सहन करेंगे, तो मेरा विश्वास है कि ईश्वर स्वयं हमारी सहायता करेगा।" सब कोई बिलकी गंभीरताको समझ गये। यह निर्णय किया गया कि एक सार्वजनिक सभा की जाय, जिसमें कुछ प्रस्ताव रखे जायं और उन्हें पास किया जाय। इसके लिए यहूदियोंकी एक नाटक-शाला किराये पर ली गई और वहां सभा की गई।

अब पाठक समझ सकेंगे कि इस प्रकरणके शीर्षकमें उपर्युक्त बिलको 'खूनी कानून' क्यों कहा गया है। इस प्रकरणके लिए 'खूनी' विशेषणकी योजना मैंने नहीं की है। परन्तु यह विशेषण दक्षिण अफ्रीकामें ही इस कानूनका परिचय करानेके लिए प्रचलित हो गया था।

१२

सत्याग्रहका जन्म

यहूदियोंकी उस नाटक-शालामें ११ सितम्बर, १९०६ को हिन्दुस्तानियोंकी सभा हुई। ट्रान्सवालके भिन्न भिन्न शहरोंसे प्रतिनिधियोंको सभामें बुलाया गया। परन्तु मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि जो प्रस्ताव मैंने तैयार किये थे, उनका पूरा अर्थ तो मैं खुद भी उस समय समझ नहीं पाया था। मैं इस बातका अनुमान भी उस समय नहीं लगा सका था कि उन प्रस्तावोंको पास करनेके परिणाम क्या आयेंगे। सभा हुई। नाटक-शालामें पांव रखनेकी भी जगह न रही। सब लोगोंके चेहरों पर मैं यह भाव देख सकता था कि कुछ नया काम हमें करना है, कुछ नयी बात होनेवाली है। ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके अध्यक्ष श्री अब्दुल गनी सभाके सभापति-पद पर आसीन थे। वे ट्रान्सवालके बहुत ही पुराने हिन्दुस्तानी निवासियोंमें से एक थे। वे महमद कासम कमरुद्दीन नामक विख्यात पेढ़ीके साझेदार थे और उसकी जोहानिसबर्गकी शाखाके व्यवस्थापक थे। सभामें जितने प्रस्ताव पास हुए थे उनमें सच्चा प्रस्ताव तो एक ही था। उसका आशय इस प्रकार था: 'इस बिलके विरोधमें सारे उपाय किये जानेके बावजूद यदि वह धारासभामें पास हो ही जाय, तो हिन्दुस्तानी उसके सामने हार न मानें और हार न माननेके फलस्वरूप जो जो दुःख भोगने पड़ें उन सबको बहादुरीसे सहन करें।'

यह प्रस्ताव मैंने सभाको अच्छी तरह समझा दिया। सभाने शांतिसे मेरी बात सुनी। सभाका सारा कामकाज हिन्दीमें या गुजरातीमें ही चला, इसलिए किसीको कोई बात समझमें न आये ऐसा तो हो ही नहीं सकता था। हिन्दी न समझनेवाले तामिल और तेलुगु भाइयोंको इन भाषाओंके बोलनेवाले लोगोंने सारी बातें पूरी तरह समझा दी। नियमानुसार प्रस्ताव सभाके समक्ष रखा गया। अनेक वक्ताओंने उसका

समर्थन भी किया। उनमें एक वक्ता सेठ हाजी हबीब थे। वे भी दक्षिण अफ्रीकाके बहुत पुराने और अनुभवी निवासी थे। उनका भाषण बड़ा जोशीला था। आवेशमें आकर वे यहां तक बोल गये कि, "यह प्रस्ताव हमें खुदाको हाजिर मान कर पास करना चाहिये। हम नामर्द बनकर ऐसे कानूनके सामने कभी न झुकें। इसलिए मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि इस कानूनके सामने मैं कभी सिर नहीं झुकाऊंगा। मैं इस सभामें आये हुए सब लोगोंको यह सलाह देता हूं कि वे भी खुदाको हाजिर मानकर ऐसी कसम खायें।"

इस प्रस्तावके समर्थनमें अन्य लोगोंने भी तीखे और जोशीले भाषण किये। जब सेठ हाजी हबीब बोलते बोलते कसमकी बात पर आये, तब मैं चौंका और सावधान हो गया। तभी मुझे अपनी जिम्मेदारीका और हिन्दुस्तानी कौमकी जिम्मेदारीका पूरा भान हुआ। आज तक कौमने अनेक प्रस्ताव पास किये थे। अधिक सोचने-विचारनेके बाद या नये अनुभवोंके बाद उन प्रस्तावोंमें परिवर्तन भी किये गये थे। ऐसे भी मौके आये थे जब प्रस्ताव पास करनेवाले सब लोगोंने उन प्रस्तावों पर अमल नहीं किया। पास किये हुए प्रस्तावोंमें परिवर्तन करना, प्रस्तावोंसे सहमत होनेवाले लोगोंका बादमें उन पर अमल करनेसे इनकार करना आदि सारी दुनियाके सार्वजनिक जीवनके सामान्य अनुभवकी बातें हैं। परन्तु ऐसे प्रस्तावोंमें कोई ईश्वरका नाम बीचमें नहीं लाता। सिद्धान्तकी दृष्टिसे सोचा जाय तो किसी निश्चयमें और ईश्वरका नाम लेकर की गई प्रतिज्ञामें कोई भेद नहीं होना चाहिये। जब बुद्धिशाली मनुष्य सोच-समझ कर कोई निश्चय करता है, तो वह अपने निश्चयसे कभी डिगता नहीं। उसकी दृष्टिमें उस निश्चयका महत्त्व उतना ही होता है जितना कि ईश्वरको साक्षी रखकर की गई प्रतिज्ञाका। लेकिन दुनिया सैद्धान्तिक निर्णयोंके आधार पर नहीं चलती। वह ईश्वरको साक्षी रख कर की गई प्रतिज्ञा और सामान्य निश्चयके बीच महासागर जितना भेद मानती है। *किसी सामान्य निश्चयको बदलनेमें बदलनेवालेको शर्म नहीं आती।* परन्तु ईश्वरको साक्षी रख कर प्रतिज्ञा करनेवाला मनुष्य जब प्रतिज्ञाका भंग करता है, तब वह खुद ही नहीं शरमाता है, समाज भी उसे धिक्कारता

है और पापी मानता है। इस बातने मानव-मनमें इतनी गहरी जड़ जमा ली है कि कानूनकी दृष्टिमें भी कसम खाकर कही गई बात अगर झूठी साबित हो, तो कसम खानेवाला आदमी अपराधी माना जाता है और उसे कड़ी सजा दी जाती है।

ऐसे विचारोंसे भरा हुआ मैं — जिसे गंभीर प्रतिज्ञाओंका काफी अनुभव था और जिसने प्रतिज्ञाओंके मीठे फल जीवनमें चखे थे — सेठ हाजी हबीबके कसमवाले सुझावसे चौंक उठा। मैंने उसके परिणामोंका अनुमान एक क्षणमें लगा लिया। इस घबराहटसे मुझमें उत्साह और जोश पैदा हुआ। और यद्यपि मैं उस सभामें प्रतिज्ञा करने या दूसरोंसे करानेके इरादेसे नहीं गया था, तो भी मुझे सेठ हाजी हबीबका सुझाव बहुत पसंद आया। लेकिन उसके साथ मुझे ऐसा भी लगा कि सभामें आये हुए सब लोगोंको सारे परिणामोंसे परिचित करा देना चाहिये, प्रतिज्ञाका अर्थ सबको स्पष्ट शब्दोंमें समझा देना चाहिये; और उसके बाद वे प्रतिज्ञा कर सकें तो ही उसका स्वागत करना चाहिये और यदि न कर सकें तो मुझे समझ लेना चाहिये कि हिन्दुस्तानी कौमके लोग अभी अन्तिम कसौटी पर चढ़नेको तैयार नहीं हुए हैं। इसलिए मैंने सभापतिसे कहा कि मुझे सेठ हाजी हबीबके कथनका गूढ़ अर्थ सभाको समझानेकी इजाजत दी जाय। मुझे इजाजत मिली और मैं खड़ा हुआ। मैंने जिस प्रकार लोगोंको समझाया उसका सार आज जैसा मुझे याद है उस रूपमें नीचे देता हूं:

"मैं इस सभाको यह समझाना चाहता हूं कि आज तक हम लोगोंने जो प्रस्ताव जिस रीतिसे पास किये हैं, उन प्रस्तावों और उन्हें पास करनेकी रीतिमें तथा इस प्रस्ताव और इसे पास करनेकी रीतिमें बहुत बड़ा भेद है। यह प्रस्ताव बहुत गंभीर है, क्योंकि इसके संपूर्ण अमल पर दक्षिण अफ्रीकामें हमारी हस्तीका आधार है। इस प्रस्तावको पास करनेकी जो रीति हमारे मित्रने सुझाई है, वह जैसे गंभीर है वैसे ही नई भी है। मैं स्वयं तो इस रीतिसे यह प्रस्ताव पास करानेके इरादेसे यहां नहीं आया था। इसका श्रेय केवल सेठ हाजी हबीबको ही मिलना चाहिये और इसकी जिम्मेदारीका भार भी उन्हींके सिर पर है। मैं उन्हें

इसके लिए अभिनन्दन देता हूं। उनका सुझाव मुझे बहुत पसन्द आया है। लेकिन अगर उनका सुझाव आप स्वीकार करें, तो उनकी जिम्मेदारीमें आप सब भी साझेदार बन जायंगे। यह जिम्मेदारी क्या है, इसे आपको समझ ही लेना चाहिये; और कौमके सलाहकार और सेवकके नाते मेरा धर्म है कि यह जिम्मेदारी मैं आपको पूरी तरह समझा दूं।

"हम सब एक ही सरजनहार परमात्मामें विश्वास करते हैं। भले ही मुसलमान उसे खुदा कहें और हिन्दू उसे ईश्वर कहें, लेकिन उसका स्वरूप एक ही है। उस ईश्वरको साक्षी रख कर या हमारे बीच रख कर यदि हम प्रतिज्ञा करें या कसम खायें, तो यह मामूली बात नहीं है। ऐसी कसम खाकर यदि हम अपनी प्रतिज्ञा पर डटे न रहें, उसका भंग करें, तो हम कौमके, दुनियाके और ईश्वरके अपराधी बनेंगे। मैं तो यह मानता हूं कि जो मनुष्य सावधान रह कर, शुद्ध बुद्धिसे, प्रतिज्ञा करता है और बादमें उसे भंग करता है, वह अपनी इन्सानियत अथवा मनुष्यता खो देता है। और जिस प्रकार पारा चढ़ाया हुआ तांबेका सिक्का रुपया नहीं है यह पता चलते ही उसकी कोई कीमत नहीं रह जाती, बल्कि उस खोटे सिक्केका मालिक सजाका पात्र हो जाता है, उसी प्रकार झूठी कसम खानेवाले आदमीकी भी कोई कीमत नहीं रह जाती; साथ ही वह इहलोक तथा परलोक दोनोंमें सजाका पात्र ठहरता है। सेठ हाजी हबीब ऐसी ही गम्भीर कसम खानेकी बात सुझाते हैं। इस सभामें ऐसा एक भी आदमी नहीं है, जो बालक या बेसमझ कहा जाय। आप सब प्रौढ़ हैं, अनुभवी हैं। आपने दुनिया देखी है, आपमें से कई लोग कौमके प्रतिनिधि हैं, और आपमें से बहुतसे लोगोंने कम-ज्यादा जिम्मेदारीके काम भी किये हैं। इसलिए इस सभाका एक भी आदमी ऐसा कहकर अपनी प्रतिज्ञासे मुकर नहीं सकता कि 'मैंने बिना समझे यह प्रतिज्ञा की थी।'

"मैं जानता हूं कि प्रतिज्ञायें और व्रत किसी अत्यन्त महत्त्वके अवसर पर ही लिये जाते हैं, और लिये जाने चाहिये। चलते-फिरते प्रतिज्ञा लेनेवाला मनुष्य उनके पालनमें दृढ़ नहीं रह पाता है। यदि दक्षिण अफ्रीकाकी हिन्दुस्तानी कौमके सामाजिक

लेने योग्य किसी अवसरकी मैं कल्पना कर सकूं, तो वह निश्चित रूपसे यही अवसर है। ऐसे कदम अत्यन्त सावधानीसे और डर-डर कर उठाये जायं, इसीमें बुद्धिमानी है। लेकिन सावधानी और डरकी भी एक सीमा होती है। उस सीमा तक अब हम पहुंच गये है। सरकारने सभ्यताकी मर्यादाका त्याग कर दिया है। उसने हमारे चारों ओर दावानल सुलगा दिया है। ऐसे समय भी अगर हम अपना सब-कुछ दांव पर न लगा दें और हाथ पर हाथ धरकर सोच-विचारमें ही पड़े रहें, तो हम अयोग्य और कायर सिद्ध होंगे। इसलिए यह अवसर कसम खाने या प्रतिज्ञा लेनेका है, इसमें मुझे कोई शका नहीं है। परन्तु यह कसम खानेकी शक्ति हममें है या नही, यह तो प्रत्येक हिन्दुस्तानीको अपने लिए सोच लेना होगा। ऐसे प्रस्ताव बहुमतसे पास नही हुआ करते। जितने लोग कसम खाते हैं उतने ही उस कसमसे बधते हैं। ऐसी कसमें दिखावेके लिए कभी नही खाई जाती। उसका असर स्थानीय सरकार पर, बड़ी (साम्राज्य) सरकार पर या भारत सरकार पर कैसा पड़ेगा, इसका कोई जरा भी विचार न करे। हरएकको अपने हृदय पर हाथ रखकर अपने हृदयकी ही जांच करनी चाहिये। और ऐसा करनेके बाद यदि उसकी अन्तरात्मा उत्तर दे कि कसम खानेकी शक्ति उसमें है, तो ही उसे कसम खानी चाहिये, और तभी उसकी कसम फल देनेवाली सिद्ध होगी।

"अब दो शब्द इसके परिणामोंके बारेमें भी कह दू। उत्तम आशा रखते हुए तो ऐसा कहा जा सकता है कि अगर हिन्दुस्तानी कौमका बड़ा भाग यह कसम खा सके और कसम खानेवाले सब लोग अपनी कसम पर डटे रहें, तो सभवत. यह बिल पास न हो; और अगर पास हो भी जाय, तो तुरन्त रद कर दिया जाय। संभव है कि बिलका विरोध करनेकी कसम खानेसे हमें बहुत कष्ट न सहने पड़ें। यह भी हो सकता है कि हमें जरा भी कष्ट न सहना पड़े। लेकिन कसम खानेवाले व्यक्तिका धर्म एक ओर यदि श्रद्धासे आशा रखनेका है, तो दूसरी ओर किसी भी तरहकी आशा न रखकर कसम खानेको तैयार रहनेका है। इसीलिए हमारी लड़ाईके जो कड़वेसे कड़वे परिणाम आ सकते है, उनका चित्र मैं सभाके सामने खीचना चाहता हूं। मान लीजिये कि सभामें आये हुए हम

सब लोग कसम खायें। हमारी संख्या अधिकसे अधिक तीन हजार होगी। यह भी संभव है कि बाकीके दस हजार हिन्दुस्तानी यह कसम न खायें। शुरूमें तो हमारी हंसी ही होगी। इसके सिवा, इस सारी चेतावनीके बावजूद यह बिलकुल संभव है कि कसम खानेवाले लोगोंमें से कुछ या बहुतसे लोग पहली कसौटीमें ही कमजोर मालूम पड़े। संभव है कि हमें जेलमें जाना पड़े; जेलमें जाकर अपमान सहने पड़ें। वहां हमें भूख, ठंड और धूपका कष्ट भी भोगना पड़ सकता है; कड़ी मेहनत भी करनी पड़ सकती है। संभव है, जेलमें उद्धत दारोगाओंकी मार भी हमें खानी पड़े। हमारा जुर्माना हो सकता है और माल-सामान जब्त होकर नीलाम भी किया जा सकता है। अगर लड़नेवाले बहुत कम रह जायें, तो आज हमारे पास बहुत पैसा होने पर भी कल हम बिलकुल कंगाल बन सकते हैं। हमें देशनिकालेकी सजा भी हो सकती है। और भूखों मरते मरते व जेलके दूसरे कष्ट भोगते भोगते हममें से कुछ लोग बीमार भी पड़ सकते हैं और कुछ मर भी सकते हैं। इसलिए संक्षेपमें कहा जाय तो यह बिलकुल असंभव नहीं कि हम जितने भी दुःखों और कष्टोंकी कल्पना कर सकते हैं उतने सब हमें भोगने पड़ें। इसलिए बुद्धिमानीकी बात यही होगी कि यह सब हमें सहना पड़ेगा ऐसा मानकर ही हम कसम खायें। मुझसे कोई पूछे कि इस लड़ाईका अन्त क्या होगा और कब होगा, तो मैं कह सकता हूं कि सारी कौम यदि इस कसौटीमें से पूरी तरह पार हो जाय, तो लड़ाईका फैसला तुरन्त हो जायगा। परन्तु यदि हममें से बहुत लोग कष्टोंकी आंधी आने पर गिर जायं या फिसल जायें, तो यह लड़ाई लम्बी चलेगी। फिर भी इतना तो मैं साहस और निश्चयके साथ कह सकता हूं कि जब तक मुट्ठीभर लोग भी अपनी प्रतिज्ञाको जीवित रखनेवाले होंगे तब तक हमारी इस लड़ाईका एक ही अंत आयेगा। वह यह कि लड़ाईमें हमारी निश्चित विजय होगी।

"अब मैं अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारीके बारेमें दो शब्द कह दूं। यदि एक ओर मैं आपको प्रतिज्ञा लेनेमें रहे खतरे बता रहा हूं, तो दूसरी ओर मैं आपको कसम खानेकी प्रेरणा भी दे रहा हूं। और ऐसा करते हुए मैं अपनी जिम्मेदारीको अच्छी तरह समझ रहा हूं। यह भी हो

सकता है कि आजके आवेशके कारण या गुस्सेके कारण इस सभामें उपस्थित लोगोंका बड़ा भाग प्रतिज्ञा ले ले, परन्तु संकटके समय निर्बल सिद्ध हो और केवल मुट्ठीभर लोग ही अंतिम अग्नि-परीक्षाका सामना करनेके लिए रह जाय। उस स्थितिमें भी मेरे जैसेके लिए तो एक ही मार्ग रह जायगा: 'मर जाना किन्तु कानूनके सामने सिर न झुकाना।' मान लीजिये कि ऐसी स्थिति आ जाय — ऐसा होनेकी जरा भी संभावना नहीं है, फिर भी हम मान लें — जब सारे लोग अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दें और मैं अकेला ही रह जाऊं, तो भी मेरा विश्वास है कि मैं अपनी प्रतिज्ञाका भंग नहीं करूंगा। मेरे इस कथनका उद्देश्य आप सब समझ लें। यह अभिमानकी बात नहीं है, परन्तु मुख्यत: इस मंच पर बैठे हुए हिन्दुस्तानी नेताओंको सावधान करनेकी बात है। अपना उदाहरण लेकर मैं नेताओंसे नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि आपमें अकेले रह जाने पर भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहनेका निश्चय अथवा वैसा करनेकी शक्ति न हो तो आप प्रतिज्ञा न लें; इतना ही नहीं, लोगोंके सामने यह प्रस्ताव रखा जाय और वे प्रतिज्ञा लें उससे पहले लोगोंके सामने आप अपना विरोध प्रकट करें और स्वयं उस प्रस्तावका समर्थन न करें। यद्यपि हम सब साथ मिलकर यह प्रतिज्ञा लेना चाहते हैं, फिर भी कोई इसका यह अर्थ न करे कि हममें से कोई एक या बहुतेरे लोग अपनी प्रतिज्ञाका भंग कर दें, तो बाकीके लोग स्वभावत: उसके बन्धनसे मुक्त हो सकते हैं। सब कोई अपनी अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरह समझ कर स्वतंत्र रूपसे ही प्रतिज्ञा लें और यह समझ कर लें कि दूसरे लोग कुछ भी करें, हम तो मरते दम तक उसका पालन करेंगे।"

इतनी बात कहकर मैं बैठ गया। लोगोंने संपूर्ण शांति रखकर मेरा एक-एक शब्द सुना। कौमके दूसरे नेता भी बोले। सबने अपनी जिम्मेदारी तथा श्रोताओंकी जिम्मेदारीकी चर्चा की। इसके बाद सभापति खड़े हुए। उन्होंने भी सारी स्थिति स्पष्ट की। अंतमें समस्त सभाने खड़े होकर, हाथ ऊंचे करके और ईश्वरको साक्षी रखकर यह प्रतिज्ञा ली कि 'बिल पास होकर यदि कानूनका रूप ले ले तो हम उसके सामने सिर नहीं झुकायेंगे।' उस दृश्यको मैं जीवनमें कभी भूल नहीं

सकता। लोगोंके उत्साहका पार न था। दूसरे ही दिन उस नाटक-शालामें कोई दुर्घटना घटी और सारी नाटक-शाला आगमें जलकर खाक हो गई। तीसरे दिन लोग मेरे पास नाटक-शालाके जलनेके समाचार लेकर आये और यह कह कर कौमको बधाई देने लगे कि नाटक-शालाका जलना एक शुभ शकुन है; जिस तरह नाटक-शाला जलकर खाक हो गई उसी तरह वह बिल भी जलकर खाक हो जायगा। ऐसे चिह्नोंका मुझ पर कभी असर नहीं हुआ, इसलिए मैंने इस घटनाको कोई महत्त्व नहीं दिया। इस बातका उल्लेख मैंने यहां केवल लोगोंके शौर्य और श्रद्धाका दर्शन करानेके लिए ही किया है। हिन्दुस्तानी कौमके शौर्य और श्रद्धाके अनेक प्रमाण आगेके प्रकरणोंमें पाठकोंके सामने आयेंगे।

ऊपरकी महान सभा होनेके बाद कार्यकर्ता चुपचाप बैठे न रहे। जगह-जगह सभायें की गईं और हर सभामें सर्वानुमतिसे प्रतिज्ञायें ली गईं। अब 'इंडियन ओपीनियन' में खूनी कानून ही चर्चाका मुख्य विषय बन गया।

दूसरी ओर, स्थानीय सरकारसे मिलनेके कदम भी उठाये गये। एक प्रतिनिधि-मंडल उपनिवेश-मंत्री श्री डंकनसे मिलने गया और अन्य बातोंके साथ उसने कौमके लोगों द्वारा ली गई प्रतिज्ञाकी बात भी उनसे कही। सेठ हाजी हबीबने, जो प्रतिनिधि-मंडलके एक सदस्य थे, कहा: "अगर मेरी पत्नीकी अंगुलियोंकी छाप लेने कोई अधिकारी आयेगा, तो मैं अपने गुस्सेको जरा भी काबूमें नहीं रख सकूंगा। मैं उसे जानसे मार दूंगा और खुद भी मर जाऊंगा।" उपनिवेश-मंत्री क्षणभर तो सेठ हाजी हबीबके मुंहकी ओर देखते रहे। फिर बोले: "यह कानून स्त्रियों पर लागू किया जाय या न किया जाय, इस प्रश्न पर सरकार सोच रही है। और इतना विश्वास तो मैं इसी समय आपको दिला सकता हूं कि स्त्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कानूनकी धारायें वापस ले ली जायंगी। इस सम्बन्धमें आपकी भावनाओंको सरकार समझ गई है और वह उनका सम्मान करना चाहती है। परन्तु जहां तक दूसरी धाराओंका सम्बन्ध है, मुझे यह बताते हुए दुःख होता है कि सरकार उनके विषयमें दृढ़ है और आगे भी दृढ़ रहेगी। जनरल बोथा चाहते हैं कि

आप पूरा विचार करके यह कानून स्वीकार कर लें। सरकार गोरोंके अस्तित्वके लिए इस कानूनको जरूरी मानती है। कानूनके उद्देश्योंकी रक्षा करते हुए उसकी तफसीलोंके बारेमें आप कोई सुझाव रखेंगे, तो सरकार अवश्य उन पर ध्यान देगी। इसलिए प्रतिनिधि-मंडलको मेरी सलाह है कि इस कानूनको स्वीकार करके आप तफसीलोंके बारेमें ही अपने सुझाव सरकारके समक्ष रखेंगे तो आपका हित होगा।" उपनिवेश-मन्त्रीके साथ प्रतिनिधि-मंडलकी जो दलीलें हुईं उन्हें मैं यहां नहीं दे रहा हूं, क्योंकि ये सब दलीलें पिछले प्रकरणोंमें आ चुकी हैं। उपनिवेश-मंत्रीके समक्ष इन दलीलोंको प्रस्तुत करनेमें केवल भाषाका ही भेद था — दलीलें सब वही थीं। प्रतिनिधि-मंडलने यह कहकर कि आपकी सलाहके बावजूद कोई हिन्दुस्तानी इस कानूनको स्वीकार नहीं करेगा और स्त्रियोंको कानूनसे मुक्त रखनेके इरादेके लिए सरकारका आभार मानकर उपनिवेश-मंत्रीसे विदा ली। यह कहना कठिन है कि इस खूनी कानूनसे स्त्रियोंकी मुक्ति हिन्दुस्तानी कौमके आन्दोलनके कारण हुई या सरकारने ही अधिक सोच-विचार कर श्री कर्टिसकी वैज्ञानिक पद्धतिको अस्वीकार कर दिया और कुछ हद तक लौकिक व्यवहारको नजरमें रखकर यह छूट दी। सरकारका दावा यह था कि वह हिन्दुस्तानी कौमके आन्दोलनके कारण नहीं परन्तु स्वतंत्र रूपसे ही इस निर्णय पर पहुंची थी। जो भी हो, परन्तु कौमने तो काकतालीय न्यायसे यह मान लिया कि केवल उसके आन्दोलनका ही यह परिणाम आया है; और इससे उसका लड़नेका उत्साह बढ़ गया।

हममें से कोई यह जानता नहीं था कि कौमके इस निश्चयको अथवा आन्दोलनको क्या नाम दिया जा सकता है। उस समय मैंने इस आन्दोलनको 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का नाम दिया था। उस समय तो मैं 'पैसिव रेजिस्टेन्स' का गूढ़ार्थ भी पूरी तरह जानता या समझता नहीं था। मैं केवल इतना ही समझा था कि किसी नवीन सिद्धान्तका जन्म हुआ है। हमारी लड़ाई ज्यों ज्यों आगे बढ़ती गई त्यों त्यों 'पैसिव रेजिस्टेन्स' नामके कारण उलझन बढ़ती गई और इस महान संग्रामको केवल अंग्रेजी नाम ही देना मुझे लज्जास्पद लगा। इसके सिवा, ये शब्द ऐसे थे जो

कौमकी जबान पर चढ़ भी नहीं सकते थे। इसलिए जो कोई इस संग्रामके लिए उत्तम शब्द खोज निकाले उसके लिए मैंने 'इंडियन ओपीनियन' में एक छोटेसे इनामकी घोषणा की। कुछ नाम मेरे पास आये। उस समय तक 'इंडियन ओपीनियन' में इस लड़ाईके अर्थकी अच्छी तरह चर्चा हो चुकी थी। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रतिस्पर्धियोंके सामने नामकी खोज करनेके लिए पूरी सामग्री थी। श्री मगनलाल गांधीने भी इस स्पर्धामें भाग लिया। उन्होंने 'सदाग्रह' नाम भेजा। यह नाम पसंद करनेका कारण बताते हुए उन्होंने लिखा कि हिन्दुस्तानियोंका यह आन्दोलन एक महान 'आग्रह' है और यह आग्रह 'सद्' अर्थात् शुभ है, इसीलिए उन्होंने यह नाम चुना है। उनकी दलीलका सार यहां मैंने थोड़ेमें दिया है। यह नाम मुझे पसद आया। परन्तु जिस वस्तुका समावेश मैं सुझाये हुए नाममे करना चाहता था वह इसमें नहीं आती थी। इसलिए मैंने 'द्' का 'त्' करके उसमें 'य' जोड़ दिया और 'सत्याग्रह' नाम बना दिया। सत्यके भीतर शांतिका समावेश मानकर और किसी भी वस्तुका आग्रह करनेसे उसमें बल उत्पन्न होता है इसलिए आग्रहमें बलका समावेश करके मैंने भारतीयोंके इस आन्दोलनको 'सत्याग्रह'—अर्थात् सत्य और शांतिसे उत्पन्न होनेवाले बल—का नाम दिया और उसी नामसे इसका परिचय कराया। और तबसे 'पैसिव रेजिस्टेन्स' शब्दका उपयोग इस आन्दोलनके लिए बन्द कर दिया। वह भी इस हद तक कि अंग्रेजीके लेखों या पत्रोंमें भी बहुत बार 'पैसिव रेजिस्टेन्स' शब्दका उपयोग न करके मैंने 'सत्याग्रह' शब्दका या किसी दूसरे अंग्रेजी शब्दका उपयोग शुरू कर दिया। इस प्रकार जो वस्तु सत्याग्रहके नामसे पहचानी जाने लगी उस वस्तुका और 'सत्याग्रह' नामका जन्म हुआ। हमारे इस इतिहासको आगे बढ़ानेसे पहले ही 'पैसिव रेजिस्टेन्स' और 'सत्याग्रह' के बीचका भेद समझ लेना आवश्यक है। इसलिए अगले प्रकरणमें हम इस भेदको समझ लेंगे।

१३
सत्याग्रह बनाम 'पैसिव रेज़िस्टेन्स'

हिन्दुस्तानी कौमका आन्दोलन जैसे जैसे आगे बढ़ता गया वैसे वैसे अंग्रेज भी उसमें दिलचस्पी लेने लगे। मुझे इतना कह देना चाहिये कि यद्यपि ट्रान्सवालके अंग्रेजी अखबार अधिकतर खूनी कानूनके पक्षमें ही लिखते थे और गोरों द्वारा किये जानेवाले हिन्दुस्तानियोंके विरोधका समर्थन करते थे, फिर भी कोई प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी उन अखबारोंके लिए कुछ लिखते तो वे खुशीसे छापते थे। हिन्दुस्तानियों द्वारा सरकारके पास भेजी जानेवाली अरजियां भी वे पूरी छापते थे अथवा कमसे कम उनका सार अवश्य देते थे। हिन्दुस्तानियोंकी बड़ी सभाओंमें कभी कभी वे अपने रिपोर्टरोंको भेजते थे और वैसा न करते तब हमारी भेजी हुई संक्षिप्त रिपोर्ट छापते थे।

अखबारोंका इस प्रकारका सौजन्यपूर्ण व्यवहार कौमके लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। और हमारा आन्दोलन आगे बढ़ने पर कुछ गोरे भी उसमें रस लेने लगे। ऐसे अग्रगण्य गोरे नेताओंमें जोहानिसबर्गके एक लखपती श्री हॉस्किन भी थे। उनके मनमें रंगद्वेष तो पहलेसे ही नहीं था। लेकिन कौमका आन्दोलन शुरू हुआ उसके बाद वे हिन्दुस्तानियोंके प्रश्नमें अधिक रस लेने लगे। जमिस्टन जोहानिसबर्गके उपनगर जैसा एक शहर है। वहांके गोरोंने मेरा भाषण सुननेकी इच्छा बताई। एक सभा की गई। श्री हॉस्किन उसके सभापति बने और मैंने भाषण किया। सभामें श्री हॉस्किनने हिन्दुस्तानियोंके आन्दोलनका और मेरा परिचय कराते हुए कहा: "ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंने न्यायप्राप्तिके अन्य उपाय असफल सिद्ध होने पर 'पैसिव रेज़िस्टेन्स'का आश्रय लिया। उन्हें मतदानका अधिकार नहीं है। उनकी संख्या थोड़ी है। वे कमजोर हैं। उनके पास हथियार नहीं हैं। इसलिए उन्होंने 'पैसिव रेज़िस्टेन्स', जो कमजोरोंका हथियार है, ग्रहण किया है।" उनकी यह बात सुनकर मैं चौंक उठा और

जो भाषण करने मैं सभामें गया था उसने दूसरा ही रूप पकड़ लिया। वहां मैंने श्री हॉस्किनकी दलीलका विरोध करके 'पैसिव रेजिस्टेन्स' को 'सोल-फोर्स' अर्थात् आत्मबलका नाम दिया। उस सभामें मैंने यह समझ लिया कि 'पैसिव रेजिस्टेन्स' शब्दके उपयोगसे भयंकर गलतफहमी

वतंत्रता दिव



होने पर भी उनके उपयोगका विरोध करते। इंग्लैंडकी स्त्रियोंके आन्दोलनमें उन्हें मतदानका अधिकार नहीं था। सख्यामें और शरीर-बलमें भी वे कमजोर थी। इसलिए यह दूसरा उदाहरण भी श्री हॉस्किनकी दलीलोंका समर्थन करता था। स्त्रियोंके मताधिकार सम्बन्धी आन्दोलनमें हथियारोंके उपयोगका त्याग नहीं किया गया था। स्त्रियोंके एक दलने मकान भी जलाये थे और पुरुषों पर आक्रमण भी किये थे। मैं नहीं मानता कि उन्होंने किसी दिन किसी आदमीका खून करनेका इरादा किया हो। परन्तु मौका आने पर लोगोंको मारने-पीटनेका और इस तरह लोगोंको थोड़ा-बहुत परेशान करनेका इरादा तो उनका था ही।

लेकिन दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी आन्दोलनमें हथियारोंका किसी भी जगह और कैसी भी स्थितिमें कोई स्थान नहीं था; और जैसे जैसे हम आगे बढ़ेंगे वैसे वैसे पाठक देखेंगे कि भयंकर दुःख पड़ने पर भी सत्याग्रहियोंने कभी शरीर-बलका उपयोग नहीं किया। और वह भी ऐसे समय जब वे उस बलका सफलतापूर्वक उपयोग करनेकी स्थितिमें थे। इसके सिवा, हिन्दुस्तानियोंको मताधिकार नहीं था और वे कमजोर थे, ये दोनों बाते सच हैं। परन्तु सत्याग्रह आन्दोलनके संगठनके साथ इन बातोंका कोई सम्बन्ध नहीं था। इससे मैं यह नहीं कहना चाहता कि हिन्दुस्तानी कौमके हाथमें मताधिकारका बल होता अथवा हथियारोंका बल होता, तो भी वह सत्याग्रह ही करती। मताधिकारका बल उसके पास होता तो शायद सत्याग्रहके लिए कोई अवकाश ही न रह जाता। अगर उसके पास हथियारोंका बल होता, तो विरोधी पक्ष अवश्य ही सावधान रह कर अपना काम करता। इसलिए हथियारोंका बल रखनेवाले पक्षके सामने सत्याग्रह करनेके अवसर बहुत कम आ सकते हैं, यह भी समझमें आने जैसी बात है। मेरे कहनेका मतलब इतना ही है कि हिन्दुस्तानी कौमके आन्दोलनकी योजना बनाते समय मेरे मनमें तो हथियारोंके उपयोगकी संभावना या असंभावनाका प्रश्न ही खड़ा नहीं हुआ, ऐसा मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं। सत्याग्रह केवल आत्माका बल है; और जहां जितने अंशमें हथियारोंका अर्थात् शरीर-बलका या पशुबलका उपयोग होता है अथवा उसकी कल्पना रहती है वहां उतने

ही अंशमें आत्मबलका कम प्रयोग होता है। मेरी मान्यताके अनुसार ये दोनों शक्तियां शुद्ध विरोधी शक्तियां हैं; और ये विचार सत्याग्रह आन्दोलनके जन्मके समय भी मेरे हृदयमें तो पूरी तरह उतर गये थे।

परन्तु यहां हमें इस बातका निर्णय नहीं करना है कि ये विचार सही हैं या गलत। हमें तो केवल 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' और सत्याग्रहके बीचका भेद समझ लेना है। और हमने देख लिया कि इन दो शक्तियोंमें बहुत बड़ा और बुनियादी भेद है। अतः इस भेदको समझे बिना यदि अपनेको 'पैसिव रेज़िस्टर' अथवा सत्याग्रही माननेवाले लोग परस्पर यह समझें कि हम दोनों एक ही हैं, तो दोनोंके साथ अन्याय होगा और इसके हानिकारक परिणाम भी आयेंगे। हम खुद ही दक्षिण अफ्रीकामें 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' शब्दका उपयोग करते थे। इसलिए मताधिकारके खातिर लड़नेवाली ब्रिटिश स्त्रियोंकी बहादुरी और आत्मत्यागका हम पर आरोपण करके हमारी प्रशंसा करनेवाले लोग बहुत थोड़े थे, परन्तु अधिकतर लोगोंने हमें उन स्त्रियोंकी तरह जान-मालको नुकसान पहुंचानेवाले लोग ही मान लिया था। और श्री हॉस्किनके समान उदार और शुद्ध मनवाले मित्रने भी हमें कमजोर मान लिया। विचारमें इतना बल है कि मनुष्य जैसा अपनेको मानता है वैसा ही अन्तमें वह बन जाता है। यदि हम ऐसा मानते ही रहें और दूसरोंको भी मानने दें कि हम कमजोर हैं इसलिए लाचारीसे 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का उपयोग करते हैं, तो 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' करते हुए हम कभी भी बलवान नहीं बनेंगे और मौका मिलते ही कमजोरोंका वह हथियार हम छोड़ देंगे। इसके विपरीत, यदि हम सत्याग्रही हों और अपनेको बलवान मानकर सत्याग्रहकी शक्तिका उपयोग करें, तो उसके दो परिणाम निश्चित रूपसे आते हैं। बलके ही विचारका पोषण करते करते हम दिनोंदिन अधिक बलवान बनते हैं; और जैसे जैसे हमारा बल बढ़ता जाता है वैसे वैसे सत्याग्रहका तेज भी बढ़ता जाता है और उस शक्तिको छोड़नेका मौका तो हम कभी खोजते ही नहीं। इसके सिवा, 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' में प्रेमकी भावनाके लिए कोई अवकाश नहीं रहता, जब कि सत्याग्रहमें वैरकी भावनाके लिए कोई अवकाश नहीं रहता; इतना ही नहीं, सत्याग्रहमें वैरकी भावना अधर्म

मानी जाती है। 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' में मौका आने पर हथियार-बलका उपयोग किया जा सकता है; सत्याग्रहमें हथियारोंके उपयोगके लिए उत्तमसे उत्तम परिस्थितियां पैदा होने पर भी वे सर्वथा त्याज्य रहते हैं। 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' को अकसर हथियार-बलकी तैयारी माना जाता है, जब कि सत्याग्रहका उपयोग इस तरह कभी किया ही नहीं जा सकता। 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' हथियार-बलके साथ साथ चल सकता है, सत्याग्रह हथियार-बलका संपूर्ण रूपसे विरोधी है; इसलिए दोनोंका कोई मेल हो ही नहीं सकता। अर्थात् सत्याग्रह और हथियार-बल एकसाथ कभी निभ ही नहीं सकते। सत्याग्रहका उपयोग अपने प्रियजनोंके प्रति भी हो सकता है, और होता है। 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का उपयोग प्रियजनोंके प्रति वस्तुतः हो ही नहीं सकता — अर्थात् प्रियजनोंको हम अपने शत्रु मानें तो ही उनके प्रति 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का उपयोग किया जा सकता है। 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' में विरोधी पक्षको दुःख देनेकी और उसे परेशान करनेकी कल्पना हमेशा रहती है और उसे दुःख देते हुए स्वयंको जो दुःख सहना पड़े उसे सहन करनेकी तैयारी होती है; जब कि सत्याग्रहमें विरोधीको दुःख देनेका विचार भी नहीं रहता। उसमें तो स्वयं दुःख मोल लेकर — स्वयं दुःख सह कर विरोधीको जीतनेका विचार ही होता है।

इन दो शक्तियोंके बीच मुख्य भेद ये हैं। मेरे कहनेका यह आशय नहीं है कि 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के जो गुण — अथवा दोष कह लीजिये — मैंने ऊपर गिनाये हैं, उन सबका प्रत्येक 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' में अनुभव होता ही है। लेकिन यह बताया जा सकता है कि 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के अनेक उदाहरणोंमें ये दोष देखे गये हैं। मुझे पाठकोंको यह भी बता देना चाहिये कि अनेक ईसाई ईसा मसीहको 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के आदि नेता कहते हैं। परन्तु ईसा मसीहके उदाहरणमें तो 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का अर्थ केवल सत्याग्रह ही माना जाना चाहिये। इस अर्थमें 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के उदाहरण इतिहासमें बहुत नहीं मिलेंगे। टॉल्स्टॉयने रूसके दुखोबोर लोगोंका जो उदाहरण उद्धृत किया है, वह ऐसे ही 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' का अर्थात् सत्याग्रहका उदाहरण है। ईसा मसीहके बाद जो अत्याचार हजारों ईसाइयोंने सहन किये, उनके लिए उस जमानेमें 'पैसिव

रेज़िस्टेन्स' शब्दका उपयोग होता ही नहीं था। इसलिए उन लोगोंके जितने भी निर्मल उदाहरण मिलते हैं, उन्हें मैं तो सत्याग्रहका ही नाम दूंगा। और यदि हम उन्हें 'पैसिव-रेज़िस्टेन्स' के उदाहरण मानें तब तो 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' और सत्याग्रहमें कोई भेद ही नहीं रहता। इस प्रकरणका उद्देश्य तो यह दिखाना है कि अंग्रेजी भाषामें 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' शब्दका जिस अर्थमें उपयोग किया जाता है, उससे सत्याग्रहकी कल्पना सर्वथा भिन्न है।

'पैसिव रेज़िस्टेन्स' के लक्षण गिनाते हुए मुझे ऊपरकी चेतावनी इस खयालसे देनी पड़ी है कि उस शक्तिका उपयोग करनेवालोंके साथ कोई अन्याय न हो जाय। उसी तरह सत्याग्रहके लक्षण गिनाते हुए यह बताना भी आवश्यक है कि जो लोग अपनेको सत्याग्रही कहते हैं, उनके लिए मैं यह दावा नहीं करता कि उनमें सत्याग्रहके मेरे बताये सारे लक्षण विद्यमान हैं। यह बात मेरी जानकारीसे बाहर नहीं है कि अनेक सत्याग्रही सत्याग्रहके उन गुणोंसे सर्वथा अपरिचित हैं, जिन्हें मैं ऊपर गिना चुका हूं। अनेक लोग ऐसा मानते हैं कि सत्याग्रह कमजोरोंका शस्त्र है। अनेक लोगोंको मैंने यह कहते सुना है कि सत्याग्रह हथियार-बलसे किये जानेवाले विरोधकी तैयारी है। परन्तु मुझे एक बार फिर यह कहना चाहिये कि मैंने यह नहीं बताया है कि सत्याग्रही कैसे गुणोंवाले देखे गये हैं, बल्कि यह बतानेका प्रयत्न किया है कि सत्याग्रहकी कल्पनामें क्या गूढ़ अर्थ भरे हैं और उसके अनुसार सत्याग्रही कैसे होने चाहिये। थोड़ेमें, इस प्रकरणका उद्देश्य यह दिखाना है कि जिस शक्तिका उपयोग ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंने आरंभ किया उस शक्तिको स्पष्ट रूपसे लोगोंको समझानेके लिए और उस शक्तिको 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' कही जानेवाली शक्तिके साथ भ्रमसे मिला न दिया जाय इसकी सावधानी रखनेके लिए हमें उस शक्तिका अर्थ प्रकट करनेवाला शब्द खोजना पड़ा; साथ ही प्रस्तुत प्रकरणका उद्देश्य यह दिखाना भी है कि सत्याग्रहमें उस समय कौन-कौनसे सिद्धान्तोंका समावेश किया गया था।

१४

इंग्लैंडमें प्रतिनिधि-मंडल

ट्रान्सवालमें खूनी कानूनका विरोध करनेके लिए स्थानीय सरकारके सामने अरजियां पेश करने वगैराके जो जो कदम उठाने जरूरी थे वे सब उठा लिये गये थे। ट्रान्सवालकी धारासभाने बिलकी स्त्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली धारा निकाल दी थी। परन्तु बाकीका बिल लगभग उसी रूपमें पास हुआ जिस रूपमें वह सरकारी गजटमें प्रकाशित किया गया था। परन्तु उस समय कौममें बड़ी हिम्मत थी और उतनी ही एकता और एकमत भी था, इसलिए कोई निराश नहीं हुआ। हमारा यह निश्चय अटल रहा कि इस सम्बन्धमें जो भी वैधानिक उपाय करने जरूरी हों वे अवश्य ही किये जाय। उस समय तक ट्रान्सवाल 'क्राउन कॉलोनी' था। 'क्राउन कॉलोनी' का शब्दार्थ है शाही उपनिवेश—अर्थात् ऐसा उपनिवेश जिसके कानूनों, प्रशासन आदिके लिए बड़ी (साम्राज्य) सरकार जिम्मेदार मानी जाय। इसलिए जो कानून शाही उपनिवेशकी धारा-सभा पास करे उसके लिए ब्रिटिश सम्राट्की सम्मति केवल व्यवहार और शिष्टाचारका पालन करनेके लिए ही प्राप्त करनी जरूरी नहीं होती; बहुत बार अपने मंत्रि-मंडलकी सलाहसे सम्राट् ऐसे कानूनोंके लिए अपनी सम्मति देनेसे इनकार भी कर सकता है, जो ब्रिटिश संविधानके सिद्धान्तके विरुद्ध हों। इसके विपरीत, उत्तरदायी शासन (रिस्पॉन्सिबल गवर्नमेन्ट) वाले उपनिवेशोंकी धारासभा जो कानून पास करती है, उनके लिए सम्राट्की सम्मति मुख्यत: केवल शिष्टाचार पूरा करनेके लिए ही ली जाती है।

कौमका प्रतिनिधि-मंडल विलायत जाय तो कौमको अपनी जिम्मेदारी अधिक समझनी होगी, यह बतानेका भार मेरे ही सिर पर था। इसलिए मैंने हमारे एसोसियेशनके सामने तीन सुझाव रखे। पहला, यद्यपि यहूदियोंकी नाटक-शाला (एम्पायर थियेटर) में हुई सभामें हमने प्रतिज्ञाएं ली थी, फिर भी हमें एक बार और प्रमुख हिन्दुस्तानियोंकी व्यक्तिगत

प्रतिज्ञायें प्राप्त कर लेनी चाहियें, ताकि अगर लोगोंके मनमें कोई भी शंका पैदा हुई हो या किसी भी तरहकी कमजोरीने घर किया हो तो उसका हमें पता चल जाय। इस सुझावके समर्थनमें मेरा एक तर्क यह था कि प्रतिनिधि-मंडल सत्याग्रहके बलसे इंग्लैंड जायगा तो निर्भय होकर जायगा और निर्भयतासे हिन्दुस्तानी कौमका निश्चय इंग्लैंडमें उपनिवेश-मंत्री तथा भारत-मंत्रीके सामने प्रकट कर सकेगा। दूसरा सुझाव यह था कि प्रतिनिधि-मडलके खर्चकी पूरी व्यवस्था पहलेसे हो होनी चाहिये। और तीसरा सुझाव यह था कि प्रतिनिधि-मंडलमें कमसे कम सदस्य जानें चाहिये। तीसरा सुझाव मैंने लोगोंमें अकसर पाई जानेवाली इस गलत मान्यताको सुधारनेके लिए दिया था कि प्रतिनिधि-मंडलमें अधिक सदस्योंके जानेसे अधिक कार्य हो सकता है। प्रतिनिधि-मडलमें जानेवाले लोग अपने सम्मानके लिए नहीं परन्तु केवल कौमकी सेवाके लिये जायं, इस विचारको महत्त्व देनेकी और खर्च बचानेकी व्यावहारिक दृष्टि मेरे इस तीसरे सुझावमें थी। मेरे तीनों सुझाव स्वीकार कर लिये गये। लोगोंके हस्ताक्षर लिये गये। अनेक लोगोंने प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किये। लेकिन इस समय मैंने यह बात देखी कि जिन लोगोंने नाटक-शालाकी सभामें मौखिक प्रतिज्ञा की थी, उनमें से भी कुछ लोग प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करनेमें हिचकिचा रहे थे। एक बार जो प्रतिज्ञा ले ली उसे बादमें पचास बार दोहरानेमें भी हमें कोई संकोच नहीं होना चाहियें। फिर भी यह अनुभव किसे नहीं होगा कि लोग सोच-विचार कर जो प्रतिज्ञा लेते हैं, उसमें भी वे ढीले पड़ जाते हैं अथवा मुहसे ली हुई प्रतिज्ञाको लिखित रूप देनेमें घबराते है? प्रतिनिधि-मंडलके खर्चके लिए पैसे भी हमारे अनुमानके अनुसार इकट्ठे हो गये। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई प्रतिनिधियोंके चुनावमें पैदा हुई। मेरा नाम तो उसमें था ही। लेकिन मेरे साथ कौन जाय? इसका निर्णय करनेमें कमेटीने बहुत समय ले लिया। कितनी ही रातें चर्चामें बीत गईं। और संगठनों अथवा संघोंमें जो जो बुरी आदतें ऐसे अवसर पर देखनेमें आती है, उनका हमें पूरा अनुभव हुआ। कुछ लोग कहते कि मैं अकेला ही जाऊं तो सबको संतोष होगा। लेकिन ऐसा करनेसे मैंने साफ इनकार कर दिया। सामान्यतः ऐसा कहा जा सकता है कि

दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दू-मुसलमानका प्रश्न नही था। लेकिन यह दावा नहीं किया जा सकता कि दोनों जातियोंके बीच कोई मतभेद थे ही नही। इन मतभेदोंने कभी जहरीला रूप नही लिया, इसका कारण कुछ हद तक वहांकी विचित्र परिस्थितियां मानी जा सकती हैं। परन्तु इसका सच्चा और निश्चित कारण तो यही है कि हिन्दुस्तानी कौमके नेताओंने सच्ची निष्ठा और शुद्ध हृदयसे अपना कार्य किया और कौमका सुन्दर मार्ग-दर्शन किया। मैंने यह सलाह दी कि मेरे साथ एक मुसलमान सज्जन अवश्य होने चाहिये और प्रतिनिधि-मंडलमें केवल दो ही सदस्य इंग्लैण्ड जाने चाहिये। लेकिन हिन्दुओंकी ओरसे तुरन्त कहा गया कि मैं तो सारी कौमका प्रतिनिधि माना जाऊंगा, इसलिए हिन्दुओंका एक प्रतिनिधि इस मंडलमें होना ही चाहिये। कुछ लोगोंने यह भी कहा कि प्रतिनिधि-मंडलमें एक कोंकणी और एक मेमन मुसलमान होना चाहिये और हिन्दुओंमें से एक पाटीदार, एक अनाविल और इसी तरह दूसरी जातियोंका एक एक सदस्य होना चाहिये। परन्तु अंतमें सब लोग समझ गये और श्री हाजी वजीरअली और मैं — दो ही आदमी एकमतसे चुने गये।

हाजी वजीरअली आधे मलायी कहे जा सकते थे। उनके पिता हिन्दुस्तानी मुसलमान थे और माता मलायी थी। उनकी मातृभाषाको हम डच कह सकते हैं। लेकिन अंग्रेजी शिक्षा भी उन्होंने इस हद तक ली थी कि वे डच और अंग्रेजी दोनों अच्छी तरह बोल सकते थे। अंग्रेजीमें भाषण करते हुए उन्हें कहीं रुकना नहीं पड़ता था। अखबारोंमें पत्र लिखनेकी कलाका भी उन्होंने अच्छा विकास कर लिया था। वे ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके सदस्य थे और लम्बे समयसे सार्वजनिक कार्यमें भाग लेते आ रहे थे। हिन्दुस्तानी भी वे अच्छी तरह बोल सकते थे। एक मलायी महिलाके साथ उनका विवाह हुआ था, जिसके फलस्वरूप वे अनेक संतानोंके पिता थे।

हम दोनों विलायत पहुंचते ही अपने काममें जुट गये। भारत-मंत्रीके सामने पेश की जानेवाली अरजी तो हमने जहाजमें ही तैयार कर ली थी। इंग्लैण्ड पहुंच कर हमने उसे छपवा लिया। उस समय लॉर्ड एल्गिन उपनिवेश-मंत्री थे और लॉर्ड मोर्ले भारत-मंत्री थे। हम दोनों भारतके

दादा श्री दादाभाई नौरोजीसे मिले। फिर उनके मारफत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीसे मिले। उसे हमने अपना केस सुनाया और कहा कि हम सारे पक्षोंको साथ रखकर अपना काम करना चाहते हैं। दादाभाईने तो हमें यह सलाह दी ही थी। ब्रिटिश कमेटीको भी हमारा यह विचार उचित लगा। इसी प्रकार हम लोग सर मंचेरजी भावनगरीसे भी मिले। उन्होंने भी हमारी बहुत मदद की। उनकी और दादाभाईकी यह सलाह थी कि जो प्रतिनिधि-मडल लॉर्ड एलिगनसे मिलने जाय, उसका नेता कोई तटस्थ और विख्यात एंग्लो-इंडियन हो तो अच्छा। सर मंचेरजीने कुछ नाम भी सुझाये। उनमें सर लेपल ग्रिफिनका नाम भी था। मुझे पाठकोंको बता देना चाहिये कि उस समय सर विलियम विल्सन हंटर जीवित नहीं थे। वे जीवित होते तो दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिका गाढ़ परिचय होनेके कारण वे ही उस प्रतिनिधि-मंडलके नेता बने होते अथवा उन्होंने ही लॉर्डसभाके किसी प्रभावशाली महान नेताको मंडलका नेतृत्व करनेके लिए खोज दिया होता।

हम दोनों सर लेपल ग्रिफिनसे मिले। वे हिन्दुस्तानमें चलनेवाले राजनीतिक आन्दोलनोंके खिलाफ थे। परन्तु हमारे इस प्रश्नमें उन्हें बड़ा रस आया। और उन्होंने केवल सौजन्यके खातिर नहीं, परन्तु न्यायदृष्टिसे ही हमारे कार्यमें प्रमुख भाग लेना स्वीकार किया। उन्होंने सारे कागजात पढ़े और हमारे प्रश्नसे वे परिचित हुए। हम दूसरे एंग्लो-इंडियनोंसे भी मिले। ब्रिटिश लोकसभाके अनेक सदस्योंसे मिले और कुछ न कुछ प्रभाव रखनेवाले ऐसे दूसरे सब लोगोंसे भी मिले, जिनसे मिल सकना हमारे लिए संभव था। हमारा प्रतिनिधि-मंडल लॉर्ड एलिगनसे मिला। उन्होंने हमारी सारी बातें ध्यानसे सुनीं, अपनी सहानुभूति प्रकट की, अपनी कठिनाइयां भी बताईं; परन्तु साथ ही यथाशक्ति हमारे लिए सब-कुछ करनेका वचन भी दिया। यही प्रतिनिधि-मंडल लॉर्ड मोर्लेसे भी मिला। उन्होंने भी हमारे प्रश्नके लिए सहानुभूति प्रकट की। उनके उद्गारोंका सार मैं पहले दे चुका हूं। सर विलियम वेडरबर्नके प्रयत्नोंसे ब्रिटिश लोकसभाके ऐसे सदस्योंकी एक सभा लोकसभाके दीवानखानेमें हुई, जिनका सम्बन्ध हिन्दुस्तानके राजकाजसे था। हमने उनके सामने भी

अपना मामला यथाशक्ति प्रस्तुत किया। उस समय आयरिश पार्टीके नेता श्री रेडमंड थे। इसलिए हम खास तौर पर उनसे भी मिलने गये। थोड़ेमें कहा जाय तो हम लोकसभाके सभी पक्षोंके जिन जिन सदस्योंसे मिलना संभव था उन सबसे मिले। इंग्लैण्डमें हमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीकी मदद तो काफी मिली ही। परन्तु वहांके रीति-रिवाजके अनुसार उसमें अमुक पक्षके अथवा अमुक विचारोंके लोग ही शरीक होते थे। उसमें शरीक न होनेवाले ऐसे बहुतसे लोग थे, जो हमारे कार्यमें पूरी सहायता करते थे। उन सबको एक ही स्थान पर एकत्र करके यदि इस कार्यमें लगाया जा सके, तो अधिक अच्छा काम हो सकेगा — ऐसी मान्यता और ऐसे इरादेसे हमने एक स्थायी समिति रचनेका निश्चय किया। हमारा यह विचार सब पक्षोंके लोगोंको पसन्द आया।

प्रत्येक संस्थाका आधार मुख्यत: उसके मंत्री पर रहता है। मंत्री ऐसा होना चाहिये जिसका उस संस्थाके उद्देश्यों और ध्येयों पर पूर्ण विश्वास हो, इतना ही नहीं, परन्तु जिसमें उसके उद्देश्यों और ध्येयोंकी सिद्धिके लिए अपना लगभग संपूर्ण समय देनेकी शक्ति हो और संस्थाका कार्य करनेकी योग्यता हो। श्री एल० डब्ल्यू० रिचमें ये सारे गुण थे। वे दक्षिण अफ्रीकाके ही थे और मेरे ऑफिसमें क्लार्क रह चुके थे। इस समय वे लन्दनमें बैरिस्टरीका अध्ययन करते थे और यह कार्य करनेकी उनकी इच्छा भी थी। इसलिए हमने इस कार्यके लिए एक स्थायी समिति — साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमिटी — रचनेका साहस किया।

मेरी दृष्टिसे इंग्लैंडमें तथा पश्चिमके अन्य देशोंमें एक ऐसी असभ्य प्रथा है कि वहां अच्छे अच्छे कार्योंका शुभारंभ भोजके समय किया जाता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री प्रतिवर्ष ९ नवम्बरके दिन मैन्शन हाउस नामक व्यापारियोंके महान केन्द्रमें सारे संसारका ध्यान खींचनेवाला अपना भाषण करते हैं, जिसमें वे अपने वार्षिक कार्यक्रमकी रूपरेखा बताते हैं और भविष्यके विषयमें अपना अनुमान प्रकट करते हैं। लंदनके लॉर्ड मेयरकी ओरसे ब्रिटिश मंत्रि-मण्डलको और अन्य लोगोंको उस भवनमें भोजका निमंत्रण दिया जाता है; भोजके समाप्त होनेके बाद शराबकी बोतलें खुलती हैं और यजमान तथा अतिथियोंकी स्वास्थ्य-कामनाके लिए शराब पी जाती

है। और जिस समय यह शुभ अथवा अशुभ (सब कोई अपनी दृष्टिके अनुसार इनमें से कोई विशेषण चुन लें) कार्य चल रहा होता है उसी बीच भाषण भी किये जाते हैं। उसमें ब्रिटिश सम्राट्के मंत्रि-मण्डलका 'टोस्ट' (स्वास्थ्य-सम्बन्धी आशीर्वाद) भी सम्मिलित कर दिया जाता है। इस 'टोस्ट'के उत्तरमें ही प्रधानमंत्रीका उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण भाषण होता है। जिस तरह सार्वजनिक रूपमें किसी बातकी चर्चा आदिके लिए भोजनका निमंत्रण देनेकी प्रथा है, उसी तरह निजी रूपमें किसीके साथ विशेष बातचीत करनी हो तो उस व्यक्तिको भोजनके लिए निमंत्रित करनेकी प्रथा है। और कभी भोजन करते करते तो कभी भोजन पूरा हो जानेके बाद बातचीतका विषय छेड़ा जाता है। हमें भी एक बार नहीं किन्तु अनेक बार इस प्रथाके वश होना पड़ा था। लेकिन कोई पाठक इसका यह अर्थ न कर ले कि हममें से किसीने भी अपेय वस्तु (शराब) पी या अखाद्य वस्तु (मांस) खाई। इस प्रथाके अनुसार हमने भी एक दिन दोपहरके भोजनका निमंत्रण अपने मुख्य समर्थकों और सहायक मित्रोंको दिया। लगभग सौ मित्रोंको हमने निमंत्रण भेजे होंगे। इस भोजका हेतु सहायकों और समर्थकोंका आभार मानना, उनसे बिदा लेना और स्थायी समितिकी स्थापना करना था। इस भोजमें भी प्रथानुसार भोजनके बाद भाषण हुए और स्थायी समितिकी स्थापना भी हुई। इस कार्यक्रममें भी हमारे आन्दोलनको अधिक प्रसिद्धि मिली।

इस प्रकार लगभग छह सप्ताहका समय इंग्लैण्डमें बिता कर हम दक्षिण अफ्रीका लौटे। मदीरा पहुंचने पर हमें श्री रिचका तार मिला: 'लॉर्ड एलगिनने यह घोषणा की है कि ब्रिटिश मंत्रि-मण्डलने सम्राट्से यह सिफारिश की है कि वे ट्रान्सवालके एशियाटिक एक्टको अस्वीकार कर दें।' हमारे हर्षका तो पार न रहा। मदीरासे केप टाउन पहुंचनेमें १४-१५ दिन लगते थे। ये दिन हमने बड़े आनन्दमें बिताये और भविष्यमें कौमके दूसरे दुःखोंको दूर करानेके लिए शेखचिल्लीकी तरह हवाई किले भी खूब बनाये। परन्तु दैवकी गति निराली होती है। हमारे ये हवाई किले कैसे ढह गये, इसका वर्णन अगले प्रकरणमें किया जायगा।

लेकिन यह प्रकरण पूरा करनेसे पहले एक दो पवित्र संस्मरण मुझे यहां देने चाहिये। इतना तो मुझे कहना ही चाहिये कि इंग्लैंडमें हमने अपना एक भी क्षण व्यर्थ नही खोया। बड़ी संख्यामें सरक्यूलर (परिपत्र) वगैरा भेजनेका काम अकेले हाथों नही हो सकता था। इसके लिए हमें बाहरी मददकी बड़ी जरूरत थी। पैसा खर्च करने पर ऐसी मदद हमें काफी मिल सकती थी। परन्तु अपने ४० वर्षके अनुभवसे मै यह कह सकता हूं कि ऐसी मदद स्वयसेवकोकी शुद्ध मददके जितनी फलवती नही होती। सौभाग्यसे ऐसी शुद्ध मदद हमें इंग्लैण्डमें मिल गई। कई हिन्दुस्तानी नौजवान, जो वहा अध्ययन करते थे, हमारे आसपास घिरे रहते थे और उनमें से कुछ लोग सुबह-शाम, इनाम अथवा नामकी आशा रखे बिना, हमारे इस काममें मदद करते थे। मुझे याद नही आता कि उनमें से किसी भी स्वयसेवकने किसी कामको अपनी प्रतिष्ठाके योग्य न मान कर कभी करनेसे इनकार किया हो — फिर वह नाम-पते लिखनेका काम हो, नकले करनेका काम हो, टिकट चिपकानेका काम हो या पत्रोंको डाकमें छोड़नेका काम हो। लेकिन इन सबको एक ओर रख देनेवाला सिमंड्ज नामक एक अंग्रेज मित्र था, जिससे पहले-पहल मै दक्षिण अफ्रीकामें मिला था और जो हिन्दुस्तानमें रह चुका था। अंग्रेजीमें एक कहावत है कि देवता जिसे प्रेम करते है उसे वे जल्दी ही अपने पास बुला लेते है। इस 'पर-दुःख-भंजन' अंग्रेजको यमदूत भर जवानीमें ले गये। 'पर-दुःख-भंजन' विशेषणके उपयोगका एक विशेष कारण है। यह भला अंग्रेज नौजवान जब बम्बईमें था उस समय — सन् १८९७ में — प्लेगके हिन्दुस्तानी रोगियोंमें निडर होकर घूमता-फिरता था और उनकी मदद करता था। छुतहे रोगसे पीड़ित लोगोंकी सहायता और सेवा करते समय मृत्युका रत्तीभर डर न रखनेकी बात उसके खूनमें समा गई थी। उसके भीतर जातिद्वेष या रंगद्वेषका नाम भी नहीं था। वह अतिशय स्वतंत्र मिजाजका आदमी था। उसका यह सिद्धान्त था कि सत्य सदा छोटे पक्ष अर्थात् 'माइनॉरिटी' के साथ ही रहता है। इसी सिद्धान्तके वश होकर वह जोहानिसबर्गमें मेरी ओर आकर्षित हुआ था। विनोदमें उसने अनेक बार मुझसे कहा था कि यदि आपका पक्ष बड़ा हो जायगा तो आप

निश्चित मानिये कि मेरा साथ आपको बिलकुल नहीं मिलेगा, क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि 'मेजॉरिटी' (बड़े पक्ष) के हाथमें सत्य भी असत्यका रूप ले लेता है। उसका वाचन बड़ा विस्तृत था। वह जोहानिसवर्गके एक करोड़पती सर जॉर्ज फेररका विश्वसनीय निजी सचिव था। शॉर्ट हैण्ड (लघु लेखन) लिखनेमें वह निष्णात था। जब हम इंग्लैंडमें थे तब वह अचानक वहां आ पहुंचा था। मुझे उसके निवास-स्थानका कोई पता नहीं था। लेकिन हम सार्वजनिक कार्य करनेवाले आदमी थे, इसलिए अखबारोंमें हमारा विज्ञापन हो गया था। उसके आधार पर सिमंड्जने हमें खोज निकाला और यथाशक्ति हमारी सहायता करनेकी तैयारी दिखाई। उसने कहा: "मुझे आप चपरासीका काम देंगे, तो वह भी मैं करूंगा। और अगर आपको शॉर्ट हैण्डकी जरूरत हो, तब तो आप जानते ही हैं कि मेरे जैसा कुशल स्टेनोग्राफर आपको दूसरा कोई नहीं मिलेगा।" हमें दोनों प्रकारकी सहायताकी जरूरत थी। और यह कहनेमें मैं जरा भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं कि इस अंग्रेज नौजवानने दिन-रात हमारे लिए बिना पैसेके कड़ा परिश्रम किया। रातके बारह बारह और एक एक बजे तक वह टाइप-राइटर पर टाइप किया करता था। संदेश ले जाने और डाकमें पत्र डालनेका काम भी सिमंड्ज ही करता था; और यह सब वह हंसते-हंसते करता था। मैं जानता था कि उसकी मासिक आय लगभग ४५ पौंड थी। परन्तु यह सारा पैसा वह मित्रोंकी मददमें खर्च कर देता था। उसकी उमर उस समय करीब ३० वर्षकी रही होगी। परन्तु वह अविवाहित था और जीवन भर अविवाहित रहना चाहता था। मैंने उससे कुछ रकम मेहनतानेके रूपमें लेनेका बहुत आग्रह किया, परन्तु उसने स्पष्ट शब्दोंमें इनकार कर दिया। उसने कहा था: "अगर मैं इस सेवाका बदला स्वीकार करूं, तो अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाऊं।" मुझे याद है कि आखिरी रात हमें अपना सारा काम समेटते और सामान वगैरा बांधते-बांधते रातके तीन बज गये थे। सिमंड्ज भी हमारे साथ तीन बजे तक जागा था। दूसरे दिन जहाज पर हमें बिदा करके ही वह हमसे अलग हुआ था। वह वियोग बड़ा

दु:खद था। मैंने जीवनमें बहुत बार यह अनुभव किया है कि परोपकार गेहुंए रंगवालोंकी ही विरासत नहीं है।

सार्वजनिक कार्य करनेवाले नौजवानोंके हितके लिए मैं यह भी बता दूं कि प्रतिनिधि-मण्डलके खर्चका हिसाब रखनेका काम हमने इतनी निश्चिततासे किया था कि जहाज पर सोडा-वाटर पिया हो और उसकी रसीद मिली हो, तो उसे भी हमने उतनी रकमके खर्चकी निशानीके रूपमें संभाल कर रख छोड़ा था। इसी प्रकार किये गये तारोंकी रसीदें भी हमने संभाल कर रखी थीं। मुझे याद नहीं कि हमने ब्योरेवार लिखे हुए हिसाबमें विविध खर्चके नाम पर एक भी रकम लिखी हो। ऐसा कोई विभाग तो हमने अपनी हिसाब-बहीमें रखा ही नहीं था। 'याद नहीं' शब्द जोड़नेका कारण यही है कि शायद दिनके अंतमें खर्चका हिसाब लिखते समय दो-चार शिलिंगका खर्च याद न रहा हो और उसे हमने विविध खर्चके रूपमें लिख दिया हो। इसीलिए मैंने अपवादके रूपमें 'याद नहीं' शब्दोंका प्रयोग किया है।

इस जीवनमें एक बात मैंने स्पष्ट रूपसे देखी है कि जबसे हम समझदार बनते हैं तभीसे हम ट्रस्टी अथवा जिम्मेदार व्यक्ति बन जाते हैं। माता-पिताके साथ रहें तब तक वे जो काम या जो पैसा हमें सौंपें, उसका हिसाब हमें उन्हें देना ही चाहिये। हम पर विश्वास रखकर वे हमसे हिसाब न मांगें, तो इस कारणसे हम अपनी जिम्मेदारीसे मुक्त नहीं हो जाते। जब हम स्वतंत्र गृहस्थ बन जाते हैं उस समय स्त्री और संतानके प्रति हमारी जिम्मेदारी पैदा होती है। अपनी कमाईके स्वामी हम अकेले ही नहीं हैं। हमारे परिवारके लोगोंका भी उसमें भाग है। उनके लिए हमें पाई-पाईका हिसाब रखना चाहिये। तब फिर सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश करनेके बादकी हमारी जिम्मेदारीका तो कहना ही क्या? मैंने देखा है कि स्वयंसेवकोंको एक आदत पड़ जाती है; वे ऐसा मानकर चलते हैं कि उनके हाथमें जो काम या जो पैसा सौंपा गया है उसका ब्योरेवार हिसाब देनेके लिए वे बंधे हुए नहीं हैं, क्योंकि वे कभी अविश्वासके पात्र हो ही नहीं सकते। यह घोर अज्ञान ही कहा जायगा। हिसाब रखनेकी बातका अविश्वास या विश्वासके साथ कोई

सम्बन्ध नहीं है। हिसाब रखना भी एक स्वतंत्र कर्तव्य है। उसके बिना अपने कामको हमें स्वय ही अशुद्ध और मलिन समझना चाहिये। और जिस संस्थाके हम स्वयंसेवक हों उस संस्थाके नेता अथवा प्रमुख कार्यकर्ता झूठी शिष्टता या डरके कारण हमसे अपने कामका या सौंपे हुए पैसेका हिसाब न मांगें, तो वे भी उतने ही दोषी माने जायंगे। कामका और पैसेका हिसाब रखना जितना वेतन-भोगी नौकरका फर्ज है, उससे दुगुना फर्ज स्वयंसेवकका है; क्योंकि उसने तो अपने कामको ही अपना वेतन माना है। यह बड़े महत्त्वकी बात है, लेकिन मैं जानता हूं कि बहुतेरी संस्थाओंमें सामान्यतः इस बात पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। इसीलिए इस प्रकरणमें मैंने इस बातकी चर्चाके लिए इतना स्थान देनेकी हिम्मत की है।

१५

वक्र राजनीति अथवा क्षणिक हर्ष

केप टाउनमें जहाजसे उतरने पर और उससे भी अधिक जोहानिसबर्ग पहुंचने पर हमने देखा कि मदीरामें मिले हुए तारकी हमने जो कीमत आंकी थी उतनी कीमत वास्तवमें उसकी नहीं थी। इसमें दोष तार भेजनेवाले श्री रिचका नहीं था। उन्होंने तो एशियाटिक एक्टकी अस्वीकृतिके बारेमें जो कुछ सुना था उसीके अनुसार तार किया था। हम पहले बता चुके हैं कि उस समय — अर्थात् १९०६ में — ट्रान्सवाल एक शाही उपनिवेश था। ऐसे उपनिवेशोंके राजदूत उपनिवेश-मंत्रीको अपने अपने उपनिवेशके हितोंसे सम्बन्धित बातोंसे परिचित रखनेके लिए सदा इंग्लैंडमें रहते हैं। ट्रान्सवालके राजदूत सर रिचर्ड सॉलोमन थे, जो दक्षिण अफ्रीकाके एक प्रख्यात वकील थे। खूनी कानूनको अस्वीकार करनेका निश्चय लॉर्ड एलगिनने सर रिचर्ड सॉलोमनके साथ विचार-विमर्श करके ही किया था। १ जनवरी, १९०७ से ट्रान्सवालको उत्तरदायी शासनकी सत्ता प्राप्त होनेवाली थी। इसलिए लॉर्ड एलगिनने सर रिचर्ड सॉलोमनको

यह विश्वास दिलाया था कि "यही-कानून यदि ट्रान्सवालकी धारासभामें उत्तरदायी शासनकी सत्ता मिलनेके बाद पास होगा, तो बड़ी (साम्राज्य) सरकार उसे अस्वीकार नहीं करेगी। परन्तु जब तक ट्रान्सवाल शाही उपनिवेश माना जाता है तब तक ऐसे रंगभेदवाले कानूनके लिए बड़ी सरकार सीधी जिम्मेदार मानी जायगी। और बड़ी सरकारके संविधानमें जातीय भेदभावकी राजनीतिको स्थान नहीं दिया जाता। इसलिए इस सिद्धान्तका पालन करनेके लिए मुझे फिलहाल तो इस खूनी कानूनको अस्वीकार करनेकी ही सलाह सम्राट्को देनी होगी।"

इस प्रकार केवल नामके लिए ही खूनी कानून रद हो और साथ ही ट्रान्सवालके गोरोंका काम भी बन जाय, तो सर रिचर्ड सॉलोमनको कोई आपत्ति नहीं थी — क्यों हो सकती थी? इस राजनीतिको मैंने 'वक्र' कहा है। परन्तु सच पूछा जाय तो इससे अधिक तीखे विशेषण-का प्रयोग करने पर भी इस नीतिके प्रवर्तकोंके साथ कोई अन्याय नहीं होगा ऐसा मेरा विश्वास है। शाही उपनिवेशोंके कानूनोंके बारेमें साम्राज्य सरकारकी सीधी जिम्मेदारी होती है। उसके संविधानमें रंगभेद और जातिभेदके लिए कोई स्थान नहीं है। ये दोनों बातें बड़ी सुन्दर हैं। उत्तरदायी शासनकी सत्ता भोगनेवाले उपनिवेशों द्वारा बनाये गये कानूनों-को बड़ी सरकार एकाएक रद नहीं कर सकती, यह भी समझमें आने जैसी बात है। लेकिन उपनिवेशोंके राजदूतोंके साथ गुप्त मंत्रणायें करना और उन्हें साम्राज्य सरकारके संविधानकी भावनाके विरुद्ध जानेवाले कानूनों-को अस्वीकार न करनेका पहलेसे वचन देना — यह क्या उन लोगोंके साथ धोखा और अन्याय नहीं कहा जायगा, जिनके अधिकार छीने जाते हों? सच पूछा जाय तो लॉर्ड एलगिनने ऐसा वचन देकर ट्रान्सवालके गोरोंको अपना हिन्दुस्तानी-विरोधी आन्दोलन जारी रखनेका प्रोत्साहन दिया था। यदि यही करना था तो हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियोंसे स्पष्ट शब्दोंमें उन्हें ऐसा कह देना चाहिये था। वास्तवमें उत्तरदायी सत्तावाले उपनिवेशोंके कानूनोंके लिए भी ब्रिटिश साम्राज्य जिम्मेदार तो है ही। ब्रिटिश संविधानके मूल सिद्धान्त उत्तरदायी शासनवाले उपनिवेशोंको भी स्वीकार करने ही होते हैं। उदाहरणके लिए, कोई भी उत्तरदायी शासन-

वाला उपनिवेश अपने यहां कानून-संमत गुलामीकी प्रथाको पुनर्जीवित नही कर सकता। यदि लॉर्ड एल्गिनने खूनी कानून अनुचित है ऐसा मान कर उसे अस्वीकार किया हो — और ऐसा मान कर ही वे उसे अस्वीकार कर सकते थे — तो उनका यह स्पष्ट कर्तव्य था कि वे सर रिचर्ड सॉलोमनको अकेलेमें बुलाकर यह कह देते कि उत्तरदायी शासनकी सत्ता मिलनेके बाद ट्रान्सवालकी सरकार ऐसा अन्यायी कानून न बनाये; और यदि उसका विचार ऐसा कानून बनानेका हो तो बड़ी सरकारको फिरसे यह सोचना पड़ेगा कि ट्रान्सवालको उत्तरदायी शासनकी सत्ता सौंपी जाय या नहीं। अथवा हिन्दुस्तानियोंके अधिकारोंकी संपूर्ण रक्षा करनेकी शर्त पर ही ट्रान्सवालको उत्तरदायी शासन सौंपा जाना चाहिये था। ऐसा करनेके बजाय लॉर्ड एल्गिनने बाहरसे तो हिन्दुस्तानियोंकी हिमायत करनेका ढोंग किया और साथ ही भीतरसे वस्तुतः ट्रान्सवाल सरकारकी हिमायत की; और जिस कानूनको उन्होंने स्वयं अस्वीकार कर दिया उसीको फिर पास करनेके लिए उसे उत्तेजित किया। ऐसी वक्र राजनीतिका यह एकमात्र या पहला ही उदाहरण नही है। ब्रिटिश साम्राज्यके इतिहासका सामान्य अभ्यासी भी ऐसे दूसरे उदाहरण याद कर सकता है।

इस कारणसे जोहानिसबर्गमें हमने एक ही बात सुनी: लॉर्ड एल्गिनने और साम्राज्य सरकारने हमें धोखा दिया। मदीरामें हमें जितनी प्रसन्नता हुई थी उतनी ही दक्षिण अफ्रीकामें हमें निराशा हुई। फिर भी इस वक्रताका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तानियोंमें अधिक जोश फैला। सब लोग यह कहने लगे: "अब हमें क्या चिन्ता है? हमें कौन साम्राज्य सरकारकी सहायताके बल पर लड़ना है? हमें तो अपने बल पर और जिसके नाम पर हमने प्रतिज्ञा ली है उस ईश्वरके आधार पर लड़ना है। और यदि हम सच्चे रहेंगे, तो टेढ़ी नीति भी सीधी हो जायगी।"

ट्रान्सवालमें उत्तरदायी शासनकी स्थापना हुई। नई धारासभाका पहला कानून बजटके सम्बन्धमें था; और दूसरा कानून खूनी कानून (एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट) था। वह एक या दो शब्दोंके परिवर्तनके सिवा

जैसा पहले बनाया गया था और पास किया गया था वैसा ही इस बार भी पास हुआ। वह परिवर्तन इस प्रकार था: कानूनकी एक धारामें तारीख दी गई थी; उसमें तो परिवर्तन करना अनिवार्य था। इसलिए केवल उस तारीखका ही परिवर्तन किया गया और २१ मार्च, १९०७ को एक ही बैठकमें धारासभाने खूनी कानूनको सारी विधि पूरी करके उसे पास कर दिया। इस शाब्दिक परिवर्तनका कानूनकी सख्तीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। वह तो पहले जैसी ही बनी रही। इसलिए कानूनके अस्वीकृत होनेकी घटना केवल स्वप्नवत् हो गई। हिन्दुस्तानी कौमने अपनी प्रथाके अनुसार अरजियां वगैरा भेजनेका काम तो किया, लेकिन उनकी तूतीकी आवाज कौन सुनता? १ जुलाई, १९०७ से इस कानूनके अमलमें आनेकी घोषणा की गई और ऐसा आदेश निकाला गया कि हिन्दुस्तानियोंको ३१ जुलाईसे पूर्व परवाने लेनेकी अरजी पेश कर देनी चाहिये। बीचको इतनी अवधि रखनेका कारण हिन्दुस्तानी कौम पर सरकारकी कृपा नहीं थी। इसका कारण दूसरा था। उस कानूनके लिए नियमानुसार साम्राज्य सरकारकी संमति भी आवश्यक थी। इसमें कुछ समय तो जाता ही। इसके सिवा, परिशिष्टोंके अनुसार पत्रक, पुस्तिकायें, परवाने आदि तैयार कराने और अलग अलग स्थानोंमें परवानोंके दफ्तर खोलनेमें भी समय लगनेवाला था। इसलिए ४–५ माहका समय ट्रान्सवाल सरकारने अपनी ही सुविधाके लिए लिया था।

१६

अहमद मुहम्मद काछलिया

जब हमारा प्रतिनिधि-मण्डल इग्लैण्ड जा रहा था उस समय दक्षिण अफ्रीकामे बसे हुए एक अंग्रेज यात्रीने मेरे मुहसे ट्रान्सवालके खूनी कानूनकी बात और हमारे इंग्लैण्ड जानेका कारण सुना, तो वह बोल उठा: "तो आप कुत्तेका पट्टा (डॉग्स कॉलर) पहननेसे इनकार करना चाहते है!" उस अंग्रेजने ट्रान्सवालके परवानेकी तुलना कुत्तेके पट्टेसे की। वह वचन उसने पट्टेके बारेमें अपना हर्ष बताने और हिन्दुस्तानियोंके प्रति अपना तिरस्कार प्रकट करनेके लिए कहा था या अपनी सहानुभूति प्रकट करनेके लिए कहा था — यह निर्णय मैं न तो उस समय कर सका था और न आज उस घटनाका उल्लेख करते समय कर सकता हू। किसी भी मनुष्यके वचनका अर्थ हमें इस तरह नही करना चाहिये कि उसके साथ अन्याय हो, इस सुनीतिका अनुसरण करके मैं ऐसा मान लेता हूं कि उस अंग्रेजने अपनी सहानुभूति प्रकट करनेके लिए ही स्थितिका यथावत् चित्र प्रस्तुत करनेवाले ये शब्द कहे थे। एक ओर ट्रान्सवाल सरकार हिन्दुस्तानियोंको यह गलपट्टा पहनानेकी तैयारी कर रही थी; और दूसरी ओर हिन्दुस्तानी कौम इस बातकी तैयारी कर रही थी कि यह पट्टा गलेमें न पहननेके निश्चय पर वह कैसे अटल रहे और ट्रान्सवाल सरकारकी वक्र नीतिके खिलाफ कैसे लड़े। इग्लैण्डके और हिन्दुस्तानके सहायक मित्रोंको पत्र आदि लिखने और वहांकी वर्तमान स्थितिसे परिचित रखनेका काम तो चल ही रहा था। परन्तु सत्याग्रहकी लड़ाई बाह्य उपचारो पर बहुत कम आधार रखती है। आतरिक उपचार ही सत्याग्रहमे रामबाण उपचार सिद्ध होते है। इसलिए कौमके सारे अग ताजे और सक्रिय बने रहे, इसके उपाय ढूढ़नेमें ही कौमके नेताओका समय जाता था।

कौमके सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह खड़ा हुआ कि सत्याग्रहका आन्दोलन करनेके लिए किस संगठनका उपयोग किया जाय। ट्रान्सवाल

ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके सदस्योंकी काफी बड़ी संख्या थी। उसकी स्थापनाके समय सत्याग्रहका जन्म भी नही हुआ था। उस संघको एक नहीं परन्तु अनेक कानूनोंके विरुद्ध लड़ना पड़ता था और आगे भी लड़ना था। कानूनोंके विरुद्ध लड़नेके सिवा उसे राजनीतिक, सामाजिक और अन्य क्षेत्रोंमें भी विविध प्रकारके कार्य करने होते थे। इसके सिवा, उस सघके सारे सदस्योंने सत्याग्रह द्वारा खूनी कानूनका विरोध करनेकी प्रतिज्ञा भी नही ली थी। साथ ही उस सघके सम्बन्धमें हमें बाहरी खतरोंका भी विचार करना था। सत्याग्रहकी लड़ाईको ट्रान्सवाल सरकार यदि राजद्रोही माने तो? और ऐसा मान कर यदि सरकार सत्याग्रहकी लड़ाई चलानेवाली संस्थाओंको गैर-कानूनी करार दे तो? ऐसी स्थितिमें उन सस्थाओंमें काम करनेवाले जो कार्यकर्ता सत्याग्रही न हों उनका क्या हो? सत्याग्रह छिड़नेसे पहले जिन्होंने सघको धन दिया हो, उनके धनका क्या हो? —— इन बातोंका भी विचार करना जरूरी था। अन्तमें, सत्याग्रहियोका यह दृढ़ निश्चय था कि जो लोग अश्रद्धाके कारण, अशक्तिके कारण अथवा अन्य किसी कारणसे सत्याग्रहमें शामिल न हो सके, उनके प्रति द्वेपकी भावना न रखी जाय, इतना ही नही, उनके साथके स्नेहपूर्ण व्यवहारमें जरा भी परिवर्तन न होने दिया जाय और सत्याग्रहके सिवा अन्य आन्दोलनोंमें उनके साथ मिलकर ही काम किया जाय।

इन सब प्रश्नों पर सोच-विचार करनेके बाद समूची कौम इस निर्णय पर पहुंची कि किसी भी वर्तमान संगठन या संस्थाके द्वारा सत्याग्रहका आन्दोलन न चलाया जाय। दूसरी सस्थायें सत्याग्रह आन्दोलनको यथाशक्ति प्रोत्साहन दें। और दूसरी संस्थायें भी सत्याग्रहके सिवा अन्य जो भी कदम खूनी कानूनके विरुद्ध उठा सके वे उठायें। इसलिए सत्याग्रहियोंने 'पैसिव रेजिस्टेन्स एसोसियेशन' अथवा सत्याग्रह-मंडल नामक एक नये मडलकी स्थापना की। अंग्रेजी नामसे पाठक यह समझ सकेंगे कि जिस समय यह नया मंडल अस्तित्वमें आया उस समय सत्याग्रह नामकी खोज नही हुई थी। ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों यह मालूम होता गया कि नया मंडल स्थापित करनेसे हिन्दुस्तानी प्रजाको हर तरहसे लाभ ही हुआ है और यदि वैसा न किया गया होता तो सत्याग्रह

आन्दोलनको शायद नुकसान ही होता। लोग इस नये मंडलके बड़ी संख्यामें सदस्य हो गये और पैसा भी कौमने उसे खुले हाथों दिया।

मुझे तो अपने अनुभवने यही सिखाया है कि कोई भी आन्दोलन पैसेके अभावमें न तो कभी बन्द होता, न कभी रुकता और न कभी निस्तेज बनता। इसका यह अर्थ नहीं कि दुनियाका कोई भी आन्दोलन पैसेके बिना चल सकता है। लेकिन इसका यह अर्थ अवश्य है कि जिस आन्दोलनके संचालक सच्चे और प्रामाणिक होते हैं, उसके लिए पैसा अपने-आप चला आता है। इससे विपरीत, मुझे ऐसा भी अनुभव हुआ है कि जब किसी आन्दोलनमें पैसेकी बाढ़ आ जाती है तब उसकी अवनति आरंभ हो जाती है। इस कारणसे मैंने अनुभवके आधार पर एक सिद्धान्त यह भी बनाया है: किसी भी सार्वजनिक संस्थाका पूंजी जमा करके उसके व्याजसे अपना कामकाज चलाना पाप है, ऐसा कहनेकी तो मेरी हिम्मत नहीं होती; परन्तु इतना मैं अवश्य कहूंगा कि ऐसा करना अनुचित है। जन-समुदाय ही सार्वजनिक संस्थाकी सच्ची पूंजी है। जब तक लोग चाहें तभी तक ऐसी संस्थायें चलनी चाहिये। पूंजी जमा करके उसके व्याज पर अपना काम चलानेवाली संस्था सार्वजनिक नहीं रह जाती; वह स्वच्छन्द और मनमानी करनेवाली हो जाती है। वह सार्वजनिक टीकाके अंकुशमें नहीं रहती। व्याज पर चलनेवाली अनेक धार्मिक और सामाजिक संस्थाओंमें कितनी सड़ांध फैल गई है, इसकी चर्चाका यह स्थान नहीं है। यह तो लगभग स्वयंसिद्ध जैसी बात है।

परन्तु हम अपने मूल विषय पर लौटें। सूक्ष्म दलीलें करके बालकी खाल खींचनेका और मीन-मेष निकालनेका एकाधिकार केवल वकीलोंका या अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए सभ्य लोगोंका ही नहीं है। मैंने देखा कि दक्षिण अफ्रीकाके अनाड़ी और अनपढ़ हिन्दुस्तानी भी बहुत ही सूक्ष्म दलीलें कर सकते थे। कुछ लोगोंने यह दलील खोज निकाली कि पहली बार बना हुआ खूनी कानून अस्वीकार कर दिया गया, इसलिए यहूदियोंकी नाटक-शालामें ली हुई हमारी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। जो लोग अपनी प्रतिज्ञाके पालनमें शिथिल और कमजोर पड़ गये थे, उन्होंने इस दलीलकी शरण ली। इस दलीलमें कोई सत्य नहीं था, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता।

परन्तु इस दलीलका उन लोगों पर कोई असर नही हो सका, जो खूनी कानूनका केवल कानूनके रूपमें विरोध नहीं करते थे, परन्तु उस कानूनमें निहित बुरे तत्त्वका विरोध करते थे। ऐसा होते हुए भी सुरक्षितताकी दृष्टिसे, कौममें अधिक जागृति उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे और लोगोंमें अगर कमजोरी आई है तो किस हद तक आई है इसकी जांच करनेकी दृष्टिसे एक बार फिर प्रतिज्ञा लिवाना मुझे आवश्यक मालूम हुआ। इसलिए स्थान स्थान पर सभायें करके लोगोंको परिस्थिति समझाई गई और फिरसे प्रतिज्ञा भी लिवाई गई। लोगोंके उत्साह और जोशमें किसी तरहकी कमी आई हो ऐसा देखनेमें नही आया।

इस बीच जुलाईके निर्णायक महीनेका अंत निकट आ रहा था। जुलाईकी आखिरी तारीखको ट्रान्सवालकी राजधानी प्रिटोरियामें हिन्दुस्तानियोंकी एक विशाल सभा करनेका हमने निर्णय किया था। दूसरे शहरोंसे भी प्रतिनिधियोंको निमंत्रित किया गया था। सभा प्रिटोरियाकी मसजिदके खुले मैदानमें की गई थी। सत्याग्रह शुरू होनेके बाद सभाओंमें लोग इतनी बडी सख्यामें आने लगे थे कि किसी मकानके भीतर सभा करना असंभव हो गया था। पूरे ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंकी आबादी १३००० से ज्यादा नही थी। इनमें से १०००० से ज्यादा तो जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामें ही रहते थे। इतनी संख्यामें से पांच-छह हजार लोग किसी सभामें हाजिर हों तो यह संख्या दुनियाके किसी भी भागमें बहुत बड़ी और बहुत संतोषकारक मानी जायगी। सार्वजनिक सत्यागहकी लड़ाई दूसरी किसी शर्त पर लडी भी नही जा सकती। जिस लड़ाईका आधार केवल सत्याग्रहियोंकी अपनी शक्ति पर ही होता है, उसमें यदि लड़ाईसे सम्बन्धित विषयोंकी सार्वजनिक तालीम न दी जाय तो लड़ाई चल ही नहीं सकती। इसलिए इतनी बडी सख्यामें लोगोंकी उपस्थिति हम कार्यकर्ताओंको आश्चर्यजनक नहीं लगती थी। हमने पहलेसे ही यह निश्चय कर लिया था कि सार्वजनिक सभायें खुले मैदानमें ही की जायं, जिससे पैसा खर्च न करना पड़े और जगहकी कमीके कारण किसी भी आदमीको वापिस न जाना पड़े। यहां इस बातका भी उल्लेख करना चाहिये कि ये सब सभायें प्रायः अत्यन्त शात होती थी। आनेवाले लोग सारी

बातें ध्यानपूर्वक सुनते थे। कोई सभाके छोर पर खड़े होते और भाषण न सुन पाते, तो बोलनेवालेसे ऊंची आवाजमें बोलनेको कहते। पाठकोंको यह बताना जरूरी नहीं होना चाहिये कि ऐसी सभाओंमें कुर्सियोंकी व्यवस्था नहीं हो सकती थी। सब कोई जमीन पर ही बैठते थे। केवल एक छोटासा मंच खड़ा कर दिया जाता था, जिस पर सभाके सभापति, भाषण करनेवाले वक्ता और दो चार अन्य लोग सभापतिके पास बैठ सकें। उस मंच पर एक छोटीसी टेबल और दो चार कुर्सियां या स्टूल रख दिये जाते थे।

प्रिटोरियाकी इस सभाके सभापति थे ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके अस्थायी अध्यक्ष यूसुफ इस्माइल मियां। खूनी कानूनके अनुसार परवाने लेनेका समय निकट आता जा रहा था। इस कारणसे अपने सारे जोशके बावजूद जिस प्रकार हिन्दुस्तानी चिन्तातुर थे, उसी प्रकार जनरल बोथा और जनरल स्मट्स अपनी सरकारके पास अमोघ शक्ति होते हुए भी चिन्तातुर थे। एक संपूर्ण कौमको जबरन् झुकाना किसीको भी अच्छा नहीं लग सकता था। इसलिए जनरल बोथाने श्री विलियम हॉस्किनको इस सभामें हमें समझानेके लिए भेजा। श्री हॉस्किनका परिचय मैं तेरहवें प्रकरणमें दे चुका हूं। सभाने उनका हार्दिक स्वागत किया। उन्होंने अपने भाषणमें कहा: "आप सब यह जानते हैं कि मैं आपका मित्र हूं। यह कहना जरूरी नहीं कि मेरी सहानुभूति आपके साथ है। मुझमें शक्ति हो तो मैं आपकी सारी मांगें स्वीकार करवा दूं। लेकिन यहांके साधारण गोरोंके विरोधके बारेमें आपको चेताना जरूरी नहीं है। आज मैं आपके पास जनरल बोथाके कहनेसे आया हूं। जनरल बोथाने मुझसे कहा है कि इस सभामें आकर मैं उनका सन्देश आपको सुना दूं। हिन्दुस्तानी कौमके लिए उनके मनमें आदर है। कौमकी भावनाओंको वे समझते हैं। लेकिन वे कहते हैं, 'मैं लाचार हूं। ट्रान्सवालके सभी गोरे ऐसे कानूनकी मांग करते हैं। मैं स्वयं भी इस कानूनको आवश्यक मानता हूं। हिन्दुस्तानी कौम ट्रान्सवाल सरकारकी शक्तिसे परिचित है। साम्राज्य सरकारने इस कानूनका समर्थन किया है। हिन्दुस्तानी कौमने जितना किया जा सकता था उतना किया है और अपने सम्मानकी रक्षा की है।

परन्तु जब कौमका विरोध सफल न हुआ और कानून पास हो गया है, तो अब कौमको इस कानूनके वश होकर अपनी वफादारी और शांतिप्रियता सिद्ध कर दिखानी चाहिये। इस कानूनके अनुसार जो धारायें रची गई हैं उनमें कोई छोटा-मोटा परिवर्तन करना हो, तो इस सम्बन्धमें कौमकी बात जनरल स्मट्स ध्यानपूर्वक सुनेंगे।'" इस तरह जनरल बोथाका सन्देश सुनानेके बाद श्री हॉस्किनने कहा: "मैं भी आपको यह सलाह देता हूं कि आप लोग जनरल बोथाके सन्देशको मान लें। मैं जानता हूं कि सरकार इस कानूनके सम्बन्धमें दृढ़ है। उसका विरोध करनेका अर्थ होगा दीवालसे अपना सिर टकराना। मैं चाहता हूं कि आपकी कौम उसका विरोध करके व्यर्थ ही दुःख न भोगे और बरबाद न हो।" इस भाषणका अक्षरशः अनुवाद करके मैंने कौमके लोगोंको सुना दिया। अपनी ओरसे भी मैंने उन्हें सावधान किया। श्री हॉस्किन तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच विदा हुए।

अब सभामें हिन्दुस्तानियोंके भाषण शुरू हुए। इस प्रकरणके और सच पूछा जाय तो इस इतिहासके नायकका परिचय अब मुझे कराना ही चाहिये। सभामें जिन वक्ताओंने भाषण दिये उनमें स्व० अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। मैं उन्हें अपने एक मुवक्किलके रूपमें और दुभाषियेके रूपमें जानता था। वे अभी तक सार्वजनिक कार्यमें प्रमुख भाग नहीं लेते थे। उन्हें अंग्रेजीका कामचलाऊ ज्ञान था, परन्तु अनुभवसे उन्होंने अपने इस ज्ञानको इतना बढ़ा लिया था कि जब वे अपने मित्रोंको अंग्रेज वकीलोंके पास ले जाते थे तब उनके दुभाषियेका काम वे स्वयं ही करते थे। लेकिन दुभाषियेका काम उनका धन्धा नहीं था; यह काम वे एक मित्रके नाते ही करते थे। उनका धन्धा पहले कपड़ेकी फेरी लगानेका था और बादमें वे अपने भाईके साथ साझेदारीमें छोटे पैमाने पर व्यापार करने लगे थे। वे सूरती मेमन थे। उनका जन्म सूरत जिलेमें हुआ था। सूरती मेमनोंमें उनकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा थी। उनका गुजरातीका ज्ञान भी सीमित ही था, परन्तु अनुभवसे उन्होंने इस ज्ञानको खूब बढ़ा लिया था। लेकिन उनकी बुद्धि इतनी तेज थी कि वे किसी भी बातको बड़ी आसानीसे समझ लेते थे। मुकदमोंकी उलझनोंको वे इस ढंगसे

सुलझा सकते थे कि मैं बहुत बार आश्चर्यचकित हो जात
साथ कानूनी दलीलें करनेमें भी वे हिचकिचाते नही
उनकी दलीलें वकीलोंको भी विचारने जैसी लगती थीं

बहादुरीमें और एकनिष्ठामें उनसे आगे बढ जा
आदमीका अनुभव न तो मुझे दक्षिण अफ्रीकामें हुआ औ
हुआ। कौमके भलेके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर
जब कभी मैं उनके संपर्कमें आया तब मैंने सदा ही उन्हे
पाया। वे एक कट्टर मुसलमान थे। सूरती मेमनोंका मसजि
भी एक थे। परन्तु साथ ही वे हिन्दू-मुसलमान दोनोंके
थे। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नही आता जब उन्हों
अथवा अनुचित रूपमें हिन्दुओंके खिलाफ मुसलमानोंका पक्ष
तरह निडर और निष्पक्ष होनेके कारण वे आवश्यक
हिन्दू-मुसलमान दोनोंको उनके दोष बतानेमें जरा भी म
थे। उनकी सादगी और उनकी निरभिमानता अनुकरण
उनके साथ वर्षोंके गाढ परिचयके बाद मेरा यह दृढ मत
स्व० अहमद मुहम्मद काछलिया जैसा पुरुष हिन्दुस्तानी
दुर्लभ है।

प्रिटोरियाकी सभामें बोलनेवाले लोगोंमें एक यह
था। उन्होंने बहुत छोटा भाषण दिया। उन्होंने कहा: '
इस खूनी कानूनको जानता है। हम सब उसका अर्थ
हॉस्किनका भाषण मैंने ध्यानसे सुना है। आप सबने भी
मुझ पर उसका एक ही असर हुआ है। उसे सुनकर मेरी
और पक्की हुई है। हम जानते हैं कि ट्रान्सवाल सरकार
शाली है। लेकिन इस खूनी कानूनके डरसे ज्यादा व
क्या दिखा सकती है? वह हमें जेलमें बन्द करेगी, हमार
करके बेच देगी, हमें देशनिकालेकी सजा देगी या फांसी
यह सब हम हंसते-हंसते बरदाश्त कर सकते हैं, लेकिन

परन्तु जब कौमका विरोध सफल न हुआ और कानून पास हो गया है, तो अब कौमको इस कानूनके वश होकर अपनी वफादारी और शांति-प्रियता सिद्ध कर दिखानी चाहिये। इस कानूनके अनुसार जो धारायें रची गई हैं उनमें कोई छोटा-मोटा परिवर्तन करना हो, तो इस सम्बन्धमें कौमकी बात जनरल स्मट्स ध्यानपूर्वक सुनेंगे।'" इस तरह जनरल बोथाका सन्देश सुनानेके बाद श्री हॉस्किनने कहा: "मैं भी आपको यह सलाह देता हूं कि आप लोग जनरल बोथाके सन्देशको मान लें। मैं जानता हूं कि सरकार इस कानूनके सम्बन्धमें दृढ़ है। उसका विरोध करनेका अर्थ होगा दीवालसे अपना सिर टकराना। मैं चाहता हूं कि आपकी कौम उसका विरोध करके व्यर्थ ही दुःख न भोगे और बरबाद न हो।" इस भाषणका अक्षरशः अनुवाद करके मैंने कौमके लोगोंको सुना दिया। अपनी ओरसे भी मैंने उन्हें सावधान किया। श्री हॉस्किन तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच विदा हुए।

अब सभामें हिन्दुस्तानियोंके भाषण शुरू हुए। इस प्रकरणके और सच पूछा जाय तो इस इतिहासके नायकका परिचय अब मुझे कराना ही चाहिये। सभामें जिन वक्ताओंने भाषण दिये उनमें स्व० अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। मैं उन्हें अपने एक मुवक्किलके रूपमें और दुभाषियेके रूपमें जानता था। वे अभी तक सार्वजनिक कार्यमें प्रमुख भाग नहीं लेते थे। उन्हें अंग्रेजीका कामचलाऊ ज्ञान था, परन्तु अनुभवसे उन्होंने अपने इस ज्ञानको इतना बढ़ा लिया था कि जब वे अपने मित्रोंको अंग्रेज वकीलोंके पास ले जाते थे तब उनके दुभाषियेका काम वे स्वयं ही करते थे। लेकिन दुभाषियेका काम उनका धन्धा नहीं था; यह काम वे एक मित्रके नाते ही करते थे। उनका धन्धा पहले कपड़ेकी फेरी लगानेका था और बादमें वे अपने भाईके साथ साझेदारीमें छोटे पैमाने पर व्यापार करने लगे थे। वे सूरती मेमन थे। उनका जन्म सूरत जिलेमें हुआ था। सूरती मेमनोंमें उनकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा थी। उनका गुजरातीका ज्ञान भी सीमित ही था, परन्तु अनुभवसे उन्होंने इस ज्ञानको खूब बढ़ा लिया था। लेकिन उनकी बुद्धि इतनी तेज थी कि वे किसी भी बातको बड़ी आसानीसे समझ लेते थे। मुकदमोंकी उलझनोंको वे इस ढंगसे

सुलझा सकते थे कि मैं बहुत बार आश्चर्यचकित हो जाता था। वकीलोंके साथ कानूनी दलीलें करनेमें भी वे हिचकिचाते नहीं थे और अक्सर उनकी दलीलें वकीलोंको भी विचारने जैसी लगती थीं।

बहादुरीमें और एकनिष्ठामें उनसे आगे बढ जाय ऐसे एक भी आदमीका अनुभव न तो मुझे दक्षिण अफ्रीकामें हुआ और न हिन्दुस्तानमें हुआ। कौमके भलेके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था। जब कभी मैं उनके संपर्कमें आया तब मैंने सदा ही उन्हे एकवचनीके रूपमें पाया। वे एक कट्टर मुसलमान थे। सूरती मेमनोंकी मसजिदके ट्रस्टियोंमें वे भी एक थे। परन्तु साथ ही वे हिन्दू-मुसलमान दोनोंके प्रति समदर्शी भी थे। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं आता जब उन्होंने धर्मान्ध बनकर अथवा अनुचित रूपमें हिन्दुओंके खिलाफ मुसलमानोंका पक्ष लिया हो। पूरी तरह निडर और निष्पक्ष होनेके कारण वे आवश्यक मालूम होने पर हिन्दू-मुसलमान दोनोंको उनके दोष बतानेमें जरा भी संकोच नहीं करते थे। उनकी सादगी और उनकी निरभिमानता अनुकरण करने जैसी थी। उनके साथ वर्षोंके गाढ़ परिचयके बाद मेरा यह दृढ़ मत बन गया था कि स्व० अहमद मुहम्मद काछलिया जैसा पुरुष हिन्दुस्तानी कौमको मिलना दुर्लभ है।

प्रिटोरियाकी सभामें बोलनेवाले लोगोंमें एक यह नर-पुंगव भी था। उन्होंने बहुत छोटा भाषण दिया। उन्होंने कहा: "हर हिन्दुस्तानी इस खूनी कानूनको जानता है। हम सब उसका अर्थ समझते हैं। श्री हॉस्किनका भाषण मैंने ध्यानसे सुना है। आप सबने भी उसे सुना है। मुझ पर उसका एक ही असर हुआ है। उसे सुनकर मेरी कसम (प्रतिज्ञा) और पक्की हुई है। हम जानते हैं कि ट्रान्सवाल सरकार कितनी शक्तिशाली है। लेकिन इस खूनी कानूनके डरसे ज्यादा बड़ा डर वह हमें क्या दिखा सकती है? वह हमें जेलमें बन्द करेगी, हमारी जायदाद जब्त करके बेच देगी, हमें देशनिकालेकी सजा देगी या फांसी पर चढ़ायेगी। यह सब हम हंसते-हंसते बरदाश्त कर सकते हैं, लेकिन खूनी कानूनको हम कभी भी बरदाश्त नहीं कर सकते।" मैं देख रहा था कि यह सब बोलते बोलते अहमद मुहम्मद काछलिया अत्यन्त उत्तेजित हो गये थे।

उनका चेहरा लाल हो गया था। उनके गलेकी और सिरकी रगें खूनकी तीव्र गतिके कारण फूल उठी थी। उनका शरीर कांप रहा था। अपने दाहिने हाथकी खुली अंगुलियां गले पर फेरते फेरते वे गरज उठे: "मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि मैं जानकी बाजी लगा दूंगा, लेकिन इस कानूनके सामने सिर नहीं झुकाऊंगा। और मैं चाहता हूं कि यह सभा भी ऐसा ही निश्चय करे।" इतना बोलकर वे बैठ गये। जब उन्होंने अपने गले पर दाहिने हाथकी अंगुलियां फिराईं, उस समय मंच पर बैठे कुछ लोग मुसकरा उठे थे। मुझे याद है कि मुसकरानेमें मैं भी उनके साथ जुड़ गया था। जितना बल काछलिया सेठने अपने शब्दोंमें प्रकट किया है उतना बल वे अपने कार्यमें प्रकट कर सकेंगे या नहीं, इस विषयमें मेरे मनमें थोड़ी शंका थी। इस शंकाके बारेमें मैं सोचता हूं तब और यहां उसका उल्लेख करते समय भी मैं लज्जाका अनुभव करता हूं। उस महान संग्राममें जिन अनेक हिन्दुस्तानियोंने अपनी प्रतिज्ञा-का अक्षरशः पालन किया, उन सबमें काछलिया सेठ सदा आगे रहे। किसी दिन उनका रंग बदला हो, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा।

सभाने इस भाषणका तालियोंकी गड़गड़ाहटसे स्वागत किया। मैं जितना काछलिया सेठको जानता था उसकी अपेक्षा दूसरे सदस्य उस समय उन्हें कहीं अधिक जानते थे; क्योंकि उनमें से अनेक लोगोंको तो उस गुदड़ीके लालका व्यक्तिगत परिचय था। वे जानते थे कि काछलिया जो करना चाहता है वही कहता है और जो कहता है वही करता है। सभामें दूसरे भी जोशीले भाषण हुए। मैंने काछलिया सेठके ही भाषणको इसलिए चुना है कि उनके आगेके कार्योंके लिए यह भाषण भविष्य-वाणी सिद्ध हुआ था। जोशीले भाषण करनेवाले सभी लोग अपनी प्रतिज्ञा पर टिक नहीं पाये थे। इस पुरुष-सिंहकी मृत्यु सन् १९१८ में, अर्थात् सत्याग्रहकी लड़ाई समाप्त होनेके चार वर्ष बाद, कौमकी सेवा करते करते ही हुई थी।

काछलिया सेठका एक संस्मरण अन्य किसी स्थान पर देना संभव नहीं होगा, इसलिए उसे भी मैं यहीं दे देता हूं। पाठक टॉल्स्टॉय फार्मकी बात आगे पढ़ेंगे। उस फार्म पर सत्याग्रहियोंके अनेक परिवार रहते थे।

केवल कौमके लोगोंके सामने एक उदाहरण रखनेके लिए और अपने पुत्रको भी सादगीका सबक सिखाने और प्रजा-सेवक बनानेके लिए काछलिया सेठने उसे टॉल्स्टॉय फार्ममें शिक्षा लेनेके लिए भेजा था; और ऐसा कहा जा सकता है कि इसकी वजहसे ही दूसरे मुसलमान बालकोंको भी उनके माता-पिताने फार्ममें पढ़नेके लिए भेजा था। बालक काछलियाका नाम था अली। उस समय उसकी उमर १०–१२ वर्षकी रही होगी। अली स्वभावसे नम्र, चपल-चंचल, सत्यवादी और सरल लड़का था। काछलिया सेठसे पहले लेकिन सत्याग्रहकी लड़ाई बन्द होनेके बाद उस बालकको भी फरिश्ते खुदाके दरबारमें ले गये। मेरा यह विश्वास है कि वह जीवित रहता तो अवश्य ही अपने पिताका सुयोग्य पुत्र सिद्ध होता।

१७

पहली फूट

१९०७ की पहली जुलाई आई। परवाने देनेवाले सरकारी दफ्तर खुले। कौमका आदेश था कि हरएक दफ्तरके सामने खुले आम पिकेटिंग किया जाय — अर्थात् दफ्तर जानेके मार्गों पर स्वयंसेवक रखे जायं और वे दफ्तरमें जानेवाले हिन्दुस्तानियोंको वहां बिछाये गये जालसे सावधान करें। सब स्वयंसेवकोंको एक निशानी रखनी होती थी। और सबको यह खास सूचना दी गई थी कि परवाना लेनेवाले किसी भी हिन्दुस्तानीके साथ वे असभ्यतासे पेश न आयें। वे उसका नाम पूछें; और अगर वह अपना नाम न बताये तो उसके साथ जबरदस्ती या अशिष्टताका व्यवहार न करें। वे एशियाटिक ऑफिसमें जानेवाले प्रत्येक हिन्दुस्तानीको खूनी कानूनके सामने सिर झुकानेसे होनेवाले नुकसानका छपा हुआ परिपत्र दें, उसमें क्या-कुछ लिखा है यह समझायें और पुलिसके साथ भी सभ्यतासे पेश आयें। पुलिस गाली दे या मार मारे, तो स्वयंसेवक शांतिसे सहन कर लें; और मार सहन न हो सके तो वहांसे हट जायं। पुलिस उन्हें गिरफ्तार करे तो खुशीसे गिरफ्तार हो जायं। जोहानिसबर्गमें ऐसा कुछ

हो तो उसकी सूचना वे मुझे ही करें। अन्य स्थानोंमें वे उस उस स्थानमें नियुक्त किये हुए मंत्रीको सूचना करें और उसकी सूचनाओंके अनुसार काम करें। पहरेदारोंकी हर टुकड़ीका एक नेता या नायक होता था। उस नेताके आदेशानुसार अन्य पहरेदारों (पिकेटों) को चलना होता था।

ऐसा अनुभव कौमको पहली ही बार हुआ था। १२ वर्षसे ऊपरके सब लोगोंको पहरेदार (पिकेट) के रूपमें पसंद किया जाता था, इसलिए १२ से १८ वर्ष तकके अनेक किशोर और नवयुवक भी स्वयंसेवकोंके रूपमें भरती हो गये थे। लेकिन ऐसे किसी व्यक्तिको किसी भी हालतमें नहीं लिया जाता था, जो स्थानीय कार्यकर्ताओंसे अपरिचित हो। इतनी सावधानीके सिवा प्रत्येक सभामें घोषणा करके और अन्य प्रकारसे लोगोंको यह बताया जाता था कि जिन्हें नुकसानके डरसे या दूसरे किसी कारणसे नया परवाना लेनेकी इच्छा हो, लेकिन पिकेट (पहरेदार) का डर लगता हो, उन्हें नेताओंकी ओरसे एक स्वयंसेवक दिया जायगा; वह स्वयंसेवक उनके साथ जाकर उन्हें एशियाटिक ऑफिसमें छोड़ आयेगा और वहांका काम पूरा हो जाने पर उन्हें फिरसे स्वयंसेवकोंके क्षेत्रसे बाहर रख आयेगा। कुछ लोगोंने इस सुरक्षितताका लाभ उठाया भी था।

स्वयंसेवकोंने हर जगह अपना काम अपार उत्साह और लगनसे किया था। वे अपने कर्तव्य-पालनमें सदा जाग्रत और सावधान रहते थे। सामान्यतः ऐसा कहा जा सकता है कि पुलिसने स्वयंसेवकोंको बहुत नहीं सताया। और कभी कभी पुलिस परेशान करती या सताती भी थी, तो स्वयंसेवक उसे चुपचाप सह लेते थे। इस कार्यमें स्वयंसेवकोंने हास्य-रस भी उंड़ेल दिया था। कभी कभी उसमें पुलिस भी शरीक हो जाती थी। अपना समय आनंदमें व्यतीत करनेके लिए स्वयंसेवक अनेक तरहके चुटकले खोज निकालते थे। एक बार रास्ता रोकनेका आरोप लगाकर यातायातके कानूनके अनुसार उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था। वहांके सत्याग्रहमें असहयोगका समावेश नहीं किया गया था, इसलिए अदालतोंमें बचाव न करनेका नियम नहीं रखा गया था। परन्तु यह सामान्य नियम अवश्य रखा गया था कि कौमके पैसेसे वकील रखकर बचाव नहीं किया

जा सकता। गिरफ्तार किये गये स्वयंसेवकोंको निर्दोष ठहरा कर अदालतने छोड़ दिया था। इससे उनका उत्साह और बढ़ गया था।

इस प्रकार सार्वजनिक रूपमें तो स्वयंसेवकोंकी ओरसे परवाना लेनेकी इच्छा रखनेवाले हिन्दुस्तानियोंके साथ किसी तरहकी अशिष्टता या जबरदस्ती नही की जाती थी। परन्तु मुझे स्वीकार करना चाहिये कि सत्याग्रहकी लड़ाईके सिलसिलेमें हिन्दुस्तानियोंकी ऐसी एक टोली खड़ी हो गई थी, जिसका काम स्वयसेवक बने बगैर गुप्त रूपमे परवाना लेनेवालोंको मार-पीटकी धमकी देना या दूसरी तरहसे उन्हें नुकसान पहुंचाना था। यह अत्यन्त दुःखद बात थी। इसका पता चलते ही इसे रोकनेके लिए बहुत ही सख्त कदम उठाये गये। इसके फलस्वरूप धमकी देनेकी बात लगभग बन्द हो गई, यद्यपि जड़मूलसे उसका नाश नही हुआ। धमकीका असर वातावरणमें रह गया और मैंने देखा कि उस हद तक हमारी सत्याग्रहकी लड़ाईको नुकसान पहुचा। जिन हिन्दुस्तानियोंको डर लगता था उन्होंने तुरन्त सरकारका संरक्षण मांगा और वह उन्हें मिला। इस तरह कौममें जहर पैठ गया और जो लोग कमजोर थे वे अधिक कमजोर बन गये। इससे जहरको पोषण मिला, क्योंकि कमजोरोंकी वृत्ति सदा बदला लेनेकी होती ही है।

कौमके लोगों पर इस धमकीका बहुत ही कम असर हुआ। परन्तु लोकमतके दबावका और इस डरका कि स्वयंसेवकोंकी उपस्थितिके कारण परवाना लेनेवाले लोगोंके नाम कौमको मालूम हो जायंगे, बड़ा गहरा असर पड़ा। मैं ऐसे एक भी हिन्दुस्तानीको नही जानता, जिसने यह मत प्रकट किया हो कि खूनी कानूनके सामने झुकना अच्छा है। जो लोग नये परवाने निकलवाने गये वे केवल दुःख या नुकसान सहन करनेकी अपनी असमर्थताके कारण ही गये थे। इस कारणसे वे बड़े लज्जित हुए थे।

एक ओर लज्जा और दूसरी ओर बड़े व्यापारवाले हिन्दुस्तानियों-को अपने व्यापारमें नुकसान पहुचनेका भय — इन दो कठिनाइयोंसे बाहर निकलनेका रास्ता कुछ प्रमुख हिन्दुस्तानियोंने खोज लिया। उन्होंने एशि-याटिक विभागके साथ मिलकर ऐसी व्यवस्था की कि एक निजी मकानमें रातके नौ-दस बजे बाद एशियाटिक विभागका अधिकारी जाकर उन्हें

परवाने दे दे। उन्होंने सोचा कि इस व्यवस्थासे कुछ समय तक तो उनके खूनी कानूनके सामने झुकनेका किसीको पता ही नहीं चलेगा और वे स्वयं कौमके नेता हैं इसलिए उनकी देखादेखी दूसरे लोग भी कानूनके सामने सिर झुका देंगे। इससे कुछ नही तो उनकी लज्जाका बोझ तो कम होगा ही। बादमें अगर उनकी पोल खुल जाय तो उसकी चिन्ता नहीं।

परन्तु स्वयंसेवक इतने जाग्रत और सावधान थे कि कौमको एक एक क्षणकी घटनाओंका पता चल जाता था। एशियाटिक ऑफिसमें भी कोई न कोई तो ऐसा रहता ही था, जो सत्याग्रहियोंको ये बातें बता देता था। दूसरे कुछ लोग ऐसे थे जो स्वयं कमजोर होते हुए भी नेताओंका खूनी कानूनके सामने झुकना बरदाश्त नही कर पाते थे। वे इस सद्भावनासे सत्याग्रहियोंको अपने नेताओंके पतनकी सूचना दे देते थे कि अगर नेता दृढ़ रहेंगे तो वे स्वयं भी दृढ रह सकेंगे। इस तरह एक बार ऐसी सावधानीके कारण कौमको यह सूचना मिली कि अमुक रातको अमुक दुकानमें अमुक लोग परवाने लेनेवाले हैं। कौमने पहले तो इस तरहका इरादा रखनेवाले हिन्दुस्तानियोंको समझानेका प्रयत्न किया। उस दुकान पर पिकेटिंग भी किया। लेकिन मनुष्य अपनी कमजोरीको कब तक दबा सकता है? रातके दस-ग्यारह बजे ऊपर बताये मुताबिक कुछ हिन्दुस्तानी नेताओंने परवाने लिये और इस घटनासे एक स्वरसे बजनेवाली बांसुरीमें दरार पड़ गई। दूसरे ही दिन कौमने उन लोगोंके नाम भी प्रकाशित कर दिये। लेकिन मनुष्यकी लज्जाकी भी एक मर्यादा होती है। स्वार्थ जब उसके सामने आकर खड़ा हो जाता है तब लज्जा नहीं टिकती और मनुष्य सही रास्तेसे भटक जाता है। इस पहली फूटका लाभ उठा कर धीरे धीरे लगभग पाच सौ हिन्दुस्तानियोंने परवाने ले लिये। कुछ दिन तक परवाने देनेका काम निजी मकानोंमें चला। लेकिन जैसे जैसे लज्जाका भाव मंद पड़ता गया वैसे वैसे इन पांच सौमें से कुछ लोग खुले आम भी अपने नाम लिखवाने और परवाने लेनेके लिए एशियाटिक ऑफिसमें गये।

प्रथम सत्याग्रही कैदी

अथक परिश्रम करनेके बाद भी जब एशियाटिक ऑफिसको ५०० से अधिक नाम नही मिल सके, तो एशियाटिक विभागके अधिकारी इस निर्णय पर आये कि किसी न किसी हिन्दुस्तानीको गिरफ्तार करना चाहिये। पाठक जर्मिस्टनके नामसे परिचित है। वहा बहुतसे हिन्दुस्तानी रहते थे। उनमे से एक रामसुन्दर पडित भी था। वह दिखनेमे बहादुर और वाचाल था। उसे कुछ संस्कृत श्लोक भी कंठस्थ थे। उत्तर भारतका होनेसे तुलसीदासकी रामायणके दोहे-चौपाई तो वह जानता ही था। और पंडित कहलानेके कारण लोगोंमें उसकी थोडी प्रतिष्ठा भी थी। उसने जगह जगह भाषण दिये। अपने भाषणोंको वह खूब जोशीले बना सकता था। जर्मिस्टनके कुछ विघ्न-सतोषी हिन्दुस्तानियोंने एशियाटिक ऑफिससे कहा कि यदि रामसुन्दर पंडितको गिरफ्तार कर लिया जाय, तो जर्मिस्टनके बहुतसे हिन्दुस्तानी एशियाटिक ऑफिससे परवाने ले लेंगे। उस ऑफिसका अधिकारी रामसुन्दर पंडितको पकड़नेके प्रलोभनसे अपनेको रोक नही सका। रामसुन्दर पडित गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरहका यह पहला ही मुकदमा होनेसे सरकार और हिन्दुस्तानी कौममें बड़ी खलबली मच गई। जिस रामसुन्दर पंडितको कल तक केवल जर्मिस्टन ही जानता था, उसे एक क्षणमे सारा दक्षिण अफ्रीका जानने लग गया। जिस प्रकार किसी महापुरुष पर मुकदमा चलता है और वह सब लोगोंकी दृष्टि अपनी ओर खींच लेता है, उसी तरह सबकी नजर रामसुन्दर पडितकी ओर लग गई। सरकारके लिए शातिकी रक्षाका किसी भी तरहका बन्दोबस्त करना जरूरी नही था, फिर भी उसने ऐसा बन्दोबस्त किया। अदालतमें भी रामसुन्दरको साधारण अपराधी न मानकर हिन्दुस्तानी कौमका प्रतिनिधि माना गया और उसके साथ आदरका व्यवहार किया गया। अदालत उत्सुक हिन्दुस्तानियोंसे खचाखच भर गई थी। रामसुन्दरको

एक मासकी सादी कैद मिली। उसे जोहानिसबर्गके जेलमें रखा गया था। वहा यूरोपियन वार्डमें एक अलग कमरा उसे दिया गया था। लोग बिना किसी कठिनाईके उससे मिल सकते थे। उसे बाहरसे भोजन प्राप्त करनेकी इजाजत दी गई थी और कौमकी ओरसे हमेशा उसे सुन्दर भोजन बनाकर भेजा जाता था। उसकी हरएक इच्छा पूरी की जाती थी। जिस दिन उसे जेलकी सजा मिली वह दिन कौमने बड़ी धूमधामसे मनाया। कौमका एक भी आदमी उसके जेल जानेसे निराश नही हुआ, बल्कि सारी कौमका उत्साह और जोश बढ गया। सैकड़ो हिन्दुस्तानी जेल जानेको तैयार हो गये। एशियाटिक ऑफिसकी आशा पूरी नही हुई। जमिस्टनके हिन्दुस्तानी भी परवाना लेने नही गये। अधिकारियोंके उपर्युक्त कदमसे कौमको ही लाभ हुआ। एक महीना पूरा हुआ। रामसुन्दर पडित छूट गया। उसे बाजे-गाजेके साथ जुलूसमें उस स्थान पर ले जाया गया जहां सभा करनेका निश्चय हुआ था। सभामे जोशीले भाषण हुए। रामसुन्दरको फूलमालाओंसे ढंक दिया गया। स्वयंसेवकोंने उसके सम्मानमें एक दावत दी। और हजारो हिन्दुस्तानी यह सोचकर रामसुन्दर पडितसे मीठी ईर्ष्या करने लगे कि हम भी जेलमें गये होते तो कितना अच्छा होता।

लेकिन रामसुन्दर पडित खोटा सिक्का निकला। उसका बल झूठी सतीके जैसा था। एक महीनेकी कैदसे बचना तो संभव था ही नही, क्योंकि उसे एकाएक गिरफ्तार किया गया था। और, जेलमे उसने जो साहबी भोगी उसके दर्शन भी बाहर उसे कभी नहीं हुए थे। फिर भी स्वच्छन्द घूमनेवाला और साथ ही व्यसनी आदमी जेलके एकातवासको तथा अनेक प्रकारका भोजन मिलने पर भी जेलके संयमको सहन नही कर सकता। यही स्थिति रामसुन्दर पंडितकी हुई। कौमके लोगोंका और जेलके अधिकारियोंका इतना सम्मान मिलने पर भी जेल उसे कड़वा लगा और वह ट्रान्सवाल तथा सत्याग्रहकी लड़ाईको अंतिम नमस्कार करके रातोंरात भाग खड़ा हुआ। प्रत्येक समाजमें चतुर आदमी तो होते ही हैं; और जैसे वे किसी समाजमें होते हैं वैसे ही किसी आन्दोलनमें भी होते हैं। वे रामसुन्दरकी रग-रगसे परिचित थे। परन्तु उससे भी हिन्दुस्तानियोंका हित हो सकता है, ऐसा समझ कर उन्होने रामसुन्दर पंडितका गुप्त इतिहास

—उसका भंडा फूटनेसे पहले—मुझे कभी जानने ही नहीं दिया। बादमें मुझे पता चला कि रामसुन्दर तो अपना गिरमिट पूरा किये बिना ही भागा हुआ एक गिरमिटिया मजदूर था। उसके गिरमिटिया होनेकी बात यहां मैं नफ़रतसे नहीं लिख रहा हूं। उसके गिरमिटिया होनेमें कोई दोष नहीं था। पाठक अंतमें देखेंगे कि सत्याग्रहकी लड़ाईको अतिशय सुशोभित करनेवाले तो हिन्दुस्तानी गिरमिटिया मजदूर ही थे। यह लड़ाई जीतनेमें भी उनका बड़ेसे बड़ा हाथ था। लेकिन गिरमिट पूरा करनेसे पहले भाग आनेमें जरूर रामसुन्दर पंडितका दोष था।

परन्तु रामसुन्दरका पूरा इतिहास मैंने उसका दोष दिखानेके लिए यहां नहीं दिया है; यह इतिहास मैंने इस घटनाके भीतर छिपे गूढ़ अर्थको प्रकट करनेके लिए ही दिया है। प्रत्येक शुद्ध आन्दोलनके नेताओंका यह कर्तव्य है कि वे शुद्ध आन्दोलनमें शुद्ध आदमियोंको ही भरती करें। परन्तु बड़ीसे बड़ी सावधानी रखने पर भी अशुद्ध आदमियोंको शुद्ध आन्दोलनसे बाहर नहीं रखा जा सकता। फिर भी यदि संचालक निडर और सच्चे हों, तो अनजाने अशुद्ध लोगोंके प्रवेश कर जानेसे किसी शुद्ध आन्दोलनको अंतमें हानि नहीं होती। रामसुन्दर पंडितका सच्चा रूप खुल जाने पर कौमके लोगोंमें उसकी कोई कीमत नहीं रह गई। वह बेचारा पंडित मिट गया और केवल रामसुन्दर रह गया। कौम उसे भूल गई, परन्तु उसकी वजहसे भी लड़ाईका बल अवश्य बढ़ा। सत्याग्रहके खातिर उसने कैदकी जो सजा भोगी वह व्यर्थ नहीं गई। उसके जेल जानेसे लड़ाईका जो बल बढ़ा वह टिका रहा। और उसके उदाहरणसे लाभ उठा कर दूसरे कमजोर आदमी अपने-आप लड़ाईसे दूर हट गये। ऐसी कमजोरीके दूसरे कुछ उदाहरण भी सामने आये। लेकिन उनका इतिहास मैं नाम-पतेके साथ यहां देना नहीं चाहता। उसे देनेसे कोई लाभ नहीं होगा। कौमकी कमजोरी और कौमकी शक्ति पाठकोंके ध्यानसे बाहर न रहे, इस खयालसे इतना कह देना आवश्यक है कि रामसुन्दर कोई अकेला ही रामसुन्दर नहीं था; परन्तु फिर भी मैंने देखा कि सभी रामसुन्दरोंने कौमकी लड़ाईकी तो सेवा ही की थी।

पाठक राममुन्दरको दोषी न समझें। इस जगतमें सभी मानव अपूर्ण है। किसीकी अपूर्णता जब विशेष रूपसे हमारे सामने आती है तब हम उसका दोष दिखानेके लिए उस पर अंगुली उठाते है। लेकिन वस्तुत. यह हमारी भूल है। राममुन्दर जान-बूझकर कमजोर नही बना था। मनुष्य अपने स्वभावको बदल सकता है, उस पर नियंत्रण रख सकता है, लेकिन उसे जडमूलसे मिटा नही सकता। जगत्कर्ता प्रभुने इतनी स्वतंत्रता मनुष्यको दी ही नही है। बाघ यदि अपनी चमड़ीकी विचित्रताको बदल सके, तो ही मनुष्य अपने स्वभावकी विचित्रताको बदल सकता है। भाग जाने पर भी राममुन्दरको अपनी कमजोरीके लिए कितना पश्चात्ताप हुआ होगा, यह हम कैसे जान सकते हैं? अथवा, क्या उसका भाग जाना ही उसके पश्चातापका एक प्रबल प्रमाण नही माना जा सकता? अगर वह बेशरम होता तो उसे भागनेकी क्या जरूरत हो सकती थी? परवाना लेकर और खूनी कानूनको स्वीकार करके वह सदा जेलमुक्त रह सकता था। इतना ही नही, वह चाहता तो एशियाटिक ऑफिसका दलाल बन कर दूसरे हिन्दुस्तानियोंको भुलावेमें डाल सकता था और सरकारका प्रिय आदमी भी बन सकता था। यह सब करनेके बजाय कौमको अपनी कम-जोरी दिखानेमें लज्जा अनुभव करनेके कारण उसने अपना मुंह छिपा लिया और ऐसा करके भी उसने हिन्दुस्तानी कौमकी सेवा ही की, इस तरहका उदार अर्थ हम उसके भागनेका क्यों न करें?

१९

'इंडियन ओपीनियन'

मैं पाठकोंके सामने सत्याग्रहकी लड़ाईके बाहरी और भीतरी सभी साधन रखना चाहता हूं, इसलिए 'इंडियन ओपीनियन' नामक जो साप्ताहिक आज भी दक्षिण अफ्रीकासे प्रकाशित हो रहा है उसका परिचय कराना भी जरूरी है। दक्षिण अफ्रीकामें सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी प्रेस खोलनेका श्रेय श्री मदनजीत व्यावहारिक नामक एक गुजराती सज्जनको है। उस प्रेसको कुछ समय तक मुसीबतोंके बीच चलानेके बाद उन्होंने एक अखबार निकालनेका भी सोचा। इस सम्बन्धमें उन्होंने स्व० मनसुखलाल नाजरकी और मेरी सलाह ली। अखबार डरबनसे निकाला गया। श्री मनसुखलाल नाजर उसके अवैतनिक सम्पादक बने। अखबारमें पहलेसे ही घाटा आने लगा। अतमें उसमें काम करनेवाले लोगोंको साझेदार या साझेदार जैसे बनाकर और एक खेत खरीद कर उसमें उन सबको बसा कर वहांसे यह अखबार निकालनेका निश्चय किया गया। वह खेत डरबनसे १३ मील दूर एक सुन्दर पहाड़ी पर है। उसके निकटसे निकटका रेलवे स्टेशन खेतसे ३ मील दूर है और उसका नाम फिनिक्स है। अखबारका नाम शुरूसे ही 'इंडियन ओपीनियन' रखा गया है। एक समय वह अंग्रेजी, गुजराती, तामिल और हिन्दीमें प्रकाशित होता था। तामिल और हिन्दीका बोझ हर तरहसे अधिक लगनेके कारण, खेत पर रह सकें ऐसे तामिल और हिन्दी लेखक न मिलनेके कारण और इन दो भाषाओंके लेखों पर अंकुश न रह सकनेके कारण ये दो विभाग बन्द कर दिये गये और अंग्रेजी तथा गुजराती विभाग जारी रखे गये। सत्याग्रहकी लड़ाई शुरू हुई तब इन्हीं दो भाषाओंमें 'इंडियन ओपीनियन' निकलता था। खेत पर बसकर संस्थामें काम करनेवाले लोगोंमें गुजराती, हिन्दी भाषी (उत्तर भारतीय), तामिल और अंग्रेज सभी थे। श्री मनसुखलाल नाजरकी असामयिक मृत्युके बाद एक अंग्रेज मित्र हर्बर्ट किचन 'इंडियन ओपीनियन'के संपादक रहे।

उसके बाद संपादकके पद पर श्री हेनरी पोलाकने लम्बे समय तक कार्य किया। मेरे और श्री पोलाकके जेल-निवासके दिनोंमें भले पादरी स्व० जोसफ डोक भी अखबारके संपादक रहे। इस अखबारके द्वारा कौमके लोगोंको हर सप्ताहके सपूर्ण समाचारोंसे अच्छी तरह परिचित रखा जा सकता था। साप्ताहिकके अंग्रेजी विभाग द्वारा ऐसे हिन्दुस्तानियोंको सत्याग्रहकी थोड़ी-बहुत तालीम मिलती थी, जो गुजराती नहीं जानते थे। और हिन्दुस्तान, इंग्लैंड तथा दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेजोंके लिए तो 'इंडियन ओपीनियन' एक साप्ताहिक समाचारपत्रकी गरज पूरी करता था। मेरा यह विश्वास है कि जिस लड़ाईका मुख्य आधार आंतरिक बल पर है, वह लड़ाई अखबारके बिना लडी जा सकती है, परन्तु इसके साथ मेरा यह अनुभव भी है कि 'इंडियन ओपीनियन' के होनेसे हमें अनेक सुविधायें प्राप्त हुईं, कौमको आसानीसे सत्याग्रहकी शिक्षा दी जा सकी, और दुनियामें जहां कहीं भी हिन्दुस्तानी रहते थे वहां सत्याग्रह-सम्बन्धी घटनाओंके समाचार फैलाये जा सके। यह सब अन्य किसी साधनसे शायद संभव न होता। इतना तो निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि सत्याग्रहकी लड़ाई लडनेके साधनोंमें 'इंडियन ओपीनियन' भी एक अत्यन्त उपयोगी और प्रबल साधन था।

जिस प्रकार लड़ाईके दिनोंमें और लड़ाईके अनुभवोंके फलस्वरूप कौममें अनेक परिवर्तन हुए, उसी प्रकार 'इंडियन ओपीनियन' में भी हुए। पहले उस साप्ताहिकमें विज्ञापन लिये जाते थे। प्रेसमें बाहरका फुटकर काम भी छापनेके लिए स्वीकार किया जाता था। मैंने देखा कि इन दोनों कामोंमें हमारे अच्छेसे अच्छे आदमियोंको लगाना पड़ता था। विज्ञापन लेने ही हों तो कौनसे विज्ञापन लिये जायं और कौनसे न लिये जायं — इसका निर्णय करनेमें हमेशा ही धर्म-संकट खड़े होते थे। इसके सिवा, किसी आपत्तिजनक विज्ञापनको न लेनेका मन हो, परन्तु विज्ञापन देनेवाला कौमका कोई अग्रगण्य व्यक्ति हो, तो उसके बुरा मान जानेके भयसे भी हमें न लेने योग्य विज्ञापन लेनेके प्रलोभनमें फंसना पड़ता था। विज्ञापन प्राप्त करनेमें और छपे हुए विज्ञापनोंके पैसे वसूल करनेमें हमारे अच्छेसे अच्छे आदमियोंका समय खर्च होता था और विज्ञापन-दाताओंकी

खुशामद करनी पड़ती सो अलग। इसके साथ यह विचार भी आया कि यदि अखबार पैसा कमानेके लिए नहीं बल्कि केवल कौमकी सेवाके लिए ही चलाना हो, तो वह सेवा जबरदस्ती नहीं की जानी चाहिये; कौम चाहे तो ही उसकी सेवा हमें करनी चाहिये। और कौमकी इच्छाका स्पष्ट प्रमाण यही माना जायगा कि कौमके लोग काफी बड़ी संख्यामें साप्ताहिकके ग्राहक बनकर उसका खर्च उठा लें। इसके सिवा, हमने यह भी सोचा कि अखबार चलानेके लिए उसका मासिक खर्च निकालनेको दृष्टिसे कुछ व्यापारियोंको सेवाभावके नाम पर अपने विज्ञापन देनेकी बात समझानेकी अपेक्षा यदि कौमके आम लोगोंको 'इंडियन ओपीनियन' खरीदनेका कर्तव्य समझाया जाय, तो वह ललचानेवाले लोगों और ललचाये जानेवाले लोगों दोनोंके लिए कितनी सुन्दर शिक्षा हो सकती है? इन सारी बातों पर हमने सोच-विचार किया और उस पर तुरन्त अमल भी किया। इसका नतीजा यह हुआ कि जो कार्यकर्ता विज्ञापन-विभागकी झंझटोंमें फंसे रहते थे, वे अब अखबारको सुन्दर बनानेके प्रयत्नोंमें लग गये। कौमके लोग तुरन्त समझ गये कि 'इंडियन ओपीनियन'की मालिकी और उसे चलानेकी जिम्मेदारी दोनों उनके हाथमें है। इसके फलस्वरूप हम सब कार्यकर्ता निश्चिन्त हो गये। कौम अखबारकी मांग करे तब तक उसे निकालनेके लिए पूरी मेहनत करनेकी चिन्ता ही हमारे सिर पर रह गई; और किसी भी हिन्दुस्तानीका हाथ पकड़ कर उससे 'इंडियन ओपीनियन'का ग्राहक बननेकी बात कहनेमें न केवल हमें लज्जा नहीं आती थी, बल्कि ऐसा कहना हम अपना धर्म समझते थे। 'इंडियन ओपीनियन'की आंतरिक शक्तिमें और उसके स्वरूपमें भी परिवर्तन हुआ और वह एक महाशक्ति बन गया। उसकी ग्राहक-संख्या, जो सामान्यतः १२०० से १५०० तक रहती थी, दिनोंदिन बढ़ने लगी। उसका वार्षिक चन्दा हमें बढ़ाना पड़ा था, फिर भी जब सत्याग्रहकी लड़ाईने उग्र रूप धारण किया उस समय उसके ग्राहकोंकी संख्या ३५०० तक पहुंच गई थी। 'इंडियन ओपीनियन'के पाठकोंकी संख्या अधिकसे अधिक २०००० मानी जा सकती है। इतने पाठकोंके बीच उसकी ३००० से ऊपर प्रतियां बिकना आश्चर्यजनक फैलाव कहा

जायगा। कौमने 'इंडियन ओपीनियन' को इस हद तक अपना बना लिया था कि यदि निश्चित समय पर उसकी प्रतियां जोहानिसबर्ग न पहुंचती, तो मुझ पर शिकायतोंकी झड़ी लग जाती थी। प्रायः रविवारको सुबह साप्ताहिक जोहानिसबर्ग पहुच जाता था। मैं जानता हूं कि बहुतसे हिन्दुस्तानी अखबार पहुंचने पर सबसे पहला काम उसके गुजराती विभागको आदिसे अत तक पढ जानेका करते थे। एक आदमी पढ़ता था और दस-पन्द्रह आदमी उसके आसपास बैठकर सुनते थे। हम गरीब ठहरे, इसलिए कुछ लोग साझेमें भी 'इंडियन ओपीनियन' खरीदते थे।

प्रेसमें बाहरका फुटकर काम लेना उसी तरह बद कर दिया गया था, जिस तरह विज्ञापन लेना बन्द कर दिया गया था। उसे बन्द करनेके कारण प्रायः वैसे ही थे जैसे विज्ञापन न लेनेके थे। यह काम बन्द करनेसे कपोजिटरोका जो समय बचा उसका उपयोग प्रेस द्वारा पुस्तकें प्रकाशित करनेमें हुआ। और कौम जानती थी कि पुस्तकें प्रकाशित करनेका हमारा उद्देश्य धन कमाना नही था। चूकि ये पुस्तकें केवल लड़ाईकी सहायता पहुचानेके लिए ही छापी जाती थी, इसलिए उनकी बिक्री भी अच्छी होने लगी। इस प्रकार 'इंडियन ओपीनियन' और प्रेस दोनोंने सत्याग्रहकी लड़ाईमें भाग लिया। और यह स्पष्ट रूपसे देखा गया था कि जैसे जैसे सत्याग्रहकी जड़ कौममें जमती गई वैसे वैसे सत्याग्रहकी दृष्टिसे साप्ताहिककी और उसके प्रेसकी नैतिक प्रगति भी होती गई।

२०

गिरफ्तारियोंका तांता

हम देख चुके है कि रामसुन्दर पंडितकी गिरफ्तारी सरकारके लिए मददगार साबित नहीं हुई। दूसरी ओर अधिकारियोंने यह भी देखा कि कौममें उत्साह तेजीसे बढ़ने लगा है। 'इंडियन ओपीनियन' के लेखोंको एशियाटिक विभागके अधिकारी भी ध्यानसे पढ़ते थे। कौमकी लड़ाईके सम्बन्धमें कोई भी बात कभी गुप्त नहीं रखी जाती थी। कौमकी कमजोरी और कौमकी ताकतको जो भी जानना चाहता 'इंडियन ओपीनियन' से जान सकता था—फिर वह शत्रु हो, मित्र हो या कोई तटस्थ व्यक्ति हो। कार्यकर्ता आरम्भसे ही यह समझ गये थे कि जिस लड़ाईमें कोई गलत काम करना ही नहीं है, जिसमें चालाकी अथवा धोखेबाजीके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं है और जिस लड़ाईमें अपनी शक्तिके आधार पर ही विजय प्राप्त की जा सकती है, उसमें गुप्तताका कोई भी स्थान नहीं हो सकता। कौमके स्वार्थका ही यह तकाजा है कि कमजोरीके रोगको यदि दूर करना हो, तो कमजोरीकी परीक्षा करके उसे अच्छी तरह जाहिर कर दिया जाय। जब एशियाटिक विभागके अधिकारियोंने देखा कि 'इंडियन ओपीनियन' इसी नीति पर चलता है, तब वह उनके लिए हिन्दुस्तानी कौमके वर्तमान इतिहासका दर्पण बन गया; और इसलिए उन्होंने सोचा कि जब तक कौमके अमुक नेताओंको गिरफ्तार नहीं किया जायगा तब तक लड़ाईका बल कभी टूट नहीं सकेगा। इसके फलस्वरूप दिसम्बर १९०७ में कुछ नेताओंको अदालतमें हाजिर होनेकी नोटिस मिली। मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि ऐसी नोटिस देनेमें अधिकारियोंने सभ्यता दिखाई थी। वे चाहते तो वारंट निकाल कर नेताओंको गिरफ्तार कर सकते थे। पर ऐसा करनेके बजाय उन्हें हाजिर रहनेकी नोटिस देकर अधिकारियोंने सभ्यताके साथ साथ अपना यह विश्वास भी प्रकट किया था कि कौमके नेता गिरफ्तार होनेको तैयार हैं। निश्चित किये हुए दिन—शनिवार,

ता० २८-१२-१९०७ को -- अदालतमें जो नेता हाजिर रहे थे उन्हें इस तरहकी नोटिसका उत्तर देना था : 'कानूनके अनुसार आप लोगोंको परवाने प्राप्त कर लेने चाहिये थे, फिर भी आपने प्राप्त नहीं किये। इसलिए आपको ऐसा हुक्म क्यों न दिया जाय कि अमुक समयके भीतर आप ट्रान्सवालकी सीमा छोड़ दें?'

इन नेताओंमें एक सज्जनका नाम क्विन था, जो जोहानिसबर्गमें रहनेवाले चीनियोंका नेता था। जोहानिसबर्गमें ३००-४०० चीनी रहते थे। वे सब व्यापार करते थे या छोटी-मोटी खेतीका काम करते थे। हिन्दुस्तान खेतीके लिए मशहूर देश है। लेकिन मेरा यह विश्वास है कि चीनी लोगोंने जिस हद तक खेतीका विकास किया है उस हद तक हमने खेतीका विकास नहीं किया है। अमेरिका आदि देशोंमें खेतीकी जो आधुनिक प्रगति हुई है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। फिर भी पश्चिमकी खेतीको अभी मैं प्रयोगके रूपमें ही मानता हूं। लेकिन चीन तो हमारे जैसा ही प्राचीन देश है और वहां पुराने जमानेसे ही खेतीका विकास किया गया है। इसलिए चीन और हिन्दुस्तानके बीच तुलना करके हम कुछ सीख सकते हैं। जोहानिसबर्गके चीनियोंकी खेतीको देखकर और उनकी बातें सुनकर मुझे ऐसा लगा कि चीनियोंका ज्ञान और उद्यम हमसे कहीं अधिक है। जहां हम जमीनको पड़ती मानकर उसका कोई भी उपयोग नहीं करते, वहां चीनी लोग विभिन्न प्रकारकी मिट्टियोंके अपने सूक्ष्म ज्ञानके कारण अच्छी अच्छी फसलें पैदा कर सकते हैं। -

इस उद्यमी और चतुर कौम पर भी खूनी कानून लागू होता था। इसलिए चीनियोंने भी हिन्दुस्तानियोंकी लड़ाईमें सम्मिलित होना उचित माना। ऐसा होते हुए भी आरंभसे अंत तक दोनों जातियोंकी सारी प्रवृत्तियां सर्वथा अलग अलग ही रहीं। दोनों जातियां अपनी अपनी संस्थाओं द्वारा गोरी सरकारसे लड़ रही थीं। इसका शुभ परिणाम यह आया कि जब तक दोनों जातियां टिकी रहीं तब तक दोनोंको लाभ हुआ, लेकिन जब एक जाति गिरी तो दूसरीको नुकसान पहुंचनेका कोई कारण नहीं रहा; नीचे गिरनेकी तो कोई बात हो ही नहीं सकती थी। अंतमें बहुतसे चीनी हार गये, क्योंकि उनके नेताने उन्हें धोखा दिया। चीनियोंका नेता खूनी

कानूनके सामने झुका तो नहीं, लेकिन एक दिन किसीने मुझे यह खबर सुनाई कि चीनियोंका नेता चीनी संघका हिसाब-किताब सौंपे बिना ही भाग गया है। नेताके अभावमें किसी लड़ाईमें अनुयायियोंका टिका रहना हमेशा ही कठिन होता है, और यदि नेतामें कोई मलिनता देखनेमें आती है, तब तो उसके अनुयायियोंमें दुगुनी निराशा पैदा होती है। लेकिन जब गिरफ्तारियां शुरू हुईं उस समय तो चीनी लोग अतिशय उत्साहमें थे। उनमें से शायद ही किसीने परवाने लिये हों। इसलिए जिस तरह हिन्दुस्तानी नेताओंको गिरफ्तार किया गया उसी तरह चीनियोंके कर्ता-धर्ता श्री क्विनको भी गिरफ्तार किया गया। कुछ समय तक तो श्री क्विनने बहुत ही सुन्दर काम किया, ऐसा कहा जा सकता है।

हिन्दुस्तानियोंके जो नेता पकड़े गये थे, उनमें से मैं जिनका परिचय यहां कराना चाहता हूं वे हैं श्री थंबी नायडू। थंबी नायडू तामिल थे। उनका जन्म मोरीशियसमें हुआ था। लेकिन उनके माता-पिता मद्रास प्रान्तसे आजीविका कमानेके लिए मोरीशियस गये थे। थंबी नायडू सामान्य व्यापारी थे। ऐसा कहा जा सकता है कि उन्हें शालाकी कोई शिक्षा नहीं मिली थी। परन्तु उनका अनुभव-ज्ञान बहुत ऊंचा था। वे अंग्रेजी बहुत अच्छी बोल और लिख सकते थे, यद्यपि भाषाशास्त्रीकी दृष्टिमें उनके अंग्रेजी बोलने-लिखनेमें दोष रहता था। तामिल भाषाका ज्ञान भी उन्होंने अनुभवसे ही प्राप्त किया था। हिन्दुस्तानी भी वे अच्छी तरह समझते और बोलते थे। तेलुगुका भी उन्हें काफी ज्ञान था, यद्यपि वे हिन्दी या तेलुगु लिपि बिलकुल नहीं जानते थे। मोरीशियसकी भाषाका, जो 'क्रीऑल' के नामसे पुकारी जाती है और जिसे फ्रेंच भाषाका अपभ्रंश कहा जा सकता है, उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। दक्षिण भारतके लोगोंमें इतनी सारी भाषाओंका व्यावहारिक ज्ञान होना कोई अपवादकी बात नहीं थी। दक्षिण अफ्रीकामें सैकड़ों हिन्दुस्तानी इन सब भाषाओंका साधारण ज्ञान रखनेवाले मिलेंगे। इसके सिवा, उन्हें इन सब भाषाओंके साथ हबशी भाषाका ज्ञान तो होगा ही। यह सारा भाषाज्ञान वे अनायास प्राप्त कर लेते हैं और प्राप्त कर सकते हैं। इसका कारण मैं तो यह मानता हूं कि किसी विदेशी भाषाके माध्यमसे शिक्षा ग्रहण करके उनके

दिमाग थकते नही। उनकी स्मरण-शक्ति तेज होती है और इन सब भाषाओंके बोलनेवाले लोगोंके साथ बातचीत करके और अवलोकन करके ही वे विभिन्न भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इससे उनके दिमागोंको बहुत कष्ट नही होता; बल्कि दिमागके ऐसे सरल व्यायामसे उनकी बुद्धि स्वाभाविक रूपमें ही खिल उठती है। यही बात थंबी नायडूके विषयमें भी सच थी। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। वे नये प्रश्नोंको बड़ी जल्दी समझ लेते थे। उनकी हाजिरजवाबी सबको आश्चर्यमें डाल देती थी। उन्होंने हिन्दुस्तान कभी देखा नही था, फिर भी हिन्दुस्तान पर उनका अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी रग-रगमें समाया हुआ था। उनकी दृढता उनके मुख पर चित्रित रहती थी। उनके शरीरकी गठन अत्यन्त मजबूत और कसी हुई थी। वे परिश्रम करनेमें कभी थकते ही नही थे। किसी सभामें कुरसी पर बैठकर कौमका नेतृत्व करना हो, तो उस पदको वे भलीभाति सुशोभित कर सकते थे; और उतनी ही स्वाभाविकतासे वे हमालका काम भी कर सकते थे। आम रास्ते पर बोझ ढो कर ले जानेमें थंबी नायडू कभी शरमाते नही थे। मेहनत करते समय वे रात और दिनका भेद मानते ही नही थे। और हिन्दुस्तानी कौमके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देनेमें वे हर किसीके साथ होड़ लगा सकते थे। यदि थंबी नायडू आवश्यकतासे अधिक साहसी न होते और यदि वे स्वभावसे क्रोधी न होते, तो आज उनके जैसा वीर पुरुष ट्रान्सवालमें काछलियाकी अनुपस्थितिमें कौमका नेतृत्व आसानीसे कर सकता था। ट्रान्सवालमें सत्याग्रहकी लडाई चली तब तक उनके क्रोधका विपरीत परिणाम नही आ पाया था और उनके भीतर जो अमूल्य गुण थे वे रत्नोंके समान चमकते रहे। परन्तु बादमें मैंने सुना कि उनका क्रोध और साहसिकता उनके प्रबल शत्रु सिद्ध हुए और उन्होंने उनके सारे गुणोंको ढंक दिया। जो भी हो, किन्तु दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहकी लडाईके इतिहासमें तो थंबी नायडूका नाम सदा प्रथम श्रेणीमें ही रहेगा।

हम सबको अदालतमें एकसाथ ही हाजिर होना था। लेकिन सबके केस अलग अलग चलाये गये थे। मजिस्ट्रेटने कुछ लोगोंको ४८ घंटोंके भीतर और बाकी लोगोंको ७ या १४ दिनमें ट्रान्सवाल छोड़ देनेका

आदेश दिया। इस आदेशकी अवधि १० जनवरी, १९०८को पूरी होती थी। उसी दिन हमें सजा सुननेके लिए अदालतमें उपस्थित होनेका आदेश मिला था।

हममें से किसीको अपना बचाव तो करना ही नहीं था। कानूनके अनुसार परवाने न लेनेके कारण निश्चित अवधिमें ट्रान्सवालकी सीमा छोड़ देनेका मजिस्ट्रेटने जो आदेश दिया था, उसका सविनय अनादर करनेका अपराध हम सबको स्वीकार करना था।

मैंने अदालतसे एक छोटासा वक्तव्य देनेकी इजाजत मांगी। वह इजाजत मुझे मिली। मैंने इस आशयका वक्तव्य दिया: मेरे मुकदमेमें और मेरे बाद आनेवाले लोगोंके मुकदमेमें भेद किया जाना चाहिये। मुझे अभी अभी प्रिटोरियासे ये समाचार मिले है कि वहां मेरे देशबन्धुओंको तीन मासकी कड़ी कैदकी सजा और भारी जुर्माना हुआ है और जुर्माना न देने पर तीन मासकी कड़ी कैदकी और सजा दी गई है। अगर उन लोगोंने अपराध किया है, तो मैंने उनसे कहीं बड़ा अपराध किया है। इसलिए मजिस्ट्रेटसे मेरी प्रार्थना है कि वे मुझे कड़ीसे कड़ी सजा दें।

परन्तु मजिस्ट्रेटने मेरी बात पर ध्यान नही दिया और मुझे दो मासकी सादी कैदकी सजा दी। जिस अदालतमें मैं वकीलके रूपमें सैकड़ों बार खड़ा हुआ था और वकील-मडलके बीच उठता-बैठता था, उसी अदालतमें आज मै अभियुक्तके रूपमे कठघरेमें खड़ा हूं, यह विचार मुझे थोड़ा विचित्र अवश्य लगा। किन्तु इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि वकील-मंडलकी सभामें बैठनेमें मैंने जो सम्मान और प्रतिष्ठा मानी होगी, उसकी अपेक्षा अपराधीके कठघरेमें खड़े होनेमें मैंने कही अधिक सम्मान और प्रतिष्ठा मानी। मुझे स्मरण नही आता कि कठघरेमें प्रवेश करते समय मैंने जरा भी संकोच अनुभव किया हो। अदालतमें मैं सैकड़ों हिन्दुस्तानी भाइयों, वकीलो और मित्रों आदिके सामने खड़ा था। ज्यों ही मुझे सजा सुनाई गई त्यों ही एक सिपाही मुझे कैदियोंको ले जानेके दरवाजेसे वहां ले गया जहा जेलमे ले जानेके पहले उन्हें रखा जाता है।

उस समय मैंने अपने आसपासका वातावरण सुनसान पाया। वहां कैदियोंके बैठनेकी जो बेंच पड़ी थी उस पर मुझे बैठनेको कहकर पुलिस

अधिकारी दरवाजा बद करके चलता बना। यहां मुझे जरूर थोड़ी घबराहट हुई। मैं गहरे विचारोंमें डूब गया। कहां मेरा घर-बार है! कहां मेरी बैरिस्टरी है! और कहा वे सार्वजनिक सभायें हैं! वह सब स्वप्नवत् हो गया है और आज मैं कैदी बनकर यहा बैठा हूं। दो महीनोंमें क्या होनेवाला है? क्या मुझे दो माहकी पूरी कैद भोगनी ही पड़ेगी? कौमके लोग अगर अपने वचनके अनुसार बड़ी संख्यामें जेलमें चले आयें, तो मुझे दो महीनेकी कैद भोगनी ही न पडे। लेकिन अगर वे जेलोंको भरनेकी हिम्मत न दिखायें, तो ये दो महीने कितने लम्बे मालूम होंगे? इन विचारो और ऐसे ही दूसरे विचारोंको लिखवानेमें मुझे जितना समय लगा है, उसके सौवें भागका समय भी इन विचारोंके आनेमें नही लगा होगा। इन विचारोंके मनमें उठते ही मैं लज्जित हो गया। मैं कितना बड़ा मिथ्याभिमानी हू? मैंने जेलको महल माननेकी बात कौमके लोगोंसे कही थी! मैंने लोगोंसे कहा था कि खूनी कानूनका विरोध करनेके फलस्वरूप जो भी दुःख सहना पडे उसे दुःख नही परन्तु सुख मानना चाहिये। उसका विरोध करते करते अपनी सम्पत्ति और प्राण भी अर्पण करने पड़ें, तो वह सत्याग्रहमे आनन्दका विषय माना जाना चाहिये। यह सब मेरा ज्ञान आज कहा चला गया? ये विचार आते ही मैं दृढ़ बन गया और अपनी मूर्खता पर हंसने लगा। मैं व्यावहारिक दृष्टिसे सोचने लगा ' दूसरे मित्रोंको कैसी कैद मिलेगी? क्या उन्हे मेरे साथ ही रखा जायगा? जब मैं इस सारी उधेड़बुनमें पड़ा था उसी समय दरवाजा खुला और पुलिस अधिकारीने मुझे उसके पीछे पीछे चलनेका हुक्म दिया। जब मैं उसके पीछे चलने लगा तो उसने मुझे आगे कर दिया और खुद मेरे पीछे हो गया। वह मुझे जेलकी पिंजरागाड़ीके सामने ले गया और बोला कि इसमें बैठ जाओ। बैठ जाने पर मुझे जोहानिसबर्ग जेलमें ले जाया गया।

जेलमें पहुच जानेके बाद मेरे अपने कपड़े उतरवा लिये गये। मैं जानता था कि जेलमें कैदियोंको नंगा कर दिया जाता है। हम सबने सत्याग्रहियोंके नाते इसे अपना धर्म माना था कि जेलके नियम जब तक व्यक्तिगत अपमान करनेवाले न हों अथवा धर्मके विरुद्ध न हों तब तक स्वेच्छासे उनका पालन किया जाय। वहां जो कपड़े मुझे पहननेके लिए

मिले वे बहुत मैले थे। उन्हें पहनना मुझे बिलकुल अच्छा न लगा। उन कपड़ोंको पहननेमें और मनको ऐसा करनेके लिए समझानेमें मुझे दुःख हुआ। लेकिन थोडा मैलापन तो जेलमें बरदाश्त करना ही पड़ेगा, ऐसा समझ कर मैंने मन पर नियन्त्रण रखा। मेरा नाम-पता वगैरा लिख-कर मुझे एक बड़ी कोठरीमें ले जाया गया। कुछ समय मैं उसमें रहा। उसके बाद मेरे साथी भी हंसते-बोलते वहां आ पहुंचे। उन्होंने मुझे सुनाया कि मेरे बाद उनका मुकदमा कैसे चला और उसमें क्या क्या हुआ। उनकी बातोंसे मालूम हुआ कि मेरा मुकदमा पूरा हो जानेके बाद कुछ हिन्दुस्तानियोंने काले झंडे हाथमें लेकर जुलूस निकाला था, कुछ लोग उत्तेजित भी हुए थे। पुलिसने जुलूसको रोका था और दो-चारको मारा-पीटा भी था। हम सबको एक ही जेलमें और एक ही कोठरीमें रखा गया, इससे हम लोग बहुत खुश हुए।

शामके ६ बजे हमारी कोठरीका दरवाजा बन्द कर दिया गया। दक्षिण अफ्रीकामें जेलोंकी कोठरियोंके दरवाजोंमें लोहेके सीकचे नहीं होते। दीवालमें ठेठ ऊपर एक छोटासा जालीवाला झरोखा हवाके आने-जानेके लिए बना होता है। इसलिए दरवाजा बन्द होने पर हमें ऐसा लगा, मानों हम किसी तिजोरीमें बन्द कर दिये गये हों। पाठक देखेंगे कि जेलके अधिकारियोंने जो आदर-सत्कार रामसुन्दर पंडितका किया था वैसा हम लोगोंका नहीं किया। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। रामसुन्दर तो प्रथम सत्याग्रही कैदी था। इससे सत्ताधारियोंको इस बातका पूरा खयाल भी नहीं रहा होगा कि उसके साथ कैसा बरताव किया जाय। हमारी संख्या काफी बड़ी थी और दूसरोंको पकड़नेका इरादा सरकारका था ही, इसलिए हमें हबशियोंके वार्डमें रखा गया था। दक्षिण अफ्रीकामें कैदियोंके दो ही विभाग होते हैं: गोरे और काले (हबशी); और हिन्दुस्तानी कैदियोंकी गिनती हबशी विभागमें होती है। मेरे साथियोंको भी मेरे जितनी ही सादी कैदकी सजा मिली थी।

दूसरे दिन सुबह हमें पता चला कि सादी कैदवालोंको अपने कपड़े पहन रखनेका अधिकार होता है; और यदि वे अपने कपड़े नहीं पहनना चाहें तो सादी कैदवालोंके लिए जो खास पोशाक होती है वह उन्हें दे दी

जाती है। हमने यह निर्णय किया था कि घरकी पोशाक जेलमें पहनना अनुचित होगा, वहां जेलकी पोशाक पहननेमें ही हमारी शोभा है। अपना यह निर्णय हमने जेल-अधिकारियोंको बता दिया। इसलिए हमें सादी कैद-वाले हबशी कैदियोंकी पोशाक दी गई। लेकिन सादी कैदवाले सैंकड़ों कैदी दक्षिण अफ्रीकाके जेलोंमें कभी होते ही नहीं। इसलिए जब सादी कैदवाले दूसरे हिन्दुस्तानी जेलमें आने लगे तब सादी कैदके कपड़े कम पड़ गये! कपड़ोंके बारेमें हमें कोई झगडा नहीं करना था, इसलिए कड़ी कैदकी सजा पानेवाले कैदियोंके कपडे पहननेमें हमने कोई आनाकानी नहीं की। बादमें आनेवाले कुछ लोगोंने ऐसे कपडे पहननेके बजाय अपने ही कपड़े पहनना पसंद किया। यह मुझे अच्छा तो नहीं लगा, परन्तु ऐसे मामलेमें आग्रह करना मुझे उचित न लगा।

दूसरे अथवा तीसरे दिनसे सत्याग्रही कैदी बड़ी संख्यामें आने लगे थे। वे जान-बूझकर गिरफ्तार होते थे। उनमें से अधिकतर लोग फेरी लगानेवाले ही थे। दक्षिण अफ्रीकामें हर फेरी लगानेवाले व्यक्तिको — फिर वह गोरा हो या काला — फेरीका परवाना लेना होता है, वह परवाना हमेशा अपने साथ रखना होता है और पुलिस मांगे तब उसे दिखाना होता है। लगभग रोज ही कोई न कोई पुलिसका जवान ऐसे परवाने मांगता था और न बतानेवालोंको गिरफ्तार करता था। हमारी गिरफ्तारीके बाद कौमने जेलोंको सत्याग्रही कैदियोंसे भर देनेका निश्चय किया। फेरीवाले लोग इसमें सबसे आगे रहे। उनके लिए गिरफ्तार होना आसान भी था। उन्हें केवल परवाने बतानेसे इनकार करना होता था; उसके बाद उनका गिरफ्तार होना निश्चित था। एक हफ्तेमें इस तरह गिरफ्तार होनेवाले सत्याग्रही कैदियोंकी संख्या १०० से अधिक हो गई। और थोड़े-बहुत कैदी तो रोज ही आते थे, इसलिए हमें बगैर अखबारके ही सारे समाचार मिल जाते थे। वे रोजके समाचार अपने साथ लाते थे। जब बड़ी संख्यामें सत्याग्रही गिरफ्तार किये जाने लगे तब या तो मजिस्ट्रेटोंका धीरज छूट गया अथवा — जैसा कि हमने माना — सर-कारकी ओरसे मजिस्ट्रेटोंको सूचना की गई कि आगेसे सत्याग्रहियोंको सादी कैदकी सजा दी ही न जाय, केवल कड़ी कैदकी सजा ही दी

जाय। जो भी हो, लेकिन अब सबको सख्त मेहनतकी कैद ही मिलने लगी। आज भी मुझे ऐसा लगता है कि कौमका अनुमान सही था। क्योंकि शुरू शुरूके जिन मामलोंमें सादी कैदकी सजा मिली उन्हें यदि छोड़ दें, तो उनके बाद उसी समयकी लड़ाईमें और भविष्यमें भी समय समय पर कौम द्वारा लड़ी गई लड़ाइयोंमें पुरुषों और स्त्रियोंको भी किसी समय ट्रान्सवाल या नेटालकी किसी अदालतमें सादी कैदकी सजा नहीं दी गई। जब तक सारे मजिस्ट्रेटोंको एक ही प्रकारकी सूचना या आदेश न मिले हों तब तक प्रत्येक मजिस्ट्रेटका हर बार प्रत्येक पुरुष और स्त्रीको कड़ी कैदकी ही सजा देना यदि केवल आकस्मिक संयोग माना जाय, तो यह लगभग एक चमत्कार ही कहा जायगा।

जोहानिसबर्गकी जेलमें सादी कैदकी सजावाले कैदियोंको भोजनमें सवेरे मक्काके आटेकी लपसी या कांजी मिलती थी। उसमें नमक डाला नहीं जाता था, परन्तु हर कैदीको अलगसे थोडा नमक कांजीमें मिलानेके लिए दिया जाता था। दोपहर बारह बजे चार औंस भात, ऊपरसे नमक और एक औंस घी और चार औंस डबल-रोटी दी जाती थी। शामको मक्काके आटेकी कांजी और उसके साथ थोड़ा साग और सागमें भी मुख्यतः आलू दिये जाते थे। आलू छोटे होते तो दो दिये जाते और बड़े होते तो एक दिया जाता था। इतने भोजनसे किसीका भी पेट नहीं भरता था। चावल चिकने और गीले पकाये जाते थे। हमने जेलके डॉक्टरसे थोड़े मसालेकी मांग की और कहा कि हिन्दुस्तानकी जेलोंमें कैदियोंको मसाला मिलता है। डॉक्टरने कड़ा उत्तर दिया: "यह हिन्दुस्तान नहीं है। कैदीके लिए स्वाद नहीं होता, इसलिए मसाला भी नहीं हो सकता।" हमने दालकी मांग की और कारणमें यह बताया कि जेलके भोजनमें स्नायुओंको पुष्ट करनेवाले कोई तत्त्व नहीं है। इस पर डॉक्टरने कहा: "कैदियोंको डॉक्टरी दलील नहीं करनी चाहिये। आपको स्नायु-पोषक भोजन दिया जाता है, क्योंकि सप्ताहमें दो बार आपको मक्काके बदलेमें शामके भोजनमें उबली हुई मटर दी जाती है।" यदि मनुष्यका पेट एक हफ्ते या पखवारेमें अलग अलग समय पर मिलनेवाले अलग अलग तत्त्वोंसे युक्त भोजनमें से शरीरके लिए आवश्यक तत्त्व खींच लेनेकी शक्ति रखता हो, तब तो डॉक्टरका

यह तर्क सही था। सच पूछा जाय तो डॉक्टरकी इच्छा हमारी सुविधाका खयाल करनेकी थी ही नहीं। जेल-सुपरिन्टेन्डेन्टने हमारी मांगके अनुसार अपना भोजन हमें स्वयं बनानेकी इजाजत दे दी। अपने रसोइयेके रूपमें हमने थंबी नायडूका चुनाव किया। हमारा खाना बनानेके सिलसिलेमें उन्हें जेल-अधिकारियोंसे अनेक बार झगड़ना पड़ता था। साग तौलमें कम दिया जाता तो वे पूरे तौलकी माग करते थे; दूसरी चीजोंके बारेमें भी यही होता था। सागवाले दिनोंमें, जो सप्ताहमें दो दिन होते थे, हम दो बार अपना भोजन बनाते थे और दूसरे दिनोंमें एक बार बनाते थे, क्योंकि केवल दोपहरके भोजनके लिए ही हमें दूसरी चीजें पकानेकी इजाजत दी गई थी। भोजन बनानेका काम हमारे हाथमें आया उसके बाद हम कुछ संतोषसे भोजन करने लगे।

परन्तु ऐसी सुविधायें प्राप्त करनेमें हमें सफलता मिली या न मिली, फिर भी हममें से कोई जेलकी अवधि पूर्ण प्रसन्नता और शांतिसे व्यतीत करनेके निश्चयसे डिगा नहीं। सत्याग्रही कैदियोंकी संख्या बढ़ते बढ़ते १५० से ऊपर चली गई थी। हम सब सादी कैदकी सजा पाये हुए कैदी थे, इसलिए अपनी कोठरी वगैरा साफ रखनेके सिवा दूसरा कोई काम हमें करना नहीं पड़ता था। इसलिए हमने जेल-सुपरिन्टेन्डेन्टसे कोई काम मांगा। उसने कहा: "यदि मैं आपको काम दूं, तो वह मेरा अपराध माना जायगा। इसलिए मैं लाचार हूं। लेकिन आप लोग अपने स्थानको साफ-सुथरा रखनेमें चाहे जितना समय लगा सकते हैं।" इस पर हमने कवायद जैसी कसरतकी मांग की, क्योंकि हमने देखा था कि सख्त मेहनतकी सजा पाये हुए हबशी कैदियोंसे भी कवायद कराई जाती थी। सुपरिन्टेन्डेन्टने उत्तरमें कहा: "आपके वार्डरको समय मिले और वह आपसे यह कसरत कराये, तो मैं विरोध नहीं करूंगा। परन्तु मैं ऐसा करनेके लिए उसे मजबूर नहीं कर सकता। उसे बहुत काम करना पड़ता है और आप लोगोंके आशातीत संख्यामें आ जानेसे उसका काम और ज्यादा बढ़ गया है।" हमारा वार्डर बहुत भला आदमी था। उसे तो केवल सुपरिन्टेन्डेन्टकी इजाजत ही चाहिये थी। वह बड़ी दिलचस्पीसे हमें रोज सुबह कवायद कराने लगा। कवायदकी कसरत हम अपनी कोठरियोंके छोटेसे आंगनमें ही कर सकते थे,

इसलिए हमें सिर्फ चौगिर्द चक्कर ही लगाना होता था। वह भला वार्डर जो कुछ सिखा जाता उसके अनुसार हमें कवायद कराना एक पठान साथी नवाबखान जारी रखते थे। वे कवायदके अंग्रेजी शब्दोंका उर्दू उच्चारण करके हमें खूब हंसाते थे। 'स्टॅन्ड एट ईज़' का उच्चारण वे 'टंडलीस' करते थे! कुछ दिनों तक तो हमारी समझमें ही नहीं आया कि वह कौनसा हिन्दुस्तानी शब्द होगा। बादमें हम समझ गये कि वह हिन्दुस्तानी नहीं बल्कि नवाबखानी अंग्रेजी थी!

२१

पहला समझौता

इस तरह जेलमें हम लगभग १५ दिन रहे होंगे कि बाहरसे आनेवाले नये लोग यह समाचार लाने लगे कि सरकारके साथ समझौता करनेकी कोई बातचीत चल रही है। दो तीन दिन बाद जोहानिसबर्गके 'ट्रान्सवाल लीडर' नामक दैनिकके संपादक श्री आल्बर्ट कार्टराइट मुझसे जेलमें मिलने आये। उस समय जोहानिसबर्गसे निकलनेवाले सारे दैनिकोंका स्वामित्व सोनेकी खानके किसी न किसी गोरे मालिकके हाथमें था। उनके विशेष स्वार्थका विषय न हो ऐसे हरएक सार्वजनिक प्रश्न पर संपादक अपने स्वतंत्र विचार प्रकट कर सकते थे। इन अखबारोंके संपादक विद्वान और प्रख्यात व्यक्तियोंमें से ही चुने जाते थे। उदाहरणके लिए, 'दि डेली स्टार' नामक दैनिकके संपादक एक समय लॉर्ड मिल्नरके निजी सचिव रह चुके थे। और बादमें वे 'दि टाइम्स' के संपादक श्री बकलका स्थान ग्रहण करनेके लिए इंग्लैंड गये थे। श्री आल्बर्ट कार्टराइट सुयोग्य होनेके साथ ही अत्यन्त उदार मनके पुरुष थे। उन्होंने अपने अग्रलेखोंमें भी लगभग हमेशा हिन्दुस्तानियोंका समर्थन किया था। उनके और मेरे बीच गहरी मित्रता हो गई थी और मेरे जेल जानेके बाद वे जनरल स्मट्ससे मिले थे। जनरल स्मट्सने समझौतेकी बातचीतके लिए उनकी मध्यस्थता स्वीकार की थी। हिन्दुस्तानी कौमके नेताओंसे भी वे मिल चुके थे। नेताओंने

उन्हें एक ही उत्तर दिया: "कानूनकी बारीकियोंको हम समझ नही सकते। यह हो ही नही सकता कि गाधी जेलमें रहें और हम समझौतेकी बातचीत करें। हम सरकारके साथ समझौता करना तो चाहते हैं। लेकिन अगर हमारे कौमके लोगोंको जेलमे बन्द रखकर सरकार समझौता करना चाहती हो, तो आपको गाधीसे जेलमें मिलना चाहिये। वे जो कुछ करेंगे उसे हम स्वीकार कर लेंगे।"

इस प्रकार श्री कार्टराइट मुझसे मिलने आये। अपने साथ वे जनरल स्मट्स द्वारा तैयार किया हुआ या उनका पसन्द किया हुआ समझौते-का मसौदा भी लाये थे। वह मसौदा मुझे पसन्द नही आया। उसकी भाषा अस्पष्ट थी। फिर भी एक परिवर्तनके साथ मैं स्वय तो उस मसौदे पर हस्ताक्षर करनेको तैयार था। लेकिन मैंने श्री कार्टराइटसे कहा कि बाहरके हिन्दुस्तानियोंकी इजाजत होते हुए भी जेलके अपने साथियोंका मत लिये बिना मैं समझौतेके मसौदे पर हस्ताक्षर नही कर सकता।

उस मसौदेका आशय इस प्रकार था: हिन्दुस्तानियोंको स्वेच्छासे अपने परवाने बदल लेने चाहिये। यह बात कानूनके मातहत नही कराई जा सकती। परवानेका रूप हिन्दुस्तानियोंके साथ सलाह-मशविरा करके सरकार तैयार करेगी और यदि हिन्दुस्तानी कौमका मुख्य भाग स्वेच्छासे परवाने ले लेगा, तो सरकार खूनी कानून रद कर देगी और स्वेच्छासे लिये गये परवानोंको कानूनी मान्यता देनेके लिए नया कानून पास करेगी। समझौतेके इस मसौदेमें खूनी कानून रद करनेकी बात स्पष्ट नही थी। अपनी दृष्टिसे यह बात स्पष्ट करने जितना परिवर्तन मैंने मसौदेमें सुझाया।

श्री आल्बर्ट कार्टराइटको इतना-सा परिवर्तन करना भी अच्छा नही लगा। उन्होने कहा: "इस मसौदेको जनरल स्मट्सने अंतिम माना है। मैंने स्वय भी इसे पसद किया है। पर इतना मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि यदि आप सब स्वेच्छासे परवाने ले लेंगे, तो खूनी कानून रद हुआ ही समझिये।"

मैंने उत्तरमें कहा: "समझौता हो या न हो, किन्तु आपकी सहा-नुभूति और सहायताके लिए हम सदा ही आपके ऋणी रहेंगे। मैं मसौदेमें एक भी अनावश्यक परिवर्तन नहीं कराना चाहता। जिस भाषासे सरकारकी

प्रतिष्ठाकी रक्षा हो, उसका मैं विरोध नहीं करूंगा। परन्तु जहां मुझे स्वयं अर्थके बारेमें शंका हो, वहां तो मुझे भाषाका परिवर्तन सुझाना ही चाहिये। और अंतमें यदि समझौता होना ही हो, तो दोनों पक्षोंको मसौदेमें परिवर्तन करनेका अधिकार अवश्य होना चाहिये। जनरल स्मट्सको ऐसा कहकर हमारे सामने पिस्तौल नहीं रखनी चाहिये कि 'समझौतेका यह मसौदा अंतिम है।' खूनी कानूनके रूपमें एक पिस्तौल तो हम पर तनी ही हुई है; तब फिर इस दूसरी पिस्तौलका हम पर क्या असर होनेवाला है?"

श्री कार्टराइट मेरे इस तर्कका विरोध नहीं कर सके और उन्होंने मसौदेमें मेरा सुझाया हुआ परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने रखनेकी बात स्वीकार की।

मैंने जेलके अपने साथियोंके साथ विचार-विमर्श किया। उन्हें भी मसौदेकी भाषा पसंद नहीं आई। परन्तु इस बातसे वे सहमत हुए कि मेरा सुझाया हुआ परिवर्तन यदि जनरल स्मट्स स्वीकार करें, तो सरकारसे समझौता कर लिया जाय। जो नये सत्याग्रही कैदी जेलमें आये थे, वे मेरे लिए कौमके बाहरी नेताओंका यह संदेश लाये थे कि उचित समझौता होता हो, तो उनकी संमतिकी राह देखे बिना मैं समझौता कर लूं। उस मसौदे पर मैंने श्री क्विन और थंबी नायडूके हस्ताक्षर कराये और हम तीनोंके हस्ताक्षरोंवाला मसौदा श्री कार्टराइटको सौंप दिया।

दूसरे या तीसरे दिन, ३० जनवरी १९०८को, जोहानिसबर्गके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री वर्नन मुझे जनरल स्मट्ससे मिलनेके लिए प्रिटोरिया ले गये। हम दोनोंके बीच खूब बातें हुईं। श्री कार्टराइटके साथ जनरल स्मट्सकी जो बातचीत हुई थी वह भी उन्होंने मुझे कह सुनाई। मेरे जेल जानेके बाद भी हिन्दुस्तानी कौम अपनी बात पर डटी रही, इसके लिए उन्होंने मुझे बधाई दी और कहा: "मेरे मनमें कभी आपके लोगोंके लिए नाराजी या नफरत हो ही नहीं सकती। आप जानते ही हैं कि मैं भी बैरिस्टर हूं। मेरे समयमें कुछ हिन्दुस्तानी भी मेरे साथ पढ़ते थे। मुझे केवल अपने कर्तव्यका पालन करना है। गोरे इस कानून-की मांग करते हैं। और आप यह भी स्वीकार करेंगे कि इस कानूनकी

मांग करनेवालोंमें मुख्यतः बोअर नहीं परन्तु अंग्रेज हैं। आपने जो परिवर्तन मसौदेमें सुझाया है, उसे मैं स्वीकार करता हूं। मैंने जनरल बोथाके साथ भी इस विषयमें बात कर ली है। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपमें से अधिकांश लोग यदि स्वेच्छासे परवाने ले लेंगे, तो मैं एशियाटिक एक्टको रद कर दूंगा। स्वेच्छासे लिये हुए परवानोंको कानूनी रूप देनेवाले कानूनका मसौदा मैं तैयार करूंगा तब उसकी एक प्रति आपकी आलोचनाके लिए भेजूंगा। मैं नहीं चाहता कि यह लड़ाई फिर छिड़े; और मैं आप लोगोंकी भावनाओंका आदर करना चाहता हूं।"

इस प्रकार हमारी बातचीत होनेके बाद जनरल स्मट्स उठे। मैंने उनसे पूछा: "अब मुझे कहां जाना है? और मेरे साथके दूसरे सत्याग्रही कैदियोंको क्या होगा?"

तो जनरल स्मट्स हंसते हुए बोले: "आप तो अभीसे मुक्त हैं। और आपके साथियोंको कल छोड़ देनेका टेलीफोन मैं करता हूं। लेकिन मेरी इतनी सलाह जरूर है कि आप लोग ज्यादा सभायें और प्रदर्शन न करें। आप ऐसा करेंगे तो उससे सरकारकी स्थिति विषम हो जायगी।"

मैंने उत्तर दिया: "आप विश्वास रखें कि सिर्फ जलसेके लिए एक भी जलसा मैं नहीं होने दूंगा। लेकिन सरकारके साथ कैसे समझौता हुआ है, उसका स्वरूप क्या है और समझौता होनेसे हिन्दुस्तानियोंकी जिम्मेदारी कितनी ज्यादा बढ़ गई है, ये सब बातें कौमके लोगोंको समझानेके लिए सभायें तो मुझे करनी ही पड़ेंगी।"

जनरल स्मट्सने कहा: "ऐसी सभायें तो आप जितनी चाहें उतनी कर सकते हैं। मेरे आशयको आपने समझ लिया, इतना बस है।"

उस समय शामके लगभग ७ बजे होंगे। मेरे पास एक पाई भी नहीं थी। जनरल स्मट्सके सचिवने मुझे जोहानिसबर्ग जानेके लिए रेल-किरायेके पैसे दिये। प्रिटोरियाके हिन्दुस्तानियोंके पास रुककर उनके समक्ष समझौतेकी घोषणा करना जरूरी नहीं था। कौमके नेता सब जोहानिसबर्गमें थे। हमारा केन्द्रीय कार्यालय भी वहीं था। जोहानिसबर्ग जानेवाली एक ही ट्रेन बाकी थी; और मैं उसे पकड़ सका था।

२२

समझौतेका विरोध और मुझ पर हमला

रात करीब ९ बजे मैं जोहानिसबर्ग पहुंचा। सीधा अध्यक्ष सेठ ईसप मियाके घर गया। मुझे प्रिटोरिया ले जानेका पता उन्हें चल गया था, इसलिए शायद वे मेरी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। लेकिन मुझे अकेला आया देखकर सब लोगोंको आश्चर्य और आनन्द भी हुआ। मैंने सुझाया कि जितने भी लोगोंको बुलाया जा सके उतनोंको बुलाकर इसी समय एक सभा करनी चाहिये। ईसप मिया और दूसरे मित्रोंको भी मेरा सुझाव पसन्द आया। अधिकांश लोग एक ही मुहल्लेमें रहनेवाले थे, इसलिए सबको सभाकी सूचना करना कठिन नहीं था। अध्यक्षका मकान मसजिदके पास ही था। और हमारी सभायें सामान्यतः मसजिदके मैदानमें ही होती थीं। इसलिए सभाकी कोई खास व्यवस्था करना जरूरी नहीं था। मंच पर केवल एक बत्ती प्रकाशके लिए रखना काफी था। रातके लगभग ११ या १२ बजे यह सभा हुई। समय बहुत थोड़ा था, फिर भी करीब एक हजार आदमी सभामें आ गये थे।

सभासे पहले कौमके जो नेता उपस्थित थे उन्हें मैंने समझौतेकी शर्तें समझाई थीं। कुछ नेताओंने समझौतेका विरोध किया। लेकिन मेरी सारी बातें सुननेके बाद सब लोग समझौतेको समझ सके थे। परन्तु एक शंका सबके मनमें थी: "जनरल स्मट्स अगर दगा करें तो क्या होगा? खूनी कानून अमलमें भले न आये, लेकिन हमारे सिर पर वह तलवारकी तरह लटकता तो रहेगा ही। इस बीच स्वेच्छासे परवाने लेकर अपने हाथ कटवा देनेका अर्थ होगा हमारे पास उस कानूनका विरोध करनेके लिए जो एक महान शस्त्र है उसे स्वयं छोड़ देना! यह तो जान-बूझकर शत्रुके पंजेमें फंसने जैसा होगा। सच्चा समझौता तो यह कहा जायगा कि पहले खूनी कानून रद हो और बादमें हम स्वेच्छासे परवाने लें।" यह दलील मुझे अच्छी लगी। दलील करनेवालोंकी तीक्ष्ण बुद्धि और हिम्मतके

लिए मैंने गौरव अनुभव किया और मुझे लगा कि सत्याग्रही ऐसे ही होने चाहिये।

कौमके इन नेताओंकी दलीलके जवाबमें मैंने कहा: "आपकी दलील बहुत सुन्दर है। उस पर गंभीर विचार किया जाना चाहिये। खूनी कानून रद होनेके बाद ही हम स्वेच्छासे परवाने लें, इसके जैसी सुन्दर बात और क्या हो सकती है? लेकिन इसे मैं समझौतेका लक्षण नहीं मानूंगा। समझौतेका अर्थ ही यह है कि जहां सिद्धान्तके विषयमें मतभेद न हो वहां दोनों पक्ष एक-दूसरेको काफी रिआयतें और छूट दें। हमारा सिद्धान्त यह है कि हम खूनी कानूनके सामने सिर झुकाकर उसके अनुसार तो ऐसा भी कोई काम न करें, जिसे करना आपत्तिजनक न हो। इस सिद्धान्त पर हमें अटल और अचल रहना है। दूसरी ओर, सरकारका सिद्धान्त यह है कि ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंके नाजायज प्रवेशको रोकनेके लिए परिचयकी निशानियोंवाले ऐसे परवाने बहुसंख्यक हिन्दुस्तानी स्वेच्छासे ले लें, जिनकी अदला-बदली न हो सके; और इस तरह गोरोंकी शंकाको मिटा कर उन्हें निर्भय कर दें। सरकार इस सिद्धान्तको कभी नहीं छोड़ सकती। सरकारके इस सिद्धान्तको हमने आज तक अपने आचरणसे स्वीकार भी किया है। इसलिए इस सिद्धान्तका विरोध करने जैसा हमें लगे, तो भी जब तक कोई नये कारण पैदा नहीं होते तब तक हम उसके खिलाफ लड़ नहीं सकते। हमारी सत्याग्रहकी लड़ाई इस सिद्धान्तको काटनेके लिए नहीं है, परन्तु खूनी कानूनके काले कलकको मिटानेके लिए है। इसलिए अब यदि हम अपनी कौममें प्रकट हुए नये और प्रचंड बलका उपयोग कोई नई वस्तु प्राप्त करनेमें करें, तो उससे सत्याग्रहियोंके नाते हमारे सत्यको कलंक लगेगा। अतः सच पूछा जाय तो हम इस समझौतेका विरोध नहीं कर सकते।

"अब हम इस दलील पर विचार करें कि खूनी कानून रद हो उसके पहले स्वेच्छासे परवाने लेकर हम अपने हाथ क्यों कटवा दें, शस्त्र-हीन क्यों बन जायें? इसका उत्तर तो बहुत सीधा है। सत्याग्रही डरको सदाके लिए नमस्कार कर देता है। इसलिए वह विरोधी पर विश्वास करनेमें कभी नहीं डरता। बीस बार विश्वासघात किया गया हो तो

भी सत्याग्रही इक्कीसवीं बार विरोधी पर विश्वास करनेको तैयार रहता है; क्योंकि सत्याग्रही तो अपनी नाव विश्वाससे ही चलाता है। और विरोधी पर विश्वास रखनेसे सत्याग्रही अपने हाथ कटवा देता है, यह कहना सत्याग्रहके सिद्धान्तको न समझनेके बराबर है।

"मान लीजिये कि हम लोग स्वेच्छासे नये परवाने ले लेते हैं; और उसके बाद सरकार विश्वासघात करती है और खूनी कानूनको रद नहीं करती। तो क्या उस समय हम सत्याग्रह नहीं कर सकेंगे? ऐसे परवाने ले लेनेके बाद भी यदि हम उन्हें ठीक समय पर बतानेसे इनकार कर दें, तो उन परवानोंकी क्या कीमत रह जायगी? और यदि हम ऐसा करें तो जो हजारों हिन्दुस्तानी गुप्त रीतिसे ट्रान्सवालमें घुस जायं उनके बीच और हम लोगोंके बीच सरकार भेद कैसे कर सकेगी? इसलिए कोई कानून हो या न हो, किसी भी स्थितिमें सरकार हमारी सहायता और सहयोगके बिना हम पर कभी अंकुश नहीं रख सकती। कानूनका अर्थ इतना ही है कि सरकार जो अंकुश हम पर लगाना चाहती है उसे हम स्वीकार न करें, तो हम सजाके पात्र माने जाते हैं। और सामान्यत: यह होता है कि सजाके डरसे मानव प्राणी अंकुशके वशमें हो जाता है। परन्तु सत्याग्रही इस सामान्य नियमका उल्लंघन करता है। यदि वह अंकुशके अधीन होता भी है तो कानूनकी सजाके डरसे नहीं, परन्तु यह समझ कर स्वेच्छासे ऐसा करता है कि सरकारी अंकुशको माननेमें लोक-कल्याण है। और यही स्थिति आज हमारी इन नये परवानोंके बारेमें है। इस स्थितिको सरकार बड़ेसे बड़ा विश्वासघात करके भी बदल नहीं सकती। इस स्थितिको उत्पन्न करनेवाले हम लोग हैं और इसे बदल भी हमीं सकते हैं। जब तक हमारे हाथोंमें सत्याग्रहका हथियार है तब तक हम स्वतंत्र और निर्भय हैं।

"और यदि कोई मुझसे यह कहे कि आज कौममें जो बल आया है वह फिरसे आनेवाला नहीं है, तो मैं उसे यह उत्तर दूंगा कि वह सत्याग्रहको नहीं समझता। उसके कहनेका अर्थ तो यह होगा कि आज कौमके लोगोंमें जो बल प्रकट हुआ है वह सच्चा नहीं है, बल्कि नशे जैसा झूठा और क्षणिक है। यदि यह बात सच हो, तो हम जीतनेके बिल-

कुल अधिकारी नहीं है। और यदि जीतेंगे तो हम जीती हुई बाजी भी हार जायंगे। मान लीजिये कि सरकार खूनी कानूनको रद कर देती है और उसके बाद हम स्वेच्छासे परवाने लेते हैं। यह भी मान लीजिये कि उसके बाद सरकार वही खूनी कानून दुबारा पास करती है और हिन्दुस्तानियोंको परवाने लेनेके लिए मजबूर करती है। तो उस समय सरकारको ऐसा करनेसे कौन रोक सकता है? और यदि आज हमें अपने बलके बारेमें शंका हो, तो उस समय भी हमारी ऐसी ही दुर्दशा होगी। इसलिए चाहे जिस दृष्टिसे हम इस समझौतेकी जांच करें, फिर भी यह कहा जा सकता है कि ऐसा समझौता करनेमें हमारी कौमको कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि लाभ ही होगा। मैं तो यह भी मानता हूं कि हमारी नम्रता और न्यायबुद्धिको समझनेके बाद हमारे विरोधी भी अपना विरोध छोड़ देंगे अथवा उसे कम कर देंगे।"

इस प्रकार उस छोटेसे दलमें जिन एक-दो व्यक्तियोंने समझौतेका विरोध किया, उनके मनका तो मैं पूरी तरह समाधान कर सका। लेकिन जो तूफान मध्यरात्रिकी बड़ी सभामें फूटनेवाला था, उसकी तो मैंने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। सभामें आये हुए लोगोंको मैंने समझौतेकी सारी शर्तें समझायी और कहा:

"इस समझौतेसे कौमकी जिम्मेदारी बहुत अधिक बढ गई है। हम धोखेसे या गलत ढगसे एक भी हिन्दुस्तानीको ट्रान्सवालमें दाखिल नहीं करना चाहते, यह दिखानेके लिए हमें स्वेच्छासे परवाने लेने होंगे। अगर कोई आदमी परवाना न ले, तो अभी तो उसे कोई सजा भी नहीं होगी। लेकिन परवाने न लेनेका अर्थ यही होगा कि कौम समझौतेको स्वीकार नहीं करती। बेशक, यह जरूरी है कि आप लोग इस समय सभामें अपने हाथ ऊंचे करके इस समझौतेका स्वागत करें। मैं यह चाहता भी हूं। परन्तु इसका अर्थ यही होगा, और मैं यही कहूंगा, कि सभामें हाथ ऊंचे करनेवाले सब लोग नये परवाने देनेकी व्यवस्था होते ही परवाने लेने लग जायगे। और आज तक जिस प्रकार आपमें से अनेक लोग परवाना न लेनेकी बात समझानेके लिए स्वयंसेवक बने थे, उसी प्रकार अब परवाना लेनेकी बात समझानेके लिए स्वयंसेवक बनेंगे। जब

अपना कर्तव्य हम पूरा कर चुकेंगे, तभी हम इस जीतका फल वास्तवमें भोग सकेंगे।"

ज्यों ही मैंने अपना भाषण पूरा किया, एक पठान मित्र (मीर-आलम) खड़े हुए और उन्होंने मुझ पर प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी: "क्या इस समझौतेके अनुसार हमें दस अंगुलियोंकी छाप देनी पड़ेगी?"

"हां भी और नहीं भी। मेरी सलाह तो यही होगी कि सब लोगोंको दस अंगुलियोंकी छाप देनी चाहिये। लेकिन जिनका इस बातसे धार्मिक विरोध हो या जो अंगुलियोंकी छाप देनेमें अपना अपमान मानते हों, वे छाप न दें तो भी चलेगा।"

"आप खुद क्या करेंगे?"

"मैंने तो दस अंगुलियोंकी छाप देनेका निश्चय कर ही लिया है। मैं छाप न दूं और दूसरोंको छाप देनेकी सलाह दूं, यह मुझसे कभी नहीं हो सकता।"

"आप दस अंगुलियोंकी छापके बारेमें बहुत लिखते थे। अंगुलियोंकी ऐसी छाप तो केवल गुनहगारोंसे ही ली जाती है, ऐसा सिखानेवाले भी आप ही थे। और कौमकी यह लड़ाई दस अंगुलियोंकी छापकी लड़ाई है, यह बात भी आपने ही कही थी। वह सब आज कहां चला गया?"

"मैंने दस अंगुलियोंकी छापके बारेमें पहले जो जो बातें लिखी थीं उन्हें आज भी मैं वैसी ही मानता हूं। मैं आज भी यह कहता हूं कि दस अंगुलियोंकी छाप हिन्दुस्तानमें गुनहगार जातियोंसे ही ली जाती है। खूनी कानूनके मातहत दस अंगुलियोंकी छाप देना तो दूर रहा, परन्तु दस्तखत देनेमें भी पाप है — ऐसा मैंने पहले भी कहा है और आज भी कहता हूं। यह बात भी सच है कि दस अंगुलियोंकी छाप पर मैंने बहुत ज्यादा जोर दिया था; और मेरा विश्वास है कि वह जोर देनेमें भी मैंने बुद्धिमानी की थी। खूनी कानूनकी जिन छोटी छोटी बातों पर हम आज तक अमल करते आये हैं, उन पर जोर देकर कौमको समझानेके बजाय दस अंगुलियोंकी छाप जैसी महत्त्वपूर्ण और नई बात पर जोर देना ज्यादा आसान था। और मैंने देखा कि कौम इस बातको तुरन्त समझ गई।

"लेकिन आजकी परिस्थितियां दूसरी हैं। जो बात कल तक एक अपराध थी वह आजकी नई और बदली हुई परिस्थितियोंमें सज्जनता अथवा कुलीनताकी निशानी बन गई है, यह मैं जोर देकर कहना चाहता हूं। अगर आप मुझे सलाम करनेके लिए मजबूर करें और मैं आपको सलाम करूं, तो मैं आपकी, लोगोंकी और खुद अपनी नजरमें भी गिर जाऊंगा। लेकिन अगर मैं आपको अपना भाई या मनुष्य मानकर स्वेच्छासे सलाम करूं, तो उससे मेरी नम्रता और कुलीनता प्रकट होगी और खुदाके दरबारमें भी वह मेरी नेकी ही मानी जायगी। इसी दलीलके आधार पर मैं कौमको दस अंगुलियोंकी छाप देनेकी सलाह देता हूं।"

"हमने सुना है कि आपने कौमको धोखा दिया है और १५००० पौंड लेकर कौमको जनरल स्मट्सके हाथों बेच दिया है। न तो हम कभी दस अंगुलियोंकी छाप देंगे और न दूसरे किसीको कभी देने देंगे। मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि जो आदमी एशियाटिक ऑफिसमें सबसे पहले जायगा, उसे मैं जानसे मार दूंगा।"

मैंने कहा: "पठान मित्रोंकी भावनाओंको मैं समझ सकता हूं। मेरा विश्वास है कि कौमका एक भी आदमी इस बातको नहीं मानेगा कि मैं रिश्वत खाकर कौमको बेच सकता हूं। यह बात मैं पहले ही समझा चुका हूं कि जिन लोगोंने दस अंगुलियोंकी छाप न देनेकी सौगंध खाई है, उन्हें कोई छाप देनेके लिए मजबूर नहीं कर सकता। और जो पठान या दूसरे लोग अंगुलियोंकी छाप दिये बिना परवाना लेना चाहेंगे, उन्हें ऐसे परवाने दिलानेमें मैं पूरी पूरी मदद करूंगा। मैं इस बातका विश्वास दिलाता हूं कि दस अंगुलियोंकी छाप दिये बिना वे ऐच्छिक परवाने ले सकेंगे।

"लेकिन मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि जानसे मार डालने-की धमकी मुझे पसंद नहीं है। मैं यह भी मानता हूं कि किसीको मार डालनेकी कसम खुदाके नाम पर नहीं खाई जा सकती। इसलिए मैं तो यही समझूंगा कि इन मित्रने गुस्सेके क्षणिक आवेशमें आकर ही जानसे मार डालनेकी कसम खाई है। लेकिन वे मित्र अपनी कसम पर अमल करें या न करें, फिर भी यह समझौता करनेवाले एक मुख्य

व्यक्तिके नाते और कौमके सेवकके नाते मेरा यह स्पष्ट कर्तव्य है कि अंगुलियोंकी छाप सबसे पहले मैं ही दूं। और मैं ईश्वरसे प्रार्थना करूंगा कि वह मुझे ही सबसे पहले यह काम करने दे। मरना तो सबके नसीबमें लिखा ही है। रोगसे मरने या ऐसे अन्य किसी कारणसे मरनेकी अपेक्षा अपने किसी भाईके हाथों मरनेमें मुझे दुःख हो ही नहीं सकता। और यदि उस समय भी मैं जरा क्रोध न करूं या मारनेवालेसे द्वेष न करूं, तो मैं जानता हूं कि मेरा तो भविष्य ही सुधरेगा, और मुझे मारनेवाला भी बादमें समझ लेगा कि मैं बिलकुल निर्दोष था।"

उपर्युक्त प्रश्न मुझसे क्यों किये गये, इसका कारण समझाना जरूरी है। जो हिन्दुस्तानी खूनी कानूनके वश हो गये थे उनके प्रति किसी तरहका वैरभाव तो नहीं रखा गया था, परन्तु उनके इस कामके खिलाफ स्पष्ट और कड़े शब्दोंमें बहुत कुछ कहा गया था और 'इंडियन ओपीनियन'में खूब लिखा गया था। इससे कानूनके वश हो जानेवालोंका जीवन दुःखद अवश्य हो गया था। उन्होंने कभी यह सोचा ही नहीं था कि कौमका बहुत बड़ा भाग अपनी प्रतिज्ञा पर अडिग खड़ा रहेगा और इस हद तक शक्ति दिखायेगा कि अंतमें सरकारके साथ समझौता होनेका भी दिन आयेगा। परन्तु जब १५० से अधिक सत्याग्रही जेल चले गये और सरकार तथा कौमके नेताओंके बीच समझौतेकी बातें चलने लगीं, तब कानूनके वश हो जानेवाले लोगोंको और भी बुरा लगा; और उनमें कुछ ऐसे भी थे जो यह नहीं चाहते थे कि समझौता हो और यदि हो ही जाय तो उसे तोड़नेकी भी वृत्ति रखते थे।

ट्रान्सवालमें रहनेवाले पठानोंकी संख्या बहुत थोड़ी थी। मेरा खयाल है कि सब मिलाकर वे ५० से ज्यादा नहीं रहे होंगे। उनमें से अनेक पठान बोअर-युद्धके समय सैनिकोंके रूपमें आये थे। और जिस प्रकार युद्धके समय आये हुए अनेक गोरे सैनिक दक्षिण अफ्रीकामें ही बस गये थे, उसी प्रकार सैनिकोंके रूपमें आये हुए पठान और अन्य हिन्दुस्तानी भी वहीं बस गये थे। इन पठानोंमें से कुछ मेरे मुवक्किल हो गये थे और दूसरी तरह भी मैं उनसे भलीभांति परिचित हो गया था। पठान स्वभावसे बहुत ही भोले होते हैं; बहादुर तो वे होते ही हैं। मारना

और मरना — यह उनकी नजरमें बहुत मामूली बात है। और अगर उन्हें किसी पर गुस्सा आ जाय तो वे उसे पीटते हैं — उनकी अपनी भाषामें उसकी पीठ गरम करते हैं — और कभी कभी तो जानसे भी मार देते हैं। और, ऐसा करनेमें वे बिलकुल निष्पक्ष रहते हैं। सगे भाईके साथ भी वे ऐसा ही बरताव करते हैं। ट्रान्सवालमें पठानोंका समाज इतना छोटा था, फिर भी जब उनके बीच झगड़ा हो जाता था तब वे आपसमें मार-पीट करते ही थे। ऐसे मार-पीटके मामलोंमें कभी कभी दोनों पक्षोंके बीच मुझे शांति कायम करानी पड़ती थी। उसमें भी जब कोई पठान किसी दूसरे पठानके साथ विश्वासघात करता, उस समय तो वे अपने गुस्सेको काबूमें रख ही नहीं पाते थे। तब न्याय पानेके लिए एकमात्र मार-पीट ही उनका कानून बन जाती थी।

ये पठान कौमकी सत्याग्रहकी लड़ाईमें पूरा पूरा भाग लेते थे। उनमें से एक भी पठान खूनी कानूनके सामने झुका नहीं था। उन्हें भुलावेमें डालना आसान था। दस अंगुलियोंकी छापके बारेमें उन लोगोंमें गलतफहमी पैदा करके उन्हें उभाड़ना जरा भी कठिन नहीं था। अगर मैंने रिश्वत न खाई हो, तो मैं दस अंगुलियोंकी छाप देनेकी बात उनसे क्यों कहूं? — इतना-सा संकेत उन पठानोंमें शंका पैदा करनेके लिए काफी था।

इसके सिवा, एक दूसरा पक्ष भी ट्रान्सवालमें था। वह पक्ष ऐसे हिन्दुस्तानियोंका था, जो परवाना लिये बिना गुप्त रीतिसे ट्रान्सवालमें घुस आये थे अथवा जो गुप्त रीतिसे परवानोंके बिना या झूठे परवानोंके साथ हिन्दुस्तानियोंको ट्रान्सवालमें दाखिल कराते थे। इस पक्षका स्वार्थ इसीमें था कि सरकारके साथ कौमका समझौता न हो। जब तक कौमकी लड़ाई जारी रहती तब तक किसीको परवाना दिखानेकी जरूरत नहीं थी, इसलिए यह पक्ष निर्भय बन कर अपना गंदा व्यापार चला सकता था और कौमकी लड़ाई जारी रहे तब तक जेलमें जानेसे भी आसानीसे बच सकता था। इस कारणसे लड़ाई जितनी लम्बी चले उतना ही इस पक्षके लोगोंका लाभ था। इस प्रकार ये लोग भी पठानोंको समझौतेके खिलाफ भड़का सकते थे। अब पाठक समझ सकेंगे कि ये पठान एकाएक क्यों भड़क उठे थे।

ऑफिस सत्याग्रह-मंडलका भी ऑफिस था। वहा पहुचते ही मैंने ऑफिसकी दीवालके बाहर मीर आलम और उसके साथियोंको खड़ा देखा।

मीरआलम मेरा पुराना मुवक्किल था। अपने हर काममें वह मेरी सलाह लेता था। अनेक पठान ट्रान्सवालमें घासके या नारियलके रेशोंके गद्दे मजदूरोंसे बनवाते थे और फिर अच्छा मुनाफा लेकर उन्हें बेचते थे। मीरआलम भी यही धन्धा करता था। उसकी ऊंचाई ६ फुटसे अधिक थी। वह कद्दावर और दोहरे शरीरका आदमी था। आज पहली ही बार मैंने मीरआलमको ऑफिसके अन्दर न देखकर बाहर खड़ा देखा और हम दोनोंकी आखें मिलने पर भी उसने पहली ही बार मुझे सलाम नहीं किया। लेकिन मैंने उसे सलाम किया, इसलिए उसने भी मुझे सलाम किया। अपनी आदतके अनुसार मैंने उससे पूछा: "कैसे हो?" मेरा ऐसा खयाल है कि उसने जवाबमें कहा था: "अच्छा हूं।" परन्तु आज उसके चेहरे पर हमेशाकी मुसकान नही थी। मैंने देखा कि उसकी आंखोंमे गुस्सा भरा है। यह बात मैंने मनमें लिख ली। मुझे यह भी लगा कि आज कुछ न कुछ होनेवाला है। मने ऑफिसमें प्रवेश किया। अध्यक्ष ईसप मियां और दूसरे मित्र भी आ पहुचे और हम एशियाटिक ऑफिसकी ओर चल पड़े। मीरआलम और उसके साथी भी हमारे पीछे पीछे आये।

एशियाटिक ऑफिसकी इमारत वॉन ब्रेन्डिस स्क्वेअरमे थी। मेरे ऑफिससे उसकी दूरी एक मीलसे कम थी। वहां जानेके लिए हमें मुख्य सड़कों परसे गुजरना पड़ा। वॉन ब्रेन्डिस स्ट्रीटमें चलते चलते हमने मेसर्स आरनॉट और गिब्सनकी सीमा छोड़ी। वहासे एशियाटिक ऑफिस तीनेक मिनटके फासले पर रहा होगा कि मीरआलम मेरी बगलमे आ गया। उसने मुझसे पूछा: "कहा जाते हो?" मैंने उत्तर दिया: "मैं दस अंगुलियोंकी छाप देकर रजिस्टर (परवाना) निकलवाना चाहता हूं। अगर तुम भी चलोगे तो तुम्हे दस अंगुलियोंकी छाप देनेकी जरूरत नहीं है। तुम्हारा परवाना (सिर्फ दो अंगूठोंकी छापके साथ) पहले निकलवानेके बाद मैं अंगुलियोंकी छाप देकर अपना निकलवाऊगा।"

अतिम वाक्य मैंने मुश्किलसे पूरा किया होगा कि मेरी खोपड़ी पर पीछेसे लाठीका एक वार हुआ। मैं 'हे राम' बोलते-बोलते बेहोश

उसमें दोष निकालनेका काम हमेशा आसान होनेसे अनेक लोग इस कामको अपने हाथमें ले लेते हैं। और जहां संगठन लोकतंत्रात्मक होता है वहां छोटे-बड़े सब लोगोंके प्रश्नोंका उत्तर देना होता है और उन्हें संतोष दिलाना होता है। यही पद्धति सच्ची है। मनुष्य जितना अनुभव ऐसे समय — अर्थात् मित्रोंके बीच पैदा होनेवाली गलतफहमी या झगड़ोंके समय — प्राप्त कर सकता है, उतना विरोधी पक्षके साथ लड़ी जानेवाली लड़ाईमें नहीं प्राप्त कर सकता। विरोधीसे लड़ी जानेवाली लड़ाईमें एक प्रकारका नशा रहता है और इसलिए लड़नेवालोंमें उत्साह और उल्लास बना रहता है। लेकिन जब मित्रोंके बीच गलतफहमी या विरोध उत्पन्न होता है तब वह असामान्य घटना मानी जाती है और सदा दुःखद ही होती है। फिर भी मनुष्यकी परीक्षा ऐसे ही समय होती है। मेरा यह सदाका अनुभव है, और मुझे यह लगता है कि ऐसे ही समय में ऊंचीसे ऊंची आध्यात्मिक संपत्ति प्राप्त कर सका हूं। जो लोग लड़ते समय सत्याग्रहकी लड़ाईका शुद्ध स्वरूप समझ नहीं सके थे, वे समझौतेके दिनोंमें और समझौतेके बाद उसके शुद्ध स्वरूपको अच्छी तरह समझ गये। सच्चा और गंभीर विरोध पठानों तक ही सीमित रहा, उनसे आगे नहीं बढ़ा।

ऐसा करते करते दो-तीन माहमें एशियाटिक ऑफिस ऐच्छिक परवाने देनेके लिए तैयार हो गया। परवानोंका रूप पूरी तरह बदल गया था। उनका नया रूप तैयार करते समय सत्याग्रह-मंडलके साथ सलाह-मशविरा किया गया था।

ता० १०-२-१९०८ के सवेरे हममें से कुछ लोग परवाने लेनेके लिए एशियाटिक ऑफिसमें जानेको तैयार हो गये। कौमके लोगोंको अच्छी तरह समझा दिया गया था कि परवाने लेनेका काम यथासंभव जल्दीसे जल्दी पूरा कर देना चाहिये। और सलाह-मशविरेके बाद यह बात भी तय हो गई थी कि पहले दिन कौमके नेता ही सबसे पहले परवाने लेने जायंगे। इसके पीछे उद्देश्य लोगोंका संकोच दूर करना, एशियाटिक विभागके अधिकारी अपना काम शिष्टतासे करते हैं या नहीं यह जानना और अन्य प्रकारसे उस कामकी सारी व्यवस्था पर देखरेख रखना था। मेरा

ऑफिस सत्याग्रह-मंडलका भी ऑफिस था। वहां पहुचते ही मैंने ऑफिसकी दीवालके बाहर मीर आलम और उसके साथियोंको खड़ा देखा।

मीरआलम मेरा पुराना मुवक्किल था। अपने हर काममें वह मेरी सलाह लेता था। अनेक पठान ट्रान्सवालमें घासके या नारियलके रेशोंके गद्दे मजदूरोंसे बनवाते थे और फिर अच्छा मुनाफा लेकर उन्हें बेचते थे। मीरआलम भी यही धन्धा करता था। उसकी ऊंचाई ६ फुटसे अधिक थी। वह कद्दावर और दोहरे शरीरका आदमी था। आज पहली ही बार मैंने मीरआलमको ऑफिसके अन्दर न देखकर बाहर खड़ा देखा और हम दोनोंकी आखें मिलने पर भी उसने पहली ही बार मुझे सलाम नही किया। लेकिन मैंने उसे सलाम किया, इसलिए उसने भी मुझे सलाम किया। अपनी आदतके अनुसार मैंने उससे पूछा: "कैसे हो?" मेरा ऐसा खयाल है कि उसने जवाबमें कहा था: "अच्छा हूं।" परन्तु आज उसके चेहरे पर हमेशाकी मुसकान नही थी। मैंने देखा कि उसकी आखोंमें गुस्सा भरा है। यह बात मैंने मनमें लिख ली। मुझे यह भी लगा कि आज कुछ न कुछ होनेवाला है। मने ऑफिसमें प्रवेश किया। अध्यक्ष ईसप मिया और दूसरे मित्र भी आ पहुचे और हम एशियाटिक ऑफिसकी ओर चल पड़े। मीरआलम और उसके साथी भी हमारे पीछे पीछे आये।

एशियाटिक ऑफिसकी इमारत वॉन ब्रेन्डिस स्क्वेअरमें थी। मेरे ऑफिससे उसकी दूरी एक मीलसे कम थी। वहां जानेके लिए हमें मुख्य सड़कों परसे गुजरना पड़ा। वॉन ब्रेन्डिस स्ट्रीटमें चलते चलते हमने मेसर्स आरनॉट और गिब्सनकी सीमा छोड़ी। वहासे एशियाटिक ऑफिस तीनेक मिनटके फासले पर रहा होगा कि मीरआलम मेरी बगलमें आ गया। उसने मुझसे पूछा: "कहा जाते हो?" मैंने उत्तर दिया: "मैं दस अंगुलियोंकी छाप देकर रजिस्टर (परवाना) निकलवाना चाहता हूं। अगर तुम भी चलोगे तो तुम्हे दस अगुलियोंकी छाप देनेकी जरूरत नहीं है। तुम्हारा परवाना (सिर्फ दो अंगूठोंकी छापके साथ) पहले निकलवानेके बाद मै अगुलियोंकी छाप देकर अपना निकलवाऊंगा।"

अतिम वाक्य मैंने मुश्किलसे पूरा किया होगा कि मेरी खोपड़ी पर पीछेसे लाठीका एक वार हुआ। मैं 'हे राम' बोलते-बोलते बेहोश

होकर जमीन पर लुढ़क गया। बादमें क्या हुआ, इसका मुझे कोई भान नही था। लेकिन मीरआलमने और उसके साथियोंने मुझ पर लाठियोंके अधिक वार किये और लातें भी मारी। उनमें से कुछ ईसप मिया और थंबी नायडूने झेली। इस कारणसे ईसप मिया और थंबी नायडू पर भी थोड़ी मार पड़ी। इतनेमे शोरगुल मचा। आने-जानेवाले गोरे इकट्ठे हो गये। मीरआलम और उसके साथी भागे, लेकिन गोरोंने उन्हें पकड़ लिया। इस बीच पुलिस भी आ पहुची। उसने पठानोंको हिरासतमे ले लिया।

पास ही श्री जे० सी० गिब्सनका ऑफिस था। मुझे उठाकर वहां ले जाया गया। कुछ देर बाद मुझे होश आया तब मैंने रेवरेंड डोकको अपने चेहरे पर झुके हुए देखा। उन्होंने मुझसे पूछा: "आपको कैसा लगता है?"

मैंने हसकर जवाब दिया: "अब ठीक हूं। लेकिन मेरे दातोंमें और पसलियोंमे दर्द होता है।" फिर मैंने पूछा: "मीरआलम कहां है?"

डोक बोले: "उसे और उसके साथियोंको गिरफ्तार कर लिया गया है।

मैंने कहा: "वे छूटने चाहियें।"

डोक: "वह सब तो होता रहेगा। लेकिन आप यहां एक अपरिचितके ऑफिसमे पड़े है। आपका होंठ फट गया है। पुलिस आपको अस्पताल ले जानेको तैयार है। लेकिन अगर आप मेरे यहा चले तो मैं और श्रीमती डोक आपकी यथाशक्ति सार-सभाल करेंगे।"

मैंने कहा: "मुझे आपके ही घर ले चलिये। पुलिसके प्रस्तावके लिए उसे धन्यवाद दीजिये। लेकिन उससे कहिये कि मुझे आपके यहां जाना ज्यादा पसद है।"

इतनेमें एशियाटिक विभागके अधिकारी श्री चमनी भी आ पहुचे। मुझे एक गाड़ीमें लिटा कर भले पादरी श्री डोकके स्मिट स्ट्रीट स्थित निवास-स्थान पर ले जाया गया। मेरी जाचके लिए एक डॉक्टरको बुलाया गया। इस बीच मैंने श्री चमनीसे कहा: "मेरी आशा तो यह थी कि आपके ऑफिसमें आकर और दस अगुलियोंकी छाप देकर पहला परवाना मैं लूगा। लेकिन ईश्वरको यह स्वीकार नही था। अब मेरी आपसे प्रार्थना

है कि आप इसी समय जाकर जरूरी कागजात ले आइये और पहला परवाना मुझे दीजिये। मैं आशा रखता हूं कि मेरे पहले आप दूसरे किसीको परवाना नहीं देंगे।"

उन्होंने कहा: "ऐसी क्या जल्दी है? अभी डॉक्टर आयेगा। आप आराम करें। बादमें सब कुछ हो जायगा। दूसरोंको परवाना दूंगा तो भी आपका नाम सबसे पहला रखूंगा।"

मैं बोला: "ऐसा नहीं। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि यदि मैं जिन्दा रहूं और ईश्वरको मंजूर हो, तो सबसे पहले मैं ही परवाना लूंगा। इसीलिए मेरा आग्रह है कि आप कागजात ले आइये।"

इस पर श्री चमनी कागजात लानेके लिए ऑफिस गये।

मेरा दूसरा काम एटर्नी-जनरल अर्थात् सरकारी वकीलको यह तार करना था कि "मीरआलम और उसके साथियोंने मुझ पर जो हमला किया, उसके लिए मैं उन लोगोंको दोषी मानता ही नहीं। जो भी हो, लेकिन मैं नहीं चाहता कि उन पर फौजदारी मुकदमा चले। मैं आशा करता हूं कि मेरे खातिर आप उन्हें छोड देंगे।" इस तारके उत्तरमें मीरआलम और उसके साथियोंको छोड़ दिया गया।

लेकिन जोहानिसबर्गके गोरोंने एटर्नी-जनरलको इस आशयका एक कडा पत्र लिखा: "अपराधीको सजा देनेके बारेमें गांधीके चाहे जो विचार हों, लेकिन इस देशमें उन पर अमल नहीं किया जा सकता। गांधीको जो मार पड़ी है उसके बारेमें वे भले ही कुछ न करें, लेकिन हमला करनेवाले लोगोंने यह मार उन्हें किसी निजी मकानमें नहीं मारी है। यह अपराध पठानोंने आम रास्ते पर किया है। इसलिए यह एक सार्वजनिक अपराध माना जायगा। कुछ अंग्रेज भी इस अपराधकी गवाही देनेकी स्थितिमें हैं। अपराधियोंको पकड़ना ही चाहिये।" इस आन्दोलनके कारण एटर्नी-जनरलने फिर मीरआलम और उसके एक साथीको गिरफ्तार कर लिया और उन्हें तीन तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा दी। केवल मुझे गवाहके रूपमें नहीं बुलाया गया।

लेकिन हम बीमारके कमरेकी ओर लौटें। श्री चमनी कागजात लेने गये इतनेमें डॉ० थ्वेट्स आ पहुंचे। उन्होंने मेरी जांच की। मेरा

ऊपरका होंठ फट गया था। एक गालमें भी घाव हो गया था। इसलि टांके लगा कर डॉक्टरने दोनोंको जोड़ दिया। पसलियोंकी जांच कर उन पर लगानेकी दवा दी; और जहां तक वे टाके न तोड़े वहा त बोलनेकी मनाही कर दी। भोजनमें तरल पदार्थोंके सिवा दूसरा कु खानेकी मनाही कर दी। डॉक्टरका निदान यह था कि मुझे शरीर किसी भी हिस्सेमें गभीर चोट नही लगी है। एक ही हफ्तेमें मैं बिस्त छोड़ सकूंगा और साधारण कामकाज फिर कर सकूंगा; केवल इतना ध्या रखना होगा कि दो-एक माह तक शरीर पर कामका बहुत बोझ न पड़े— इतना कह कर डॉक्टर चले गये।

इस प्रकार मेरा बोलना बन्द हो गया, परन्तु मेरे हाथ चल सकते थे। अध्यक्षके द्वारा कौमके लोगोंको सम्बोधित करते हुए मैंने एक छोटासा गुजराती पत्र लिखकर छपनेके लिए भेज दिया। पत्र इस प्रकार था :

"मेरी तबीयत अच्छी है। श्री डोक और श्रीमती डोक हृदयका सारा प्रेम उंड़ेल कर मेरी सेवा-शुश्रूषा कर रहे है। मैं कुछ ही दिनोंमें अपना काम सभाल लूगा। जिन लोगोंने मुझे मारा है, उन पर मेरे मनमें जरा भी गुस्सा नही है। उन्होंने बेसमझीसे यह काम किया है। उन पर मुकदमा चलानेकी कोई जरूरत नही। अगर दूसरे लोग शात रहेंगे, तो इस घटनासे भी हमें लाभ ही होगा।

"हिन्दुओंको चाहिये कि वे मनमें जरा भी रोष न रखें। मैं चाहता हूं कि इस घटनासे हिन्दुओं और मुसलमानोके बीच खटास पैदा होनेके बदले मिठास पैदा हो। खुदासे — ईश्वरसे मै यही याचना करता हू।

"मुझ पर मार जरूर पड़ी; लेकिन इससे ज्यादा मार पड़े, तो भी मैं एक ही सलाह आपको दूगा। वह यह कि लगभग सभी हिन्दुस्तानियोंको दस अंगुलियोंकी छाप देनी चाहिये। ऐसा करनेमें जिन्हे सचमुच धार्मिक आपत्ति हो, उन्हे सरकार छूट देगी। इसीमें कौमका और गरीबोंका भला तथा उनकी रक्षा समाई हुई है।

"यदि हम सच्चे सत्याग्रही होंगे, तो मारके या भविष्यमें होनेवाले विश्वासघातके डरसे घबरायेंगे नही। जो लोग दस अंगुलियोंकी छाप न देनेकी बातको पकड़े हुए है, उन्हे मैं अज्ञानी मानता हूं।

"मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि वह कौमका भला करे, उसे सत्यके मार्ग पर लगाये और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके दिलोंको मेरे खूनकी पट्टीसे जोड़ दे।"

श्री चमनी कागजात लेकर आये। बड़ी कठिनाईसे और जैसे-तैसे मैंने अपनी दस अंगुलियोंकी छाप उन्हें दी। उस समय मैंने उनकी आंखोंमें आंसू देखे। उनके खिलाफ मुझे अकसर कड़ी बातें लिखनी पड़ती थी। लेकिन इस घटनासे मेरे सामने इस बातका प्रत्यक्ष चित्र खड़ा हुआ कि मौका आने पर मानवका हृदय कितना कोमल बन सकता है।

पाठक आसानीसे कल्पना कर सकते हैं कि यह विधि पूरी करनेमें कुछ मिनटसे ज्यादा समय नहीं लगा होगा। श्री डोक और उनकी भली पत्नी मुझे पूर्ण शांत और स्वस्थ देखनेके लिए अत्यन्त उत्सुक थे। हमलेसे घायल होनेके बाद मेरे मानसिक कार्यको देखकर दोनोंको दुःख होता था। उन्हें भय था कि इसका बुरा असर कहीं मेरी तबीयत पर न पड़े। इसलिए संकेत देकर और दूसरी तरकीबें काममें लेकर वे सब लोगोंको मेरे पलंगसे दूर हटा ले गये और मुझे लिखनेकी या और कुछ करनेकी मनाही कर दी। मैंने उनसे विनती की (और लिख कर की) कि मैं बिलकुल शांतिसे सो जाऊं इससे पहले, और इसके लिए, उनकी लड़की ऑलिव — जो उस समय छोटी बालिका ही थी — मुझे अपना प्रिय अंग्रेजी भजन 'लीड, काइंड्ली लाइट' गाकर सुनाये। श्री डोकको मेरी यह विनती बहुत पसंद आई। यह बात अपने मधुर हास्य द्वारा उन्होंने मुझे समझा दी और ऑलिवको इशारेसे बुला कर दरवाजेके बाहर खड़े खड़े धीमे स्वरमें वह भजन गानेके लिए कहा। यह लिखाते समय वह संपूर्ण दृश्य मेरी आंखोंके सामने तैर रहा है और ऑलिवके दिव्य स्वरकी गूंज अभी भी मेरे कानोंमें गूंज रही है।

इस प्रकरणमें मैं ऐसी बहुतसी बातें लिख गया हूं, जिन्हें मैं स्वयं और पाठक भी मेरे विषयके साथ असंगत मानेंगे। फिर भी एक और संस्मरण जोड़े बिना मैं यह प्रकरण पूरा नहीं कर सकता। उस कालके सारे ही संस्मरण मेरी दृष्टिमें इतने अधिक पवित्र हैं कि उन्हें मैं छोड़ ही नहीं सकता। डोक-परिवारकी सेवा-शुश्रूषाका वर्णन मैं किन शब्दोंमें

श्री जोसेफ डोक बैप्टिस्ट संप्रदायके पादरी थे। उस समय उनकी उमर ४६ वर्षकी थी। दक्षिण अफ्रीका आनेसे पहले वे न्यूज़ीलैण्डमें रहते थे। मुझ पर पठानोंका हमला हुआ उसके कोई छह महीने पहले वे मेरे ऑफिसमें आये और मेरे पास अपना नाम भिजवाया। उसमें 'रेवरेंड' विशेषणका उपयोग किया गया था। उसके आधार पर मैंने यह गलत कल्पना कर ली कि जिस तरह कुछ पादरी मुझे ईसाई बनानेके लिए अथवा सत्याग्रहकी लड़ाई बन्द करनेकी बात समझानेके लिए अथवा आश्रयदाता बन कर कौमको लड़ाईके साथ सहानुभूति बतानेके लिए आते थे, उसी प्रकार डोक भी आये होंगे। लेकिन डोक भीतर आये और हम दोनोंकी बातचीत कुछ ही मिनट चली कि मैं अपनी भूलको समझ गया और मैंने मन ही मन उनसे क्षमा मांगी। उसी दिनसे हम दोनों घनिष्ठ मित्र बन गये। कौमकी लड़ाईके बारेमें अखबारोंमें जो भी बातें छपती थीं उन सबसे मैंने उन्हें परिचित पाया। उन्होंने कहा: "आप इस लड़ाईमें मुझे अपना मित्र ही समझिये। मुझसे जो भी सेवा बन पड़ेगी वह मैं अपना धर्म समझ कर करना चाहता हूं। ईसा मसीहके जीवनका चिन्तन करके यदि मैंने कुछ सीखा है, तो यही कि दुःखियोंके दुःखमें मनुष्यको हिस्सा लेना चाहिये।" इस प्रकार हमारा परिचय हुआ और हमारे बीचका स्नेह और घनिष्ठता दिनोंदिन बढ़ती ही गई।

आगे चल कर पाठक इस इतिहासमें डोकका नाम अनेक स्थानों पर देखेंगे। लेकिन डोक-परिवारने मेरी जो सेवा-शुश्रूषा की, उसका वर्णन करनेसे पहले श्री डोकका इतना परिचय देना आवश्यक था। रात और दिन परिवारका कोई न कोई सदस्य मेरे पास हाजिर ही रहता था। जितने समय मैं उनके घरमें रहा उतने समय तक वह घर धर्मशाला बना रहा! हिन्दुस्तानी कौममें फेरी लगानेवाले आदमी मजदूरों जैसे कपड़े पहनते थे, जो मैले भी काफी होते थे; उनके जूतों पर धूलकी परत चढ़ी रहती थी; और उनकी मालकी गठरी या टोकरी भी उनके साथ ही होती थी। ऐसे हिन्दुस्तानियोंसे लेकर ट्रान्सवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके अध्यक्ष जैसे लोगों तकका श्री डोकके घरमें तांता बंधा रहता था। सब तरहके लोग वहां मेरे हाल-चाल पूछने और डॉक्टरकी

इजाजतके बाद मुझसे मिलने आते थे। श्री डोक सभीको समान आदर और समान प्रेमसे अपने दीवान-खानेमें बैठाते थे। जब तक मैं डोक-परिवारके साथ रहा तब तक उनका सारा समय मेरी सेवा-शुश्रूषामें और मुझे देखने आनेवाले सैकड़ों लोगोंके आदर-सत्कारमें ही व्यतीत होता रहा। रातमें भी दो तीन बार डोक चुपचाप मेरे कमरेमें आकर मुझ पर एक नजर डाल जाते थे। उनके घरमें रहते हुए मुझे किसी भी दिन ऐसा खयाल न आया कि यह मेरा घर नहीं है या मेरे प्रियसे प्रिय जन भी डोक-परिवारसे मेरी अधिक सार-संभाल करते।

पाठक यह भी न मानें कि हिन्दुस्तानी कौमकी लड़ाईका इतने खुले रूपमें समर्थन करनेके लिए या मुझे अपने घरमें रखनेके लिए डोकको कोई मुसीबत न उठानी पड़ी। वे अपने बेप्टिस्ट सम्प्रदायके गोरोंके लिए एक गिरजाघर चलाते थे। उनकी जीविका इसी सम्प्रदायके लोगों द्वारा चलती थी। उस सम्प्रदायके सभी अनुयायी उदार थे, ऐसा नहीं मानना चाहिये। हिन्दुस्तानियोंके लिए सामान्य अरुचि तो उनके मनमें भी थी ही। लेकिन डोकने इसकी बिलकुल परवाह नहीं की। हमारे परिचयके आरम्भमें ही मैंने इस नाजुक विषयकी चर्चा उनके साथ की थी। उनका उत्तर यहां देने जैसा है। उन्होंने कहा था: "मेरे प्रिय मित्र, ईसाके धर्मको आप कैसा मानते हैं? मैं उस महापुरुषका अनुयायी हूं, जो अपने धर्मके पालनके लिए सूली पर चढ़ा था और जिसका प्रेम इस विश्व जैसा ही विशाल था। जिन गोरोंके बारेमें आपको डर है कि वे मेरा त्याग कर देंगे, उनके सामने यदि मैं ईसाका प्रतिनिधित्व करनेकी थोड़ी भी अभिलाषा रखता हूं, तो हिन्दुस्तानी कौमकी लड़ाईमें मुझे सार्वजनिक रूपमें भाग लेना ही चाहिये; और ऐसा करनेसे मेरा मंडल यदि मुझे त्याग दे, तो मुझे जरा भी दुःखी नहीं होना चाहिये। यह सच है कि मेरी जीविका उनके द्वारा चलती है। लेकिन आप ऐसा तो नहीं मानेंगे कि जीविकाके खातिर मैं उनसे सम्बन्ध रखता हूं अथवा वे मेरी रोजीके देनेवाले हैं। मेरी रोजी तो मुझे ईश्वर देता है। वे केवल उसके निमित्त-मात्र हैं। उनके साथ मेरे सम्बन्धकी बिना कहे समझ ली गई शर्त यह है कि उनमें से कोई मेरी धार्मिक स्वतंत्रतामें बाधक बन ही नहीं सकता।

इसलिए आप मेरे विषयमें जरा भी चिन्ता न करें। मैं कोई हिन्दुस्तानियों पर मेहरबानी करनेके लिए इस लड़ाईमें शरीक नहीं हुआ हूं। इसे अपना धर्म मान कर मैं इसमें शरीक हुआ हूं। लेकिन सत्य यह है कि अपने डीन (गिरजेके मुखिया) के साथ इस विषयमें मैंने स्पष्ट बात कर ली है। मैंने उन्हें नम्रतासे कह दिया है कि यदि हिन्दुस्तानी कौमके साथ मेरा सम्बन्ध उन्हें पसंद न हो, तो वे बिना किसी संकोचके मुझे नौकरीसे अलग कर सकते हैं और दूसरा पादरी (मिनिस्टर) रख सकते हैं। परन्तु डीनने मुझे इस विषयमें बिलकुल निश्चिन्त कर दिया है; इतना ही नहीं, मुझे प्रोत्साहन दिया है। इसके सिवा, आपको यह भी नहीं समझना चाहिये कि सभी गोरे हिन्दुस्तानी कौमके लोगोंको एकसी तिरस्कारकी नजरसे देखते हैं। आपको इस बातकी कल्पना नहीं हो सकती कि परोक्ष रूपमें अनेक गोरे आपके दुःखोंके प्रति कितनी सहानुभूति रखते हैं; परन्तु मुझे इसका अनुभव होना चाहिये, यह आप स्वीकार करेंगे।"

इतनी स्पष्ट बातचीत होनेके बाद दुबारा मैंने यह विषय डोकके सामने कभी नहीं छेड़ा। और बादमें जब कौमकी लड़ाई चल रही थी उसी बीच डोक अपना धर्मकार्य करते करते रोडेशियामें देवलोक सिधारे, उस समय उनके सम्प्रदायके अनुयायियोंने अपने गिरजेमें एक सभा की थी; उस सभामें स्व० काछलियाके साथ मुझे और दूसरे कई हिन्दुस्तानियोंको बुलाया गया था और उसमें भाषण करनेका निमंत्रण मुझे भी मिला था।

लगभग १० दिनमें मैं अच्छी तरह घूमने-फिरने लगा। इस स्थितिमें पहुंचनेके बाद मैंने इस ममतालु परिवारसे विदा ली। हम दोनोंके लिए यह वियोग दुःखद सिद्ध हुआ था।

२३

गोरे सहायक

कौमकी लड़ाईमे इतने अधिक प्रतिष्ठित गोरोने हिन्दुस्तानियोंका पक्ष लेकर प्रमुख भाग लिया था कि इस स्थान पर उन सबका एक साथ परिचय कराना अनुचित नही होगा। इससे आगे चलकर जब स्थान स्थान पर उनके नाम आयेंगे तब पाठकोंको वे अपरिचित नहीं लगेंगे और लडाईका वर्णन करते हुए मुझे उनका परिचय करानेके लिए बीच बीचमें रुकना भी नही पड़ेगा। जिस क्रममें उनके नाम मैं यहां दूंगा उस क्रमको पाठक न तो उनकी प्रतिष्ठाके अनुसार मानें और न लड़ाईमें उनकी सहायताके मूल्यके अनुसार मानें। कुछ हद तक पाठक इस क्रमको *गोरे मित्रोंके परिचय-कालके अनुसार और लड़ाईके उप-विभागोंमें प्राप्त* उनकी सहायताके अनुसार मानें।

इनमें सबसे पहला नाम श्री आल्बर्ट वेस्टका आता है। कौमके साथ उनका सम्बन्ध लड़ाईके पहले ही स्थापित हो चुका था। और मेरे साथ तो उनका सम्बन्ध इससे भी पहले बध गया था। मैंने जोहानिसबर्गमें अपना ऑफिस खोला उस समय मेरा परिवार मेरे साथ नही था। *पाठकोंको स्मरण होगा कि मैं १९०३ में दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंका* तार मिलनेसे एकाएक हिन्दुस्तानसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गया था। मनमें यह आशा थी कि एक वर्षके भीतर हिन्दुस्तान लौट आऊंगा। जोहानिसबर्गमे एक शाकाहार देनेवाला भोजन-गृह था। उसमें मैं सुबह और शाम नियमित रूपसे भोजन करने जाता था। वेस्ट भी वहां आते थे। वही हम दोनोंका परिचय हुआ था। वे एक अन्य गोरेके साथ साझेदारीमें प्रेस चलाते थे।

१९०४ में जोहानिसबर्गके हिन्दुस्तानियोंमें जोरका प्लेग फैला। मैं रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषामें लग गया, इसलिए उस भोजन-गृहमें मेरा जाना अनियमित हो गया। और जब जाता भी था तो दूसरे जीमनेवालोंके आनेसे

पहले ही म भोजन कर आता, ताकि दूसरे लोगोंको मुझसे प्लेगकी छूत लगनेका कोई भय न रहे। जब लगातार दो दिन तक वेस्टने मुझे भोजन-गृहमें नही देखा तो वे घबराये। अखबारोंसे उन्हें पता चल गया था कि मैं प्लेगके रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषामें लगा हूं। तीसरे दिन सुबह ६ बजे, जब मैं हाथ-मुह ही धो रहा था, वेस्टने आकर मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया। मैंने दरवाजा खोला तो सामने वेस्टका हंसता चेहरा देखा।

वे खुश होकर बोल उठे: "आपको देखकर मै निश्चिन्त हो गया। भोजन-गृहमें आपको देखा नहीं, इसलिए मै घबरा गया था। अगर मेरी मददकी कोई जरूरत आपको हो तो जरूर कहिये।"

मैंने मजाकके स्वरमें पूछा: "रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करेंगे?"

"क्यों नही? मैं बिलकुल तैयार हू।"

इतने-से विनोदमें मैंने अपनी योजना सोच ली थी। मैंने कहा: "आपसे दूसरे किसी उत्तरकी आशा मैं रख ही नही सकता था। परन्तु रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषामें मदद देनेवाले कई लोग हैं। आपसे मैं इससे अधिक कठिन काम लेना चाहता हूं। मदनजीत यहां प्लेगके कार्यमें लगे हुए हैं, इसलिए 'इंडियन ओपीनियन' का प्रेस निराधार हो गया है। मदनजीतको तो मैंने प्लेगके कार्यमें रोक ही लिया है। इसलिए यदि आप डरबन जाये और प्रेसको सभाल लें, तो सचमुच बडी मदद हो जाय। पर उस काममें ललचाने जैसा कुछ नही है। मैं आपको बहुत थोड़ा पैसा दे सकूगा — अर्थात् महीनेके सिर्फ १० पौंड। और प्रेसमें यदि कोई लाभ हो, तो उसमें आधा हिस्सा आपका।"

"यह काम थोड़ा अटपटा जरूर है। मुझे अपने साझेदारसे इजाजत लेनी होगी। कुछ उगाही भी वसूल करनी है। लेकिन कोई चिन्ता नही। आज शाम तकका समय आप मुझे देंगे?"

"जरूर! ६ बजे हम पार्कमें मिलेंगे।"

"मैं जरूर पहुंच जाऊगा।"

पार्कमें हम मिले। वेस्टने अपने साझेदारकी इजाजत ले ली। उगाही वसूल करनेका काम मुझे सौंप दिया। और दूसरे दिन शामकी ट्रेनसे वे डरबनके लिए रवाना हो गये। एक महीनेके भीतर उनकी रिपोर्ट आई:

"इस प्रेसमें मुनाफा बिलकुल नहीं है। घाटा बहुत है। उगाहीका कोई पार नहीं है; लेकिन बहीखातेमें हिसाब ठीकसे नहीं रखा गया है। न तो ग्राहकोंके पूरे नाम हैं, न उनके पूरे पते हैं। दूसरी अव्यवस्था भी बहुत ज्यादा है। यह मैं शिकायतके रूपमें नहीं लिख रहा हूं। यहां मैं मुनाफा कमानेके लिए नहीं आया हूं। इसलिए आप निश्चित मानिये कि हाथमें लिया हुआ काम मैं छोड़ूंगा नहीं। लेकिन इतनी आगाही मैं अभीसे कर दूं कि आपको लम्बे समय तक घाटेकी पूर्ति करते ही रहना होगा।"

मदनजीत 'इंडियन ओपीनियन'के ग्राहक बनाने और प्रेसकी व्यवस्थाके बारेमें मुझसे बातचीत करने जोहानिसबर्ग आये थे। मैं हर महीने थोड़ा-बहुत घाटा तो पूरा करता ही रहता था। इसलिए मैं निश्चित रूपसे जानना चाहता था कि मुझे किस हद तक यह पूर्ति करनी पड़ेगी। पाठकोंको मैं यह बता चुका हूं कि प्रेस आरंभ करते समय भी मदनजीतको प्रेस चलानेका कोई अनुभव नहीं था। इसलिए मैं सोचा करता था कि प्रेसमें किसी अनुभवी आदमीको उनके साथ रखा जाय तो अच्छा हो। इसी बीच यह प्लेग फूट पड़ा। ऐसे काममें मदनजीत बहुत कुशल और निर्भय माने जाते थे। इसलिए मैंने उन्हें जोहानिसबर्गमें रोक लिया। यही कारण है कि वेस्टके अनसोचे प्रस्तावको मैंने स्वीकार कर लिया और प्लेगके दौरान कुछ समयके लिए नहीं परन्तु हमेशाके लिए उन्हें डरबन जाना है, ऐसा मैंने वेस्टको समझा दिया। इसलिए उनकी उपर्युक्त रिपोर्ट मेरे पास आई।

पाठक जानते हैं कि अंतमें 'इंडियन ओपीनियन' और उसका प्रेस फिनिक्स ले जाया गया था। वहां वेस्ट महीनेके १० पौंडके बदले ३ पौंड लेने लगे थे। इन सारे परिवर्तनोंमें वेस्ट पूरी तरह सहमत थे। उनकी जीविका कैसे चलेगी, इसका किसी दिन भी वेस्टको भय लगा हो ऐसा मैंने नहीं देखा। उन्होंने धर्मका अध्ययन नहीं किया था, फिर भी मैं उन्हें अत्यंत धार्मिक पुरुष मानता था। वे अतिशय स्वतंत्र स्वभावके आदमी थे। किसी बातको वे जैसी मानते थे वैसा ही उसके बारेमें स्पष्ट कह देते थे। कालेको कृष्णवर्णका कहनेके बजाय वे काला ही कहते थे। रहन-सहन बहुत ही सादा था। हम दोनोंका परिचय हुआ

वे ब्रह्मचारी थे और मैं जानता हू कि वे ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। उसके कुछ वर्ष बाद वे अपने माता-पितासे मिलने इंग्लैंड गये और वहासे विवाहित होकर लौटे। मेरी सलाहसे वे अपनी पत्नीको, सासको और कुंआरी बहनको अपने साथ ले आये थे। वे सब फिनिक्समें बहुत सादगीसे रहते थे और हर तरहसे हिन्दुस्तानियोंके साथ घुलमिल गये थे।

कुमारी एडा वेस्ट (हम उन्हें देवी बहन कहते थे) अब ३५ वर्षकी हुई होगी, लेकिन अभी तक कुआरी अवस्थामें ही है और अत्यन्त पवित्र जीवन बिता रही है। उन्होंने भी फिनिक्सवासियोंकी कोई कम सेवा नही की। फिनिक्समें रहनेवाले बाल-शिष्योंको सभालना, उन्हें अंग्रेजीकी शिक्षा देना, सार्वजनिक रसोईघरमें खाना बनाना, मकानोंकी सफाई करना, बहीखातेमें हिसाब लिखना, प्रेसमें कपोज करना या प्रेसका दूसरा कोई काम करना — कोई भी काम क्यो न हो, उसे करनेमें उन बहनने किसी दिन आनाकानी नहीं की। आज वे फिनिक्स आश्रममें नहीं है, इसका एकमात्र कारण यह है कि उनका मामूली खर्च भी प्रेस मेरे हिन्दुस्तान आ जानेके बाद उठा नही सका था। वेस्टकी सासकी आयु इस समय ८० से ऊपर होगी। वे सिलाईका काम बड़े सुन्दर ढगसे करती हैं। इसलिए बूढ़ी होने पर भी वे सिलाईके काममे आश्रमकी पूरी मदद करती थी। फिनिक्समें सब कोई उन्हे दादीमां (ग्रेनी) कहते और मानते थे। श्रीमती वेस्टके बारेमें तो कुछ कहना जरूरी है ही नही। जब फिनिक्सके अधिकतर निवासी जेल चले गये तब वेस्ट-परिवारने मगनलाल गाधीके साथ मिलकर फिनिक्सकी सारी व्यवस्था चलाई थी। वेस्ट 'इंडियन ओपीनियन' और प्रेससे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक काम करते थे। मेरी और अन्य लोगोंकी अनुपस्थितिमें डरबनसे गोखलेको भेजे जानेवाले तार वेस्ट ही भेजते थे। अंतमें जब वेस्ट भी गिरफ्तार कर लिये गये (यद्यपि उन्हें तुरन्त ही छोड़ दिया गया था) तब गोखले घबरा उठे थे, और उन्होंने हिन्दुस्तानसे एन्ड्रूज और पियर्सनको दक्षिण अफ्रीका भेज दिया था।

दूसरे सहायक थे श्री रिच। इनके बारेमें मैं पहले लिख चुका हूं। वे सत्याग्रहकी लड़ाईसे पहले ही मेरे ऑफिसमें काम करने लगे थे। मेरी अनुपस्थितिमें वे मेरा काम संभाल सकें, इस आशासे वे बैरिस्टरीका अभ्य-

यन करनेके लिए इंग्लैंड गये थे। वहां लंदनकी साउथ आफ्रिकन ब्रिटिश इंडियन कमेटीकी सारी जिम्मेदारी उन्हींके हाथमें थी।

तीसरे सहायक थे श्री पोलाक। वेस्टकी तरह पोलाकका परिचय भी मुझे अचानक भोजन-गृहमें ही हुआ था। वे भी एकाएक 'दि ट्रान्सवाल क्रिटिक' पत्रके उप-सपादकका पद छोड़कर 'इंडियन ओपीनियन' में चले गये थे। सब कोई जानते हैं कि उन्होंने सत्याग्रहकी लड़ाईके सम्बन्धमें इंग्लैंडमें और पूरे हिन्दुस्तानमें यात्रा की थी। रिच इंग्लैंड चले गये इसलिए मैंने पोलाकको फिनिक्ससे जोहानिसबर्ग मेरे ऑफिसमें बुला लिया। वहा पहले वे मेरे 'आर्टिकल्ड' क्लार्क हुए और बादमें पूरे वकील बन गये। कुछ समय बाद उन्होंने विवाह कर लिया। श्रीमती पोलाकको भी हिन्दुस्तान पहचानता है। उस महिलाने सत्याग्रहकी लड़ाईके काममें अपने पतिकी पूरी सहायता की, उसमें किसी भी दिन विघ्न नहीं डाला। और पोलाक दम्पती आज भी हिन्दुस्तानकी यथाशक्ति सेवा करते हैं, यद्यपि वे असहयोगकी लड़ाईमें हमारे सहयोगी नही हैं।

इसके बाद आते हैं हर्मन कैलनबैक। उनके साथ भी मेरा परिचय कौमकी लड़ाई छिड़ी उससे पहले हो चुका था। वे जर्मन हैं। और यदि अंग्रेजों और जर्मनोंके बीच युद्ध न छिड़ा होता, तो आज कैलनबैक हिन्दुस्तानमें होते। उनका हृदय विशाल है। उनकी सरलता और भोलेपनका पार नहीं है। उनकी भावनायें अत्यन्त तीव्र हैं। वे शिल्पीका धन्धा करते हैं। ऐसा एक भी काम नही था, जिसे करनेमें उन्होंने कभी आनाकानी की हो—फिर वह कितना ही हलका क्यों न हो। जब मैंने जोहानिसबर्गका अपना घर तोड़ दिया, तब हम दोनों साथ ही रहते थे। इसलिए मेरा खर्च वे ही उठाते थे। घर तो उनका अपना था ही। भोजन-खर्चमें जब मैं अपने हिस्सेका खर्च देनेकी बात उनसे कहता तो वे नाराज हो जाते थे और यह कहकर मुझे रोक देते थे कि 'उड़ाऊपनसे मुझे बचानेवाले तो तुम्ही हो।' उनका यह कथन सत्य था। लेकिन गोरोंके साथ मेरे व्यक्तिगत सम्बन्धोंका वर्णन करनेका यह स्थान नही है। जब हमने सत्याग्रहियोंके परिवारोको जोहानिसबर्गमें एक स्थान पर रखनेकी बात सोची, तब कैलनबैकने किराया लिये बिना अपना ११०० बीघेका

विशाल फार्म उपयोगके लिए दे दिया था। इसका विस्तृत वर्णन पाठक आगे पढ़ेंगे। जब गोखले दक्षिण अफ्रीकामें आये थे तब जोहानिसबर्गमें उन्हें कौमकी ओरसे कैलनबैकके बंगले पर ठहराया गया था। वह बंगला गोखलेको बहुत पसंद आया था। उन्हें विदा करनेके लिए कैलनबैक झांझीबार तक मेरे साथ आये थे। लड़ाईके सिलसिलेमें पोलाकके साथ उन्हें भी गिरफ्तार किया गया था और उन्हें भी जेलकी सजा काटनी पड़ी थी। और अंतमें जब दक्षिण अफ्रीका छोड़कर मैं इंग्लैंडमें गोखलेसे मिलने गया तब कैलनबैक मेरे साथ थे। प्रथम विश्वयुद्धके कारण ही उन्हें इंग्लैंडसे मेरे साथ हिन्दुस्तान आनेकी इजाजत नहीं मिली। दूसरे सब जर्मनोंकी तरह उन्हें भी इंग्लैंडमें नजरकैदमें रखा गया था। युद्ध समाप्त हो जानेके बाद वे वापस जोहानिसबर्ग चले गये थे और अपना शिल्पीका धन्धा उन्होंने फिर शुरू कर दिया था।

अब मैं पाठकोंको एक पवित्र बालाका परिचय देता हूं। गोखलेने उसे जो प्रमाणपत्र दिया था उसे पाठकोंके समक्ष रखनेका लोभ मैं रोक नहीं सकता। उस बालाका नाम था कुमारी सोनजा श्लेसिन। गोखलेमें मनुष्योंको पहचाननेकी अद्भुत शक्ति थी। डेलागोआ बेसे झांझीबार तक मैं उनके साथ गया था। उस समय मुझे उनके साथ शांतिसे बातें करनेका सुन्दर अवसर मिला था। दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी और गोरे नेताओंके साथ भी उनका काफी अच्छा परिचय हो गया था। उनमें से सभी मुख्य नेताओंके चरित्रका विश्लेषण उन्होंने मेरे लिए कर दिया था। और मुझे अच्छी तरह याद है कि उन्होंने हिन्दुस्तानियों और गोरोंमें सबसे पहला पद कुमारी श्लेसिनको दिया था। उन्होंने कहा था: "श्लेसिनके जैसा निर्मल अंत:करण, कार्यकी एकाग्रता और दृढ़ निश्चय मैंने विरले ही आदमियोंमें पाया है। और हिन्दुस्तानियोंकी लड़ाईमें किसी भी लाभकी आशा रखे बिना उसका इतना सर्वार्पण देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया था। इसके सिवा, इन सब गुणोंके साथ उसकी कुशलता और स्फूर्ति आपकी इस लड़ाईमें उसे एक अमूल्य सेविका बना देती है। मुझे कहनेकी जरूरत तो नहीं होनी चाहिये, फिर भी मैं कहता हूं कि आप उसे अपने पास ही रखना।"

मेरे पास एक स्कॉच कुमारी, मिस डिक, स्टेनो-टाइपिस्टका काम करती थी। उसकी वफादारी और नैतिकताका कोई पार नहीं था। इस जीवनमें कड़वे अनुभव तो मुझे अनेक हुए हैं। परन्तु मेरे सपर्कमें इतने अधिक सुन्दर चरित्रवाले अंग्रेज और भारतीय लोग आये हैं कि इसे मैं सदा अपने जीवनका सौभाग्य ही मानता रहा हूं। इस स्कॉच कुमारीके विवाहका अवसर उपस्थित होने पर वह मुझे छोड़कर चली गई। तब श्री कैलनवैक कुमारी श्लेसिनको ले आये और मुझसे बोले: "इस बालाको इसकी मांने मुझे सौंपा है। यह चतुर है, प्रामाणिक है; लेकिन यह बड़ी नटखट और स्वतंत्र मिजाजकी है। शायद इसे उद्धत भी कहा जा सकता है। आप इससे काम ले सकें तो इसे अपने पास रखें। केवल वेतनके लिए मैं इसे आपके पास नहीं रखता।" मैं किसी अच्छी स्टेनो-टाइपिस्टको २० पौंड माहवार तक देनेके लिए तैयार था। परन्तु कुमारी श्लेसिनकी योग्यताका मुझे कोई पता नहीं था। श्री कैलनवैकने कहा: "आप अभी तो इसे महीनेके ६ पौंड देना।" मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया।

कुमारी श्लेसिनके नटखटपनका मुझे तुरन्त ही अनुभव हुआ। लेकिन एक महीनेके भीतर तो उसने ही मुझे अपने वशमें कर लिया। रात हो या दिन, वह हर समय काम करनेको तैयार रहती थी। कोई काम उसके लिए असंभव या कठिन तो था ही नहीं। उस समय उसकी उमर १६ वर्षकी थी। अपनी पवित्रता, स्पष्टवादिता और सेवा करनेकी तत्परतासे उसने मेरे मुवक्किलों और सत्याग्रहियोंके मन भी हर लिये थे। वह कुमारिका मेरे ऑफिसकी और कौमकी लड़ाईकी नीतिकी प्रहरी और रक्षिका बन गई थी। जब किसी कार्यके नैतिक औचित्यके बारेमें उसे शंका होती, तब वह अत्यन्त स्वतंत्रतासे मेरे साथ वाद-विवाद करती थी; और जब तक मैं उस कार्यके नैतिक औचित्यके बारेमें उसे प्रतीति न करा देता, तब तक उसे कभी संतोष होता ही नहीं था।

जब सेठ काछलियाके सिवा कौमके सारे नेता जेलमें चले गये उस समय कुमारी श्लेसिनने लाखों रुपयोंका हिसाब रखा और अलग अलग स्वभावके लोगोंसे काम लिया। काछलिया भी उसका सहारा लेते

थे और उसकी सलाहसे काम करते थे। जब हम सब जेल चले गये तब श्री डोकने 'इंडियन ओपीनियन' का काम संभाल लिया। लेकिन वह सफेद बालोंवाला अनुभवी वृद्ध पुरुष 'इंडियन ओपीनियन' के लिए लिखे गये लेख कुमारी श्लेसिनसे पास कराता था! और एक बार तो उन्होंने मुझसे कहा था: "यदि कुमारी श्लेसिन न होती, तो मैं नहीं जानता कि मैं खुदको भी अपने कामसे कैसे संतोष दे पाता। उसकी सहायता और सूचनाओंका मूल्य आंकना मेरे लिए संभव नहीं है। अकसर उसके सुझाये हुए संशोधन और परिवर्धन उपयुक्त हैं ऐसा समझ कर ही मैंने उन्हें स्वीकार किया था।" पठान, पटेल, गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी —हर वर्गके और हर उमरके लोग कुमारी श्लेसिनको घेरे रहते थे, उसकी सलाह लेते थे और उसके कहे अनुसार चलते थे।

दक्षिण अफ्रीकामें गोरे मुसाफिर अधिकतर हिन्दुस्तानियोंके साथ रेलके एक ही डिब्बेमें कभी नहीं बैठते। ट्रान्सवालमें तो ऐसा करनेकी गोरोंको मनाही भी है। और सत्याग्रही तो नियमसे रेलके तीसरे दरजेमें ही मुसाफिरी करते थे। ऐसा होते हुए भी कुमारी श्लेसिन जान-बूझ कर हिन्दुस्तानियोंके ही डिब्बेमें बैठती थी और उसे रोकनेवाले गार्डोंसे झगड़ा भी करती थी। मुझे डर था और कुमारी श्लेसिनको आशा थी कि किसी दिन वह भी ऐसा करनेके लिए पकड़ ली जायगी। उसकी योग्यता, कौमकी लड़ाईके बारेमें उसका संपूर्ण ज्ञान और सत्याग्रहियोंके हृदयों पर स्थापित उसका साम्राज्य —ये तीनों बातें ट्रान्सवाल सरकारके ध्यानमें थीं, फिर भी उसने कभी कुमारी श्लेसिनको न पकड़नेकी नीतिका और अपनी शालीनताका त्याग नहीं किया।

कुमारी श्लेसिनने किसी दिन अपने मासिक ६ पौंडके वेतनमें बढ़ती मांगी या चाही ही नहीं। जब मुझे उसकी कुछ जरूरतोंका ज्ञान हुआ तब मैं उसे १० पौंड वेतन देने लगा। यह भी उसने बड़ी आनाकानीके बाद स्वीकार किया। लेकिन इससे अधिक वेतन लेनेसे उसने साफ इनकार कर दिया: "इससे अधिक वेतन मुझे चाहिये ही नहीं। फिर भी यदि मैं अधिक वेतन आपसे लूं, तो जिस निष्ठासे मैं आपके पास आई हूं वह निष्ठा झूठी सिद्ध होगी।" उसके इस जवाबने मुझे चुप कर दिया।

पाठक शायद जानना चाहेंगे कि कुमारी श्लेसिनने कहां तक शिक्षा पाई थी। उसने केप युनिवर्सिटीकी इंटरमीडियेट परीक्षा पास की थी; शॉर्ट-हैण्ड, टाईपिंग वगैरामें प्रथम श्रेणीके प्रमाणपत्र प्राप्त किये थे। कौमकी लड़ाई बन्द होनेके बाद वह युनिवर्सिटीकी स्नातक हुई और इस समय ट्रान्सवालकी लड़कियोंकी किसी सरकारी शालामें प्रधान शिक्षिकाका कार्य करती है।

श्री हर्बर्ट किचन एक शुद्ध हृदयके अंग्रेज थे, जो बिजलीका काम जानते थे। उन्होंने बोअर-युद्धमें हमारे साथ काम किया था। कुछ समय तक वे 'इंडियन ओपीनियन' के संपादक भी रहे थे। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया था।

अभी तक मैंने जिन व्यक्तियोंका उल्लेख किया है वे ऐसे थे, जो मेरे घनिष्ठ संपर्कमें आये थे। उन्हें ट्रान्सवालके प्रमुख गोरोंकी श्रेणीमें नहीं रखा जा सकता। फिर भी यह कहा जा सकता है कि उनकी बहुत बड़ी सहायता हमें कौमकी लड़ाईमें प्राप्त हुई थी। प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे श्री हॉस्किनका स्थान सबसे ऊंचा था। वे दक्षिण अफ्रीकाके चेम्बर्स ऑफ कॉमर्सके संघके भूतपूर्व अध्यक्ष थे और ट्रान्सवाल विधान-सभाके सदस्य थे। उनका परिचय मैं पहले करा चुका हूं। उनकी अध्यक्षतामें सत्याग्रहकी लड़ाईमें सहायता करनेवाले गोरोंकी एक स्थायी समिति भी स्थापित की गई थी। उस समितिने यथाशक्ति लड़ाईमें सहायता दी थी। लड़ाईका रंग खूब जम जानेके बाद स्थानीय सरकारके साथ चर्चाओं-का अथवा विचार-विमर्शका व्यवहार तो भला कैसे रह पाता? इसका कारण असहयोगका सिद्धान्त नहीं था, परन्तु यह था कि सरकार खुद ही अपने कानूनको तोड़नेवाले लोगोंके साथ विचार-विमर्शका व्यवहार रखना पसंद नहीं करती थी। ऐसे समय सहायक गोरोंकी उपर्युक्त समितिने सत्याग्रहियों और सरकारके बीच मध्यस्थका काम किया था।

श्री आल्बर्ट कार्टराइटका परिचय भी मैं पहले करा चुका हूं। रेवरेंड डोकके जैसा ही सम्बन्ध रखनेवाले और हमारी बहुत मदद करने-वाले एक दूसरे पादरी भी थे। उनका नाम था रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स। वे ट्रान्सवालमें वर्षोंसे 'कॉन्ग्रिगेशनल मिनिस्टर' थे। उनकी भली पत्नी

भी हमारी मदद करती थी। एक तीसरे प्रसिद्ध पादरी थे रेवरेंड डुड्नी डू, जिन्होंने पादरीका पद छोड़ कर ब्लुमफॉन्टीनसे प्रकाशित होनेवाले 'दि फ्रेन्ड' नामक दैनिकका सपादक-पद स्वीकार किया था। उन्होंने गोरों-की अवगणना सहकर भी अपने दैनिकमें हिन्दुस्तानियोंकी लड़ाईका समर्थन किया था। उनकी गणना दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओंमें होती थी।

इसी प्रकार स्वतंत्रतासे हमारी सहायता करनेवाले एक सज्जन थे 'दि प्रिटोरिया न्यूज़' के सपादक श्री वेर स्टेन्ट। एक बार प्रिटोरियाके टाउन-हॉलमें मेयरके सभापतित्वमें वहाके गोरोंने एक बड़ी सभा की थी। सभाका हेतु हिन्दुस्तानियोंके सत्याग्रह-आन्दोलनकी निन्दा करना और खूनी कानूनकी प्रशंसा करना था। श्री वेर स्टेन्टने अकेले ही सभामें खड़े होकर गोरोंका विरोध किया था। सभापतिने उनसे बैठ जानेको कहा, परन्तु उन्होंने बैठनेसे इनकार किया। गोरोंने उन पर हाथ चलानेकी धमकी दी, फिर भी वह नर सिंहके समान गर्जना करता हुआ टाउन-हॉलमें अडिग खड़ा रहा। और गोरोंको सभाको अपना प्रस्ताव पास किये बिना ही बिखर जाना पड़ा!

मैं ऐसे अन्य गोरोंके नाम भी गिना सकता हूं, जो किसी मंडल या समितिके सदस्य हुए बिना भी हमारी सहायता करनेका एक भी अवसर नहीं चूकते थे। लेकिन मैं अधिक विस्तार न करके केवल तीन गोरी महिलाओंका परिचय करा कर ही यह प्रकरण समाप्त करना चाहता हूं। उनमें से एक थीं कुमारी हॉबहाउस। वे लॉर्ड हॉबहाउसकी पुत्री थीं। बोअर-युद्धके समय यह महिला लॉर्ड मिल्नरका विरोध होने पर भी ट्रान्सवाल पहुंची थी। जब लॉर्ड किचनरने सारे जगतमें प्रशंसित अथवा निन्दित 'कान्सेन्ट्रेशन कैम्प'—अर्थात् युद्ध करनेवाले बोअरोंकी स्त्रियोंको इकट्ठा करके कैदमें रखनेकी छावनियां—ट्रान्सवाल और फ्री स्टेटमें खोली थीं तब यह महिला अकेली बोअर स्त्रियोंके बीच घूमती थी, उन्हें दृढ़ रहनेको समझाती थी और उनमें वीरताका संचार करती थी। बोअर-युद्धसे सम्बन्धित अंग्रेजोंकी नीति बिलकुल गलत है, ऐसा विश्वास रखनेके कारण कुमारी हॉबहाउस स्व० श्री स्टेडकी तरह यह चाहतीं और ईश्वरसे प्रार्थना करती थीं कि बोअर-युद्धमें अंग्रेजोंकी हार

हो। बोअरोंकी इतनी अधिक सेवा करनेके बाद जब उन्हें पता चला कि बोअर लोग — जो अंग्रेजोंके अन्यायके विरुद्ध यथाशक्ति लड़े थे वे ही बोअर लोग — अपने अज्ञानमें भरे पूर्वाग्रहके कारण हिन्दुस्तानियोंके साथ अन्याय करनेको तैयार हो गये हैं, तो उन्हें गहरा आघात लगा था। बोअर प्रजा उनके प्रति बड़ा आदर और प्रेम रखती थी। जनरल बोथाके साथ उनका अत्यन्त निकटका सम्बन्ध था। जनरल बोथाके यहां वे ठहरती थीं। उन्होंने बोअरोंको यह समझानेका यथाशक्ति प्रयत्न किया कि खूनी कानून रद कर दिया जाना चाहिये।

दूसरी महिला थी कुमारी ऑलिव श्राइनर। इन महिलाके विषयमें मैं पांचवें प्रकरणमें लिख चुका हूं। वे दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध श्राइनर परिवारमें जन्मी विदुषी महिला थीं। श्राइनर नाम दक्षिण अफ्रीकामें इतना प्रख्यात था कि जब कुमारी श्राइनरका विवाह हुआ तब उनके पतिको उनका नाम ग्रहण करना पड़ा, जिससे ऑलिवका श्राइनर परिवारके साथका सम्बन्ध दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंमें लुप्त न हो जाय। इसका कारण कुमारी श्राइनरका झूठा स्वाभिमान नहीं था, क्योंकि वे जितनी विदुषी थीं उतनी ही सादी और नम्र भी थीं। मेरा उनके साथ बहुत अच्छा परिचय था, ऐसा मैं मानता हूं। उन्होंने किसी दिन यह नहीं माना कि उनके हबशी नौकरों और उनके बीच कोई भेद है। जहां जहां अंग्रेजी भाषा बोली जाती है वहां वहां उनकी 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक बड़े आदरसे पढ़ी जाती है। वह गद्यमें लिखी गई है, फिर भी उसकी गणना काव्यमें होती है। दूसरी तो अनेक पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं। लेखनी पर इतना अधिकार होते हुए भी वे घरका खाना अपने हाथसे बनानेमें, घरकी सफाई खुद करनेमें और बरतन वगैरा स्वयं ही धोनेमें कभी सकुचाती या शरमाती नहीं थीं। वे ऐसा मानती थीं कि इस तरहका उपयोगी शरीर-श्रम उनकी लेखन-शक्तिको मन्द बनानेकी अपेक्षा उसे उत्तेजित करता है तथा उनकी भाषामें और विचारोंमें एक प्रकारका विवेक और प्रौढ़ता लाता है। कुमारी श्राइनरने भी दक्षिण अफ्रीकाके गोरों पर हिन्दुस्तानियोंके पक्षमें यथाशक्ति अपना वजन डाला था।

तीसरी महिला थी कुमारी मोल्टीनो। वे दक्षिण अफ्रीकाके प्राचीन मोल्टीनो परिवारकी एक बुजुर्ग सदस्या थी। उन्होंने भी यथाशक्ति हिन्दुस्तानियोंकी सहायता की थी।

पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि इन गोरे सहायकोंकी सहायताका परिणाम क्या हुआ? मेरा उत्तर यह है कि परिणाम बतानेके लिए यह प्रकरण नहीं लिखा गया है। कुछ मित्रोंके कार्य ही, जिनका वर्णन किया जा चुका है, परिणामके साक्षी हैं। परन्तु इन हितेच्छुओंकी संपूर्ण प्रवृत्तिका क्या परिणाम आया? — यही प्रश्न उत्पन्न हो सकता है। सत्याग्रहकी लड़ाई ऐसी थी, जिसका परिणाम उस लड़ाईमें ही समाया हुआ था। वह आत्म-सहायताकी, आत्मत्यागकी और ईश्वर-श्रद्धाकी लड़ाई थी।

गोरे सहायकोंके नामोंका उल्लेख करनेका एक हेतु यह है कि यदि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें उनके द्वारा की गई सहायताकी स्तुतिका समावेश न हो, तो यह इतिहास अधूरा माना जायगा। मैंने सभी गोरे सहायकोंके नाम यहा नहीं दिये हैं। परन्तु जितने नाम दिये हैं उनके द्वारा सभी सहायकोंके प्रति हिन्दुस्तानियोंका आभार प्रकट किया है। दूसरा हेतु यह बताना है कि एक सत्याग्रहीके नाते मेरी इस सिद्धान्तमें पूरी श्रद्धा है कि शुद्ध मनसे किये गये कार्यका परिणाम शुभ ही होता है, फिर वह दृश्य हो या अदृश्य। और तीसरा प्रबल हेतु यह बताना है कि सत्य पर आधारित आन्दोलन ऐसी अनेक प्रकारकी शुद्ध और निःस्वार्थ सहायताको बिना प्रयासके अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहता। यदि इस प्रकरणमें अभी भी यह बात पाठकोंकी समझमें न आई हो, तो मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि सत्याग्रहकी लड़ाईमें सत्यकी रक्षाको ही यदि एक प्रयास मानें, तो इस प्रयासके सिवा दूसरा कोई भी प्रयास गोरे मित्रोंकी सहायता प्राप्त करनेके लिए नहीं किया गया था। वे लोग हमारे आन्दोलनके प्रति उसके आंतरिक बलके कारण ही आकर्षित हुए थे।

२४

भीतरकी और ज्यादा मुसीबतें

बाईसवें प्रकरणमें हमें अपनी भीतरी मुसीबतोंकी थोड़ी कल्पना हुई थी। जोहानिसवर्गमें मुझ पर पठानोंका हमला हुआ उस समय मेरा परिवार फिनिक्समें रहता था। हमलेके कारण मेरी पत्नी और बच्चोंके मनमें चिन्ता होना स्वाभाविक था। मुझे देखनेके लिए पैसे खर्च करके फिनिक्ससे जोहानिसवर्ग तक दौड़ आना उनके लिए संभव नहीं था। इसलिए अच्छा होनेके बाद मेरा ही उनके पास जाना जरूरी था।

कामकाजके सिलसिलेमें नेटाल और ट्रान्सवालके बीच मेरा आना-जाना होता ही रहता था। यह बात मेरी जानकारीसे बाहर नहीं थी कि नेटालमें भी सरकारके साथ हुए कौमके समझौतेके बारेमें भारी गलतफहमी फैली हुई थी। मुझे और दूसरोंको जो पत्र नेटालसे लिखे जाते थे, उनसे मुझे इसका पता चलता था। और 'इंडियन ओपीनियन' के नाम तीखे व्यंगसे भरे हुए जो पत्र भेजे जाते थे, उनका ढेर भी मेरे पास था ही। यद्यपि अभी तक सत्याग्रहकी लड़ाई ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियों तक ही सीमित थी, फिर भी नेटालके हिन्दुस्तानियोंकी संमति प्राप्त करना और उनकी भावनाओंका खयाल रखना जरूरी था। ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालके निमित्तसे समस्त दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी लड़ाई लड़ रहे थे। अतः नेटालमें फैली हुई गलतफहमीको दूर करनेके लिए भी डरबन जाना मेरे लिए आवश्यक था। इसलिए पहले ही मौकेसे लाभ उठाकर मैं वहां पहुंच गया।

डरबनमें हिन्दुस्तानियोंकी एक सार्वजनिक सभा बुलाई गई। कुछ मित्रोंने पहलेसे मुझे बता दिया था कि इस सभामें मुझ पर आक्रमण होनेवाला है; इसलिए या तो मैं इस सभामें उपस्थित ही न रहूं या अपनी रक्षाके कुछ उपाय करूं। लेकिन दोनोंमें से एक भी मार्ग मेरे लिए खुला नहीं था। सेवकको उसका स्वामी बुलाये और सेवक डरके

मारे न जाये, तो उसका सेवाधर्म भंग हो जाता है। और जो सेवक स्वामीकी सेवासे डरे, वह सेवक कैसा? सेवाके खातिर जनताकी सेवा करना तो तलवारकी धार पर चलने जैसा है। यदि जनसेवक प्रशंसाको स्वीकार करनेके लिए तैयार हो, तो निन्दासे वह कैसे भाग सकता है? इसलिए मैं निश्चित समय पर सभामें उपस्थित हो गया। वहा लोगोंको मैंने समझाया कि सरकारके साथ समझौता कैसे हुआ। उनके प्रश्नोंके उत्तर भी मैंने दिये।

यह सभा रातके लगभग ८ बजे हुई थी। सभाका कामकाज लगभग पूरा होनेको आया था कि एक पठान बड़ी लाठी लेकर मच पर आया। उसी समय सारी बत्तियां बुझ गई। मैंने तुरत सारी स्थिति समझ ली। सभाके अध्यक्ष सेठ दाऊद मुहम्मद टेबल पर चढ़कर लोगोंको समझाने और शांत करने लगे। मेरी रक्षा करनेवालोंने मुझे घेर लिया। मैंने अपनी रक्षाके लिए कोई उपाय नही किये थे। लेकिन बादमें मैंने देखा कि जिन लोगोंको मुझ पर हमला होनेका डर था, वे तो पूरी तरह मेरी रक्षाकी तैयारी करके आये थे। उनमें से एक मित्र तो जेबमें पिस्तौल रख कर आये थे और उन्होंने हवामें पिस्तौलका एक धड़ाका भी किया था। इस बीच पारसी रुस्तमजी, जिन्होंने हमलेकी सारी तैयारियां देखी थी, बिजलीकी गतिसे दौड़ कर पुलिस-थाने पर पहुच गये और पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट एलेक्ज़ेन्डरको सारी स्थिति बता दी। उन्होंने पुलिसका एक दस्ता भेज दिया। पुलिस भीड़में से रास्ता निकालते हुए मुझे अपने बीच रख कर पारसी रुस्तमजीके घर ले गई।

दूसरे दिन सुबह पारसी रुस्तमजीने डरबनके पठानोंको एकत्र किया और उनसे कहा कि मेरे खिलाफ उन्हें जो भी शिकायत हो वह मेरे सामने रखें। मैं उन लोगोंसे मिला। मैंने समझा कर उन्हें शात करनेका प्रयत्न किया। लेकिन मैं नही मानता कि मैं उन्हें शात कर पाया था। शककी दवा दलीलोंसे या समझानेसे नही हो सकती। उनके मनमें यह बात बैठ गई थी कि मैंने हिन्दुस्तानी कौमको धोखा दिया है। जब तक शकका यह जहर उनके मनसे निकले नही तब तक मेरा समझाना बेकार ही था।

उसी दिन मैं डरबनसे फिनिक्सके लिए रवाना हुआ। जिन मित्रोंने पिछली रातको मेरी रक्षा की थी, उन्होंने मुझे अकेला छोड़नेसे साफ इनकार कर दिया और मुझसे कह दिया कि वे फिनिक्समें आकर डेरा डालेंगे। मैंने उनसे कहा: "आप मेरी 'ना' की परवाह न करके फिनिक्स आना चाहेंगे, तो मैं आपको रोक तो नहीं सकूंगा; लेकिन वहां जंगल है और अगर वहां बसनेवाले हम लोग आपको खाना भी न दें तो आप क्या करेंगे?" उनमें से एकने उत्तर दिया: "हमें ऐसा डर दिखानेकी जरूरत नहीं। अपनी सुविधायें हम स्वयं खड़ी कर लेंगे। और जब तक हम सिपाहीगीरी करेंगे तब तक आपके कोठारको लूटनेसे भी हमें कौन रोक सकेगा?"

इस प्रकार विनोद करते करते हम फिनिक्स पहुंचे। इस रक्षक-दलका नेता जैक मुडली था, जो हिन्दुस्तानियोंमें प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। वह नेटालमें तामिल माता-पितासे जन्मा था। उसने घूसेबाजीकी (बॉक्सिंगकी) खास तालीम पाई थी। वह ऐसा मानता था, और उसके साथी भी ऐसा मानते थे, कि घूसेबाजीमें गोरों या कालोंमें से कोई भी उसका प्रतिस्पर्धी नहीं हो सकता।

दक्षिण अफ्रीकामें, बरसात न हो तब, मेरी आदत वर्षोंसे घरके बाहर बिलकुल खुलेमें सोनेकी थी। उसमें इस समय कोई फेरबदल करनेको मैं तैयार नहीं था। इसलिए रक्षकोंके स्वनिर्मित दलने रातमें मेरे बिस्तरके आसपास पहरा देनेका निर्णय किया। यद्यपि डरबनमें इस रक्षक-दलका मैंने मजाक उड़ाया था और मेरे साथ आनेसे रोकनेका भी प्रयत्न किया था, फिर भी मुझे अपनी यह कमजोरी स्वीकार करनी चाहिये कि जब उन लोगोंने पहरा देना शुरू किया तब मुझे अधिक निर्भयता अनुभव हुई और मनमें यह विचार भी आया कि यदि ये लोग न आये होते तो मैं इतना निर्भय बनकर सो नहीं पाता। मैं मानता हूं कि किसी भी तरहकी आवाजसे मैं अवश्य ही चमक उठता।

मेरा विश्वास है कि ईश्वर पर मेरी अटल श्रद्धा है। वर्षोंसे मेरी बुद्धि यह भी स्वीकार करती आई है कि मृत्यु मनुष्यके जीवनमें होनेवाला एक बड़ा परिवर्तन ही है और वह जब भी आये तब स्वागत करने

योग्य है। हृदयसे मृत्युके भयको और दूसरे प्रकारके भयोंको दूर करनेके लिए मैंने समझ-बूझ कर महान प्रयत्न किया है। इसके बावजूद अपने जीवनके ऐसे अवसर मुझे याद आते हैं जब मैं मृत्युके आलिंगनका विचार करते हुए वैसी प्रसन्नता अनुभव नहीं कर सका, जैसी प्रसन्नता हम किसी दीर्घ कालसे बिछुड़े हुए मित्रसे मिलनेका विचार करते समय अनुभव करते हैं। इस तरह बलवान बननेका महान प्रयत्न करने पर भी मनुष्य प्रायः निर्बल रहता है और केवल बुद्धि तक पहुचा हुआ उसका ज्ञान अनुभवका अवसर आने पर उसके जीवनमें बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हो पाता। इसमें भी जब मनुष्यको बाहरी सहारा मिलता है और उसको वह स्वीकार कर लेता है, तब तो वह बहुत हद तक अपना आतरिक बल खो देता है। सत्याग्रहीको ऐसे भयोंसे सदा बचते रहना चाहिये।

फिनिक्समें रहते हुए मैंने एक ही काम किया। कौमके लोगोंकी गलतफहमी दूर करनेके लिए मैंने 'इंडियन ओपीनियन' में खूब लिखा। सपादक और शकाशील पाठक वर्गके बीच होनेवाला एक काल्पनिक सवाद मैंने लिख डाला। उसमें समझौतेके विषयमें जो जो शकायें और आक्षेप मैंने सुने थे, उन सबका यथासभव अधिकसे अधिक विस्तारसे मैंने समाधान किया। मेरा विश्वास है कि इसका फल अच्छा आया। यह मालूम हो गया कि ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंने लम्बे समय तक समझौतेको गलत नहीं समझा; उनमें यदि समझौतेके बारेमें गलतफहमी बनी रहती, तो उसका परिणाम सचमुच विनाशक होता। समझौतेको मानना या न मानना केवल ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंका काम था। इसलिए उनके कार्योंसे स्वय उनकी कसौटी और उनके नेता तथा सेवकके नाते मेरी भी कसौटी होनेवाली थी। अतमें ऐसे बहुत ही कम हिन्दुस्तानी रहे होंगे, जिन्होंने स्वेच्छासे परवाने न लिये हों। इतने अधिक लोग परवाने लेनेके लिए एशियाटिक ऑफिस जाते थे कि परवाने देनेवाले अधिकारियोंको क्षणभरका भी आराम नहीं मिलता था। कौमने बड़ी शीघ्रतासे समझौतेकी ऐसी शर्तोंका पालन कर दिखाया, जिनका पालन उसे स्वयं करना था। यह बात सरकारको भी स्वीकार करनी पड़ी; और मैं यह देख सका था कि गलतफहमीका क्षेत्र अत्यन्त सकुचित रहा, यद्यपि उसने बड़ा उग्र

रूप धारण कर लिया था। कुछ पठानोंने जब कानूनको अपने हाथमें ले लिया और हिंसाका रास्ता अपनाया, तब कौमके लोगोंमें बड़ी खलबली मच गई थी। लेकिन ऐसी खलबलीका विश्लेषण करें तो पता चल जाता है कि उसका कोई आधार या बुनियाद नहीं होती; और प्रायः ऐसी खलबली क्षणिक ही होती है। ऐसा होते हुए भी आज तक उसकी ताकत दुनियामें बनी हुई है, क्योंकि रक्तपात और हिंसासे हम सब कांप उठते हैं। परन्तु धैर्यके साथ इस प्रश्न पर विचार करें, तो मालूम हो जाता है कि हिंसासे कांप उठनेका कोई भी कारण नहीं है। मान लीजिये कि मीर आलम और उसके साथियोंके आक्रमणसे घायल होनेके बजाय मेरा शरीर नष्ट हो गया होता और यह भी मान लीजिये कि हिन्दुस्तानी कौम जान-बूझ कर निश्चिन्त और शांत रही होती और यह समझ कर कि मीर आलम अपनी बुद्धिका अनुसरण करके केवल हिंसक आचरण ही कर सकता था, कौमने उसके प्रति मित्रताका और क्षमाका भाव दिखाया होता, तो कौमको कोई नुकसान न हुआ होता; बल्कि कौमको ऐसे उदात्त और उदार व्यवहारसे बहुत बड़ा लाभ हुआ होता; क्योंकि कौमकी सारी गलतफहमी मिट जाती, जिससे वह दुगुने जोश और दुगुने उत्साहसे अपनी प्रतिज्ञा पर डटी रहती और अपने कर्तव्यका पालन करती। और मुझे तो केवल लाभ ही लाभ होता, क्योंकि सत्याग्रहके सम्बन्धमें अपने सत्यका आग्रह रखते हुए अनायास सत्याग्रही मृत्युका आलिंगन करे, इससे अधिक मंगलमय परिणामकी कल्पना वह कर ही नहीं सकता।

ऊपरकी दलीलें केवल सत्याग्रह जैसी लड़ाईको ही लागू हो सकती हैं, क्योंकि उसमें वैर या घृणाके लिए कोई स्थान नहीं होता। आत्म-शक्ति या स्वावलम्बन ही उसका एकमात्र साधन होता है। उसमें कोई किसीकी ओर मददकी आशासे नहीं देखता। उसमें कोई नेता नहीं होता, इसलिए कोई सेवक — अनुयायी नहीं होता। अथवा यों कहा जाय कि उसमें सब नेता होते हैं और सब सेवक होते हैं। इसलिए चाहे जितने प्रसिद्ध व्यक्तिकी मृत्यु भी सत्याग्रहकी लड़ाईको शिथिल नहीं बनाती, बल्कि उसके वेगको बढ़ाती है।

सत्याग्रहका शुद्ध और मूलभूत स्वरूप ऐसा है। अनुभवमें हम उसके इस स्वरूपको देख नहीं पाते, क्योंकि हम सबने वैर और घृणाका त्याग नहीं किया है। प्रत्यक्ष अनुभव और व्यवहारमें सब लोग सत्याग्रहका रहस्य नहीं समझते और कुछ लोगोंका आचरण देख कर अनेक लोग उसका मूढ अनुकरण करते हैं। इसके सिवा, ट्रान्सवालमें किया गया सामुदायिक और सामाजिक सत्याग्रहका प्रयोग, टॉल्स्टॉयके कथनानुसार, पहला ही माना जायगा। मैं स्वयं तो शुद्ध सत्याग्रहके कोई ऐतिहासिक उदाहरण नहीं जानता। इतिहासका मेरा ज्ञान बहुत ही मामूली है, इसलिए मैं इस विषयमें कोई निश्चित मत नहीं बना सकता। लेकिन सच पूछा जाय तो हमारा ऐसे उदाहरणोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि हम सत्याग्रहके मूलभूत सिद्धान्तोंको स्वीकार करें, तो यह देखा जा सकेगा कि मेरे बताये हुए परिणाम उसमें से निकलते ही हैं। सत्याग्रहका प्रयोग करना कठिन अथवा असंभव है, ऐसा कहकर सत्याग्रहके समान अमूल्य शक्तिको छोड़ा नहीं जा सकता। शस्त्रबलके प्रयोग तो हजारों वर्षोंसे होते ही आये हैं। उसके कड़वे परिणाम हम अपनी आंखोंके सामने देखते हैं। भविष्यमें भी उससे मीठे परिणाम उत्पन्न होनेकी शायद ही कोई आशा रखी जा सकती है। अंधकारसे यदि प्रकाश उत्पन्न किया जा सकता हो, तो ही वैरभावसे प्रेमभाव प्रकट किया जा सकता है।

दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास

द्वितीय खण्ड

१
जनरल स्मट्सका विश्वासघात (?)

पाठकोंने हमारी आंतरिक मुसीबतोंका थोड़ा दर्शन किया। उनका वर्णन करनेमें मुझे अधिकतर अपनी आत्मकथा ही देनी पड़ी। परन्तु यह अनिवार्य था, क्योंकि सत्याग्रहसे सम्बन्धित मेरी मुसीबतें सत्याग्रहियोंकी भी मुसीबतें हो गई थीं। अब हम फिरसे बाहरी मुसीबतोंका विचार करें।

इस प्रकरणका शीर्षक लिखते हुए मुझे शर्म आई है और यह प्रकरण लिखते समय भी शर्म आती है, क्योंकि इसमें मानव-स्वभावकी वक्रताका वर्णन हुआ है। सन् १९०८ में भी जनरल स्मट्स दक्षिण अफ्रीकाके सबसे होशियार नेता माने जाते थे। और आज वे सारी दुनियामें न सही परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यमें तो ऊंची श्रेणीके कार्य-कुशल पुरुष माने जाते हैं। उनकी महान शक्तियों और योग्यताओंके बारेमें मुझे कोई शंका नहीं है। वे जितने कुशल वकील हैं उतने ही कुशल सेनापति हैं और उतने ही कुशल शासक हैं। दक्षिण अफ्रीकामें दूसरे तो अनेक शासक आये और गये। परन्तु सन् १९०७ से लेकर आज तक यह पुरुष दक्षिण अफ्रीकी सरकारकी लगाम अपने हाथमें सभाले हुए है। और आज भी ऐसा कोई पुरुष दक्षिण अफ्रीकामें नहीं है, जो उनकी स्पर्धामें खड़ा हो सके। यह प्रकरण लिखते समय मुझे दक्षिण अफ्रीकाको छोड़े ९ वर्ष हो चुके हैं। आज जनरल स्मट्सके लिए दक्षिण अफ्रीका किस विशेषणका प्रयोग करता है, यह मैं नहीं जानता। उनका अपना (क्रिश्चियन) नाम जेन है और दक्षिण अफ्रीकाके लोग उन्हें 'स्लिम जेनी' के नामसे पुकारते हैं। यहां 'स्लिम' का अर्थ है 'छटक जाय ऐसा', 'पकड़में न आये ऐसा'। गुजराती भाषाका (और हिन्दी भाषाका) इससे मिलता-जुलता शब्द है 'धूर्त'; अथवा मीठा विशेषण काममें लें तो उलटे अर्थमें है 'चालाक'। अनेक अंग्रेज मित्रोंने मुझसे कहा था: "जनरल स्मट्ससे

तुम सावधान रहना। वे बड़े घाघ हैं। उन्हें बदल जानेमें देर नहीं लगती। उनके शब्दोंका अर्थ वे ही समझ सकते हैं। वे प्रायः कुछ ऐसे ढगसे बोलते हैं कि दोनों पक्ष उनके शब्दोंका खुदको प्रिय लगनेवाला अर्थ कर सकते हैं। इसके सिवा, मौका आने पर वे स्वयं दोनों पक्षोंके अर्थको एक ओर रख कर कोई तीसरा ही अर्थ बताते हैं, उस पर अमल करते हैं और उसके समर्थनमें ऐसी चतुराई भरी दलील देते हैं कि दोनों पक्ष थोड़ी देरके लिए तो यही मानने लगते हैं कि उन्होंने अर्थ करनेमें भूल की होगी और जनरल स्मट्स अपने शब्दोंका जो अर्थ करते हैं वही सच्चा है!" इस प्रकरणमें मुझे जिस विषयका वर्णन करना है उसे — यह घटना जब घटी तब — हमने विश्वासघात माना और कहा था। आज भी कौमकी दृष्टिसे मैं उसे विश्वासघात ही मानता हूं। इसके बावजूद शीर्षकमें विश्वासघात शब्दके बाद मैंने प्रश्नका चिह्न रखा है। इसका कारण यह है कि वास्तवमें शायद जनरल स्मट्सका कार्य जान-बूझ कर किया हुआ विश्वासघात न हो; और जहा घातका इरादा न हो वहां विश्वासका भंग कैसे माना जाय? १९१३-१४ में जनरल स्मट्सका मुझे जो अनुभव हुआ था उसे मैंने उस समय कड़वा नहीं माना था और आज भी, जब मैं उस पर अधिक तटस्थतासे सोच सकता हूं, मैं उसे कड़वा नहीं मान सकता। यह सर्वथा संभव है कि जनरल स्मट्स द्वारा १९०८ में हिन्दुस्तानियोंके प्रति किया हुआ व्यवहार जान-बूझ कर किया हुआ विश्वासभंग न हो।

इतनी प्रस्तावना जनरल स्मट्सके प्रति न्याय करनेके लिए और फिर भी उनके नामके साथ मैंने शीर्षकमें विश्वासघात शब्दका जो उपयोग किया है उसका तथा इस प्रकरणमें मुझे जो कुछ कहना है उसका बचाव करनेके लिए मैंने यहा दी है।

पिछले प्रकरणमें हमने देखा कि हिन्दुस्तानियोंने ट्रान्सवाल सरकारको संतोष हो इस तरीकेसे खुद होकर परवाने ले लिये थे। अब उस सरकारको खूनी कानून रद करना चाहिये था; और यदि वह ऐसा करती तो सत्याग्रहकी लड़ाई बंद हो जाती। इसका अर्थ यह नहीं कि ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध जो भी कानून अमलमें थे वे सब रद हो जाते

अथवा हिन्दुस्तानियोंके सारे दुःख दूर हो जाते। उन्हें दूर करानेके लिए तो पहलेकी तरह हिन्दुस्तानियोंको वैधानिक लड़ाई चलानी ही थी। सत्याग्रह खूनी कानून रूपी नये काले भयंकर बादलको दूर कराने तक ही सीमित था। इस कानूनको यदि स्वीकार कर लिया जाता, तो कौमके नाम पर कलंक लगता तथा पहले ट्रान्सवालसे और अंतमें संपूर्ण दक्षिण अफ्रीकासे हिन्दुस्तानियोंका अस्तित्व ही मिट जाता। लेकिन खूनी कानून रद करनेके बजाय जनरल स्मट्सने नया ही कदम उठाया। उन्होंने विधान-सभामें जो नया बिल पेश किया उसके द्वारा खूनी कानूनको बहाल रखा और स्वेच्छासे लिये गये परवानोंको कानूनी करार दिया। साथ ही, उस बिलमें यह धारा भी जोड़ी कि जिन हिन्दुस्तानियोंने स्वेच्छासे पर-वाने ले लिये हैं, उन पर खूनी कानून लागू नहीं किया जा सकता। इसका मतलब यह हुआ कि एक ही हेतु सिद्ध करनेवाले दो कानून साथ साथ चलें और ट्रान्सवालमें नये आनेवाले हिन्दुस्तानियों पर या नये परवाने लेनेवाले हिन्दुस्तानियों पर भी खूनी कानून लागू हो।

इस नये बिलको पढ़कर मैं तो हक्का-बक्का हो गया। कौमको मैं क्या जवाब दूंगा? जिन पठान भाइयोंने जोहानिसबर्गमें हुई मध्य-रात्रिकी सभामें मुझ पर भयकर आरोप लगाये थे, उन्हे कितना बढ़िया भोजन मिल गया? लेकिन मुझे कहना चाहिये कि इस गंभीर आघातसे सत्याग्रह पर मेरा विश्वास शिथिल पड़नेकी अपेक्षा अधिक दृढ़ हुआ। मैंने हमारी कमेटीकी सभा बुलाई और उसके सदस्योंको नई परिस्थिति समझाई। कुछने मुझे ताना भी मारा: "हम तो आपसे कहते ही आये हैं कि आप बड़े भोले हैं। कोई आदमी जो भी कहता है उस पर आप विश्वास कर लेते हैं। आप अगर अपने निजी कामकाजमें ही इतने भोले रहें, तो हमें उसकी चिन्ता नहीं। लेकिन आप कौमके काममें भी भोला-पन दिखाते हैं, इससे कौमको मुसीबतें भोगनी पड़ती हैं। अब कौमके लोगोंमें पहलेका जोश और उत्साह फिर पैदा हो, यह हमें तो बहुत कठिन मालूम होता है। हमारी कौमको तो आप अच्छी तरह जानते हैं। वह सोडा वाटरकी बोतल जैसी है। उसके भीतर क्षणिक जोशका

जो उफान आता है, उसका हमें यथासंभव अच्छेसे अच्छा उपयोग करना चाहिये। वह उफान ठंडा पड़ा कि सब कुछ खतम हुआ।"

इन शब्दबाणोंमें कोई जहर नहीं था। ऐसी बातें मैंने दूसरे अवसरों पर भी सुनी थीं। इसलिए मैंने हंसते हंसते उत्तर दिया: "आप लोग जिसे मेरा भोलापन कहते हैं, वह तो मेरा अभिन्न अंग बन गया है। वह भोलापन नहीं किन्तु विश्वास है। और मैं मानता हूं कि अपने मानव-बन्धुओं पर विश्वास रखना मेरा और आपका भी कर्तव्य है। फिर भी अगर आप इसे मेरा दोष समझते हैं और ऐसा मानते हैं कि मेरी सेवासे कौमको कोई लाभ होता है, तो फिर मेरे दोषसे होनेवाला नुकसान भी आपको सहन करना चाहिये। इसके सिवा, आपकी तरह मैं यह भी नहीं मानता कि कौमका जोश सोडा वाटरके उफान जैसा है। कौममें आपका और मेरा भी समावेश होता है। मेरे उत्साह और जोशके लिए आप ऐसा विशेषण लगायें, तो उसे मैं अवश्य ही अपना अपमान समझूंगा और मेरा विश्वास है कि आप लोग भी अपनेको इसका अपवाद ही मानते होंगे। और यदि आप अपनेको इसका अपवाद न मानते हों और अपने गजसे ही कौमका माप निकालते हों, तो आप कौमका अपमान करते हैं। ऐसी महान लड़ाइयोंमें उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं। आपने विरोधीसे चाहे जितनी स्पष्टता कर ली हो, फिर भी अगर वह विश्वासको तोड़ने पर ही तुल जाय, तो आप उसे कैसे रोक सकते हैं? इस मंडलमें ऐसे अनेक लोग हैं, जो मेरे पास दावा करनेके लिए प्रामिसरी नोट लेकर आते हैं। प्रामिसरी नोट पर अपने दस्तखत करके हाथ कटवा देनेसे अधिक स्पष्टता और असंदिग्धता दूसरी क्या हो सकती है? लेकिन ऐसे लोगोंके खिलाफ भी अदालतमें लड़ना पड़ता है। ऐसे लोग मुकदमोंका विरोध करते हैं, अनेक प्रकारसे अपना बचाव करते हैं, उनके खिलाफ फैसले होते हैं और जब्तियां निकाली जाती हैं। ऐसी अनुचित और अशोभनीय घटनाओंके लिए क्या गारंटी है, जिससे वे दुबारा न हो सकें? इसलिए मेरी तो आपको यही सलाह है कि जो समस्या खड़ी हुई है उसे हम धैर्य और शान्तिसे हल करनेका प्रयत्न करें। हमें इस बातका ही विचार करना चाहिये कि

यदि फिरसे लड़ाई लड़नी पड़े तो हम क्या कर सकते हैं — अर्थात् दूसरे लोग क्या करेंगे इसका विचार न करके प्रत्येक सत्याग्रहीको यह सोचना चाहिये कि वह स्वयं क्या करेगा या क्या कर सकेगा। मुझे तो लगता है कि यदि हम इतने लोग सच्चे रहेंगे तो दूसरे भी सच्चे रहेंगे, और यदि कोई कमजोरी उनमें पैदा हुई होगी तो हमारे उदाहरणसे वे अपनी कमजोरीको दूर करके बल प्राप्त करेंगे।"

मुझे लगता है कि फिरसे लड़ाई छिड़नेकी संभावनाके बारेमें जिन लोगोंने शुभ हेतुसे ताना मार कर अपनी शंका प्रकट की थी वे समझ गये थे। इस अवसर पर सेठ काछलिया दिनोदिन अधिक मात्रामें अपना तेज और बल प्रकट कर रहे थे। वे हर प्रश्न पर कमसे कम बोलकर अपना विश्वास बता देते थे और उस पर अटल रहते थे। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं है जब उन्होंने कमजोरी दिखाई हो या अंतिम परिणामके विषयमें शंका भी प्रकट की हो। एक समय ऐसा आया जब ईसप मियाने तूफानी समुद्रमें कौमका कर्णधार बननेसे इनकार कर दिया। उस समय हम सबने एकमतसे काछलियाका अपने कर्णधारके रूपमें स्वागत किया। तबसे लेकर लड़ाईकी अंतिम घड़ी तक उन्होंने अपना हाथ पतवारसे कभी हटाया नहीं। और जो मुसीबतें शायद ही कोई मनुष्य बरदाश्त कर सके, वे सब उन्होंने निश्चिन्त और निर्भय होकर बरदाश्त कीं। जब लड़ाई आगे बढ़ी तब एक समय ऐसा भी आया कि कुछ लोगोंके लिए जेलमें जाना तो बहुत आसान था — एक तरहका आराम था, जब कि बाहर रहकर सारी बातोंकी सूक्ष्मतासे जांच करना, उनकी व्यवस्था करना और अनेक तरहके लोगोंको समझाना और उनके साथ व्यवहार करना बहुत कठिन था।

आगे चलकर गोरे साहूकारोंने काछलियाको अपने शिकंजेमें पकड़ा। दक्षिण अफ्रीकामें अनेक हिन्दुस्तानी व्यापारी गोरे व्यापारियोंकी पेढ़ियों पर आधार रखते हैं। वे बिना किसी जमानतके लाखों रुपयेका माल हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको उधार देती हैं। हिन्दुस्तानी व्यापारी गोरे व्यापारियोंका ऐसा विश्वास प्राप्त कर सके, यह हिन्दुस्तानियोंके व्यापारकी सामान्य प्रामाणिकताका एक सुन्दर प्रमाण है। काछलिया सेठ पर भी

बहुतसी गोरी पेढ़ियोंका कर्ज था। गोरे व्यापारियोंने, ट्रान्सवाल सरकारके प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें भड़कानेकी वजहसे, काछलियासे अपना पैसा तुरन्त चुका देनेकी माग की। उन्होंने काछलियाको बुला कर कहा भी. "अगर आप सत्याग्रहकी लड़ाईसे हट जायं, तो हमें अपने पैसेकी कोई जल्दी नही है। लेकिन अगर आप लड़ाईसे न हटें, तो हमें डर है कि सरकार आपको कभी भी गिरफ्तार कर सकती है। उस हालतमें हमारे पैसेका क्या होगा? इसलिए आप अगर इस लड़ाईसे हट ही न सकें, तो हमारे पैसे आपको तुरन्त चुका देने चाहिये।" वीर काछलियाने उत्तर दिया: "हिन्दुस्तानियोंकी लड़ाईमें भाग लेना मेरा व्यक्तिगत मामला है। उसका मेरे व्यापारके साथ कोई सम्बन्ध नही। उस लड़ाईमें मेरा धर्म, मेरी कौमका सम्मान और मेरा अपना स्वाभिमान समाया हुआ है। आपने मुझे माल उधार दिया, इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूं। परन्तु इस बातको या अपने व्यापारको मैं सर्वोपरि नही मान सकता। आपके पैसे मेरे पास सोनेकी मुहरोंकी तरह सुरक्षित हैं। मैं जिन्दा हूं तब तक खुद बिक कर भी आपके पैसोंकी भरपाई करूंगा। और मान लीजिये कि मुझे कुछ हो गया, तो भी आप समझ रखें कि मेरा माल और उगाही तो आपके हाथमें ही है। इसलिए मैं चाहता यह हूं कि जिस तरह आज तक आपने मुझ पर विश्वास रखा है, उसी तरह आगे भी रखें।" यद्यपि यह दलील बिलकुल उचित थी और काछलियाकी दृढ़ता गोरे व्यापारियोंके लिए विश्वासका एक अधिक कारण थी, फिर भी उसका प्रभाव उस समय व्यापारियों पर नही पड़ा। हम सोते आदमीको तो जगा सकते हैं, लेकिन जो आदमी जागते हुए भी सोनेका ढोंग करता हो उसे नही जगा सकते। यही हाल गोरे व्यापारियोंका था। उन्हें तो काछलियाको दबाना था, झुकाना था; वर्ना उनका पैसा बिलकुल सुरक्षित था।

२२ जनवरी, १९०९ को मेरे ऑफिसमें गोरे साहूकारोंकी एक सभा हुई। उनसे मैंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि काछलिया पर वे जो दबाव डाल रहे हैं, उसमें व्यापारकी नीति नही परन्तु राजनीति है। राजनीतिक चाल व्यापारियोंको शोभा नहीं देती। लेकिन वे नाराज हो गये।

मेरे पास काछलिया सेठके मालकी और उनकी उगाहीकी फेहरिस्त थी। वह मैंने उन लोगोंको दिखाई और उसके आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि उनका शत-प्रतिशत पैसा उन्हें मिल सकता है। और अगर वे काछलियाका व्यापार किसी दूसरेको बेचना चाहें, तो काछलिया अपना सारा माल और सारी उगाही भी खरीदारको सौंप देनेके लिए तैयार हैं। अगर ऐसा न करना चाहें तो गोरे व्यापारी जो माल काछलियाकी दुकानमें है उसे मूल भावसे ले लें; और ऐसा करने पर भी कुछ पैसा कम मिले, तो उसके बदले वे पसंद करें वैसी उगाही ले लें। पाठक समझ सकेंगे कि मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार करनेसे गोरे व्यापारियोंको कुछ भी खोना न पड़ता (और मेरे अनेक मुवक्किलोंके लिए आर्थिक संकटके समय साहूकारोंके साथ मैं ऐसी व्यवस्था कर सका था)। लेकिन इस अवसर पर गोरे व्यापारी न्याय नहीं चाहते थे। वे तो काछलियाको झुकाना चाहते थे। पर काछलिया झुके नहीं, इसलिए दिवालिया कर्जदार घोषित कर दिये गये।

यह दिवालियापन काछलियाके लिए कलंक-रूप नहीं था, बल्कि उनका भूषण था। इससे कौमके लोगोंमें उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और उनकी दृढ़ता तथा वीरताके लिए सब लोगोंने उन्हें बधाई दी। परन्तु इस प्रकारकी वीरता अलौकिक कही जायगी। सामान्य मनुष्य उसे समझ ही नहीं सकता। दिवालियापन दिवालियापन न रहकर, बदनामी न रह कर, आदर और प्रतिष्ठाकी वस्तु भी बन सकता है, इसकी कल्पना भी सामान्य मानवको नहीं आ सकती। परन्तु काछलियाको यही बात स्वाभाविक लगी। अनेक हिन्दुस्तानी व्यापारी केवल दिवालियेपनके डरसे ही खूनी कानूनके सामने झुक गये थे। काछलिया चाहते तो दिवालियेपनसे बच सकते थे। सत्याग्रहकी लड़ाईसे हट जाना तो इससे बचनेका उपाय था ही। लेकिन यहां मैं उसकी बात नहीं कर रहा हूं। काछलियाके बहुतसे हिन्दुस्तानी मित्र ऐसे थे, जो इस संकटके समय उन्हें पैसे उधार दे सकते थे। लेकिन ऐसी व्यवस्था करके यदि उन्होंने अपने व्यापारको बचाया होता, तो उनकी बहादुरी लज्जित होती। जेल जानेका जो खतरा उनके सिर पर था, वह तो सभी सत्याग्रहियोंके सिर

पर था। इसलिए किसी सत्याग्रहीसे पैसे लेकर वे गोरोंको चुकाते, तो यह उन्हें शोभा न देता। लेकिन जिस प्रकार सत्याग्रही व्यापारी उनके मित्र थे उसी प्रकार खूनी कानूनके सामने झुकनेवाले व्यापारी भी उनके मित्र थे। मैं जानता हू कि इनकी मदद काछलियाको मिल सकती थी। जहां तक मुझे याद है, ऐसे एक-दो मित्रोंने उनसे कहलवाया भी था। लेकिन उनकी मदद लेना यह स्वीकार करनेके बराबर था कि खूनी कानूनके सामने झुकनेमे बुद्धिमानी है। इसलिए हम दोनोंने यह निर्णय किया कि ऐसी मदद कभी नहीं ली जा सकती। इसके सिवा, हम दोनोंने यह भी सोचा कि अगर काछलिया खुदको दिवालिया घोषित होने दे, तो उनका दिवालियापन दूसरोंके लिए एक ढालका काम करेगा; क्योंकि दिवालियेपनके शत-प्रतिशत नही तो ९९ प्रतिशत मामलोंमे तो लेनदारोंको कुछ न कुछ खोना ही पड़ता है। यदि ५० प्रतिशत रकम भी मिल जाय तो वे खुश होते हैं और ७५ प्रतिशत मिल जाय तब तो शत-प्रतिशत मिली जैसा ही मान लेते हैं; क्योंकि दक्षिण अफ्रीकाके बड़े बड़े व्यापारी सामान्यतः ६$\frac{1}{4}$ प्रतिशत मुनाफा नही लेते, परन्तु २५ प्रतिशत लेते हैं। इसलिए ७५ प्रतिशत रकम मिल जाय तब तक वे उसे घाटेका व्यापार मानते ही नही। लेकिन दिवालियेपनमें शत-प्रतिशत रकम तो शायद ही कभी मिलती है, इसलिए कोई भी लेनदार कर्जदारको दिवालिया बनानेकी कभी इच्छा नही रखता।

इसलिए काछलियाके दिवालियेपनसे इस बातकी सभावना थी कि गोरे व्यापारी दूसरे सत्याग्रही व्यापारियोंको धमकी देना बन्द कर दें। और हुआ भी ऐसा ही। गोरे व्यापारियोका उद्देश्य काछलियाको सत्याग्रहकी लड़ाईसे हटाना था और अगर वे ऐसा न करें तो उनसे शत-प्रतिशत नकद पैसा वसूल करना था। लेकिन दोनोंमें से उनका एक भी उद्देश्य पूरा न हुआ, बल्कि उनकी आशासे उलटा ही परिणाम आया। किसी प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी व्यापारी द्वारा दिवालियेपनका स्वागत होनेका यह पहला उदाहरण देख कर गोरे व्यापारी स्तब्ध रह गये और सदाके लिए शात हो गये। एक वर्षके भीतर गोरे व्यापारियोंको काछलिया सेठके मालसे शत-प्रतिशत पैसा मिल गया। दिवालियेपनमें शत-प्रतिशत पैसा

मिलनेका मेरी जानकारीमें तो दक्षिण अफ्रीकामें यह पहला ही उदाहरण था। इस कारणसे सत्याग्रहकी हमारी लड़ाई चल रही थी उसी बीच गोरे व्यापारियोंमें भी काछलियाका सम्मान खूब बढ़ गया और उन्हीं व्यापारियोंने लड़ाईके चालू रहते हुए भी काछलियाको चाहे जितना माल उधार देनेकी तैयारी दिखाई। परन्तु काछलियाका बल तो उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। सत्याग्रहके रहस्यको भी वे समझ ही चुके थे। अब तो कोई भी यह नहीं कह सकता था कि लड़ाई कब तक चलेगी; इसलिए दिवालियापन घोषित हो जानेके बाद हमने निश्चय कर लिया था कि लड़ाईके दौरान सेठ काछलिया बड़े व्यापारमें न पड़ें। कोई गरीब आदमी अपना खर्च चला सके इतना ही पैसा पैदा करने लायक व्यापार करना और बाकी व्यापार लड़ाईके समयमें नहीं करना — ऐसा निश्चय काछलियाने किया था। इसलिए गोरे व्यापारियोंने जो सुविधायें उन्हें दीं, उनका उपयोग उन्होंने नहीं किया।

पाठक यह बात तो समझ लेंगे कि काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओंका वर्णन मैंने यहां किया है, वे सब इस प्रकरणमें उल्लिखित कमेटीकी बैठकके बाद हुईं ऐसा नहीं है। लेकिन उनका वर्णन एक ही स्थान पर देना ठीक होगा, ऐसा मानकर इस प्रकरणमें मैंने उन्हें स्थान दिया है। तारीखके हिसाबसे देखा जाय तो सत्याग्रहकी दूसरी लड़ाई शुरू हुई (१० सितम्बर, १९०८) उसके कुछ समय बाद काछलिया सेठ अध्यक्ष बने और उसके लगभग पांच महीने बाद उन्हें दिवालिया घोषित किया गया।

लेकिन अब हम कमेटीकी बैठकके परिणामों पर आयें। उस बैठकके बाद मैंने जनरल स्मट्सको पत्र लिखा कि नया बिल सरकार और कौमके बीच हुए समझौतेको भंग करता है। अपने पत्रमें मैंने जनरलके उस भाषणकी ओर भी उनका ध्यान खींचा था, जो उन्होंने समझौता होनेके एक सप्ताहके भीतर रिचमन्डमें दिया था। उस भाषणमें उन्होंने इन शब्दोंका प्रयोग किया था: "ये लोग (एशियावासी) एशियाटिक कानून रद करनेके लिए मुझसे कहते हैं। लेकिन जब तक वे लोग स्वेच्छासे परवाने न ले लें तब तक वह कानून रद करनेसे मैंने इनकार कर दिया है।" राजनीतिज्ञ ऐसी किसी बातका उत्तर नहीं देते, जो उन्हें उलझनमें

डाल दे। और यदि वे उत्तर देते भी हैं, तो वह गोल-गोल होता है। जनरल स्मट्सने इस कलाका पूर्ण विकास किया था। उन्हें आप चाहे जितना लिखें, चाहे जितने भाषण आप करे, लेकिन जब उनकी इच्छा उत्तर देनेकी न हो तब आप उनसे उत्तर निकलवा ही नही सकते। प्राप्त होनेवाले पत्रोंका उत्तर उन्हे देना ही चाहिये, यह सामान्य शिष्टाचार उनके लिए बन्धनकारक नहीं था। इसलिए मेरे लिखे पत्रोंका उनकी ओरसे मुझे कोई संतोषजनक उत्तर नही मिल सका।

मैं श्री आल्बर्ट कार्टराइटसे मिला, जिन्होंने समझौतेके समय सरकारके और हमारे बीच मध्यस्थका काम किया था। उन्हें जनरल स्मट्स द्वारा प्रस्तुत नये बिलसे गहरा आघात लगा। वे बोले: "सचमुच, मैं इस आदमीको बिलकुल नहीं समझ सकता। मुझे अच्छी तरह याद है कि उसने एशियाटिक एक्ट रद करनेका वचन दिया था। मैं अपनी शक्तिभर सब कुछ करूंगा। परन्तु आप जानते हैं कि जब एक बार वह आदमी कोई निश्चय कर लेता है तो फिर उसके सामने किसीकी कुछ नही चलती। अखबारोंके लेखोंकी तो वह जरा भी परवाह नही करता। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी सहायतासे आपको कोई लाभ नही होगा।" मैं श्री हॉस्किन आदिसे भी मिला। उन्होंने जनरल स्मट्सको पत्र लिखा। उन्हें भी अत्यन्त असन्तोषजनक उत्तर मिला। मैंने 'विश्वासघात' शीर्षकसे 'इंडियन ओपीनियन' में लेख भी लिखे। लेकिन जनरल स्मट्स उनकी परवाह क्यों करने लगे? तत्त्वज्ञानी अथवा क्रूर आदमीके लिए आप चाहे जितने कड़वे विशेषणोंका प्रयोग करें, उस पर उनका कोई असर नही पड़ता। वह तो अपना सोचा हुआ काम करनेमें जुटा रहता है। मैं नही जानता कि जनरल स्मट्सके लिए इन दोमें से कौनसे विशेषणका उपयोग किया जा सकता है। उनकी वृत्तिमें एक प्रकारकी दार्शनिकता है, यह तो मुझे स्वीकार करना ही चाहिये। जिस समय हम दोनोंके बीच पत्र-व्यवहार चलता था और अखबारोंमें मेरे लेख छपते थे, उस समय तो मुझे याद है कि मैंने उन्हे निर्दय ही माना था। लेकिन उस समय सत्याग्रहकी लड़ाईकी पहली ही मंजिल थी। वह लड़ाईका दूसरा ही वर्ष था, जब कि लड़ाई तो पूरे

८ वर्ष चली थी। इस बीच में जनरल स्मट्ससे कई बार मिला था। बादकी हमारी बातचीत परसे मुझे ऐसा लगने लगा था कि जनरल स्मट्सके काइयापनके बारेमें जो सामान्य मान्यता दक्षिण अफ्रीकामें प्रचलित है उसमें परिवर्तन होना चाहिये। दो बातें मुझे स्पष्ट रूपसे मालूम हुईं: (१) अपनी राजनीतिमें उन्होंने कुछ सिद्धान्त अपनाये हैं; और (२) वे सिद्धान्त सर्वथा अनीतिमय तो नहीं ही हैं। लेकिन इसके साथ ही मैंने यह भी देखा कि उनके राजनीतिशास्त्रमें चालाकीके लिए, और अवसर आने पर सत्याभासके लिए भी, स्थान है।[1]

२

लड़ाईकी पुनरावृत्ति

एक ओर हम जनरल स्मट्सको समझौतेकी शर्तें पालनेके लिए मना रहे थे, तो दूसरी ओर कौमको फिरसे जाग्रत करनेका कार्य भी उत्साहपूर्वक चला रहे थे। हमें यह अनुभव हुआ कि हर जगह कौमके लोग फिरसे लड़ाई छेड़नेके लिए और जेल जानेके लिए तैयार ही हैं। हर जगह सभायें की गईं। सभाओंमें हमने कौमके लोगोंको सरकारके साथ चल रहे पत्र-व्यवहारकी बातें समझाईं। 'इंडियन ओपीनियन' में तो हर सप्ताहकी डायरी छपती ही थी, जिससे कौम सारी गतिविधिसे अच्छी तरह परिचित रहती थी। सभाओंमें सबको यह भी समझाया और चेताया गया कि स्वेच्छासे लिये हुए परवाने निष्फल जानेवाले हैं। लोगोंसे यह भी कहा गया कि यदि किसी भी उपायसे खूनी कानून रद न हो, तो हमें उन परवानोंको जला ही डालना चाहिये। इससे ट्रान्सवालकी सरकार यह समझ जायगी कि कौम अपनी बात पर दृढ़ और निश्चिन्त है तथा जेल जानेको भी तैयार है। परवानोंकी होली जलानेके लिए हर जगहसे परवाने इकट्ठे भी किये गये थे।

---

१. यह छापते समय हमें पता चल गया है कि जनरल स्मट्सकी सरदारीका भी अंत आ सका है। —मो० क० गांधी

जिस नये बिलके बारेमे हम पिछले प्रकरणमें पढ़ चुके हैं, उसे पास करनेकी सरकार तैयारियां करने लगी। ट्रान्सवालकी विधान-सभामे भी कौमने अरजी भेजी। लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं आया। अन्तमें सत्याग्रहियोंका 'अल्टिमेटम' सरकारके पास भेजा गया। 'अल्टिमेटम' का अर्थ है निश्चय-पत्र या धमकीका पत्र, जो लड़ाईके हेतुसे ही भेजा जाता है। 'अल्टिमेटम' शब्दका उपयोग कौमकी ओरसे नहीं किया गया था। परन्तु कौमका निश्चय बतानेवाला जो पत्र भेजा गया था, उसे जनरल स्मट्सने ही विधान-सभामे 'अल्टिमेटम' कहा था। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि, "जो लोग ऐसी धमकी सरकारको दे रहे हैं, उन्हें सरकारकी शक्तिकी कल्पना नही है। मुझे दु:ख ही इस बातका होता है कि कुछ आन्दोलनकारी (एजिटेटर) गरीब हिन्दुस्तानियोंको भड़काते हैं; और उन गरीबों पर अगर आन्दोलनकारियोंका प्रभाव होगा, तो वे बरबाद हो जायंगे।" अखबारोंके रिपोर्टरोंने उस अवसरका वर्णन करते हुए लिखा था कि विधान-सभाके अनेक सदस्य 'अल्टिमेटम'की बात सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो गये थे। उनकी आंखें लाल हो गई थीं। उन्होंने जनरल स्मट्स द्वारा प्रस्तुत किये गये नये बिलको एकमत और उत्साहसे पास कर दिया।

उपर्युक्त 'अल्टिमेटम'में इतनी ही बात थी: "हिन्दुस्तानी कौम और जनरल स्मट्सके बीच जो समझौता हुआ था, उसमें स्पष्ट रूपसे यह कहा गया था कि यदि हिन्दुस्तानी लोग स्वेच्छासे परवाने ले लेंगे, तो उन्हें कानूनी माननेके लिए एक बिल विधान-सभामें पेश किया जायगा और एशियाटिक कानून रद कर दिया जायगा। यह बात तो प्रसिद्ध है कि सरकारी अधिकारियोंको सतोष हो इस ढंगसे कौमने ऐच्छिक परवाने निकलवा लिये हैं। इसलिए अब एशियाटिक कानून रद होना ही चाहिये। इस विषयमें कौमने जनरल स्मट्सको कई पत्र लिखे हैं; न्याय पानेके लिए दूसरे भी आवश्यक कानूनी उपाय किये हैं। लेकिन अभी तक कौमके सारे प्रयत्न असफल रहे हैं। विधान-सभामें जब बिल लगभग पास होनेकी स्थितिमें पहुंच गया है, उस समय हिन्दुस्तानी लोगोंमें फैली हुई घबराहट और उत्तेजनासे सरकारको परिचित

करना कौमके नेताओंका फर्ज है। और हमें दुःखके साथ यह कहना पड़ता है कि यदि समझौतेकी शर्तोंके अनुसार एशियाटिक कानून रद्द नहीं किया जायगा और यदि वैसा करनेकी सूचना कौमको अमुक समय तक नहीं दी जायगी, तो कौमके लोगोंने जो परवाने स्वेच्छासे लिये हैं उन्हें जला डाला जायगा; और ऐसा करनेके फलस्वरूप उन पर जो भी मुसीबतें आवेंगी, उन्हें वे नम्रतासे और दृढ़तासे सहन कर लेंगे।"

ऐसे पत्रको 'अल्टिमेटम' माननेका एक कारण तो यह था कि उसमें उत्तरके लिए सरकारको एक अवधि दे दी गई थी। दूसरा कारण यह था कि गोरे लोग हिन्दुस्तानियोंको सामान्यतः जंगली कौम मानते थे। यदि गोरे हिन्दुस्तानियोंको अपने जैसे मानते, तो इस पत्रको उन्होंने पूरी तरह सभ्यतापूर्ण माना होता और उस पर ध्यान भी दिया होता। लेकिन गोरे हिन्दुस्तानियोंको जंगली मानते थे, यही बात हिन्दुस्तानियोंके लिए सरकारको उपर्युक्त पत्र लिखनेका पर्याप्त कारण थी। हिन्दुस्तानियोंको इन दो स्थितियोंमें से किसी एकको स्वीकार करना था: एक, जंगली होनेकी बात कबूल करके दबे रहना; और दूसरी, जंगली होनेकी बातका इनकार करनेकी दिशामें व्यावहारिक कदम उठाना। ऐसे कदमोंमें उपर्युक्त पत्र पहला कदम था। यदि इस पत्रके पीछे उस पर अमल करनेका दृढ़ निश्चय न होता, तो वह उद्धततापूर्ण माना जाता और कौम विचारशून्य तथा मूर्ख सिद्ध होती।

पाठकोंके मनमें शायद यह शंका उठेगी कि जंगलीपनके आक्षेपसे इनकार करनेका पहला कदम तो १९०६ में ही उठाया गया था, जब सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा ली गई थी; और यदि यह ठीक हो तब तो इस पत्रमें ऐसा नया क्या था कि उसे मैं इतना महत्त्व देता हूं और यह मानता हूं कि उस समयसे कौमने जंगलीपनके आरोपसे इनकार करना शुरू किया था? एक दृष्टिसे ऐसा तर्क सही माना जायगा। लेकिन अधिक विचार करनेसे पता चलेगा कि कौमके इनकारका सच्चा आरंभ उपर्युक्त निश्चय-पत्रसे ही हुआ था। यह बात पाठकोंको याद रखनी चाहिये कि सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाकी घटना अकस्मात् हो गई थी। उसके बादकी जेल वगैरा उसका अनिवार्य परिणाम था। उससे अनजाने ही कौमकी

प्रतिष्ठा बड़ी थी। परन्तु यह पत्र सरकारको लिखते समय कौमको पूरा ज्ञान था और प्रतिष्ठाका दावा करनेका उसका पूरा इरादा था। ध्येय तो पहलेकी तरह इस समय भी खूनी कानून रद करानेका ही था। परन्तु इस पत्रमें लिखी गई भाषाकी शैलीमें, कार्य-पद्धतिके चुनावमें तथा अन्य कई बातोंमें भेद था। कोई गुलाम अपने मालिकको सलाम करे और कोई मित्र अपने मित्रको सलाम करे — ये दोनों हैं तो सलाम ही, परन्तु दोनोंके बीच इतना बड़ा भेद है कि उस भेदके कारण ही तटस्थ दर्शक एक आदमीको गुलामके रूपमें और दूसरेको मित्रके रूपमें पहचान लेगा।

सरकारको 'अल्टिमेटम' भेजते समय ही हमारे बीच काफी चर्चा हुई थी। अवधि तय करके सरकारसे उत्तर मागना अविनय अथवा अशिष्टता नहीं मानी जायगी? कही इसका परिणाम यह तो न आये कि सरकार हमारी माग स्वीकार करना चाहती हो, तो भी इसके कारण स्वीकार न करे? क्या कौमका निश्चय परोक्ष रूपमे सरकारको बताना पर्याप्त नही होगा? ऐसे अनेक प्रश्नों पर गहरा विचार करनेके बाद हम सबने एकमतसे यह निश्चय किया कि हम जिसे सच्चा और उचित मानते हैं वही हमें करना चाहिये। इससे अशिष्टताका झूठा आरोप हमारे सिर मढ़ा जाय, तो वह खतरा भी हमें उठाना चाहिये; और जो कुछ सरकार देना चाहती है वह झूठे क्रोधके कारण यदि हमें न दे, तो वह खतरा भी मोल लेना चाहिये। यदि हम किसी भी रूपमे मनुष्यके नाते अपनी हीनता स्वीकार न करते हों और यह मानते हो कि चाहे जितना दुःख चाहे जितने समय तक उठाना पड़े तो भी उसे उठानेकी शक्ति हममें है, तब तो जो मार्ग सीधा और सही है वही हमे ग्रहण करना चाहिये।

अब शायद पाठक यह समझ सकेंगे कि इस बार जो कदम उठाया गया था, उसमें कुछ नवीनता और विशेषता थी। उसकी प्रतिध्वनि विधान-सभामें और बाहरके गोरे मडलोमे भी उठी। कुछने हिन्दुस्तानियोंके साहसकी प्रशसा की और कुछ बहुत गुस्सा हुए। उन्होंने ऐसे उद्गार भी प्रकट किये कि इस उद्धतताके लिए हिन्दुस्तानियोंको

पूरी सजा मिलनी चाहिये। दोनो पक्षोंने अपने व्यवहारसे हिन्दुस्तानियोंके इस कदमकी नवीनता स्वीकार की। जिस समय सत्याग्रह आरंभ हुआ था उस समय यद्यपि वास्तवमे वह बिलकुल नया कदम था, फिर भी उससे गोरोमें जितनी खलबली मची थी उसकी अपेक्षा इस पत्रसे कही अधिक खलबली मची। इसका एक कारण तो स्पष्ट ही है। सत्याग्रह आरंभ हुआ उस समय किसीको कौमकी शक्तिका अंदाज नहीं था। उस समय इस प्रकारका पत्र अथवा ऐसी भाषा उचित नही मानी जाती। लेकिन अब कौमकी थोड़ी-बहुत कसौटी हो चुकी थी और सब कोई यह देख चुके थे कि सामुदायिक कष्टोका विरोध करनेमें जो दुःख आयें उन्हें बरदाश्त करनेकी शक्ति कौममे है। इसलिए निश्चय-पत्रकी भाषा स्वाभाविक रूपमें ही विकसित हुई थी और इस कारण वह अशोभनीय मालूम नही हुई।

३

ऐच्छिक परवानोंकी होली

जिस दिन नया एशियाटिक बिल विधान-सभामे पास होनेवाला था, उसी दिन 'अल्टिमेटम' अथवा निश्चय-पत्रकी अवधि पूरी होती थी। अवधि बीतनेके दो-एक घंटे बाद परवाने जलानेकी सार्वजनिक विधि पूरी करनेके लिए एक सभा बुलाई गई थी। सत्याग्रह-समितिने यह माना था कि आशाके विपरीत कहीं सरकारका अनुकूल उत्तर मिल जाय तो भी सभा बुलाना व्यर्थ नही होगा, क्योंकि उस स्थितिमें सभाका उपयोग सरकारका अनुकूल निर्णय कौमको सुनानेमें कर लिया जायगा।

लेकिन समितिका विश्वास यह था कि कौमके निश्चय-पत्रका सरकार कोई उत्तर ही नहीं देगी। हम सब समयसे पहले सभास्थान पर पहुच गये थे। हमने ऐसी व्यवस्था भी कर रखी थी कि यदि सरकारका तारसे कोई उत्तर आये, तो वह तुरन्त ही सभामें पहुंच जाय। सभाका समय ४ बजेका रखा गया था। नियमानुसार सभा जोहानिसबर्गकी हमीदिया

मसजिदके मैदानमें १६ अगस्त, १९०८ को हुई। सारा मैदान हिन्दुस्तानियोंसे खचाखच भर गया था। दक्षिण अफ्रीकाके हब्शी अपना खाना बनानेके लिए जरूरतके मुताबिक चार पैरोंवाली छोटी या बड़ी लोहेकी कड़ाहीका उपयोग करते हैं। परवाने जलानेके लिए ऐसी ही एक बड़ीसे बड़ी कड़ाही, जो उपलब्ध हो सकी, एक हिन्दुस्तानी व्यापारीकी दुकानसे मंगवा ली गई थी। उसे एक कोनेमें मच पर रख दिया गया था।

सभा शुरू होने ही वाली थी कि एक स्वयसेवक साइकल पर आ पहुंचा। उसके हाथमें तार था। उनमें सरकारका उत्तर था। उत्तरमें हिन्दुस्तानी कौमके निश्चयके लिए खेद प्रकट किया गया था और यह भी कहा गया था कि सरकार अपना निश्चय बदलनेमें असमर्थ है। तार पढ़कर सभामें सबको सुना दिया गया। सभाने उसका स्वागत किया, मानो सभाके लोगोंको इस बातका हर्ष हुआ कि सरकार द्वारा निश्चय-पत्रकी मांग स्वीकार कर लिये जानेसे परवानोंकी होली जलानेका जो शुभ अवसर उनके हाथसे चला जाता वह चला नही गया! ऐसा हर्ष उचित था या अनुचित, यह निश्चयके साथ कहना बहुत कठिन है। जिन जिन लोगोंने तालिया बजाकर सरकारी उत्तरका स्वागत किया, उनका उद्देश्य जाने बिना उचित या अनुचित निर्णय नही किया जा सकता। लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह हर्ष सभाके उत्साहका सुन्दर चिह्न था। सभाके लोगोंको अब अपनी ताकतका थोड़ा भान हुआ था।

सभाका कार्य आरभ हुआ। सभापतिने सभाको सावधान किया और उसे सारी परिस्थिति समझाई। अवसरके अनुरूप प्रस्ताव पास किये गये। मैंने जो विभिन्न परिस्थितिया सरकारके साथ की गई लम्बी बातचीतमे खड़ी हुई थी, उन पर स्पष्ट प्रकाश डाला और कहा: "जिन लोगोंने अपने परवाने जलानेके लिए दिये है, उनमे से कोई वापिस लेना चाहे तो ले सकते हैं। केवल परवाने जलानेसे ही कोई अपराध नही होता और इतना कार्य कर डालनेसे ही जेल जानेकी उमंग रखनेवालोंको जेल नही मिलेगी। परवाने जलाकर तो हम केवल अपना यह निश्चय प्रकट करते हैं कि हम सरकारके खूनी कानूनके सामने नही झुकेंगे और परवाना दिखाने जितनी शक्ति भी हम अपने हाथमें नही रखना चाहते।

लेकिन जो आदमी आज परवाने जलानेकी क्रियामें शरीक होता है वह यदि कल ही जाकर नया परवाना ले ले, तो कोई उसका हाथ नहीं पकड़ सकता। जिनका इरादा ऐसा कुकर्म करनेका हो अथवा जिन्हें कसौटीके समय अडिग रहनेकी अपनी शक्ति पर अविश्वास हो, उनके लिए अभी भी अपने परवाने वापिस लेनेका मौका है और ये परवाने उन्हें वापिस दिये जा सकते हैं। इस समय अपना परवाना वापिस लेनेवालेको शरमानेकी जरूरत नहीं। मैं तो इसे एक तरहकी हिम्मत भी मानूंगा। लेकिन बादमें परवाना लेनेमें शरम और बदनामी है और उससे कौमको नुकसान होगा। इसके सिवा, इस बार कौमको यह भी समझ लेना चाहिये कि लड़ाई लम्बी चलेगी। हम यह भी जानते हैं कि हममें से कुछ लोग अपनी प्रतिज्ञासे डिग गये हैं। और उस हद तक कौमकी गाड़ी खींचनेवाले जो लोग बाकी रहे हैं उन्हें खींचनेमें अधिक जोर लगाना पड़ेगा, यह भी स्पष्ट है। मेरी सलाह यह है कि इन सब बातोंका विचार करनेके बाद ही हमें आजका यह साहस करना चाहिये।"

मेरा भाषण चल रहा था उसी बीच सभामें ऐसी आवाजें उठती रही थीं "हमें परवाने वापिस नहीं चाहिये। आप उन्हें जला डालिये।" अंतमें मैंने कहा कि जिन्हें इस प्रस्तावका विरोध करना हो, वे लोग खड़े हो जाय। लेकिन एक भी आदमी खड़ा न हुआ। इस सभामें मीर आलम भी हाजिर था। उसने सभामें यह घोषणा की कि मुझ पर हमला करनेमें उससे भूल हुई थी, और अपना असल परवाना भी उसने मुझे जलानेके लिए दे दिया! नया परवाना तो उसने स्वेच्छासे लिया ही नहीं था। मैंने मीर आलमका हाथ पकड़ा और हर्षसे उसे दबाया। मैंने दुबारा मीर आलमने कहा कि मेरे मनमें तो उसके प्रति कभी रोष था ही नहीं। मीर आलमने अपनी भूल स्वीकार करके परवाना जलानेके लिए दिया, इससे सभाकी खुशीका पार न रहा।

कमेटीके पास जलानेके लिए २००० से ऊपर परवाने आ चुके थे। परवानोंका ढेर कड़ाहीमें डाला गया, ऊपरसे घासलेट उडेला गया और ईसप मियाने उसे दियासलाई दिखाई। सारी सभा खड़ी हो गई और जब तक परवाने जलते रहे तब तक उसकी तालियोंसे मैदान गूंजता रहा। जिन

कुछ लोगोंने अभी तक परवाने अपने पास रख छोड़े थे, उनके परवानोंकी भी अब मंच पर वर्षा होने लगी। वे परवाने भी कड़ाहीमें डाल दिये गये। जब उनसे पूछा गया कि होली जलने तक आपने परवाने क्यों नहीं दिये, तो कुछ लोगोंने कहा कि होली जल रही हो उस समय परवाने देना अधिक उपयुक्त होगा और दूसरों पर उसका अधिक असर होगा, ऐसा मानकर हमने पहले परवाने नहीं दिये। अन्य कुछ लोगोंने सच्चे मनसे कबूल किया: "परवाने देनेकी हमारी हिम्मत ही नहीं हो रही थी। अंतिम क्षण तक हमारे मनमें यह विचार बना रहा कि परवाने शायद न भी जलें। लेकिन परवानोंकी यह होली देखनेके बाद हमसे रहा ही नहीं गया। हमने सोचा कि जो सबका होगा वही हमारा होगा।" सत्याग्रहकी लड़ाईके सिलसिलेमें मनकी ऐसी सचाई और स्पष्टवादिताके अनेक अनुभव मुझे हुए थे।

इस सभामें अंग्रेजी अखबारोंके संवाददाता आये थे। उन पर भी सभाके संपूर्ण दृश्यका बड़ा गहरा असर पड़ा। उन्होंने अपने अखबारोंमें सभाका हूबहू वर्णन किया। इंग्लैंडके 'डेली मेल' नामक अंग्रेजी दैनिकके जोहानिसबर्ग स्थित संवाददाताने अपने अखबारको इस सभाका विवरण भेजा था। अपने वर्णनमें उसने परवानोंकी होलीकी तुलना अमेरिकाके अंग्रेजोंके उस कार्यसे की थी, जिसमें उन्होंने इंग्लैंडसे भेजी हुई चायकी पेटियोंको बोस्टन बंदरगाहके समुद्रमें डुबा दिया था और इंग्लैंडके अधीन न रहनेका अपना निश्चय घोषित किया था। दक्षिण अफ्रीकाकी स्थिति इस प्रकार थी: एक ओर १३००० हिन्दुस्तानियोंका निराधार समुदाय था और दूसरी ओर ट्रान्सवालका शक्तिशाली राज्य था। और, अमेरिकामें एक ओर थे वहांके सब प्रकारसे कुशल लाखों गोरे तथा दूसरी ओर थी अत्यन्त शक्तिशाली ब्रिटिश सल्तनत। इन दो स्थितियोंकी तुलना करने पर 'डेली मेल'के संवाददाताने हिन्दुस्तानियोंके बारेमें कोई अतिशयोक्ति की हो ऐसा मुझे नहीं लगता। हिन्दुस्तानियोंका एकमात्र शस्त्र था सत्य पर और ईश्वर पर उनकी श्रद्धा। इसमें कोई शंका नहीं कि श्रद्धालु मनुष्यके लिए यह शस्त्र सर्वोपरि है। लेकिन जब तक जन-साधारणमें यह दृष्टि उत्पन्न नहीं होती तब तक तो शस्त्र-रहित १३००० हिन्दुस्तानी

कौमे पर नई बात उठानेका आक्षेप

ट्रान्सवाल विधान-सभाकी जिस बैठकमें एशियाटिक कानून (दूसरा) पास हुआ था, उसी बैठकमें जनरल स्मट्सने एक दूसरा बिल भी पेश किया था। उसका नाम था 'इमिग्रेन्ट्स रेस्ट्रिक्शन एक्ट' (१९०७ का पन्द्रहवा एक्ट) — अर्थात् नये आनेवालों पर अंकुश लगानेवाला कानून। यह कानून वैसे तो सभी पर लागू होता था, परन्तु उसका मुख्य उद्देश्य नये आनेवाले हिन्दुस्तानियों पर प्रतिबन्ध लगाना था। यह कानून बनानेमें नेटालके ऐसे ही एक कानूनका अनुकरण किया गया था। लेकिन इसमें एक धारा ऐसी थी जिसकी वजहसे उन लोगोंका भी निषिद्ध आगंतुकोंकी व्याख्यामें समावेश हो जाता था, जिन पर एशियाटिक कानून लागू होता था। अतः इस कानूनमें परोक्ष रूपमें ऐसी युक्ति निहित थी, जिससे एक भी नया हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें दाखिल न हो सके। इसका विरोध करना कौमके लिए नितान्त आवश्यक था। लेकिन कौमके सामने प्रश्न यह खड़ा हुआ कि सत्याग्रहमें इस नये कानूनका समावेश किया जाय या नहीं। सत्याग्रह कब किया जाय और किन विषयोंके सम्बन्धमें किया जाय, इस बारेमें कौम किसीके साथ बंधी हुई नहीं थी। इस प्रश्नकी मर्यादा केवल कौमके विवेक और शक्तिमें ही निहित थी। बात बातमें यदि कोई सत्याग्रह करे, तो वह दुराग्रह होगा। इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी शक्तिका अंदाज लगाये बिना सत्याग्रहके शस्त्रका उपयोग करता है और फिर हार जाता है, वह स्वयं तो कलंकित होता ही है, परन्तु ऐसे अविवेकके कारण सत्याग्रहके शस्त्रको भी दूषित करता है।

सत्याग्रह-समितिने देखा कि हिन्दुस्तानी कौमका सत्याग्रह केवल खूनी कानूनके विरुद्ध है। यदि खूनी कानून रद्द हो जाय, तो 'इमिग्रेन्ट्स रेस्ट्रिक्शन एक्ट' में रहे जिस जहरका मैंने ऊपर उल्लेख किया है वह अपने-आप खतम हो जायगा। फिर भी कौम यदि यह सोचकर चुप बैठी रहे कि खूनी कानून जब रद्द कराना ही है तो फिर 'इमिग्रेशन एक्ट' के सम्बन्धमें अलगसे चर्चा या आन्दोलन करना जरूरी नहीं है, तो उसका अर्थ यह माना जायगा कि कौमने नये आनेवाले हिन्दुस्तानियों पर लगाये जा रहे संपूर्ण प्रतिबन्धको स्वीकार कर लिया है। इसलिए 'इमिग्रेशन एक्ट' का विरोध करना आवश्यक था। सोचना केवल इतना ही था कि सत्याग्रहकी लड़ाईमें उसे सम्मिलित किया जाय या नहीं। कौमका मन यह था कि सत्याग्रहके चलते चलते ही कौम पर जो नये आक्रमण हों, उन आक्रमणोंका भी सत्याग्रहमें समावेश करना उसका धर्म है। कौमकी निर्बलताके कारण यदि ऐसा न किया जा सके, तो वह अलग बात है। कौमके नेताओंको लगा कि शक्तिके अभावका अथवा शक्तिकी कमीका बहाना बनाकर जहरीले 'इमिग्रेशन एक्ट' को छोड़ा नहीं जा सकता, इसलिए उसे भी सत्याग्रहमें सम्मिलित करना ही चाहिये।

अतः इस विषयमें ट्रान्सवाल सरकारके साथ पत्र-व्यवहार किया गया। उसकी वजहसे कानूनमें तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ, लेकिन जनरल स्मट्सको उसमें कौमकी — और सच पूछा जाय तो मेरी — निन्दा का नया साधन मिल गया। जनरल स्मट्स जानते थे कि जितने गोरे खुले तौर पर हिन्दुस्तानी कौमकी सहायता करते हैं, उनसे कहीं अधिक गोरोंकी छिपी सहानुभूति कौमके साथ है। अतः यह भाव उनके मनमें उठना स्वाभाविक ही था कि गोरोंकी यह सहानुभूति खतम की जा सके तो करना चाहिये। इसलिए उन्होंने मुझ पर यह आरोप लगाया कि मैंने एक नई बात उठाई है। और अपने साथ हुई बातचीतमें तथा पत्र-व्यवहारमें भी कौमके गोरे सहायकोंसे उन्होंने कहा: "गांधीको जितना मैं पहचानता हू उतना आप लोग नहीं पहचानते। वह ऐसा आदमी है कि अगर आप उसे एक इंच जमीन दें, तो वह एक गज जमीनकी मांग करेगा। मैं यह सब जानता हू इसीलिए तो मैं एशियाटिक कानून रद्द

नहीं करता। उसने जब सत्याग्रह शुरू किया था उस समय नये आनेवालोंकी तो कोई बात ही नहीं थी। अब हम ट्रान्सवालकी रक्षाकी दृष्टिसे नये हिन्दुस्तानियोंको आनेसे रोकनेका कानून बनाते है, तो इसमें भी वह हमें सत्याग्रह करनेकी धमकी देता है। ऐसी चालाकी (कनिंग) को कब तक बरदाश्त किया जाय? उसे जो कुछ करना हो करे। एक एक हिन्दुस्तानी बरबाद हो जाय, तो भी मैं यह एशियाटिक कानून रद नहीं करूंगा। और ट्रान्सवाल सरकारने हिन्दुस्तानियोंके बारेमें जो नीति अपनाई है उसे भी मैं नहीं छोड़ूंगा। इस न्यायपूर्ण नीतिका समर्थन करनेके लिए प्रत्येक गोरेको समत होना चाहिये।"

थोड़ा विचार करनेसे ही पता चल जायगा कि जनरल स्मट्सकी यह दलील बिलकुल अनुचित और नीति-विरुद्ध थी। जब नये आनेवाले हिन्दुस्तानियोंको रोकनेवाले कानूनका जन्म ही नहीं हुआ था, उस समय मैं या कौम उसका विरोध कैसे करती? उन्होंने मेरी चालाकी (कनिंग) के अनुभवकी बात कही है। परन्तु उसका एक भी उदाहरण वे नहीं दे सके। और मैं स्वयं तो जानता ही हूं कि दक्षिण अफ्रीकाके इतने वर्षोंके निवास-कालमें मैंने कभी चालाकीसे काम लिया हो ऐसा मुझे स्मरण नहीं है। बल्कि इस अवसर पर तो मुझे आगे बढ़कर यह कहनेमें भी कोई संकोच नहीं होता कि मैंने सारी जिन्दगीमें कभी चालाकीका उपयोग किया ही नहीं। मेरा यह विश्वास है कि चालाकीका उपयोग न केवल नीतिके विरुद्ध है, बल्कि राजनीतिके विरुद्ध भी है। इसलिए व्यवहारकी दृष्टिसे भी मैंने उसके उपयोगको सदा नापसंद किया है। अपने बचावमें इतना लिखना भी मैं आवश्यक नहीं मानता। जिस पाठक-वर्गके लिए मैं यह इतिहास लिख रहा हूं, उसके समक्ष अपने मुंहसे अपना बचाव करनेमें मुझे लज्जा आयेगी। मैं चालाकीसे मुक्त हूं, इस बातका अनुभव यदि पाठकोंको अभी भी न हुआ हो, तो अपने बचावसे मैं यह बात कभी सिद्ध कर ही नहीं सकूंगा। ऊपरके वाक्य लिखनेका हेतु इतना ही है कि उन्हें पढ़कर पाठकोंको इस बातकी कल्पना हो जाय कि कैसे संकटोंके बीच हमें सत्याग्रहकी लड़ाई लड़नी पड़ी थी और वे यह समझें कि कौम अगर नीतिके राजमार्गसे जरा भी विचलित

होती तो लड़ाई कैसे खतरेमें पड़ जाती। कोई नट जब २० फुट ऊंचे बासों पर लटकाई हुई रस्सी पर चलता है तब उसे अपनी दृष्टिको रस्सी पर एकाग्र रखकर चलना पड़ता है; और यदि वह ऐसा करनेमें जरा भी चूक जाय तो उसकी मौत निश्चित है, फिर वह किसी भी ओर क्यों न गिरे। दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रहके ८ वर्षके लम्बे अनुभवने मुझे यह सिखाया है कि सत्याग्रहीको संभव हो तो नटसे भी अधिक एकाग्र दृष्टि रखकर चलना चाहिये। जिन गोरे मित्रोंके समक्ष जनरल स्मट्सने मुझ पर उपर्युक्त आरोप लगाया था, वे मित्र मुझे अच्छी तरह पहचानते थे। इसलिए उन पर जनरल स्मट्सकी आशासे उलटा ही असर पडा। उन्होंने न सिर्फ मेरा या कौमकी लड़ाईका त्याग नहीं किया, बल्कि अधिक उत्साहसे हमारी सहायता की। और कौमने आगे चलकर समझ लिया कि 'इमिग्रेशन एक्ट' को भी यदि सत्याग्रहमें सम्मिलित न कर दिया गया होता, तो उसे भारी मुसीबतोंमें फसना पड़ता।

मेरा व्यक्तिगत अनुभव मुझे यह सिखाता है कि प्रत्येक शुद्ध लड़ाईको वृद्धिका नियम लागू होता है। परन्तु सत्याग्रहके विषयमें तो मैं इसे सिद्धान्तके रूपमे मानता हू। गगा नदी ज्यों ज्यों आगे बढ़ती जाती है त्यो त्यों उसमे अनेक नदियां मिलती जाती है और मुहाने पर तो उसका पाट इतना विशाल हो जाता है कि दायी या बायी किसी भी ओर उसका किनारा नही दीखता और नावमे बैठे हुए मुसाफिरको विस्तारकी दृष्टिसे समुद्र और गंगा नदीमे कोई भेद नही मालूम होता। इसी प्रकार सत्याग्रहकी लड़ाई ज्यों ज्यों आगे बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसमें अनेक बातें मिलती जाती हैं और इसलिए उससे उत्पन्न होनेवाले परिणामोंमें वृद्धि होती रहती है। मेरा विश्वास है कि सत्याग्रहका यह परिणाम अनिवार्य है। इसका कारण सत्याग्रहके मूल सिद्धान्तोंमें ही निहित है। सत्याग्रहमें अल्पतम ही अधिकतम होता है, अतः अल्पतममें से कुछ घटानेकी तो बात ही नही रहती। इस कारण उससे पीछे हटा ही नहीं जा सकता; तब स्वाभाविक क्रिया केवल वृद्धिकी ही हो सकती है। दूसरी लड़ाइया शुद्ध हों तो भी उनमें जो माग की जाती है उसमें कुछ कमी करनेकी गुजाइश पहलेसे ही रख ली जाती

है। इसलिए उन पर वृद्धिका नियम निरपवाद रूपसे लागू करनेमें मैंने शंका प्रकट की है। परन्तु यह समझाना बाकी रह जाता है कि जब अल्पतम अधिकतम भी होता है तब फिर वृद्धिका नियम सत्याग्रहकी लड़ाईको कैसे लागू हो सकता है। जैसे गंगा नदी वृद्धिको (सहायक नदियोंको) खोजनेमें अपनी गति नहीं छोड़ती वैसे ही सत्याग्रही भी वृद्धिकी खोजमें अपना तलवारकी धार जैसा रास्ता नहीं छोड़ता। परन्तु जैसे जैसे गंगा नदीका प्रवाह आगे बढ़ता जाता है वैसे वैसे अन्य नदियोंका प्रवाह अपने-आप उसमें मिलता जाता है; यही बात सत्याग्रह-रूपी गंगाके बारेमें भी सच है। 'इमिग्रेशन एक्ट' सत्याग्रहमें शामिल किया गया उसके बाद सत्याग्रहके सिद्धान्तोंको न जाननेवाले हिन्दुस्तानियोंने आग्रह किया कि ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध जितने भी कानून हैं उन सबको सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल कर लेना चाहिये। अन्य कुछ लोगोंने यह भी कहा कि ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंकी लड़ाई चल रही है तब तक नेटाल, केप कॉलोनी, ऑरेंज फ्री स्टेट आदिके सारे हिन्दुस्तानियोंको आमंत्रित करके दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध बनाये गये सभी कानूनोंके खिलाफ सत्याग्रह करना चाहिये। इन दोनों प्रस्तावोंमें सत्याग्रहके सिद्धान्तका भंग होता था। मैंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि सत्याग्रहके आरंभके समय हमने जो स्थिति खड़ी नहीं की, उसे अब मौका देखकर खड़ा करना ईमानदारी नहीं होगी। हमारी शक्ति कितनी ही बड़ी क्यों न हो, फिर भी जिस मांगके लिए सत्याग्रह आरंभ किया गया था उसके स्वीकृत होने पर सत्याग्रह बन्द होना ही चाहिये। यदि इस सिद्धान्त पर हम दृढ़ न रहे होते, तो मेरा पक्का विश्वास है कि जीतके बजाय हमारी हार ही होती; इतना ही नहीं, जो सहानुभूति हम प्राप्त कर सके थे उसे भी हम खो देते। इसके विपरीत, जब सत्याग्रह चल रहा हो उस बीच विरोधी यदि स्वयं ही नई कठिनाइयां पैदा करे, तो वे अपने-आप ही सत्याग्रहमें सम्मिलित हो जाती हैं। सत्याग्रही अपनी दिशामें आगे बढ़ रहा हो तब मार्गमें आ मिलनेवाली कठिनाइयोंकी, अपने सत्याग्रहका त्याग किये बिना, वह कभी उपेक्षा कर ही नहीं सकता। और विरोधी सत्याग्रही होता

नही (क्योंकि सत्याग्रहके विरुद्ध सत्याग्रह असंभव ही है), इसलिए उसे तो कम या अधिकका कोई बन्धन नही होता। वह कोई नई बातें खड़ी करके सत्याग्रहीको डराना चाहे तो डरा सकता है। परन्तु सत्याग्रही तो सब प्रकारके भयका त्याग कर देता है। इसलिए जब विरोधी नई कठिनाइया पैदा करता है तब उनके सामने भी वह सत्याग्रहका मत्रोच्चार करता है और मनमे यह श्रद्धा रखता है कि मार्गमे आनेवाली समस्त कठिनाइयोंको दूर करनेमे उसका मंत्रोच्चार अवश्य ही सफल होगा। इसीलिए सत्याग्रह जितना लम्बा चलता है—अर्थात् विरोधी उसे जितना लम्बा करता है—उतना विरोधीको स्वय उसकी दृष्टिसे तो नुकसान ही होता है और सत्याग्रहीको अधिक लाभ होता है। इस नियमकी प्रक्रियाके अन्य उदाहरण हम सत्याग्रहके इस इतिहासमें ही आगे देखेंगे।

५

सोराबजी शापुरजी अडाजणिया

अब जब 'इमिग्रेशन एक्ट'की बात भी सत्याग्रहकी लड़ाईमें सम्मिलित कर ली गई, तो शिक्षित हिन्दुस्तानियोंके ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेके अधिकारकी कसौटी भी सत्याग्रहियोंको ही करनी पड़ी। सत्याग्रह-समितिने यह निर्णय किया था कि चाहे जिस हिन्दुस्तानीके द्वारा यह कसौटी न कराई जाय। सोचा यह गया था कि 'इमिग्रेशन एक्ट' में प्रतिबन्धकी जो दूसरी शर्तें हैं और जिनसे हमारा कोई भी विरोध नहीं है, उन शर्तोंका पालन कर सकनेवाले किसी हिन्दुस्तानीको ट्रान्सवालमें दाखिल करके जेल-महलमें बैठा दिया जाय। ऐसा करके हमें यह सिद्ध करना था कि सत्याग्रह एक मर्यादा-धर्म है। 'इमिग्रेशन एक्ट' में एक धारा ऐसी थी कि ट्रान्सवालमें नये दाखिल होनेवाले आदमीको यूरोपकी किसी भी एक भाषाका ज्ञान होना चाहिये। इसलिए समिति किसी ऐसे हिन्दुस्तानीको ट्रान्सवालमें दाखिल करना चाहती थी, जिसे अंग्रेजी भाषाका

ज्ञान हो और जो पहले ट्रान्सवालमें न रह चुका हो। कुछ हिन्दुस्तानी नौजवानोंने इसके लिए समितिसे कहलवाया, परन्तु उनमें से सोराबजी शापुरजी अडाजणियाका प्रस्ताव ही कसौटीके केस (टेस्ट केस) के लिए स्वीकार किया गया।

पाठक नामसे ही समझ लेंगे कि सोराबजी पारसी थे। सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी आबादी सौसे ज्यादा नहीं रही होगी। पारसियोंके विषयमें जो मत मैंने हिन्दुस्तानमें व्यक्त किया है, वही मैं दक्षिण अफ्रीकामें भी रखता था। सारी दुनियामें एक लाखसे अधिक पारसी नहीं होंगे। इतनी छोटीसी जाति लम्बे समयसे अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करती आई है, अपने धर्म पर अडिग है और उदारतामें दुनियाकी एक भी जाति उसकी बराबरी नहीं कर सकती। इतनी ही बातें इस कौमकी उच्चताका प्रमाणपत्र हैं। लेकिन सोराबजी तो अनुभवसे शुद्ध रत्न सिद्ध हुए। जब वे सत्याग्रहकी लड़ाईमें शरीक हुए तब मुझे उनका बहुत थोड़ा परिचय था। लड़ाईमें शामिल होनेके बारेमें उन्होंने जो पत्र-व्यवहार किया था, उसकी मुझ पर अच्छी छाप पड़ी थी। जिस प्रकार मैं पारसियोंके गुणोंका पुजारी हूं, उसी प्रकार एक कौमके नाते उनके कुछ दोषोंसे भी मैं अनभिज्ञ नहीं था और नहीं हूं। इसलिए संकटके समय सोराबजी टिक सकेंगे या नहीं, इस विषयमें मुझे शंका थी। लेकिन जब सामनेवाला आदमी इसके खिलाफ बात कहता हो, तब अपनी शंकाको कोई महत्त्व न देनेका मेरा नियम था। इसलिए मैंने सत्याग्रह-समितिसे सिफारिश की कि सोराबजीने जो दृढ़ता अपने पत्रोंमें बताई है उसे स्वीकार कर लिया जाय। और अंतमें तो सोराबजी प्रथम कोटिके सत्याग्रही सिद्ध हुए। लम्बीसे लम्बी जेल भोगनेवाले सत्याग्रहियोंमें वे भी एक थे। इतना ही नहीं, उन्होंने कौमकी लड़ाईका इतना गहरा अध्ययन किया था कि वे लड़ाईके सम्बन्धमें जो भी बात कहते वह सबको सुननी पड़ती थी। उनकी सलाहमें सदा दृढ़ता, विवेक, उदारता, शांति आदिका दर्शन होता था। वे जल्दीमें कोई मत नहीं बनाते थे; और जब वे एक बार कोई मत बना लेते थे तो उसे छोड़ते नहीं थे। जिस हद तक उनमें पारसीपन था — और वह खूब ज्यादा था — उसी हद तक हि

स्तानीपन भी था। संकुचित जाति-अभिमानकी तो गंध भी उनमें नहीं थी। सत्याग्रहकी लड़ाई पूरी हो जानेके बाद अच्छे सत्याग्रहियोंमें से किसीको इंग्लैंड भेजकर बैरिस्टर बनानेके लिए डॉ० मेहताने एक छात्रवृत्ति दी थी। ऐसे आदमीका चुनाव मुझे ही करना था। दो-तीन सुयोग्य हिन्दुस्तानी ऐसे थे, जिन्हें इंग्लैंड भेजा जा सकता था। लेकिन सभी मित्रोंको लगा कि विचारोंकी प्रौढ़ता और समझदारीमें सोराबजीकी बराबरी दूसरा कोई नहीं कर सकता। इसलिए उन्हींका चुनाव हुआ। ऐसे एक हिन्दुस्तानीको चुननेके पीछे उद्देश्य यह था कि वह बैरिस्टर होकर दक्षिण अफ्रीका लौटने पर मेरा स्थान ग्रहण कर सके और कौमकी सेवा करे। कौमके लोगोंके आशीर्वाद और उनका सम्मान प्राप्त करके सोराबजी इंग्लैंड गये। बैरिस्टर बने। गोखलेसे उनका संपर्क दक्षिण अफ्रीकामें ही हो चुका था, लेकिन इंग्लैंडमें वे गोखलेके अधिक निकट पहुंच गये थे। उनका मन सोराबजीने हर लिया था। गोखलेने उनसे यह आग्रह भी किया था कि जब वे हिन्दुस्तान लौटें तब 'भारत सेवक समाज' (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी) में शरीक हो जायं। सोराबजी अपने साथके विद्यार्थियोंमें अत्यन्त प्रिय बन गये थे। वे प्रत्येक विद्यार्थीके दु:खमें भाग लेते थे। इंग्लैंडकी तड़क-भड़क और ऐश-आरामका उन पर कोई असर नहीं हुआ। सोराबजी इंग्लैंड गये तब उनकी उमर तीससे ऊपर थी। अंग्रेजीका उनका अध्ययन अधिक नहीं था। उनके व्याकरण वगैराके ज्ञानको जंग लग चुका था। लेकिन मनुष्यकी लगनके सामने ऐसी असुविधायें टिक नहीं सकतीं। शुद्ध विद्यार्थी-जीवन बिताकर सोराबजी अपनी परीक्षाओंमें पास होते गये। मेरे जमानेमें बैरिस्टरीकी परीक्षा तुलनामें सरल थी। आजके बैरिस्टरोंको उस समयके बैरिस्टरोंकी अपेक्षा बहुत अधिक अध्ययन करना होता है। परन्तु सोराबजीने हार नहीं मानी। इंग्लैंडमें जब 'एम्बुलेन्स कोर' की स्थापना हुई तब सोराबजी उसका आरंभ करनेवालोंमें से एक थे और अंत तक वे उसमें बने रहे। उस दलको भी सत्याग्रह करना पड़ा था। अनेक लोग उसमें पीछे हट गये थे। लेकिन जो लोग उसमें अडिग रहे, उनमें सबसे आगे सोराबजी थे। यहां मैं यह भी कह दूं कि उस एम्बुलेन्स दलके सत्याग्रहमें भी विजय ही मिली थी।

इंग्लैंडमें बैरिस्टर हो जानेके बाद सोराबजी जोहानिसबर्ग लौट आये। वहां उन्होंने कौमकी सेवा और वकालत दोनोंका आरंभ किया। दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो पत्र मिलते थे, उनमें सोराबजीकी प्रशंसा ही होती थी। उनमें लिखा होता था: "वे (सोराबजी) जैसे सादे पहले थे वैसे ही आज भी हैं। आडंबर तो उनमें नामको भी नहीं है। वे छोटे-बड़े सबके साथ घुलमिल जाते हैं।" लेकिन ईश्वर जितना दयालु मालूम होता है उतना ही वह निर्दय भी मालूम होता है। सोराबजीको तीव्र क्षयरोग (गैलपिंग थाइसिस) हो गया और कुछ ही महीनोंमें कौमका नया प्रेम संपादन करके उसे रोती छोड़ सोराबजी चले गये। इस प्रकार ईश्वरने थोड़े समयमें कौमसे दो पुरुष-रत्न छीन लिये — काछलिया सेठ और सोराबजी।

यदि चुनाव करना हो तो इन दोनोंमें मैं प्रथम पद किसे दूंगा? मैं चुनाव कर ही नहीं सकता। दोनों अपने अपने क्षेत्रमें अद्वितीय थे। काछलिया जितने शुद्ध मुसलमान थे उतने ही शुद्ध हिन्दुस्तानी थे; उसी प्रकार सोराबजी जितने शुद्ध पारसी थे उतने ही शुद्ध हिन्दुस्तानी थे।

ये सोराबजी पहले सरकारको नोटिस देकर कसौटीके खातिर ही ट्रान्सवालमें दाखिल हुए थे। सरकार इस कदमके लिए बिलकुल तैयार नहीं थी। इसलिए वह तुरन्त यह निर्णय नहीं कर सकी कि सोराबजीके साथ कैसा व्यवहार किया जाय। सोराबजीने खुले तौर पर ट्रान्सवालकी सीमाको लांघकर अंदर प्रवेश किया। परवानोंकी जांच करनेवाला सीमा-अधिकारी उन्हें जानता था। सोराबजीने उससे कहा: "मैं कसौटीके खातिर जान-बूझकर ट्रान्सवालमें प्रवेश कर रहा हूं। मेरी अंग्रेजीकी परीक्षा लेनी हो तो आप ले लें; और मुझे गिरफ्तार करना चाहें तो गिरफ्तार कर लें।" अधिकारीने उत्तर दिया: "आप अंग्रेजी जानते हैं, यह मुझे मालूम है। इसलिए परीक्षा लेनेका प्रश्न ही नहीं उठता। और आपको गिरफ्तार करनेका मुझे हुक्म नहीं है। इसलिए आप खुशीसे अंदर जा सकते हैं। आप जहां जायंगे वहां सरकार आपको गिरफ्तार करना चाहेगी तो कर लेगी।"

इस प्रकार हमारी आशाके विपरीत सोरावजी जोहानिसवर्ग तक पहुच गये। हम सबने हर्षसे उनका स्वागत किया। हममे से किसीने भी यह आशा नहीं रखी थी कि सरकार सोरावजीको ट्रान्सवालकी सीमाके स्टेशन वॉक्सरस्टसे जरा भी आगे वढ़ने देगी। अकसर ऐसा होता है कि जब हम अपने कदम सोच-विचार कर और निर्भयतासे तुरन्त उठाते है तब सरकार उनका विरोध करनेके लिए तैयार नही रहती। यह प्रत्येक सरकारका स्वभाव माना जा सकता है। और सामान्य आंदोलनोंमे सरकारका कोई भी अधिकारी अपने विभागको इस हद तक अपना नही बना लेता कि हर मामले पर अपने विचारोंको पहलेसे ही व्यवस्थित कर सके और उसका सामना करनेकी तैयारी रख सके। इसके सिवा, अधिकारीके पास एक नही परन्तु अनेक कार्य होते है। उन कार्योमें उसका ध्यान वंट जाता है। फिर, अधिकारीको सत्ताका मद होता है, इसलिए वह वेफिक्र रहता है और यह मानकर चलता है कि चाहे जैसे आन्दोलनसे निवटना सत्ताधारीके लिए वायें हाथका खेल है। इसके विपरीत, आन्दोलन चलानेवाला सार्वजनिक कार्यकर्ता अपने ध्येयको जानता हो, उसके साधनोंका उसे ज्ञान हो और अपनी योजनाके वारेमें निश्चित विचार रखता हो, तो वह पूरी तरह तैयार रहता है; और चूकि उसे एक ही कार्यका विचार रात-दिन करना होता है, इसलिए अगर वह प्रभावकारी ढंगसे सही कदम उठा सके तो सरकारसे सदा आगे ही आगे चलता है। अनेक आन्दोलन जो असफल सिद्ध होते हैं उसका कारण सरकारकी असाधारण सत्ता नही होती; उसका कारण होता है सचालकोंमें उपर्युक्त गुणोंका अभाव।

सक्षेपमें, सरकारकी असावधानीके कारण अथवा जान-बूझकर निश्चित की हुई योजनाके कारण सोराबजी जोहानिसवर्ग तक पहुंच सके थे; और सोरावजीके जैसे मामलेमें अधिकारीका क्या कर्तव्य है, इसकी कोई कल्पना या उस सम्बन्धमें ऊपरी अधिकारीकी कोई सूचनायें स्थानीय अधिकारीको नही थी। इस तरह सोरावजीके जोहानिसवर्ग तक पहुंच जानेसे कौमका उत्साह खूब बढ़ गया। कुछ नौजवानोंने तो यह माना कि सरकार हार गई है और वह कुछ ही समयमें कौमके साथ सम-

शौता कर लेगी। लेकिन इस युवक-मंडलने जल्दी ही देख लिया कि उनका ऐसा मानना गलत था; बल्कि उन्होंने यह भी समझ लिया कि ऐसा समझौता होनेसे पहले शायद बहुतसे नौजवानोंको अपना बलिदान देना पड़ेगा।

सोराबजीने अपने जोहानिसबर्ग आनेकी सूचना जोहानिसबर्गके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टको दे दी और उसमें बताया कि 'इमिग्रेशन एक्ट' के अनुसार वे अपनेको ट्रान्सवालमें रहनेका अधिकारी मानते हैं। इसके कारणमें उन्होंने अंग्रेजी भाषाके अपने सामान्य ज्ञानका उल्लेख किया और यदि अधिकारी अंग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहें तो परीक्षा देनेकी तैयारी बताई। इस पत्रका कोई उत्तर नहीं मिला; अथवा यों कहें कि इस पत्रके उत्तरमें सोराबजीको कुछ दिन बाद एक समन मिला।

८ जुलाई, १९०८को कोर्टमें उन पर मुकदमा चला। हिन्दुस्तानी दर्शकोंसे कोर्ट खचाखच भर गया। मुकदमा शुरू होनेसे पहले कोर्टके आंगनमें ही वहां आये हुए हिन्दुस्तानियोंको एकत्र करके एक सभा की गई। उस सभामें सोराबजीने वीरतापूर्ण भाषण दिया। भाषणमें उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि कौमकी जीत न हो तब तक जितनी बार जेल जाना पड़े उतनी बार जेल जानेको और बड़ेसे बड़े संकट झेलनेको मैं तैयार रहूंगा। इस बीच मैं सोराबजीसे अच्छी तरह परिचित हो गया था और समझ गया था कि सोराबजी निश्चित रूपसे शुद्ध रत्न सिद्ध होंगे। मुकदमा शुरू हुआ। मैंने वकीलके रूपमें सोराबजीका बचाव किया। समनमें जो थोड़े दोष थे उनकी ओर मैंने मजिस्ट्रेटका ध्यान खींचा और उनके आधार पर यह मांग की कि सोराबजीको जो समन दिया गया है वह रद कर दिया जाय। सरकारी वकीलने अपनी दलीलें पेश कीं। लेकिन ९ जुलाईको कोर्टने मेरी दलीलें स्वीकार करके समन रद कर दिया और सोराबजीको रिहा कर दिया! कौमके लोग हर्षसे पागल हो उठे।

परन्तु सोराबजीका यह छुटकारा स्थायी नहीं था। उन्हें तुरन्त ही दूसरे दिन — १० जुलाई, १९०८ को — कोर्टके सामने हाजिर होनेकी नोटिस मिली। १० जुलाईको मजिस्ट्रेटने सोराबजीको सात दिनके

भीतर ट्रान्सवाल छोड देनेका हुक्म दिया। कोर्टका हुक्म मिलनेके बाद सोराबजीने पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री वरनॉनको सूचना दी कि मेरी इच्छा ट्रान्सवाल छोड़नेकी नही है। इसलिए उन्हें एक बार फिर कोर्टमे लाया गया और २० जुलाईको यह अभियोग लगाकर कि उन्होंने मजिस्ट्रेटके हुक्मकी तामील नहीं की, उन्हें एक माहकी सख्त कैदकी सजा दी गई।

लेकिन स्थानीय हिन्दुस्तानियोंको सरकारने नही पकड़ा। सरकारने देख लिया था कि जितने अधिक लोगोंको वह पकड़ती है, उतना ही कौमका जोश और उत्साह अधिक बढ़ता है। इसके सिवा, कानूनकी किसी बारीकीके कारण जब हिन्दुस्तानी छूट जाते हैं, तो उसकी वजहसे भी कौममें जोश बढ़ जाता है। हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध सरकारको जो भी कानून पास करने थे उन्हें वह पास कर चुकी थी। बेशक, अनेक हिन्दुस्तानियोंने अपने परवाने जला दिये थे, लेकिन परवाने लेकर वे ट्रान्सवालमें रहनेका अपना अधिकार सिद्ध कर चुके थे। इसलिए उन्हें केवल जेल भेजनेके लिए ही उन पर मुकदमा चलानेमे सरकारने कोई लाभ नही देखा और यह सोचा कि यदि वह खामोश रहेगी तो आन्दोलनकारी आन्दोलन करनेका कोई मार्ग खुला न रहनेसे अपने-आप शान्त हो जायंगे। परन्तु सरकारका यह अनुमान गलत था। कौमने सरकारके धीरजकी थाह लेनेके लिए एक नया कदम उठाया, जिससे वह थाह मिल गई। सरकारका धीरज जल्दी ही खूट गया।

६

सेठ दाऊद मुहम्मद आदिका लड़ाईमें प्रवेश

कौमने जब देखा कि सरकार कोई भी कदम न उठाकर उसे थका देना चाहती है तब नये कदम उठाना उसके लिए अनिवार्य हो गया। सत्याग्रहीमें जब तक दुःख सहन करनेकी शक्ति होती है तब तक वह कभी नहीं थकता। इसलिए कौम सरकारकी धारणाको गलत सिद्ध करनेमें समर्थ थी।

नेटालमें ऐसे अनेक हिन्दुस्तानी थे, जिन्हें ट्रान्सवालमें बसनेके पुराने अधिकार थे। उन्हें व्यापारके लिए ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेकी जरूरत नहीं थी, लेकिन कौम यह मानती थी कि उन्हें ट्रान्सवालमें आनेका अधिकार है। इसके सिवा, उन्हें थोड़ा-बहुत अंग्रेजीका ज्ञान तो था ही। और, सोराबजीके जितनी शिक्षा पाये हुए हिन्दुस्तानियोंको भी ट्रान्सवालमें दाखिल करनेमें सत्याग्रहके नियमोंका कोई भंग नहीं होता था। इसलिए हमने दो प्रकारके हिन्दुस्तानियोंको ट्रान्सवालमें दाखिल करनेका निश्चय किया: एक, ऐसे हिन्दुस्तानी जो पहले ट्रान्सवालमें रह गये थे; दूसरे, वे हिन्दुस्तानी जिन्होंने खास तौर पर अंग्रेजीकी शिक्षा ली थी और इसलिए जो 'शिक्षित' कहे जाते थे।

इनमें से सेठ दाऊद मुहम्मद और पारसी रुस्तमजी बड़े व्यापारी थे और सुरेन्द्रराय मेढ, प्रागजी खंडुभाई देसाई, हरिलाल गांधी तथा रतनशी सोढा आदि 'शिक्षित' हिन्दुस्तानी थे। दाऊद सेठकी पत्नी गंभीर बीमारीकी शिकार थी, फिर भी वे लड़ाईमें शरीक हुए थे।

अब मैं सेठ दाऊद मुहम्मदका परिचय पाठकोंसे कराऊं। वे नेटाल इंडियन कांग्रेसके अध्यक्ष थे। दक्षिण अफ्रीकामें आये हुए हिन्दुस्तानी व्यापारियोंमें वे एक सबसे पुराने व्यापारी थे। वे सूरतकी सुन्नी जमातके वोहरा थे। ऐसे बहुत थोड़े हिन्दुस्तानी मैंने दक्षिण अफ्रीकामें देखे थे, जो चतुराईमें दाऊद सेठकी बराबरी कर सके। किसी बातको

समझनेकी उनमें सुन्दर शक्ति थी। उन्होंने बहुत थोड़ी शिक्षा पाई थी, लेकिन अनुभवसे वे अंग्रेजी और डच भाषा अच्छी तरह बोल लेते थे। वे अंग्रेज व्यापारियोंके साथ अपना कामकाज भलीभांति चला लेते थे। उनकी उदारता और दानशीलता प्रसिद्ध थी। रोज लगभग पचास मेहमान तो उनके यहा भोजन करते ही थे। कौमके कामके लिए एकत्र किये जानेवाले फडोंमे उनका नाम सदा प्रमुख दाताओंमें ही रहता था। उनका एक अमूल्य पुत्र था, जो चरित्रमें सेठसे कहीं ज्यादा बढ़ा-चढ़ा था। उसका हृदय स्फटिक मणिके समान था। अपने इस पुत्रके चरित्र-विकासमें दाऊद सेठने कभी बाधा नही डाली। यह कहनेमें अतिशयोक्ति नही कि सेठ अपने पुत्रकी पूजा करते थे। वे चाहते थे कि उनका एक भी दोप उनके पुत्र हसनमे न आये। उन्होंने हसनको इंग्लैंड भेजकर अच्छी शिक्षा दिलाई थी। लेकिन दाऊद सेठ उस पुत्ररत्नको भरी जवानीमें खो बैठे। हसनको क्षय रोगने घेर लिया और उसके प्राण हर लिये। यह घाव कभी भरा नहीं। हसनके साथ हिन्दुस्तानी कौमकी बड़ी बडी आशायें भी डूब गईं। हिन्दू और मुसलमान हसनकी दायी और बायी आख थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज तो दाऊद सेठ भी नही रहे। काल कब किसीको छोड़ता है?

पारसी रुस्तमजीका परिचय मैं करा चुका हूं। शिक्षित हिन्दुस्तानियोमे से अधिकतरको पाठक जानते हैं। मैं कोई साहित्य या सामग्री अपने पास रखे बिना ये प्रकरण लिख रहा हूं। इसलिए कई ऐसे मित्रोके नाम रह गये होंगे, जिन्होंने इस आन्दोलनमे भाग लिया था। इसके लिए वे मित्र मुझे क्षमा कर दें। ये प्रकरण नामोंको अमर बनानेके लिए नही लिखे जा रहे हैं; परन्तु सत्याग्रहका रहस्य समझानेके लिए और यह बतानेके लिए लिखे जा रहे हैं कि सत्याग्रहकी विजय कैसे हुई, उसमें कैसे कैसे विघ्न आये और उन विघ्नोंको किस प्रकार दूर किया गया। जहां जहा मैं नाम और नामधारियोंका परिचय देता हूं वहा भी मेरा उद्देश्य यही दिखाना है कि निरक्षर माने जानेवाले हिन्दुस्तानियोंने दक्षिण अफ्रीकामे कैसे कैसे पराक्रम कर दिखाये; वहा भी मैं पाठकोंको यही बताना चाहता हू कि कौमकी लड़ाईमें हिन्दू,

मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि कैसे एकसाथ मिल सके और कैसे हिन्दुस्तानी व्यापारियों, शिक्षितों आदिने अपना कर्तव्य पूरा किया। जहां जहा मैंने गुणोंका परिचय दिया है वहा वहा गुणोंका नही परन्तु केवल उनके गुणोंका ही मैंने स्तवन किया है।

इस प्रकार दाऊद सेठ जब अपनी सत्याग्रही फौजको लेकर ट्रान्सवालकी सीमा पर पहुचे उस समय सरकार उनका स्वागत करनेके लिए तैयार थी। इतने बड़े दलको यदि सरकार ट्रान्सवालमें प्रवेश करने देती तो उसकी हंसी होती। इसलिए उसे पकड़ना अनिवार्य था। सब लोग पकड़ लिये गये। १८ अगस्त, १९०८ को उन्हे कोर्टमें मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया गया। मजिस्ट्रेटने उन्हें सात दिनमें ट्रान्सवाल छोड़नेका हुक्म दिया। इस हुक्मका पालन सत्याग्रही दलने नही किया, इसलिए २८ अगस्तको उन्हें प्रिटोरियामें फिर पकड़ा गया और बिना मुकदमा चलाये ट्रान्सवालसे बाहर कर दिया गया। ३१ अगस्तको उन्होंने पुनः ट्रान्सवालमें प्रवेश किया। अन्तमें ८ सितम्बरको सरहदी शहर वॉक्सरस्टमें उन पर मुकदमा चला और उन्हे ५० पौंडके जुर्मानेका या ३ माहकी सख्त कैदकी सजा मिली। कहनेकी आवश्यकता नही कि सत्याग्रहियोंने खुशी खुशी जेल जाना ही पसंद किया और वे वॉक्सरस्टकी जेलमें दाखिल हुए।

इससे ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंका जोश खूब बढ़ा। नेटालसे हमारी सहायताके लिए आये हुए मित्रोंको यदि हम जेलसे छुड़ा न सकें, तो कमसे कम जेल जानेमें तो उनका साथ दें — यह सोचकर ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी भी जेलका मार्ग खोजने लगे। गिरफ्तार होनेके लिए उनके सामने कई रास्ते थे। अगर ट्रान्सवालमें रहनेवाला हिन्दुस्तानी अपना परवाना न दिखाये, तो उसे व्यापारका परवाना नही मिलता था। और व्यापारका परवाना लिये बिना यदि वह व्यापार करता, तो वह उसका अपराध माना जाता था। इसके सिवा, अगर किसी हिन्दुस्तानीको नेटालसे ट्रान्सवालकी सीमामें प्रवेश करना हो, तो उसे परवाना दिखाना होता था। और अगर वह परवाना न दिखाये, तो उसे गिरफ्तार किया जा सकता था। लेकिन परवाने तो पहले ही जलाये जा चुके थे। इसलिए उनके सामने रास्ता साफ था। उन्होंने दोनों पद्धतियां आजमाईं। कोई

बिना परवानेके फेरी लगाने लगे, तो कोई परवाने दिखाये बिना ट्रान्सवालकी सीमामें प्रवेश करने लगे। और दोनों ही प्रकारके लोग पकड़े जाने लगे।

अब आन्दोलन पूरे जोर पर था। प्रत्येक सत्याग्रहीकी कसौटी होने लगी। नेटालसे दूसरे हिन्दुस्तानी भी ट्रान्सवालमें आये। जोहानिसबर्गमें भी कई लोग गिरफ्तार किये गये। ऐसी स्थिति खड़ी हो गई कि जो हिन्दुस्तानी चाहे वही गिरफ्तार हो सकता था। जेलें भरने लगी। नेटालसे आये हुए लोगोंको तीन तीन मासकी जेल मिलती थी; ट्रान्सवालके फेरीवालोंको चार दिनसे लेकर तीन महीने तककी जेल मिलती थी।

इस तरह जिन लोगोंको जेलकी सजा मिली उनमें हमारे इमाम साहब — इमाम अब्दुल कादिर बावजीर — भी थे। वे बिना परवाने फेरी लगानेके कारण पकड़े गये थे और २१ जुलाई, १९०८ को उन्हें चार दिनकी सख्त कैदकी सजा मिली थी। उनका शरीर इतना नाजुक था कि जब उन्होंने जेल जानेकी इच्छा प्रकट की तो लोग हसने लगे। कुछ लोग आकर मुझसे कह जाते: "भाई, इमाम साहबको न लें तो अच्छा। वे कौमके नामको लजायेंगे।" मैंने उन लोगोंकी इस चेतावनीकी परवाह नही की। इमाम साहबकी शक्तिको आकनेवाला मैं कौन होता था? इमाम साहब कभी खुले पाव नही चलते थे। वे बड़े शौकीन थे। उनकी पत्नी मलायी थी। वे अपने घरको साज-सामानसे सजा-धजा रखते थे और घोड़ागाड़ी पर सवार हुए बिना कही जाते नही थे। यह सब सच था। परन्तु उनके मनको कौन जान सकता था? ऐसे इमाम साहब चार दिनकी सख्त जेल भोग कर छूटे। वे फिर जेल गये। जेलमें वे एक आदर्श कैदीके रूपमे रहते थे और कड़ी मेहनत करनेके बाद भोजन करते थे। उन्हें नित्य नई वानगिया खानेकी आदत थी, परन्तु जेलमें उन्होंने मक्केकी लपसी पीकर खुदाका एहसान माना। जेलजीवनसे उन्होंने कभी हार नहीं मानी। उससे उन्होंने सादगी ग्रहण की। कैदीके रूपमें उन्होंने जेलमें पत्थर फोड़े, झाड़ू लगाया और दूसरे कैदियोंकी पक्तिमें खड़े रहे। अतमे फिनिक्स आश्रममें उन्होंने कावरमें पानी भरा और प्रेसमें कपोज करनेकी कला भी सीखी। फिनिक्स

आश्रमके निवासियोंके लिए कंपोजकी कला सीखना लाजिमी था। यह कला इमाम साहबने यथाशक्ति सीख ली थी। आजकल वे हिन्दुस्तानमें रहकर सेवाकार्य कर रहे हैं।

परन्तु ऐसे तो अनेकों लोग जेलमें जाकर शुद्ध हो गये थे।

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर थे। कैम्ब्रिज युनिवर्सिटीके ग्रेज्युएट थे। नेटालमें गिरमिटिया माता-पिताके घर जन्मे थे, परन्तु पूरे साहब बन गये थे। वे तो घरमें भी बूटके बिना नहीं चलते थे। इमाम साहबको वजू करते समय पैर धोने पड़ते थे, नमाज खुले पांव रहकर पढ़नी होती थी। लेकिन बेचारे रॉयपेन तो इतना भी नहीं करते थे। ऐसे आदमीने बैरिस्टरीका त्याग करके सागभाजीकी टोकनी बगलमें रखी, बिना परवानेके फेरी लगाकर जेलमें गये और वहाके भारी कष्ट भोगे। "लेकिन क्या मुझे तीसरे दरजेमें रेलकी मुसाफिरी करनी होगी?" रॉयपेनने एक समय मुझसे पूछा। मैंने उत्तर दिया: "अगर आप पहले या दूसरे दरजेमें मुसाफिरी करें, तो तीसरे दरजेकी मुसाफिरी मैं किससे कराऊं? जेलमें आपको बैरिस्टरके रूपमे कौन पहचानेगा?" जोसेफ रॉयपेनके लिए इतना उत्तर काफी था।

सोलह सोलह वर्षके नौजवान तो कितने ही जेलमें जा पहुचे। मोहनलाल मानजी घेलानी नामक एक सत्याग्रही तो चौदह वर्षका ही था।

जेलमें अधिकारियोंने सत्याग्रही कैदियोंको दुःख देनेमें कोई कोशिश बाकी न रखी। उनसे पाखाने साफ कराये; कैदियोंने हंसते हंसते पाखाने साफ किये। कैदियोंसे पत्थर फुड़वाये; उन्होंने खुदा या रामका नाम ले लेकर पत्थर फोड़े। अधिकारियोने कैदियोसे तालाब खुदवाये, पथरीली जमीनें खुदवाईं, जिससे उनके हाथोमे घट्टे पड गये, कुछ तो असह्य कष्टसे मूर्च्छित भी हो गये; परन्तु उन्होंने हार नहीं मानी।

पाठकोंको यह नहीं मान लेना चाहिये कि जेलके भीतर कैदियोंमे परस्पर झगड़े-टटे नहीं होते थे या ईर्ष्या-द्वेष नहीं होता था। अधिक जोरके झगड़े खाने-पीनेके बारेमें होते थे, परन्तु हम उनमे से भी उबर गये।

मुझे भी दूसरी बार गिरफ्तार किया गया था। एक बार वॉक्सरस्टकी जेलमें हम लगभग ७५ सत्याग्रही कैदी इकट्ठे हो गये थे। अपना खाना हम खुद ही बनाते थे। मैं रसोइया बन गया था, क्योंकि खानेसे सम्बन्ध रखनेवाले झगडे केवल मैं ही निबटा सकता था। मेरे साथी प्रेमवश होकर मेरे हाथों बनी कच्ची-पक्की और बिना शक्करकी लपसी भी किसी शिकायतके बिना पी लेते थे।

सरकारने सोचा कि मुझे वह साथियोंसे अलग कर दे, तो मेरी भी थोड़ी कसौटी होगी और दूसरे सत्याग्रही कैदी भी हार जायगे। लेकिन ऐसा सुन्दर मौका उसे मिला नही। इसलिए मुझे प्रिटोरियाकी जेलमें ले जाया गया। वहा उत्पाती कैदियोंके लिए रखी हुई एक एकांत कोठरीमें मुझे बन्द कर दिया गया। केवल कसरतके लिए ही दिनमें दो बार मुझे बाहर निकाला जाता था। वॉक्सरस्टमें भोजनके साथ घी दिया जाता था; प्रिटोरियामें घी नही दिया जाता था। लेकिन इस जेलके छोटे-मोटे दु:खोंकी चर्चा मैं नही करना चाहता। जो लोग जानना चाहें वे दक्षिण अफ्रीकाकी जेलोंके मेरे अनुभव 'मेरे जेलके अनुभव' नामक पुस्तकमें पढ़ लें।

इन सब कष्टोंके बावजूद हिन्दुस्तानी हारे नही। सरकार गहरे विचारमें पड़ गई। आखिर कितने हिन्दुस्तानियोंको जेलमें भरा जाय? उससे खर्च कितना बढ़ेगा? इसलिए सरकार परिस्थितिका सामना करनेके लिए दूसरे साधनोंकी खोज करने लगी।

७

देश-निकाला

खूनी कानूनमें तीन प्रकारकी सजा देनेकी व्यवस्था थी: जुर्माना, कैद और देश-निकाला। ये तीनों सजायें एकसाथ देनेका भी कोर्टको अधिकार था। यह अधिकार छोटे मजिस्ट्रेटोंको भी दिया गया था। पहले-पहल देश-निकालेका अर्थ था ट्रान्सवालकी सीमासे बाहर नेटाल या फ्री स्टेटकी सीमामें अथवा डेलागोआ बे (पुर्तगाली पूर्व अफ्रीका) की सीमामें अपराधीको छोड़ आना। उदाहरणके लिए, नेटालकी ओरसे आनेवाले हिन्दुस्तानियोंको वॉक्सरस्ट स्टेशनकी सीमासे बाहर ले जाकर छोड़ दिया जाता था। इस तरहके देश-निकालेमें असुविधाके सिवा लोगोंको अन्य कोई कष्ट नहीं होता था। यह तो निरा मजाक था। इससे हिन्दुस्तानियोंका जोश उलटा अधिक बढ़ता था।

इसलिए हिन्दुस्तानियोंको परेशान करनेकी नई युक्तिया ट्रान्सवाल सरकारको खोजनी पड़ी। जेलोंमें तो जगह रह ही नहीं गई थी। इसलिए सरकारने सोचा कि यदि हिन्दुस्तानियोंको हिन्दुस्तान तकका देश-निकाला दिया जाय, तो वे जरूर घबरा कर हमारी शरणमें आ जायगे। सरकारकी इस धारणामें कुछ सत्य अवश्य था। उसने हिन्दुस्तानियोंके एक बड़े समूहको हिन्दुस्तान भेज दिया। उन लोगोंको मार्गमें बड़े बड़े कष्ट झेलने पड़े। खाने-पीनेकी बड़ीसे बड़ी असुविधा उठानी पड़ी। सरकारने जहाज पर जो भी व्यवस्था खानेकी की उसीसे उन्हें काम चलाना पड़ा। सबको उसने डेक पर ही भेजा था। इसके सिवा, उनमें से कुछ लोगोंकी दक्षिण अफ्रीकामें अपनी जमीनें थीं, दूसरी जायदाद भी थी। उनका अपना धन्धा था, बाल-बच्चे थे; कुछ लोगोंके सिर कर्ज भी था। शक्ति होते हुए भी इस तरह सब-कुछ खोनेके लिए — दिवालिया बननेके लिए — बहुत लोग तैयार नहीं हो सकते थे।

मुझे भी दूसरी बार गिरफ्तार किया गया था। एक बार वॉक्सरस्टकी जेलमें हम लगभग ७५ सत्याग्रही कैदी इकट्ठे हो गये थे। अपना खाना हम खुद ही बनाते थे। मैं रसोइया बन गया था, क्योंकि खानेसे सम्बन्ध रखनेवाले झगड़े केवल मैं ही निबटा सकता था। मेरे साथी प्रेमवश होकर मेरे हाथों बनी कच्ची-पक्की और बिना शक्करकी लपसी भी किसी शिकायतके बिना पी लेते थे।

सरकारने सोचा कि मुझे वह साथियोसे अलग कर दे, तो मेरी भी थोड़ी कसौटी होगी और दूसरे सत्याग्रही कैदी भी हार जायगे। लेकिन ऐसा सुन्दर मौका उसे मिला नही। इसलिए मुझे प्रिटोरियाकी जेलमें ले जाया गया। वहा उत्पाती कैदियोंके लिए रखी हुई एक एकात कोठरीमे मुझे बन्द कर दिया गया। केवल कसरतके लिए ही दिनमें दो बार मुझे बाहर निकाला जाता था। वॉक्सरस्टमें भोजनके साथ घी दिया जाता था; प्रिटोरियामें घी नही दिया जाता था। लेकिन इस जेलके छोटे-मोटे दु:खोंकी चर्चा मैं नही करना चाहता। जो लोग जानना चाहें वे दक्षिण अफ्रीकाकी जेलोंके मेरे अनुभव 'मेरे जेलके अनुभव' नामक पुस्तकमे पढ़ लें।

इन सब कष्टोंके बावजूद हिन्दुस्तानी हारे नही। सरकार गहरे विचारमें पड गई। आखिर कितने हिन्दुस्तानियोंको जेलमें भरा जाय? उससे खर्च कितना बढ़ेगा? इसलिए सरकार परिस्थितिका सामना करनेके लिए दूसरे साधनोंकी खोज करने लगी।

७

देश-निकाला

खूनी कानूनमें तीन प्रकारकी सजा देनेकी व्यवस्था थी : जुर्माना, कैद और देश-निकाला । ये तीनों सजायें एकसाथ देनेका भी कोर्टको अधिकार था । यह अधिकार छोटे मजिस्ट्रेटोंको भी दिया गया था । पहले-पहल देश-निकालेका अर्थ था ट्रान्सवालकी सीमासे बाहर नेटाल या फ्री स्टेटकी सीमामें अथवा डेलागोआ बे (पुर्तगाली पूर्व अफ्रीका) की सीमामे अपराधीको छोड़ आना । उदाहरणके लिए, नेटालकी ओरसे आनेवाले हिन्दुस्तानियोंको वॉक्सरस्ट स्टेशनकी सीमासे बाहर ले जाकर छोड़ दिया जाता था। इस तरहके देश-निकालेमें असुविधाके सिवा लोगोंको अन्य कोई कष्ट नहीं होता था। यह तो निरा मजाक था। इससे हिन्दुस्तानियोंका जोश उलटा अधिक बढ़ता था।

इसलिए हिन्दुस्तानियोको परेशान करनेकी नई युक्तिया ट्रान्सवाल सरकारको खोजनी पड़ी । जेलोंमे तो जगह रह ही नही गई थी । इसलिए सरकारने सोचा कि यदि हिन्दुस्तानियोंको हिन्दुस्तान तकका देश-निकाला दिया जाय, तो वे जरूर घबरा कर हमारी शरणमें आ जायंगे । सरकारकी इस धारणामे कुछ सत्य अवश्य था । उसने हिन्दुस्तानियोंके एक बड़े समूहको हिन्दुस्तान भेज दिया। उन लोगोंको मार्गमें बडे बड़े कष्ट झेलने पड़े । खाने-पीनेकी बडीसे बड़ी असुविधा उठानी पड़ी। सरकारने जहाज पर जो भी व्यवस्था खानेकी की उसीसे उन्हें काम चलाना पड़ा। सबको उसने डेक पर ही भेजा था। इसके सिवा, उनमे से कुछ लोगोंकी दक्षिण अफ्रीकामे अपनी जमीनें थी, दूसरी जायदाद भी थी। उनका अपना धन्धा था, बाल-बच्चे थे; कुछ लोगोके सिर कर्ज भी था। शक्ति होते हुए भी इस तरह सब-कुछ खोनेके लिए — दिवालिया बननेके लिए — बहुत लोग तैयार नही हो सकते थे।

मुझे भी दूसरी बार गिरफ्तार किया गया था। एक बार वॉक्सरस्टकी जेलमें हम लगभग ७५ सत्याग्रही कैदी इकट्ठे हो गये थे। अपना खाना हम खुद ही बनाते थे। मैं रसोइया बन गया था, क्योंकि खानेसे सम्बन्ध रखनेवाले झगड़े केवल मैं ही निवटा सकता था। मेरे साथी प्रेमवश होकर मेरे हाथों बनी कच्ची-पक्की और बिना शक्करकी लपसी भी किसी शिकायतके बिना पी लेते थे।

सरकारने सोचा कि मुझे वह साथियोंसे अलग कर दे, तो मेरी भी थोड़ी कसौटी होगी और दूसरे सत्याग्रही कैदी भी हार जायगे। लेकिन ऐसा सुन्दर मौका उसे मिला नही। इसलिए मुझे प्रिटोरियाकी जेलमें ले जाया गया। वहा उत्पाती कैदियोके लिए रखी हुई एक एकात कोठरीमे मुझे बन्द कर दिया गया। केवल कसरतके लिए ही दिनमें दो बार मुझे बाहर निकाला जाता था। वॉक्सरस्टमें भोजनके साथ घी दिया जाता था; प्रिटोरियामे घी नही दिया जाता था। लेकिन इस जेलके छोटे-मोटे दु:खोंकी चर्चा मैं नही करना चाहता। जो लोग जानना चाहें वे दक्षिण अफ्रीकाकी जेलोके मेरे अनुभव 'मेरे जेलके अनुभव' नामक पुस्तकमे पढ़ लें।

इन सब कष्टोके बावजूद हिन्दुस्तानी हारे नही। सरकार गहरे विचारमे पड़ गई। आखिर कितने हिन्दुस्तानियोंको जेलमे भरा जाय? उससे खर्च कितना बढ़ेगा? इसलिए सरकार परिस्थितिका सामना करनेके लिए दूसरे साधनोंकी खोज करने लगी।

७

देश-निकाला

खूनी कानूनमें तीन प्रकारकी सजा देनेकी व्यवस्था थी: जुर्माना, कैद और देश-निकाला। ये तीनों सजायें एकसाथ देनेका भी कोर्टको अधिकार था। यह अधिकार छोटे मजिस्ट्रेटोंको भी दिया गया था। पहले-पहल देश-निकालेका अर्थ था ट्रान्सवालकी सीमासे बाहर नेटाल या फ्री स्टेटकी सीमामें अथवा डेलागोआ वे (पुर्तगाली पूर्व अफ्रीका) की सीमामें अपराधीको छोड़ आना। उदाहरणके लिए, नेटालकी ओरसे आनेवाले हिन्दुस्तानियोंको वॉक्सरस्ट स्टेशनकी सीमासे बाहर ले जाकर छोड़ दिया जाता था। इस तरहके देश-निकालेमें असुविधाके सिवा लोगोंको अन्य कोई कष्ट नहीं होता था। यह तो निरा मजाक था। इससे हिन्दुस्तानियोंका जोश उलटा अधिक बढ़ता था।

इसलिए हिन्दुस्तानियोंको परेशान करनेकी नई युक्तियां ट्रान्सवाल सरकारको खोजनी पड़ीं। जेलोंमें तो जगह रह ही नहीं गई थी। इसलिए सरकारने सोचा कि यदि हिन्दुस्तानियोंको हिन्दुस्तान तकका देश-निकाला दिया जाय, तो वे जरूर घबरा कर हमारी शरणमें आ जायंगे। सरकारकी इस धारणामें कुछ सत्य अवश्य था। उसने हिन्दुस्तानियोंके एक बड़े समूहको हिन्दुस्तान भेज दिया। उन लोगोंको मार्गमें बड़े बड़े कष्ट झेलने पड़े। खाने-पीनेकी बड़ीसे बड़ी असुविधा उठानी पड़ी। सरकारने जहाज पर जो भी व्यवस्था खानेकी की उसीसे उन्हें काम चलाना पड़ा। सबको उसने डेक पर ही भेजा था। इसके सिवा, उनमें से कुछ लोगोंकी दक्षिण अफ्रीकामें अपनी जमीनें थीं, दूसरी जायदाद भी थी। उनका अपना धन्धा था, बाल-बच्चे थे; कुछ लोगोंके सिर कर्ज भी था। शक्ति होते हुए भी इस तरह सब-कुछ खोनेके लिए — दिवालिया बननेके लिए — बहुत लोग तैयार नहीं हो सकते थे।

इस सबके बावजूद अनेक हिन्दुस्तानी पूरी तरह दृढ़ और अडिग रहे। बहुतसे ढीले भी पड़ गये। जो लोग ढीले पड़ गये, वे जान-बूझकर गिरफ्तार होनेसे बचने लगे। इनमें से अधिकतर हिन्दुस्तानियोंने जलाये हुए परवानोंके स्थान पर दूसरे परवाने लेनेकी हद तक तो कमजोरी नही दिखाई। लेकिन कुछ दूसरोंने डरके मारे फिरसे परवाने ले लिये।

फिर भी जो लोग दृढ़ बने रहे, उनकी संख्या ध्यान खींचने जितनी तो थी ही। उनकी बहादुरीका कोई पार न था। मेरा विश्वास है कि उनमें से कुछ हिन्दुस्तानी तो हंसते हंसते फांसी पर चढ़ जानेको भी ताकत रखते थे। संपत्ति या जमीन-जायदादकी परवाह तो उन्होंने छोड़ ही दी थी।

परन्तु जिन लोगोंको हिन्दुस्तान भेज दिया गया, उनमें से अनेक गरीब और भोले थे। वे लोग केवल श्रद्धासे ही सत्याग्रहकी लड़ाईमें शरीक हुए थे। उन पर सरकार इतना भारी जुल्म करे, यह हमें असह्य मालूम हुआ। लेकिन उनकी मदद कैसे की जाय, यह भी समझमें नहीं आता था। पैसा तो हमारे पास बहुत थोडा था। ऐसी लड़ाईमें लड़नेवालोंको पैसेकी मदद देने जायं, तो लड़ाई हार जानेकी नौबत आ जाय। उसमें लालची आदमी घुस जायं। इसलिए पैसेके लोभसे तो एक भी आदमीको लड़ाईमें शामिल नही किया जाता था। हां, ऐसे लोगोंको सहानुभूतिकी मदद देना हम अपना धर्म मानते थे।

मैंने अनुभवसे देखा कि जो काम सहानुभूति, मीठे बोल और मीठी नजर कर सकती है, वह पैसा नही कर सकता। पैसेके लोभीको भी अगर पैसेके साथ हृदयकी सहानुभूति न मिले, तो अंतमें वह पैसा देनेवालेको छोड़ देता है। इसके विपरीत, प्रेमके वश बने हुए लोग प्रेम करनेवालेके साथ अनेकों संकट सहनेके लिए तैयार रहते हैं।

इसलिए हमने इन देश-निकालेकी सजा पाये हुए हिन्दुस्तानियोंके लिए प्रेम और सहानुभूतिकी भावनासे जो कुछ करना संभव हो करनेका निश्चय किया। हमने उन्हें आश्वासन दिया कि हिन्दुस्तानमें उनके लिए आवश्यक व्यवस्था की जायगी। पाठकोंको याद रखना चाहिये कि इन लोगोंमें अनेक तो गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी थे। उनके कोई सगे-सम्बन्धी

हिन्दुस्तानमें नहीं थे। कुछ लोग तो दक्षिण अफ्रीकामें ही पैदा हुए थे। सभीके लिए हिन्दुस्तान पराये देश जैसा तो था ही। ऐसे निराधार मानवोंको हिन्दुस्तानके किनारे उतार कर लाचार हालतमें छोड़ देना ट्रान्सवाल सरकारकी घोर क्रूरता और अमानुषिकता ही थी। इसलिए हमने उन्हें विश्वास दिलाया कि हिन्दुस्तानमें उनके लिए सारी व्यवस्था की जायगी।

यह सब करनेके बावजूद अगर उनके साथ कोई मददगार न भेजा जाता, तो उन्हें शान्ति नहीं मिल पाती। यह देश-निकाला पाये हुए हिन्दुस्तानियोंका पहला दल था। उनका जहाज कुछ ही घंटोंमें रवाना होनेवाला था। चुनाव करनेका हमारे पास समय नहीं था। अपने साथियोंमें से भाई पी० के० नायडू पर मेरी नजर गई। मैंने उनसे पूछा:

"आप इन गरीब भाइयोंको हिन्दुस्तान तक ले जायंगे?"

"क्यों नहीं?"

"लेकिन जहाज तो कुछ ही देरमें रवाना होनेवाला है।"

"भले ही रवाना हो।"

"लेकिन आपके कपडे-लत्तोंका क्या होगा? भोजनका क्या करेंगे?"

"कपड़े जो पहना हू वे काफी हैं। भोजन जहाज पर मिल जायगा।"

मेरे हर्ष और आश्चर्यका कोई पार न रहा। पारसी रुस्तमजीके मकान पर यह बात हुई थी। वहीं नायडूके लिए कपड़े, कम्बल वगैरा मांगकर उन्हें रवाना किया।

मैंने नायडूसे कहा: "देखना, रास्तेमें इन सब भाइयोंकी अच्छी तरह देखभाल करना। पहले इनके आरामका खयाल रखना, फिर अपने आरामका। मैं मद्रास श्री नटेसनको तार करता हूं। वे कहें वैसा करना।"

"मैं सच्चा सिपाही सिद्ध होनेका प्रयत्न करूंगा।" इतना कहकर नायडू रवाना हो गये। मैंने मनमें कहा, जहां ऐसे वीर पुरुष हों वहां कभी हार हो ही नहीं सकती। श्री नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रीकामें ही हुआ था। उन्होंने हिन्दुस्तान कभी देखा नहीं था। मैंने श्री नटेसनके लिए एक सिफारिशी पत्र नायडूको दिया था और उन्हें तार भी किया था।

उस समय हिन्दुस्तानमें प्रवासी हिन्दुस्तानियोंके दुःखोंका अध्ययन करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले और उनके बारेमें व्यवस्थित रूपमें ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले एकमात्र श्री नटेसन ही थे, ऐसा कहा जा सकता है। उनके साथ मेरा नियमित पत्र-व्यवहार चलता था। जब देश-निकालेकी सजा पाये हुए ये हिन्दुस्तानी मद्रास पहुंचे तब श्री नटेसनने उनकी पूरी मदद की। श्री नायडू जैसे योग्य पुरुषके साथ होनेसे श्री नटेसनको भी अपने इस काममें काफी मदद रही। उन्होंने मद्रासके लोगोंसे फंड इकट्ठा किया और दक्षिण अफ्रीकासे आये हुए हिन्दुस्तानियोंको यह अनुभव न होने दिया कि वे देश-निकालेकी सजा पाकर हिन्दुस्तान आये हैं।

ट्रान्सवाल सरकारका यह काम जितना निर्दयतापूर्ण था उतना ही गैर-कानूनी भी था। सरकार भी यह जानती थी। सामान्यतः लोगोंको इस बातका पता नहीं रहता कि उनकी सरकार जान-बूझकर अपने कानूनोंको तोड़ती रहती है। कोई संकट खड़ा होने पर नये कानून बनानेका समय नहीं रहता, इसलिए कानूनोंको तोड़ कर सरकार मनमाना काम कर लेती है, और बादमें या तो नये कानून पास करवा लेती है या ऐसा कुछ करती है कि जिससे जनता उसके द्वारा किये गये कानून-भंगको भूल जाय।

ट्रान्सवाल सरकारकी इस अराजकताके विरुद्ध हिन्दुस्तानियोंने जोरदार आन्दोलन किया। हिन्दुस्तानमें भी उसके विरुद्ध शोरगुल मचा। इसके परिणाम-स्वरूप सरकारके लिए ऐसी निर्दयताके साथ गरीब हिन्दुस्तानियोंको देश-निकालेकी सजा देना कठिन हो गया। हिन्दुस्तानियोंने सरकारकी इस नीतिके खिलाफ आवश्यक कानूनी कदम भी उठाये। उन्होंने देश-निकालेके खिलाफ जो अपीलें कीं, उनमें भी उनकी जीत हुई। अन्तमें हिन्दुस्तान तक हिन्दुस्तानियोंको देश-निकालेकी सजा देनेकी प्रथा तो बन्द हो गई।

लेकिन देश-निकालेकी इस सरकारी नीतिका असर सत्याग्रही फौज पर पड़े बिना न रहा। अब तो जो लोग उसमें रहे वे सच्चे लड़वैये ही रहे। 'कहीं सरकार हिन्दुस्तान भेज दे तो क्या होगा?'—इस भयका सब सैनिक त्याग नहीं कर सके।

कौमका जोश और उत्साह तोड़नेके लिए सरकारने ऊपरका एक ही कदम नही उठाया। पिछले प्रकरणमें मैं बता चुका हूं कि सत्याग्रही कैदियोंको दुःख देनेमें सरकारने कोई कोशिश बाकी न रखी। जेलमें उनसे पत्थर फोड़ने तकका काम कराया जाता था। लेकिन इतना पर्याप्त नही माना गया। पहले सब सत्याग्रही कैदियोंको साथमें रखा जाता था। अब सरकारने उन्हें अलग रखनेकी नीति अपनाई और हर जेलमें उन्हें अतिशय कष्ट दिये। ट्रान्सवालमें कड़ाकेकी सरदी पड़ती है। इतनी अधिक सरदीमें सवेरे काम करते करते कैदियोंके हाथ ठंडे होकर ठिठुर जाते थे। इसलिए सरदीका मौसम कैदियोंके लिए बड़ा दुःखदायी सिद्ध होता था। ऐसी स्थितिमें कुछ कैदियोंको एक छोटीसी जेलमें रखा गया, जहां कोई उनसे मिलने भी नहीं जा सकता था। इस दलमें स्वामी नागप्पन नामका एक १८ वर्षका नौजवान सत्याग्रही था। उसने जेलके नियमोंका पूरा पालन किया और जितना काम उसे सौंपा जाता था उतना मन लगाकर किया। बड़े सवेरे उसे सड़कों पर मिट्टी वगैरा डालनेके लिए ले जाया जाता था। इससे उसे डबल निमोनियाका रोग हो गया और अंतमें जेलसे छूटनेके बाद ७ जुलाई, १९०९ को उसने अपने प्रिय प्राणोंकी बलि दे दी। नागप्पनके साथी कहते हैं कि जीवनके अंतिम क्षण तक उसने सत्याग्रहकी लड़ाईका ही स्तवन किया। जेल जानेका उसे कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। देशके खातिर प्राप्त हुई मृत्युका उसने मित्रके समान आलिंगन किया। हम अपने पैमानेसे नापें तो नागप्पन निरक्षर माना जायगा। वह जूलू और अंग्रेजी भाषा अनुभवसे बोल लेता था। शायद टूटी-फूटी अंग्रेजी वह लिख भी लेता हो, परन्तु उसे विद्वानोंकी पंक्तिमें नही रखा जा सकता था। फिर भी यदि हम नागप्पनके धैर्य, उसकी शांति, उसकी देशभक्ति और मृत्यु पर्यन्त बनी रही उसकी दृढ़ताका विचार करें, तो उसके विषयमें अधिक क्या चाहने लायक रह जाता है? बड़े बड़े विद्वान कौमकी लड़ाईमें शरीक न हुए तो भी ट्रान्सवालकी लड़ाई चल सकी। लेकिन अगर नागप्पन जैसे सैनिक न मिले होते, तो क्या वह लड़ाई चल सकती थी?

जिस प्रकार नागप्पनकी मृत्यु जेलके दुःखोंसे हुई उसी प्रकार देश-निकालेकी कठिनाइया नारायण स्वामीके लिए मृत्युरूप सिद्ध हुई (१६ अक्तूबर, १९१०)। इन घटनाओंसे कौम हारी नही — वह दृढ़ बनी रही; केवल कमजोर लोग ही लडाईसे हट गये। पर इन कमजोर लोगोंने भी यथाशक्ति कुरबानी की थी। इसलिए कमजोर समझ कर हम उनकी अवगणना न करे। ऐसा रिवाज हो गया है कि जो लोग आगे बढ़ जाते हैं वे पीछे रहनेवालोका तिरस्कार करते हैं और अपनेको बहुत बहादुर मानते हैं। परन्तु सत्य अक्सर इससे उलटा होता है। जिसमें ५० रुपये देनेकी शक्ति है वह यदि २५ रुपये देकर बैठ जाय और ५ रुपये देनेकी शक्तिवाला पूरे ५ रुपये दे दे, तो हम यही समझेंगे कि ५ रुपये देनेवाले आदमीने अधिक दिया है। फिर भी २५ रुपये देनेवाला आदमी ५ रुपये देनेवालेके सामने अकसर घमड दिखाता है। लेकिन हम समझते हैं कि उसके लिए घमंड करनेका कोई भी कारण नही है। इसी प्रकार अपनी कमजोरीके कारण आगे नही चल सकनेवाला आदमी यदि अपनी सारी शक्ति खर्च कर चुका हो, तो मनमें चोरी रखनेवाला व्यक्ति मात्राकी दृष्टिसे भले ही अधिक शक्ति खर्च करता हो, फिर भी वस्तुतः उसकी अपेक्षा अपनी सपूर्ण शक्ति खर्च कर डालनेवाला व्यक्ति अधिक योग्य है। इसलिए जो लोग लड़ाईके उग्र रूप धारण करने पर उससे हट गये, उन्होने भी देशसेवा तो की ही। अब ऐसा समय आ गया था जब अधिक सहन-शक्ति और अधिक साहसकी आवश्यकता थी। इसमें भी ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी पीछे न हटे। लड़ाई चलानेके लिए जितनोंकी आवश्यकता थी उतने लोग तो बहादुरीसे मोर्चे पर डटे ही रहे।

इस प्रकार हिन्दुस्तानियोंकी कसौटी दिनोदिन तीव्रसे तीव्रतर होती चली गई। कौमके लोग जितना अधिक बल दिखाने लगे, सरकार उतना ही अधिक हिंसक रूप धारण करने लगी। उत्पाती कैदियोंके लिए अथवा जिन्हें सरकार खास तौर पर झुकाना चाहती है ऐसे कैदियोंके लिए हर देशमें हमेशा कुछ खास जेलें रखी जाती हैं। यह बात ट्रान्सवालको भी लागू होती थी। ऐसी एक जेलका नाम था 'डायक्लुफ'। वहाका जेलर भी सख्त था और वहा कैदियोंसे कराया

जानेवाला काम भी सख्त था। परन्तु वहा ऐसे हिन्दुस्तानी कैदी थे,
जिन्होंने इतने सख्त कामको भी सफलतापूर्वक पूरा कर दिखाया। वे
कड़ी मेहनत करनेको तैयार थे, परन्तु जेलर द्वारा किये जानेवाले अप-
मानको बरदाश्त करनेके लिए तैयार नही थे। जेलरने उनका अपमान
किया, इसलिए जेलमें कैदियोंने उपवास शुरू कर दिया। उनकी शर्त इस
प्रकार थी. "जब तक आप (सरकार) इस जेलरको यहांसे नही हटाते
या हमारी जेल नही बदलते तब तक हम खाना नही खायेंगे।" यह उप-
वास शुद्ध था। उपवास करनेवाले कैदी छिपे छिपे कुछ खा लें, ऐसे नही
थे। पाठकोंको जानना चाहिये कि ऐसे मामलेमें जो ऊहापोह अथवा सार्व-
जनिक आन्दोलन यहा भारतमें हो सकता है, उसके लिए ट्रान्सवालमें
बहुत गुंजाइश नही थी। इसके सिवा, वहाके नियम भी कठोर थे। ऐसे
अवसरों पर भी वहा कैदियोंसे मिलने जानेका रिवाज नहीं था। सत्या-
ग्रही एक बार जेलमें गया कि बादमें तो प्रायः उसे ही अपनी सभाल
रखनी पड़ती थी। सत्याग्रहकी लड़ाई गरीबोंकी लड़ाई थी और गरीबीसे
ही लड़ी जाती थी। इसलिए कैदियोंकी ऐसी प्रतिज्ञाके साथ भारी खतरा
जुड़ा हुआ था। फिर भी सत्याग्रही दृढ रहे। उस समयका उनका यह
कार्य आजसे अधिक प्रशसनीय माना जायगा, क्योंकि उस समय लोग ऐसे
उपवासोंके आदी नहीं हो पाये थे। परन्तु सत्याग्रही अपनी प्रतिज्ञा पर
डटे रहे और अतमे उन्हे सफलता मिली। सात दिनके उपवासके बाद
उन्हे दूसरी जेलमे भेजनेका हुक्म निकला।

८

दूसरा प्रतिनिधि-मंडल

इस प्रकार सरकार हिन्दुस्तानी सत्याग्रहियोंको जेलमें भेजती रही और देश-निकालेकी सजा भी देती रही। इसमें उतार-चढ़ाव आता रहता था। दोनों पक्ष कुछ हद तक शिथिल भी पड़ गये थे। सरकारने देखा कि जेलमें बन्द करनेसे वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाले हिन्दुस्तानी सत्याग्रहियोंको हरा नहीं सकती और उन्हें देश-निकालेकी सजा देनेसे सरकारकी अवगणना होती है। अदालतोंमें जानेवाले कुछ मामलोंमें सरकारकी हार भी होती थी। हिन्दुस्तानी भी उग्रतासे सरकारका सामना करनेको तैयार नहीं थे। इतनी बड़ी संख्यामें अब सत्याग्रही रह भी नहीं गये थे। कुछ लोग कायर बन गये थे; लड़ते लड़ते थक गये थे। कुछ बिलकुल हार गये थे और सत्याग्रह पर दृढ़ रहनेवालोंको 'मूर्ख' समझते थे। और 'मूर्ख' अपनेको बुद्धिमान समझ कर ईश्वर पर, लड़ाई-की सत्यता पर और अपने साधनोंकी सत्यता पर संपूर्ण श्रद्धा रखते थे। उनका विश्वास था कि अंतमें सत्यकी ही विजय होगी।

इस बीच दक्षिण अफ्रीकाकी राजनीति तो एक क्षणके लिए भी रुकी नहीं थी — वह निरन्तर गतिशील बनी रही थी। बोअर और अंग्रेज लोग दक्षिण अफ्रीकाके सब उपनिवेशोंको एकत्र करके अधिक स्वतंत्रता चाहते थे। जनरल हर्टज़ोग ब्रिटेनके साथ बिलकुल सम्बन्ध तोड़ देना चाहते थे। दूसरे लोग ब्रिटिश साम्राज्यके साथ नामका सम्बन्ध बनाये रखना चाहते थे। अंग्रेज इसे कभी बरदाश्त नहीं कर सकते थे कि ब्रिटिश साम्राज्यके साथ संपूर्ण रूपसे सम्बन्ध तोड़ दिया जाय; और जो कुछ बोअरों और अंग्रेजोंको प्राप्त करना था वह ब्रिटिश पार्लियामेंटके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था। इसलिए दोनोंने यह निश्चय किया कि ब्रिटिश मंत्रि-मंडलके समक्ष दक्षिण अफ्रीकाका मामला पेश करनेके लिए एक प्रतिनिधि-मंडल इंग्लैंड भेजा जाय।

दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंने देखा कि यदि सारे उपनिवेशोंका एक यूनियन (संघ) बन गया, तो उनकी स्थिति जैसी है उससे अधिक बुरी हो जायगी। सभी उपनिवेश हिन्दुस्तानियोंको सदा अधिकाधिक दबानेकी इच्छा रखते थे। अतः यह बात स्पष्ट थी कि सारे हिन्दुस्तानी-विरोधी उपनिवेश अधिक एकत्र हो जाते, तो हिन्दुस्तानी लोगोंको अधिक दबाया जाता। हिन्दुस्तानियोंकी आवाज नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज जैसी थी। फिर भी यह सोचकर कि एक भी प्रयत्न बाकी नहीं रहना चाहिये, इस समय हिन्दुस्तानियोंका एक प्रतिनिधि-मंडल फिरसे इंग्लैंड भेजनेका कौमने निश्चय किया। इस बार प्रतिनिधि-मंडलमें मेरे साथ पोरबन्दरके मेमन सेठ हाजी हबीबकी नियुक्ति की गई थी। ट्रान्सवालमें उनका बहुत पुराने समयसे व्यापार चल रहा था। उनका अनुभव बड़ा व्यापक था। उन्होंने अंग्रेजीकी शिक्षा नहीं पाई थी, फिर भी वे अंग्रेजी, डच, जूलू वगैरा भाषायें आसानीसे समझ लेते थे। सत्याग्रहियोंके प्रति उनकी सहानुभूति थी, परन्तु उन्हें संपूर्ण सत्याग्रही नहीं कहा जा सकता था। हम दोनों मित्र केप टाउनसे २३ जून, १९०९ को जिस जहाज (केनिल-वर्थ कैसल) में रवाना हुए, उसमें दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्री मेरीमैन भी थे। वे दक्षिण अफ्रीकाके उपनिवेशोंको जोड़कर एक करानेके उद्देश्यसे जा रहे थे। जनरल स्मट्स और दूसरे लोग पहलेसे ही इंग्लैंड पहुंच गये थे। नेटालके हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे एक अलग प्रतिनिधि-मंडल भी इस बार इंग्लैंड गया था। वह सत्याग्रहके सम्बन्धमें नहीं परन्तु नेटालके हिन्दुस्तानियोंकी विशेष कठिनाइयोंके सम्बन्धमें गया था।

उस समय लॉर्ड क्रू उपनिवेश-मंत्री थे और लॉर्ड मोर्ले भारत-मंत्री थे। उनसे हमारी खूब चर्चायें हुईं। हम दोनों अनेक लोगोंसे मिले। ऐसा एक भी संपादक अथवा लोकसभा और लॉर्डसभाका ऐसा एक भी सदस्य नहीं था, जिससे मिलना संभव होने पर भी हम न मिले हों। ऐसा कहा जा सकता है कि लॉर्ड एम्प्टहिलकी मददका कोई पार न था। वे महोदय श्री मेरीमैन, जनरल बोथा आदिसे मिला करते थे। अंतमें वे जनरल बोथाका एक सन्देश हमारे लिए लाये। उन्होंने हमसे कहा: "जनरल बोथा आपकी भावनाओंको समझते हैं। वे आपकी छोटी मांगें

स्वीकार करनेको तैयार हैं, परन्तु एशियाटिक एक्टको रद करने और दक्षिण अफ्रीकामें नये आनेवालों पर प्रतिबन्ध लगानेवाले कानूनमें परिवर्तन करनेके लिए वे तैयार नहीं हैं। कानूनमें काले-गोरेका जो भेद है, उसे आप दूर कराना चाहते हैं; परन्तु इस भेदको दूर करनेके लिए भी वे तैयार नहीं हैं। इस रंगभेदको जनरल बोथा सिद्धान्तकी वस्तु मानते हैं। और यदि उन्हें यह भेद दूर करने जैसा लगे, तो भी इस बातको दक्षिण अफ्रीकाके गोरे कभी बरदाश्त नहीं करेंगे। जनरल स्मट्सका मत भी जनरल बोथाके जैसा ही है। वे दोनों कहते हैं कि यह उनका अंतिम निर्णय है और अंतिम प्रस्ताव है। इससे अधिककी मांग आप करेंगे, तो आप दुःखी होंगे और आपकी कौम भी दुःखी होगी। इसलिए आप जो भी निर्णय करें वह सोच-समझ कर करें। जनरल बोथाने यह बात आपसे कहने और आपकी जिम्मेदारीका चित्र आपके सामने प्रस्तुत करनेके लिए मुझे आपके पास भेजा है।"

यह संदेश हमें सुनाकर लॉर्ड एम्प्टहिल बोले: "देखिये, जनरल बोथा आपकी सारी व्यावहारिक मांगें स्वीकार करते हैं। और इस दुनियामें हमें किसी बातमें देना और किसी बातमें लेना तो पड़ता ही है। हम जो कुछ चाहते हैं वह सब हमें नहीं मिल सकता। इसलिए अब आपको मेरी यह आग्रहपूर्ण सलाह है कि आप इस प्रस्तावको स्वीकार कर लें। सिद्धान्तके लिए आपको सरकारसे लड़ना हो, तो आप भविष्यमें लड़ सकते हैं। पहले आप दोनों इस बात पर अच्छी तरह सोच लें और फिर सुविधासे अपना उत्तर मुझे दें।"

यह सुनकर मैंने सेठ हाजी हबीबकी ओर देखा। वे बोले: "मेरी ओरसे आप इनसे कहिये कि मैं समझौता-पक्षकी ओरसे जनरल बोथाका प्रस्ताव स्वीकार करता हूं। अगर इतना वे हमें दे दें तो अभी हम संतोष मानेंगे और सिद्धान्तके लिए बादमें लड़ेंगे। अब कौम ज्यादा बरबाद हो, यह मुझे पसन्द नहीं। जिस पक्षकी ओरसे मैं बोल रहा हूं उस पक्षकी संख्या भी ज्यादा है और उसके पास पैसा भी ज्यादा है।"

मैंने सेठ हबीबके वाक्योंका अक्षरशः अनुवाद करके लॉर्ड एम्प्टहिलको सुना दिया। फिर मैंने सत्याग्रहियोंकी ओरसे उनसे कहा: "आपने जो

कष्ट किया उसके लिए हम दोनों आपके हृदयसे आभारी हैं। मेरे साथीने जो बात कही वह सच है। वे संख्यामें और पैसेमें अधिक बलवान पक्षकी ओरसे बोल रहे हैं। मैं जिन लोगोंकी ओरसे बोल रहा हूं, वे तुलनामें गरीब हैं और संख्यामें कम हैं। लेकिन वे प्राणोंकी बाजी लगानेवाले लोग हैं। उनकी लड़ाई व्यवहार और सिद्धान्त दोनोंके लिए है। यदि दोनोंमें से किसी एकको छोड़ना ही पड़े, तो वे व्यवहारको छोड़ कर सिद्धान्तके लिए लड़ेंगे। जनरल बोथाकी शक्तिसे हम लोग परिचित हैं। परन्तु अपनी प्रतिज्ञाको हम उससे अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। अतः प्रतिज्ञाके पालनके लिए हम बरबाद होनेको तैयार हैं। हम धीरज रखेंगे। हमारा विश्वास है कि यदि हम अपने निश्चय पर डटे रहेंगे, तो जिस ईश्वरके नाम पर हमने यह प्रतिज्ञा ली है वह उसे अवश्य पूरी करेगा।

"आपकी स्थितिको मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं। आपने हमारे लिए बहुत कुछ किया है। अब यदि आप हम मुट्ठीभर सत्याग्रहियोंका ज्यादा साथ न दे सकें, तो हम आपको गलत नहीं समझेंगे। और उसकी वजहसे आपके उपकारोंको भी हम नहीं भूलेंगे। हम आशा करते हैं कि आपकी सलाहको माननेमें हम असमर्थ हैं, इसके लिए आप हमें क्षमा करेंगे। जनरल बोथाको आप हम दोनोंकी बात अवश्य कह सुनायें और उनसे कहें कि हम सत्याग्रही संख्यामें यद्यपि कम हैं, फिर भी हम हर हालतमें अपनी प्रतिज्ञाका पालन करेंगे और यह आशा रखेंगे कि हमारी दुःख सहन करनेकी शक्ति अंतमें उनके हृदयको भी पिघला देगी और वे एशियाटिक एक्ट रद कर देंगे।"

लॉर्ड एम्टहिलने उत्तरमें कहा :

"आप ऐसा न समझें कि मैं आप लोगोंको छोड़ दूंगा। मुझे भी अपनी सज्जनताकी रक्षा तो करनी ही चाहिये। अंग्रेज जिस कामको हाथमें लेते हैं, उसे एकाएक छोड़ते नहीं। आपकी लड़ाई शुद्ध और उचित है। आप लोग शुद्ध साधनोंसे लड़ते हैं। मैं आपको कैसे छोड़ सकता हूं? लेकिन मेरी स्थितिको आप समझ सकते हैं। दुःख तो आपको ही भोगना है। इसलिए आजकी परिस्थितियोंमें यदि कोई समझौता हो सके, तो उसे स्वीकार करनेकी आपको सलाह देना मेरा धर्म माना जायगा। परन्तु

आप, जो दुःख सहन करनेवाले हैं, अपनी टेकके लिए बड़ेसे बड़ा दुःख सहनेको तैयार हों, तो मैं आपको क्यों रोकूं? मैं तो इसके लिए आपको बधाई ही दूंगा। इसलिए आपकी कमेटीका अध्यक्ष तो मैं रहूंगा ही और यथाशक्ति आपकी सहायता भी अवश्य करता रहूंगा। लेकिन इतना आपको जरूर याद रखना चाहिये कि मैं लॉर्डसभाका एक जूनियर सदस्य ही हूं। मेरा प्रभाव बहुत नहीं माना जा सकता। फिर भी इस बारेमें आप कोई शंका न रखिये कि जो कुछ मेरा प्रभाव है उसका उपयोग मैं आपके लिए करता ही रहूंगा।"

प्रोत्साहनके ये वचन सुनकर हम दोनों प्रसन्न हुए।

इस बातचीतमें रही एक मधुर वस्तुको शायद पाठक नहीं देख पाये होंगे। जैसा कि मैंने ऊपर बताया है, मेरे और सेठ हाजी हबीबके बीच मतभेद था, फिर भी हम दोनोंके बीच इतने मीठे सम्बन्ध थे और दोनोंका एक-दूसरे पर इतना विश्वास था कि सेठ हाजी हबीबने अपनी विरोधी बात मेरे द्वारा ही लॉर्ड एम्प्टहिलसे कहलवानेमें कोई हिचकिचाहट अनुभव नहीं की। वे मुझ पर इतना विश्वास रख सकते थे कि उनका केस मैं लॉर्ड एम्प्टहिलके सामने सही रूपमें ही प्रस्तुत करूंगा।

यहां पाठकोंसे मैं एक अप्रस्तुत बात भी कह दूं। इंग्लैंडके अपने निवास-कालमें अनेक भारतीय अराजकतावादियोंके साथ मेरी बातें हुई थीं। उन सबके तर्कोंका खण्डन करने तथा दक्षिण अफ्रीकामें अराजकतावादी विचारधारा रखनेवाले हिन्दुस्तानियोंका समाधान करनेकी आवश्यकतासे मेरी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य'का जन्म हुआ था। यह पुस्तक नवम्बर १९०९ में 'किलडोनन कैसल' नामक जहाज पर इंग्लैंडसे दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए लिखी गई थी और उसके बाद तुरन्त 'इंडियन ओपीनियन'में छपी थी। इस पुस्तकके मुख्य सिद्धान्तोंकी चर्चा मैंने लॉर्ड एम्प्टहिलके साथ भी की थी। इसमें मेरा आशय यही था कि उन्हें एक क्षणके लिए भी ऐसा न लगे कि मैंने अपने विचारोंको दबाकर उनके नाम और उनकी सहायताका दक्षिण अफ्रीकाके अपने कार्यके लिए दुरुपयोग किया। इस सम्बन्धमें उनके साथ मेरी जो चर्चा हुई, वह मुझे सदा याद रही है। उनके परिवारमें बीमारी थी, फिर भी वे मुझसे मिले थे; और

यद्यपि 'हिन्द स्वराज्य' में व्यक्त किये गये मेरे विचारोंसे वे सहमत नहीं थे, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाकी हमारी लडाईका उन्होंने अंत तक पूरा समर्थन किया और उनके साथ मेरा सदा मीठा सम्बन्ध बना रहा।

९

टॉल्स्टॉय फार्म – १

इस बार जो प्रतिनिधि-मण्डल इंग्लैण्डसे दक्षिण अफ्रीका लौटा, वह अच्छे समाचार नहीं लाया था। कौमके लोग लॉर्ड एम्प्टहिलकी कही हुई बातोंका क्या अर्थ लगायेंगे, इसकी मुझे अधिक चिन्ता नहीं थी। मेरे साथ सत्याग्रहकी लड़ाईमें अंत तक कौन खड़ा रहेगा, यह मैं जानता था। अब सत्याग्रहके विषयमें मेरे विचार अधिक परिपक्व हो गये थे। सत्याग्रहकी व्यापकता और अलौकिकताको मैं अधिक समझ सका था, इसलिए मैं शांत था। इंग्लैंडसे लौटते समय मैंने जहाज पर 'हिन्द स्वराज्य' लिखा था। उसका उद्देश्य केवल सत्याग्रहकी भव्यता दिखाना था। वह पुस्तक सत्याग्रहकी सफलतामें निहित मेरी श्रद्धाका सच्चा मापदंड है। इसलिए लड़नेवाले सत्याग्रहियोंकी संख्याका मेरी नजरमें कोई भी महत्त्व नहीं था।

परन्तु लड़ाईके सम्बन्धमें पैसेकी चिन्ता मुझे सताती थी। पैसेके अभावमें लम्बे समय तक लड़ाईको चलाना मेरे लिए बड़े दुःखका विषय हो गया। पैसेके बिना कोई युद्ध लड़ाई चल सकती है, पैसा प्रायः सत्यकी लड़ाईको दूषित बना देता है और ईश्वर सत्याग्रहीको — मुमुक्षुको — आवश्यकतासे अधिक साधन कभी देता ही नहीं, यह बात मैं उस समय इतनी स्पष्ट नहीं समझता था जितनी आज समझता हूं। परन्तु मैं आस्तिक मनुष्य हूं। ईश्वरने उस समय भी मेरा साथ दिया, मेरा संकट दूर किया। एक ओर मुझे दक्षिण अफ्रीकाके किनारे उतर कर कौमके लोगोंको असफलताकी खबर सुनानी थी, तो दूसरी ओर ईश्वरने मेरा आर्थिक संकट दूर कर दिया था। केप टाउन पर उतरते ही मुझे इंग्लैण्डसे तार मिला कि

सर रतन टाटाने सत्याग्रहके फंडमें रु० २५००० का दान दिया है। इतनी रकम उस समयकी जरूरतोंके लिए काफी थी। हमारा काम आगे बढ़ा।

परन्तु इतने धनसे अथवा अधिकसे अधिक धनसे भी सत्याग्रहकी—सत्यकी, आत्मशुद्धिकी, आत्मबलकी लड़ाई नही चल सकती। ऐसी लडाईके लिए चरित्रकी पूंजी आवश्यक होती है। जिस प्रकार स्वामीके बिना कोई महल भी खडहर जैसा मालूम होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी चरित्रके बिना खडहर जैसा लगता है—भले उसके पास कितनी ही सपत्ति क्यो न हो। अब कौमके सत्याग्रहियोंने देखा कि लड़ाई कितनी लम्बी चलेगी, इसका अनुमान कोई लगा नही सकता। कहा जनरल बोथा और जनरल स्मट्सकी एक इच भी पीछे न हटनेकी प्रतिज्ञा और कहा सत्याग्रहियोंकी मरण-पर्यंत जूझनेकी प्रतिज्ञा! वह तो हाथी और चीटीका युद्ध था। हाथीके एक पावके नीचे असख्य चीटियोंका कचूमर निकल सकता है। फिर, सत्याग्रही अपने सत्याग्रहकी कोई अवधि नही बाध सकते थे। एक वर्ष लगे या अनेक वर्ष लगे, उनके मन तो सब समान था। उनके लिए तो लड़ना ही विजय थी। लड़नेका अर्थ था जेल जाना या देश-निकालेकी सजा पाना। उस बीच परिवारका क्या हो? हमेशा जेल जानेवालेको नौकरी तो कोई दे ही नही सकता था। जेलसे रिहा होने पर खुद क्या खाये, परिवारको क्या खिलाये? कहां रहे? मकानका किराया कौन दे? आजीविकाके अभावमें सत्याग्रही भी परेशान हो सकता है। खुद भूखो मर कर और अपने प्रियजनोंको भूखों मारकर भी सत्यकी लड़ाई लड़नेवाले इस जगतमें अधिक लोग हो ही नही सकते।

आज तक जेल जानेवाले सत्याग्रहियोंके परिवारोंका भरण-पोषण उन्हें हर महीने पैसा देकर होता था। सबको उनकी आवश्यकताके अनुसार पैसा दिया जाता था। चीटीको कन और हाथीको मन। सबको एकसी रकम तो दी ही नही जा सकती थी। पाच बालकोंवाले सत्याग्रही-को और ब्रह्मचारीको, जिसका कोई आश्रित न हो, एक श्रेणीमें नही रखा जा सकता था। अथवा केवल ब्रह्मचारीको ही [illegible] सेनामें भरती करना भी संभव नही था। तब कि[illegible] पैसा

दिया जाता? अकसर प्रत्येक परिवार पर विश्वास रखकर वह कमसे कम जितनी रकम मांगे उसके अनुसार उसे खर्च दिया जाता था। इसमें धोखेके लिए काफी गुंजाइश रहती थी। धोखेबाज लोगोंने इस पद्धतिका किसी हद तक दुरुपयोग भी किया। दूसरे शुद्ध हृदयवाले लोग भी अमुक जीवन-स्तरको निभानेके लिए आर्थिक सहायताकी आशा रखते थे। मैंने देखा कि इस तरह सत्याग्रहियोंके परिवारोंको आर्थिक सहायता देकर लम्बे समय तक लड़ाई चलाना असंभव है। इसमें पात्रके साथ अन्याय होनेका और कुपात्रके अपने पाखंडमें सफल होनेका भय बना रहता था। यह कठिनाई एक ही तरहसे हल हो सकती थी — सारे परिवारोंको एक स्थान पर रखा जाय और वहां सब साथ मिलकर काम करें। इसमें किसी परिवारके साथ अन्याय होनेका डर नहीं रह जाता, पाखंडके लिए जरा भी गुंजाइश नहीं रह जाती, ऐसा भी कहा जा सकता है। इससे सार्वजनिक पैसेका बचाव होता तथा सत्याग्रहियोंके परिवारोंको नये और सादे जीवनकी तथा अनेक लोगोंके साथ हिल-मिलकर रहनेकी तालीम मिलती। इस व्यवस्थासे अनेक प्रान्तों और अनेक धर्मोंके हिन्दुस्तानियोंको एकसाथ रहनेका मौका मिलता।

लेकिन प्रश्न यह था कि इसके लिए अनुकूल स्थान कहांसे प्राप्त किया जाय? शहरमें रहनेका अर्थ होता चूल्हेमें से निकल कर भाड़में पड़ना। भोजनके मासिक खर्च जितना तो शायद मकान-किराया ही शहरमें देना पड़ता और शहरमें रहकर सादगीसे जीवन बितानेमें परिवारोंको कई मुसीबतें उठानी पड़ती। इसके सिवा, शहरमें ऐसी जगह तो मिल ही नहीं सकती थी, जहां बहुतसे परिवार घर बैठे कोई उपयोगी धंधा कर सकें। इसलिए हमने यह समझ लिया कि इसके लिए कोई ऐसा क्षेत्र पसंद करना चाहिये, जो शहरसे न तो बहुत दूर हो और न बहुत नजदीक हो। फिनिक्स आश्रम तो था ही। वहांसे 'इंडियन ओपीनियन' निकलता था और थोड़ी खेती भी वहां होती थी। फिनिक्समें दूसरी अनेक सुविधायें भी मौजूद थीं। लेकिन फिनिक्स जोहानिसबर्गसे ३०० मील दूर था और वहां तककी मुसाफिरीमें ३० घंटेका समय लगता था। इतनी दूर परिवारोंको लाने ले जानेका काम बड़ा कठिन और खर्चीला था।

सर रतन टाटाने सत्याग्रहके फंडमें रु० २५००० का दान दिया है। इतनी रकम उस समयकी जरूरतोंके लिए काफी थी। हमारा काम आगे बढ़ा।

परन्तु इतने धनसे अथवा अधिकसे अधिक धनसे भी सत्याग्रहकी — सत्यकी, आत्मशुद्धिकी, आत्मबलकी लड़ाई नहीं चल सकती। ऐसी लड़ाईके लिए चरित्रकी पूंजी आवश्यक होती है। जिस प्रकार स्वामीके बिना कोई महल भी खंडहर जैसा मालूम होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी चरित्रके बिना खंडहर जैसा लगता है — भले उसके पास कितनी ही संपत्ति क्यों न हो। अब कौमके सत्याग्रहियोंने देखा कि लड़ाई कितनी लम्बी चलेगी, इसका अनुमान कोई लगा नहीं सकता। कहां जनरल बोथा और जनरल स्मट्सकी एक इंच भी पीछे न हटनेकी प्रतिज्ञा और कहा सत्याग्रहियोंकी मरण-पर्यंत जूझनेकी प्रतिज्ञा! वह तो हाथी और चींटीका युद्ध था। हाथीके एक पांवके नीचे असख्य चींटियोंका कचूमर निकल सकता है। फिर, सत्याग्रही अपने सत्याग्रहकी कोई अवधि नहीं बाध सकते थे। एक वर्ष लगे या अनेक वर्ष लगे, उनके मन तो सब समान था। उनके लिए तो लड़ना ही विजय थी। लड़नेका अर्थ था जेल जाना या देश-निकालेकी सजा पाना। उस बीच परिवारका क्या हो? हमेशा जेल जानेवालेको नौकरी तो कोई दे ही नहीं सकता था। जेलसे रिहा होने पर खुद क्या खाये, परिवारको क्या खिलाये? कहां रहे? मकानका किराया कौन दे? आजीविकाके अभावमें सत्याग्रही भी परेशान हो सकता है। खुद भूखों मर कर और अपने प्रियजनोंको भूखों मारकर भी सत्यकी लड़ाई लड़नेवाले इस जगतमें अधिक लोग हो ही नहीं सकते।

आज तक जेल जानेवाले सत्याग्रहियोंके परिवारोंका भरण-पोषण उन्हें हर महीने पैसा देकर होता था। सबको उनकी आवश्यकताके अनुसार पैसा दिया जाता था। चींटीको कन और हाथीको मन। सबको एकसी रकम तो दी ही नहीं जा सकती थी। पांच बालकोंवाले सत्याग्रहीको और ब्रह्मचारीको, जिसका कोई आश्रित न हो, एक श्रेणीमें नहीं रखा जा सकता था। अथवा केवल ब्रह्मचारीको ही सत्याग्रही सेनामें भरती करना भी संभव नहीं था। तब किस सिद्धान्तके आधार पर पैसा

दिया जाता? अकसर प्रत्येक परिवार पर विश्वास रखकर वह कमसे कम जितनी रकम मांगे उसके अनुसार उसे खर्च दिया जाता था। इनमें धोखेके लिए काफी गुंजाइश रहती थी। धोखेबाज लोगोंने इस पद्धतिका किसी हद तक दुरुपयोग भी किया। दूसरे शुद्ध हृदयवाले लोग भी अमुक जीवन-स्तरको निभानेके लिए आर्थिक सहायताकी आशा रखते थे। मैंने देखा कि इस तरह सत्याग्रहियोंके परिवारोंको आर्थिक सहायता देकर लम्बे समय तक लड़ाई चलाना असभव है। इसमे पात्रके साथ अन्याय होनेका और कुपात्रके अपने पाखडमें सफल होनेका भय बना रहता था। यह कठिनाई एक ही तरहसे हल हो सकती थी — सारे परिवारोंको एक स्थान पर रखा जाय और वहा सब साथ मिलकर काम करे। इसमें किसी परिवारके साथ अन्याय होनेका डर नहीं रह जाता, पाखडके लिए जरा भी गुंजाइश नही रह जाती, ऐसा भी कहा जा सकता है। इससे सार्वजनिक पैसेका बचाव होता तथा सत्याग्रहियोंके परिवारोको नये और सादे जीवनकी तथा अनेक लोगोंके साथ हिल-मिलकर रहनेकी तालीम मिलती। इस व्यवस्थासे अनेक प्रान्तों और अनेक धर्मोंके हिन्दुस्तानियोको एकसाथ रहनेका मौका मिलता।

लेकिन प्रश्न यह था कि इसके लिए अनुकूल स्थान कहांसे प्राप्त किया जाय? शहरमें रहनेका अर्थ होता चूल्हेमें से निकल कर भाड़में पड़ना। भोजनके मासिक खर्च जितना तो शायद मकान-किराया ही शहरमें देना पड़ता और शहरमें रहकर सादगीसे जीवन बितानेमें परिवारोंको कई मुसीबतें उठानी पड़ती। इसके सिवा, शहरमें ऐसी जगह तो मिल ही नही सकती थी, जहा बहुतसे परिवार घर बैठे कोई उपयोगी धधा कर सकें। इसलिए हमने यह समझ लिया कि इसके लिए कोई ऐसा क्षेत्र पसंद करना चाहिये, जो शहरसे न तो बहुत दूर हो और न बहुत नजदीक हो। फिनिक्स आश्रम तो था ही। वहासे 'इंडियन ओपीनियन' निकलता था और थोड़ी खेती भी वहा होती थी। फिनिक्समें दूसरी अनेक सुविधायें भी मौजूद थी। लेकिन फिनिक्स जोहानिसबर्गसे ३०० मील दूर था और वहा तककी मुसाफिरीमें ३० घंटेका समय लगता था। इतनी दूर परिवारोंको लाने ले जानेका काम बड़ा कठिन और खर्चीला था।

इसके सिवा, सत्याग्रहियोंके परिवार अपने घरवार छोड़कर इतनी दू जानेको तैयार भी न होते। और अगर तैयार भी हो जाते, तो उन्हें औ जेलसे छूटनवाले सत्याग्रही कैदियोंको फिनिक्स भेजनेका काम असभव-स मालूम हुआ।

इसलिए तय यह किया कि परिवारोंको रखनेका स्थान ट्रान्सवाल ही होना चाहिये और यह भी जोहानिसवर्गके नजदीक होना चाहिये श्री कैलनबैकका परिचय मैं पहले करा चुका हूं। उन्होंने ११०० एकड़ जमीन खरीदी और कोई पैसा लिये बिना सत्याग्रहियोंके उपयोगके लिए दे दी (३० मई, १९१०)। उस जमीन पर करीब १००० फलके झाड़ थे और एक छोटासा मकान था, जिसमें पाच सात आदमी रह सकते थे। पानीके लिए दो कुए और एक झरना था। निकटतम रेलवे स्टेशन लॉले वहासे एक मील दूर था। जोहानिसवर्ग वहासे २१ मील पर था। इसी जमीन पर मकान बनवाने और सत्याग्रहियोंके परिवारोंको बसानेका हमने निश्चय किया।

१०

टॉल्स्टॉय फार्म – २

फार्मकी जमीन पर फलोंके जो लगभग १००० झाड़ थे, उनमे नारंगी, एप्रिकोट (खूबानी) और प्लम (बेर) बहुतायतसे होते थे — इतने कि मौसममे सत्याग्रही पेट भर कर खा लें उसके बाद भी वच जाते थे। पानीका एक छोटासा झरना था, जो रहनेके स्थानसे करीब ५०० गज दूर था। इसलिए पानी झरनेसे कांवरोंमे भरकर लानेकी मेहनत करनी पड़ती थी।

इस स्थानमें हमने यह आग्रह रखा था कि नौकरोंसे कोई भी घरेलू काम न कराया जाय; और जहा तक संभव हो खेतीबाड़ीका तथा मकान बाधनेका काम भी उनसे न लिया जाय। इसलिए पाखाना-सफाईसे लेकर रसोई बनाने तकका सारा काम हमें अपने ही हाथोंसे करना था। जहा

तक परिवारोंको रखनेका सवाल था, हमने पहलेसे ही यह निश्चय कर लिया था कि स्त्रियों और पुरुषोंको अलग अलग रखा जाय। इसलिए दोनोंके मकान अलग और एक-दूसरेसे थोड़ी दूरी पर बनानेकी बात तय हुई। दस स्त्रियां और साठ पुरुष रह सकें इतने मकान तुरन्त बनानेका निर्णय हुआ। श्री कैलनबैकके रहनेका भी एक मकान बनवाना था और उसके पास शालाका एक मकान खड़ा करना था। इसके सिवा, एक कारखाना भी बढ़ई-काम और मोची-कामके लिए बनवाना था।

जो लोग इस स्थान पर रहने आनेवाले थे, वे गुजरातके, मद्रासके, आंध्र देशके और उत्तर भारतके थे। धर्मसे वे हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई थे। उनमें लगभग चालीस नौजवान थे, दो-तीन वयोवृद्ध थे, पांच स्त्रियां थीं और बीससे तीसकी संख्यामें बालक थे। इन बालकोंमें चार-पांच लड़कियां थीं।

स्त्रियोंमें ईसाई और दूसरी स्त्रियोंको मांसाहारकी आदत थी। श्री कैलनबैकका और मेरा यह मत था कि इस स्थानमें मांसाहारको प्रवेश न मिल सके तो ठीक। परन्तु प्रश्न यह था कि जिन लोगोंको मांस खानेमें जरा भी आपत्ति नहीं थी, जो अपने संकटके दिनोंमें यहां आनेवाले थे, जिन्हें बचपनसे ही मांसाहारकी आदत पड़ी हुई थी, उनसे कुछ समयके लिए भी मांसाहार छोड़नेकी बात कैसे कही जाय? और यदि न कही जाय तो भोजन-खर्च कितना बढ़ जाय? फिर, जिन्हें गोमांस खानेकी आदत हो, उन्हें क्या गोमांस भी दिया जाय? आखिर कितने रसोई-घर अलग अलग चलाये जायं? ऐसी परिस्थितिमें मेरा धर्म क्या है? इन परिवारोंको खर्चके पैसे देनेका निमित्त बनकर भी मैं मांसाहार और गोमांसाहारका समर्थन करता ही था। यदि मैं ऐसा नियम बना देता कि मांसाहारीको पैसेकी मदद नहीं मिलेगी, तो मुझे सत्याग्रहकी लड़ाई केवल शाकाहारियोंकी मददसे ही लड़नी पड़ती। यह भी कैसे संभव होता? लड़ाई तो हिन्दुस्तानियोंके सारे वर्गोंको जोरसे संगठित की गई थी और लड़ी जा रही थी। इन परिस्थितियोंमें मुझे अपना धर्म स्पष्ट रूपसे समझमें आ गया। अगर ईसाई और मुसलमान मित्र गोमांस भी मांगें, तो मुझे उन्हें देना ही चाहिये। मैं उन्हें इस स्थानमें आनेसे रोक ही नहीं सकता।

परन्तु ईश्वर सदा प्रेमका बेली रहता ही है। मैंने सरल भावसे ईसाई बहनोंके सामने अपना यह संकट रख दिया। मुसलमान माता-पिताओंने तो मुझे शुद्ध निरामिष भोजन तैयार करनेवाला रसोई-घर चलानेकी इजाजत दे दी थी। अब ईसाई बहनोंसे ही मुझे बात करनी थी, जिनके पति या पुत्र जेलमें थे। वे लोग निरामिष भोजनके बारेमें मेरे साथ सहमत थे। उनके साथ ऐसी बात करनेके अनेक मौके मुझे मिले थे। लेकिन बहनोंके साथ ऐसे निकट संपर्कमें मैं पहली बार ही आया था। उनके सामने मकानकी असुविधाकी, पैसेकी कमीकी और अपनी भावनाओंकी बात मैंने रखी। साथ ही यह कहकर मैंने उन्हें निर्भय भी बना दिया कि वे मांगेंगी तो मैं गोमांस भी उन्हें दूंगा। बहनोंने प्रेमभावसे मांस न मंगानेकी बात मान ली। रसोईका सारा कामकाज उन्हींके हाथमें सौंप दिया गया। हममें से एक-दो पुरुष उनकी मददमें रहे। मैं स्वयं तो उनमें एक था ही। मेरी उपस्थिति छोटे-मोटे झगड़ोंको दूर रख सकती थी। भोजन सादेसे सादा बनानेका निर्णय किया गया। खानेके समय निश्चित कर दिये गये। रसोई-घर एक ही रखा गया। सब लोग एक ही पंक्तिमें बैठकर भोजन करते थे। सबको अपने अपने बरतन मांज-धोकर स्वयं साफ करने होते थे। रसोई-घरके सामान्य बरतन बारी-बारीसे मांजनेकी बात तय हुई थी। मुझे कहना चाहिये कि टॉल्स्टॉय फार्म लम्बे समय तक चला, फिर भी बहनों या भाइयोंने कभी भी मांसाहारकी मांग नहीं की। शराब, तम्बाकू वगैरा नशीली चीजें तो बिलकुल बंद थी ही।

मैं पहले लिख चुका हूं कि मकान बांधनेमें भी जितना काम हाथसे हो सके उतना हाथसे ही करनेका हमारा आग्रह था। स्थपति तो हमारे श्री कैलनबैक ही थे। वे एक यूरोपियन राजको ले आये। नारायणदास दामानिया नामक एक गुजराती सुतारने पैसा लिये बिना इस काममें मदद की और कम दरों पर काम करनेवाले दूसरे सुतार भी ला दिये। अकुशल श्रमका काम फार्मके हम निवासियोंने ही अपने हाथसे किया। हममें से जो लोग फुर्तीले शरीरवाले थे, उन्होंने तो कमाल कर दिया। सुतारका आधा काम तो विहारी नामक एक सुन्दर सत्याग्रहीने उठा

लिया था। और सफाई रखने, शहरमें जाने और वहांसे सारा सामान खरीद कर लानेका काम सिहके समान थंबी नायडूने सभाल लिया था।

टॉल्स्टॉय फार्म पर रहनेवाले इस दलमें एक भाई थे प्रागजी खडुभाई देसाई। उन्होंने जीवनमें कभी कष्ट भोगे ही नही थे। लेकिन यहा उन्हे कड़ी सरदी बरदाश्त करनी पड़ी, चिलचिलाती धूप सहन करनी पड़ी और मूसलधार बरसातकी मार भी सहनी पड़ी। शुरू शुरूमें हमें तबुओंमें रहना पडा था। मकानोंके खड़े होनेमें करीब दो महीने लगे होंगे। मकान टीनके बनाये गये थे, इसलिए उन्हें खड़ा करनेमें ज्यादा देर नहीं लगी। लकड़ी भी आवश्यक मापकी तैयार मिल सकती थी, इसलिए केवल मापके अनुसार उसके टुकडे करना ही बाकी रह जाता था। खिड़की-दरवाजे अधिक नहीं रखने थे। इन्ही सब कारणोंसे इतने कम समयमें इतने सारे मकान तैयार हो सके। लेकिन मेहनतके इस कामने प्रागजीकी कड़ी परीक्षा ली। जेलकी अपेक्षा फार्मका काम अधिक कठिन था। एक दिन तो थकान और धूपकी वजहसे प्रागजी बेहोश हो कर गिर पड़े। लेकिन वे हारनेवाले नहीं थे। उन्होंने यहा अपने शरीरको तालीम देकर पूरी तरह कस लिया और अंतमें इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि मेहनत-मशक्कतमें सबकी बराबरीमें खड़े रह सकें।

ऐसे दूसरे साथी थे जोसेफ रॉयपेन। वे बैरिस्टर थे, लेकिन उन्हें बैरिस्टरीका घमड नहीं था। वे बहुत कड़ा परिश्रम नही कर सकते थे। ट्रेनसे सामान नीचे उतारना और उसे गाड़ी पर चढ़ाना उनके लिए कठिन था, परन्तु उन्होंने यथाशक्ति यह काम किया।

टॉल्स्टॉय फार्ममें आकर निर्बल लोग बलवान बन गये और परिश्रम सबके लिए शक्तिदायी सिद्ध हुआ।

फार्मके हर निवासीको किसी न किसी कामसे जोहानिसबर्ग जाना पड़ता था। बालक वहा सैरके लिए जाना चाहते थे। मुझे भी कामकाजके सिलसिलेमें जोहानिसबर्ग जाना पड़ता था। निर्णय यह किया गया था कि जो फार्मके सामाजिक कामसे जाये, उसीको रेलसे मुसाफिरी करनेकी इजाजत दी जाय और रेलकी मुसाफिरी भी तीसरे दरजेमें ही की जाय। और जिसे सैरके लिए जाना हो वह चलकर जाय। उसके साथ खानेके

लिए नाश्ता दे दिया जाय। शहर जाकर कोई खाने-पीनेमें एक पैसा भी खर्च न करे। ऐसे कड़े नियम न बनाये गये होते, तो जो पैसा बचानेके लिए हमने जंगलमे रहना पसद किया था, वह पैसा रेल-किरायेमें और शहरके बाजारमें किये जानेवाले नाश्तेमें उड़ जाता। घरका बना हुआ नाश्ता भी सादा ही होता था। नाश्तेमें घरके पिसे और बिना छने मोटे आटेकी डबल-रोटी, उस पर मूंगफलीका घरमे बनाया हुआ मक्खन और घरमे ही बना हुआ नारंगीके छिलकोंका मुरब्बा होता था। आटा पीसनेके लिए हाथसे चलनेवाली लोहेकी चक्की खरीदी गई थी। मूंगफलीको भून कर पीसनेसे उसका मक्खन बन जाता था। उसकी कीमत दूधके मक्खनसे चौगुनी सस्ती पड़ती थी। नारंगी तो फार्ममें ही खूब होती थी। फार्ममें हम गायका दूध शायद ही कभी लेते थे; सामान्यतः डिब्बेके दूधका ही उपयोग करते थे।

लेकिन हम फिर मुसाफिरीकी बात पर आयें। जिन लोगोंको जोहानिसबर्ग जानेका शौक होता, वे सप्ताहमें एक या दो बार चलकर जाते थे और उसी दिन लौट आते थे। मैं पहले कह चुका हू कि यह रास्ता २१ मीलका था। पैदल जानेके इस एक नियमसे हमारे सैकड़ों रुपये बच गये और चलकर जानेवालोंको बड़ा लाभ हुआ। कुछ लोगोंको चलनेकी नई आदत पड़ी। सामान्य नियम यह था कि इस तरह जोहानिसबर्ग जानेवाले रातमें दो बजे उठ जाये और ढाई बजे निकल पड़ें। सब कोई छहसे सात घंटोंके भीतर जोहानिसबर्ग पहुच सकते थे। कमसे कम समय लेनेवाले लोग ४ घटे और १८ मिनटमें पहुच जाते थे।

पाठक यह न मान लें कि ये नियम फार्मवासियों पर भाररूप थे। सब सदस्य प्रेमपूर्वक उनका पालन करते थे। जबरन् कोई नियम लादकर मैं एक भी आदमीको फार्ममे रख नही पाता। नौजवान मुसाफिरीमें अथवा आश्रममे सौपे गये सारे काम हंसते हंसते और आनंदसे किलकते हुए करते थे। मेहनतके काम करते समय उन्हे उत्पात मचानेसे रोकना कठिन पड़ता था। जितना काम वे स्वेच्छासे खुशी खुशी करते थे उतना ही उनसे करानेका नियम रखा गया था। लेकिन इससे किसी दिन काम कम हुआ हो ऐसा मैंने नहीं देखा।

सफाईकी कहानी समझने जैसी है। इतने लोग फार्म पर रहते थे, फिर भी कहीं कूड़ा-कचरा, मैला या जूठन किसीके देखनेमें नहीं आती थी। सारा कूड़ा-करकट जो जमीन खोदकर रखी गई थी उसके भीतर गाड दिया जाता था। रास्तों पर पानी गिरानेकी मनाही थी। सारा पानी बरतनोंमें जमा किया जाता था और पेड़ोंको पिला दिया जाता था। जूठन और सागभाजीके कचरेकी खाद बनाई जाती थी। मैलेके लिए रहनेके मकानके पास एक चौकोन खड्डा डेढ़ फुट गहरा खोद रखा था, जिसमें सारा मैला गाड दिया जाता था। उसके ऊपर खड्डेसे निकली हुई मिट्टी अच्छी तरह ढक दी जाती थी। इसलिए दुर्गन्धका नाम भी नहीं रह जाता था। न तो वहां मक्खियां भिनभिनाती थीं और न किसीको इस बातकी कल्पना आती थी कि वहां मैला गाड़ा गया है। साथ ही फार्मको अमूल्य खाद मिल जाती थी। यदि हम मैलेका सदुपयोग करें, तो लाखों रुपयोंकी खाद प्राप्त कर सकते हैं और तरह तरहके रोगोंसे भी बच सकते हैं। पाखाना फिरनेकी अपनी कुटेवकी वजहसे हम पवित्र नदियोंके किनारोंको बिगाडते हैं, मक्खियोंकी उत्पत्तिका एक साधन मुहैया करते हैं और जो मक्खियां हमारी भयंकर असावधानीके कारण खुले मैले पर जाकर बैठती हैं उन्हीं मक्खियोंको नहा-धोकर स्वच्छ होनेके बाद हम अपने शरीरका स्पर्श करने देते हैं। एक छोटीसी कुदाली और फावड़ा हमें बहुत बड़ी गदगीसे बचा सकता है। चलनेके रास्तों पर मैला डालना, थूकना और नाक साफ करना ईश्वरके प्रति और मनुष्यके प्रति पाप है। इसमें दयाका अभाव है—दूसरोंकी असुविधाका खयाल रखनेकी भावनाका दु:खद अभाव है। जो आदमी जंगलमें रहकर भी अपने मैलेको जमीनमें नहीं गाड़ता वह सजाके लायक है।

हमारा काम सत्याग्रही परिवारोंको उद्यमशील रखना, पैसा बचाना और अंतमें स्वावलम्बी बनना था। यह ध्येय सिद्ध कर लेनेके बाद तो हम चाहे जितनी अवधि तक ट्रान्सवाल सरकारसे लड़ सकते थे। जूतों पर हमें पैसे खर्च करने पड़ते थे। बंद जूतोंसे गरम आबहवामें नुकसान होता है। सारा पसीना पांव चूसते हैं और नाजुक बनते हैं। हमारे देशके जैसी ट्रान्सवालकी आबहवामें मोजोंकी जरूरत तो हो ही नहीं सकती। लेकिन

काटों, पत्थरों वगैरासे पैरोंको बचानेके लिए किसी रक्षणकी आवश्यकताको हमने स्वीकार किया था। इसलिए हमने चप्पल या सैंडल बनानेका धन्धा सीखनेका निश्चय किया। दक्षिण अफ्रीकामें पाइन टाउनके पास मेरियनहिलमें ट्रेपिस्ट नामक रोमन कैथलिक पादरियोंका एक मठ है। वहा ऐसे उद्योग चलते है। वे जर्मन हैं। श्री कैलनबैक वहा जाकर चप्पल बनानेकी कला सीख आये। फिर उन्होने वह कला मुझे सिखाई और मैंने दूसरे साथियोंको सिखाई। इस तरह अनेक नौजवान चप्पल बनाना सीख गये और हम अपने मित्रोंको आश्रममें बने हुए चप्पल वेचने भी लगे। यह कहना तो मेरे लिए जरूरी नही होना चाहिये कि मेरे अनेक शिष्य इस कलामे मुझसे आसानीसे आगे बढ़ गये। दूसरा उद्योग हमने सुतारीका शुरू किया। एक गाव जैसा बसाकर हम वहा रहे, इसलिए पाटसे लेकर पेटी तककी सारी छोटी-मोटी चीजोंकी हमें जरूरत पड़ती थी; और ये सब चीजें हम अपने हाथसे ही बनाते थे। उपर्युक्त परोपकारी मिस्त्रियोंने तो इस काममें कुछ माह तक हमारी मदद की ही थी। श्री कैलनबैक इस विभागके मुखिया थे। उनकी सुघड़ता और सावधानीका अनुभव हमें प्रत्येक क्षण होता था।

युवकों, बालकों और बालिकाओंके लिए एक शालाका होना अनिवार्य था। यह काम हमें सबसे कठिन लगा और इसमें पूर्णता तो हम अंत तक भी प्राप्त नहीं कर सके। पढ़ानेका खास बोझ श्री कैलनबैक और मुझ पर था। शाला दोपहरको ही चलाई जा सकती थी। हम दोनों सवेरेके शारीरिक श्रमसे खूब थक जाते थे। विद्यार्थी भी सब थके हुए ही रहते थे। इसलिए अकसर विद्यार्थी भी ऊघने लगते थे और हम शिक्षक भी ऊघने लगते थे। हम अपनी आखों पर पानी छिड़कते थे, बालकोंके साथ खेल खेलते थे और उनका तथा अपना आलस्य दूर करनेका प्रयत्न करते थे। परंतु कभी कभी हमारा प्रयत्न व्यर्थ जाता था। जितना आराम शरीरके लिए जरूरी होता था उतना तो वह लेकर ही रहता था। यह तो मैंने एक और छोटेसे छोटे विघ्नकी बात कही, क्योंकि ऊघते ऊघते भी हमारे वर्ग तो चलते ही थे। परन्तु समस्या यह थी कि तामिल, तेलगू और गुजराती तीन भाषाएं बोलनेवाले विद्यार्थियोंको

क्या और कैसे सिखाया जाय? मातृभाषा द्वारा बालकोंको पढ़ानेका लोभ तो मेरे मनमें था ही। तामिल मैं थोड़ी-बहुत जानता था, परन्तु तेलगू-का तो एक अक्षर भी नहीं जानता था। ऐसी स्थितिमें एक शिक्षक भला क्या कर सकता था? आश्रममें जो नौजवान थे उनमें से कुछका उपयोग हमने शिक्षकके रूपमें किया। लेकिन यह प्रयोग सफल हुआ, ऐसा नहीं कहा जा सकता। भाई प्रागजीका उपयोग तो इस कार्यमें किया ही जाता था। युवकोंमें कुछ बड़े उत्पाती और बहुत आलसी थे; अपनी पुस्तकोंके साथ तो वे सदा युद्ध ही करते थे। ऐसे विद्यार्थी शिक्षककी परवाह क्यों करने लगे? इसके सिवा, हम दोनों पढ़ाईके काममें नियमित नहीं रह पाते थे। जरूरत होने पर मुझे या कैलनबैकको जोहानिसबर्ग जाना ही पड़ता था।

दूसरी कठिनाई धार्मिक शिक्षाकी थी। मुसलमानोंको कुरान सिखाने-का लोभ तो मेरे मनमें बना ही रहता था। पारसियोंको अवेस्ता सिखाने-की इच्छा होती थी। एक खोजा मुसलमानका बालक भी था। उसे खोजा पंथकी एक छोटीसी पुस्तक पढ़ानेकी जिम्मेदारी उसके पिताने मुझ पर डाली थी। मैंने इस्लाम और पारसी धर्मकी पुस्तकें इकट्ठी कीं। हिन्दू धर्मके मूल सिद्धान्त अपनी समझके अनुसार मैंने लिख डाले — यह मैं अब भूल गया हूं कि यह काम केवल अपने बालकोंके लिए मैंने किया था या आश्रमवासियोंके लिए किया था। मेरे पास यदि वह चीज आज होती, तो मैं अपनी प्रगति या गतिका माप निकालनेके लिए उसे यहां छाप देता। परन्तु ऐसी अनेकों चीजें मैंने अपनी जिन्दगीमें फेंक दी हैं या जला डाली हैं। ज्यों ज्यों ऐसी चीजोंका संग्रह करनेकी आवश्यकता मुझे कम मालूम होती गई और ज्यों ज्यों मेरा कार्यक्षेत्र बढ़ता गया, त्यों त्यों ऐसी चीजोंका मैं नाश करता गया। इसके लिए मुझे कोई पछतावा नहीं होता। ऐसी चीजोंका संग्रह मेरे लिए भाररूप और खर्चीला सिद्ध होता। उनकी रक्षाके साधन मुझे जुटाने पड़ते। यह मेरी अप-रिग्रही आत्माके लिए असह्य हो जाता।

परन्तु आश्रममें किया हुआ शिक्षाका यह प्रयोग व्यर्थ नहीं गया। इसके फलस्वरूप बालकोंमें कभी असहिष्णुताकी भावना पैदा नहीं हुई। वे

एक-दूसरेके धर्मके प्रति और एक-दूसरेके रीति-रिवाजोंके प्रति उदारता रखना सीखे। सब कोई सगे भाइयोंकी तरह रहना सीखे। एक-दूसरेकी सेवा करना सीखे। सभ्यता सीखे। उद्यमी बने। और आज भी उन बालकोंमें से जिन जिनके कार्योंकी थोड़ी भी जानकारी मुझे है, उनके बारेमें मैं यह कह सकता हूं कि टॉल्स्टॉय फार्ममें उन्होंने जो कुछ पाया वह बेकार नहीं गया। भले ही वह प्रयोग अधूरा था, फिर भी वह एक विचारपूर्ण और धार्मिक प्रयोग था। और टॉल्स्टॉय फार्मके जो अत्यन्त मीठे संस्मरण हैं, उनमें शिक्षणके प्रयोगके संस्मरण कम मीठे नहीं हैं।

परन्तु इन संस्मरणोंके लिए एक नया प्रकरण लिखा जाना चाहिये।

११

टॉल्स्टॉय फार्म – ३

इस प्रकरणमें मैं टॉल्स्टॉय फार्मके अनेक संस्मरण देना चाहता हूं। अतः वे एक-दूसरेसे असम्बद्ध मालूम होंगे। इसके लिए पाठक मुझे क्षमा करें।

शिक्षा देनेके लिए विद्यार्थियोंका जो वर्ग मुझे मिला था वैसा वर्ग शायद ही किसी शिक्षकके नसीबमें आया होगा। करीब ७ वर्षके बालक-बालिकाओंसे लेकर २० वर्षके युवक और १२–१३ वर्षकी बालिकायें उस वर्गमें थी। कुछ लड़के तो ऐसे थे, जो जंगली माने जा सकते थे। वे अतिशय उत्पाती और दुष्ट थे।

ऐसे विद्यार्थियोंके इस सबको मैं क्या पढ़ाऊं और क्या सिखाऊं? सबके स्वभावोंके अनुकूल मैं कैसे बनूं? और सबके साथ मैं किस भाषामें बातें करूं? ये प्रश्न मेरे सामने थे। तामिल और तेलगू लड़के या तो अपनी मातृभाषा समझते थे या अंग्रेजी समझते थे। थोड़ी डच भाषा भी वे जानते थे। परन्तु मैं उनसे अंग्रेजीमें ही बात कर सकता था। मैंने विद्यार्थियोंके दो विभाग कर दिये थे: गुजरातियोंके साथ गुजरातीमें

बोलना और बाकीके विद्यार्थियोंके साथ अंग्रेजीमें बोलना। मुख्यतः उन लोगोंको कुछ रसप्रद कहानियां कहनेकी या पुस्तकोंसे पढ़ कर सुनानेकी व्यवस्था मैंने की थी। अपने सामने मैंने इतना ही उद्देश्य रखा था कि उन सबको एकसाथ बैठना सिखाया जाय और उनमें मित्रभाव तथा सेवा-भावका विकास किया जाय। इतिहास और भूगोलका थोड़ा सामान्य ज्ञान मैं उन्हें देता था और थोड़ा लिखना सिखाता था। कुछको अंकगणित सिखाता था। इस तरह मैं अपनी गाड़ी चला लेता था। प्रार्थनाके लिए कुछ भजन भी सिखाये जाते थे। उन्हें सीखनेके लिए मैं तामिल बालकोंको भी ललचाता था।

बालक और बालिकायें पूरी स्वतन्त्रतासे साथ साथ उठते-बैठते थे। टॉल्स्टॉय फार्ममें मेरा सहशिक्षाका यह प्रयोग अधिकसे अधिक निर्भय था। जो स्वतंत्रता मैं दोनोंको वहां दे सका और सिखा सका था, वह स्वतंत्रता बालक-बालिकाओंको देने अथवा सिखानेकी हिम्मत आज मेरी नहीं हो सकती। मुझे सदा यह लगता रहा है कि उस समय मेरा मन आजसे अधिक निर्दोष था। इसका कारण शायद मेरा अज्ञान हो सकता है। लेकिन उसके बाद मुझे बहुत कड़वे अनुभव हुए हैं, कभी कभी मैंने इस प्रयोगसे भारी नुकसान भी उठाया है। जिन विद्यार्थियोंको मैं सर्वथा निर्दोष समझता था, वे दोषी सिद्ध हुए हैं। अपने भीतर भी मैंने गहराईमें विकारोंका दर्शन किया है। इसलिए मेरा मन इस विषयमें कायर बन गया है।

मुझे अपने इस प्रयोगके लिए कोई पश्चात्ताप नहीं है। मेरी आत्मा इस बातकी भी गवाही देती है कि इस प्रयोगके कारण कोई भी नुकसान नहीं हुआ। लेकिन जिस तरह दूधका जला छाछको फूंककर पीता है, वही मेरे विषयमें कहा जा सकता है।

मनुष्य श्रद्धा अथवा साहस दूसरेसे चुरा नहीं सकता। 'संशयात्मा विनश्यति।' टॉल्स्टॉय फार्ममें मेरी श्रद्धा और साहस पराकाष्ठाको पहुंच गये थे। वही श्रद्धा और साहस पुनः प्रदान करनेके लिए मैं ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हूं। परन्तु वह मेरी प्रार्थना सुने तब न? ... तो मेरे जैसे असंख्य भिखारी खड़े हैं। सान्त्वना केवल ...

जैसे उसके पास असख्य भिखारी पहुंचते हैं, वैसे ही उसके असंख्य कान भी हैं। इसलिए मेरी उस पर पूरी श्रद्धा है। मैं यह भी जानता हूं कि जब मैं योग्य बन जाऊंगा तब वह मेरी प्रार्थना अवश्य ही सुनेगा।

मेरा प्रयोग इस प्रकार था:

मैं उत्पाती माने जानेवाले लड़कोको और निर्दोष सयानी बालिकाओंको एकसाथ एक ही स्थान पर नहानेको भेजता था। बालकोको मैंने मर्यादा-धर्म अथवा आत्म-सयमके बारेमें अच्छी तरह समझा दिया था। वे सब मेरे सत्याग्रहसे परिचित थे। उनके प्रति मेरा स्नेह माके जैसा था। इसे मैं स्वयं तो जानता ही था, लेकिन वे बालक भी ऐसा मानते थे। पाठक उस पानीके झरनेकी बात याद रखें। वह रसोई-घरसे दूर था। वहां लड़कों और लडकियोंका सगम होने देना और फिर निर्दोषताकी आशा रखना! परन्तु मेरी आखे उसी तरह उन बालाओंके पीछे घूमती रहती थी जिस तरह किसी मांकी आखें अपनी पुत्रीके पीछे घूमती रहती हैं। नहानेका समय निश्चित था। सब लड़के और लड़कियां साथमे नहानेके लिए जाते थे, इसलिए समूहमें जो एक प्रकारकी सुरक्षितता होती है वह यहां भी थी। कही एकात तो उन्हें मिल ही नही सकता था। उसी समय मैं स्वयं भी सामान्यतः झरने पर पहुच जाता था।

हम सब एक बरामदेमें सोते थे। बालक और बालिकाये मेरे आसपास सोती थी। किन्ही दो बिस्तरोके बीच मुश्किलसे तीन फुटका अतर रहता था। बिस्तरोके क्रममें जरूर सावधानी रखी जाती थी। परन्तु जिनका मन दूषित हो, उनके लिए सावधानी क्या कर सकती थी? आज मैं देखता हूं कि उन लड़के-लड़कियोंके विषयमे मेरी लाज भगवानने ही रखी। मैंने इस विश्वाससे यह प्रयोग शुरू किया था कि लड़के और लड़किया बिना किसी नुकसानके निर्दोष भावसे इस तरह साथ साथ रह सकते हैं। और उनके माता-पिताने मुझ पर अपार विश्वास रखकर मुझे ऐसा प्रयोग करने दिया था।

एक दिन एक नौजवान लड़केने दो लड़कियोंका मजाक उड़ाया और यह खबर या तो वे लड़कियां ही मेरे पास लाई या किसी बालकने मुझे सुनाई। मैं काप उठा। मैंने इस मामलेकी जाच की। बात सच

थी। मैंने उस नौजवानको समझाया, लेकिन इतना काफी नहीं था। मैंने उन दोनों बालाओंके शरीर पर कोई ऐसा चिह्न देखना चाहा, जिससे प्रत्येक युवक यह समझ ले कि इन बालाओं पर कुदृष्टि डाली ही नहीं जा सकती, और बालायें भी यह समझ लें कि उनकी पवित्रता पर कोई आक्रमण करनेका साहस कर ही नहीं सकता। विकारी रावण सीताका स्पर्श भी नहीं कर सका था। राम तो उनसे बहुत दूर थे। इन बालाओंको मैं ऐसा कौनसा चिह्न दे सकता हूं, जिससे वे अपनेको सुरक्षित समझें और दूसरे उन्हें देखकर निर्विकार रहें? इस प्रश्नने मुझे सारी रात सोने नहीं दिया। सुबह मैंने उन दोनों बालाओंको मनानेका प्रयत्न किया। उन्हें चौंकाये बिना समझा-बुझाकर मैंने कहा कि वे अपने सुन्दर लंबे बाल काट डालनेकी मुझे इजाजत दे दें। टॉल्स्टॉय फार्ममें हम एक-दूसरेकी दाढ़ी बना देते थे और बाल भी काट देते थे। इसलिए कैंचियां और बाल काटनेकी मशीनें हमारे पास थीं। पहले तो दोनों लड़कियोंने मेरी बात नहीं सुनी। बड़ी उमरकी स्त्रियोंको मैंने अपनी बात समझा दी थी। वे मेरी बाल काटनेकी सूचनाको बरदाश्त तो नहीं कर सकीं, परन्तु इसके पीछे मेरा जो उद्देश्य था उसे वे समझ सकी थीं। इस काममें मुझे उनका समर्थन प्राप्त था। लड़कियां दोनों भव्य और सुन्दर थीं। दुःखकी बात है कि उनमें से एक आज नहीं रही! वह लड़की बड़ी तेजस्विनी थी। दूसरी लड़की जीवित है। वह अपनी गृहस्थी चला रही है। अंतमें दोनों बाल काटनेकी मेरी बातको समझ गईं। उसी क्षण जो हाथ यह प्रकरण लिख रहा है, उसीने उन बालाओंके बालों पर कैंची चला दी! इसके बाद वर्गमें मैंने अपने इस कार्यका विश्लेषण करके सबको समझाया। इसका परिणाम सुन्दर निकला। दुबारा मैंने लड़कियोंके साथ मजाक किये जानेकी बात नहीं सुनी। उन दो लड़कियोंने खोया कुछ नहीं; पाया कितना यह भगवान जाने। आशा है कि वे युवक आज भी इस घटनाको याद करते होंगे और अपनी दृष्टिको शुद्ध रखते होंगे।

ऐसे प्रयोग अनुकरणके लिए नहीं लिखे जाते। जो शिक्षक इनका अनुकरण करेगा उसे भारी खतरा मोल लेना पड़ेगा। इस प्रयोगका

उल्लेख मैंने अमुक स्थितिमें मनुष्य कहां तक जा सकता है यह दिखानेके लिए और सत्याग्रहकी लड़ाईकी विशुद्धता सूचित करनेके लिए किया है। इस विशुद्धतामें ही सत्याग्रहकी विजयका बल निहित था। ऐसे प्रयोग करनेके लिए शिक्षकको विद्यार्थियोंकी माता और पिता दोनों बनना चाहिये; और प्राणोंकी बाजी लगाकर ही ऐसे प्रयोग किये जा सकते हैं। ऐसे प्रयोगोंके पीछे कठोर तपस्याका बल होना चाहिये।

मेरे इस कार्यका प्रभाव फार्मवासियोंके सपूर्ण रहन-सहन पर पड़े बिना नही रहा। कमसे कम खर्चमे रहनेका ध्येय होनेके कारण हमने अपनी पोशाकमे भी फेरबदल कर दिया। दक्षिण अफ्रीकाके शहरोंमे हिन्दुस्तानी पुरुषोंकी पोशाक यूरोपियन ढगकी ही होती थी। सत्याग्रहियोंकी भी वही पोशाक थी। लेकिन टॉल्स्टॉय फार्म पर इतने कपडोंकी जरूरत नही थी। हम सब मजदूर बन गये थे, इसलिए मजदूरोंकी पोशाक ही हमने रखी। परन्तु उसका ढंग यूरोपियन था। अर्थात् मजदूरोंके जैसे पतलून और कमीज। इसमें कैदियोंके कपड़ोंका अनुकरण किया गया था। मोटे आसमानी कपड़ेके जो सस्ते पतलून और कमीज बाजारमें तैयार मिलते थे, उन्हीका उपयोग हम सब करते थे। स्त्रियोंमे अधिकतर सिलाईका सुन्दर काम कर सकती थी। उन्होंने सिलाईका सारा काम अपने जिम्मे ले लिया था।

भोजनमें सामान्य नियम भात, दाल, साग और रोटी खानेका और कभी कभी इनके साथ खीर खानेका था। सारा खाना एक ही बरतनमें परोसा जाता था। बरतनमे थालीके बदले जेलकी जैसी तसली होती थी और लकड़ीके चम्मच हाथसे बना लिये जाते थे। भोजन दिनमे तीन बार दिया जाता था। सुबह ६ बजे डबल-रोटी और गेहूकी कॉफी, ११ बजे दाल-भात और साग और शामको ५॥ बजे दलिया और दूध या डबल-रोटी और गेहूकी कॉफी। रातको ९ बजते ही सबको नियमसे सो जाना होता था। शामके भोजनके बाद ७ या ७॥ बजे प्रार्थना होती थी। प्रार्थनामें भजन गाये जाते थे। कभी कभी रामायणका पाठ होता था और कभी इस्लामकी पुस्तकोंमें से कुछ भाग पढ़े जाते थे। भजनोंमें

अंग्रेजी, हिन्दी और गुजराती तीनों भाषाओंके भजन रहते थे। कभी तीनों भाषाओंके भजन गाये जाते थे, तो कभी एक ही भाषाके।

फार्म पर रहनेवाले लोगोंमें से अनेक एकादशीका व्रत पालते थे। श्री पी० के० कोतवाल भी वहां आ पहुंचे थे, जिन्हें उपवासोंका काफी अनुभव था। उनकी देखादेखी हममें से कुछ लोगोंने चातुर्मास व्रत रखा था। उसी अरसेमें मुसलमानोंके रोजे भी पड़ते थे। हमारे बीच मुसलमान नौजवान थे। उन्हें रोजे रखनेका प्रोत्साहन देना हमें अपना धर्म मालूम हुआ। उनके लिए हमने सुबहके नाश्ते (सहरी) और रातके भोजनकी सुविधा कर दी थी। उनके लिए रातको खीर वगैरा चीजें भी बनाई जाती थी। मांसाहार नहीं होता था और किसीने उसकी माग भी नहीं की। मुसलमान मित्रोंका साथ देनेके लिए हम भी एक वार शामको ही भोजन करते थे। हमारा साधारण नियम सूर्यास्तसे पहले भोजन कर लेनेका था। इसलिए फर्क इतना ही पड़ता था कि जब दूसरे सूर्यास्तसे पहले खाकर तैयार हो जाते थे तब मुसलमान नौजवान खाना शुरू करते थे। मुसलमान नौजवानोंने भी अपने रोजोंके दिनोंमें इतने विवेकसे काम लिया कि किसीको अधिक तकलीफ न होने दी। लेकिन गैर-मुस्लिम वालकोंने खानेके संयममें अपने मुसलमान दोस्तोंका साथ दिया, इसका आश्रमके सब लोगों पर सुन्दर प्रभाव पड़ा। मुझे एक भी प्रसंग ऐसा याद नहीं है जब हिन्दू और मुसलमान वालकोंके बीच धर्मको वजहसे कोई झगड़ा या मतभेद खड़ा हुआ हो। इसके विपरीत, मैं यह जानता हूं कि सब अपने अपने धर्मका चुस्तीसे पालन करते हुए भी आपसमें संपूर्ण आदरका व्यवहार करते थे और धार्मिक व्रतों आदिका पालन करनेमें एक-दूसरेकी सहायता करते थे।

शहरी जीवनकी सुविधाओंसे दूर रहते हुए भी हमने बीमारीमें काम आनेवाली सामान्य डॉक्टरी सुविधायें और साधन भी आश्रममें नहीं रखे थे। उन दिनों जितनी श्रद्धा मुझे वालकोंकी निर्दोषताके विषयमें थी उतनी ही श्रद्धा बीमारीमें केवल कुदरती उपचार करनेके विषयमें थी। मैं मानता था कि सादा और सरल जीवन बितानेवालोंको कोई बीमारी होगी ही नहीं; और अगर हुई भी तो उसका उपचार

मैं कर लूगा। मेरी स्वास्थ्य-विषयक पुस्तिका मेरे प्रयोगोंकी और उस समयकी मेरी श्रद्धाकी नोटबुक है। मुझे यह अभिमान था कि मैं तो बीमार पड़ ही नही सकता। मेरा विश्वास था कि केवल पानी, मिट्टी या उपवासके प्रयोगोंसे और आहारके परिवर्तनसे सब प्रकारकी बीमारियोंका इलाज किया जा सकता है। फार्ममें एक भी व्यक्तिकी बीमारीके समय मैंने दवा या डॉक्टरका उपयोग नहीं किया था। वहा उत्तर भारतका एक ७० वर्षका बूढ़ा था। उसे दमा और खासीका रोग था। ये रोग भी केवल आहारके परिवर्तन और पानीके प्रयोगसे मिट गये थे। लेकिन अब मैं ऐसे प्रयोग करनेकी हिम्मत खो बैठा हूं और मानता हूं कि दो बार स्वय बीमार पड़नेके बाद ऐसे प्रयोग करनेका अधिकार भी मैं खो बैठा हूं।

हमारा टॉल्स्टॉय फार्म चल रहा था उसी बीच स्व० गोखले दक्षिण अफ्रीका आये थे। उनकी यात्राका वर्णन करनेके लिए तो एक अलग प्रकरण चाहिये। लेकिन एक कुछ कड़वा और कुछ मीठा संस्मरण मैं यही दे दूं। फार्म पर हम लोग कैसा जीवन जीते थे, इसकी थोड़ी कल्पना तो पाठकोंको अब तक हो गई होगी। फार्ममें खाट या पलग जैसी कोई चीज नही थी। लेकिन गोखलेजीके लिए एक पलग हम माग लाये थे। फार्ममे ऐसा कोई कमरा नहीं था, जहा उन्हे पूर्ण एकात मिल सके। बैठनेके लिए शालाकी बेंचोके सिवा दूसरी कोई चीज हमारे पास नही थी। ऐसी परिस्थितिमे भी नाजुक शरीरवाले गोखलेजीको फार्म पर लानेका प्रलोभन भला कैसे छोड़ा जाता? और उनका मन भी टॉल्स्टॉय फार्म देखे बिना कैसे मानता? मेरे मनमें कल्पना यह थी कि गोखलेजीका शरीर एक रातकी असुविधायें बरदाश्त कर लेगा और वे स्टेशनसे टॉल्स्टॉय फार्म तक — करीब डेढ़ मील — पैदल भी चल सकेंगे। मैंने पहले उनसे पूछ लिया था और उन्होंने अपने सरल स्वभावके कारण बिना सोचे-विचारे मुझ पर भरोसा करके सारी व्यवस्था स्वीकार कर ली थी। भाग्यकी बात कि उसी दिन वर्षा भी हो गई। एकाएक व्यवस्थामें कोई परिवर्तन करना मेरे वशकी बात नही थी। इस प्रकार अपने अज्ञानमय प्रेमके कारण मैंने उस दिन

गोखलेजीको जो कष्ट दिया, उसे मैं जीवनमें कभी भूल नही सका। इतने बड़े परिवर्तनको उनका शरीर बरदाश्त न कर सका। उन्हें सरदी लग गई। खाना खानेके लिए उन्हें रसोई-घरमें नही ले जाया जा सकता था। हमने उन्हे श्री कैलनबैकके कमरेमें ठहराया था। वहां तक खाना ले जानेमें उसका ठंडा हो जाना स्वाभाविक था। मैं उनके लिए विशेष 'सूप' बनाता था, भाई कोतवाल खास आटेकी डबल-रोटी उनके लिए तैयार करते थे। लेकिन प्रश्न यह था कि दोनोंको गरम गरम उनके पास कैसे पहुचाया जाय? हमने जैसे तैसे सारी व्यवस्था पूरी की। गोखलेजीने एक शब्द भी मुझसे नही कहा। लेकिन उनके चेहरेसे मैंने समझ लिया और अपनी मूर्खताका भी मुझे ज्ञान हो गया। जब उन्होंने जाना कि हम सब नीचे फर्श पर सोते हैं तो उन्होंने अपनी चारपाई हटवा कर फर्श पर ही बिस्तर लगवाया। वह रात मैंने पश्चात्तापमें बिताई। गोखलेजीकी एक आदत थी, जिसे मैं बुरी आदत कहता था। वे नौकरसे ही अपनी सेवा-चाकरी कराते थे। लेकिन इस यात्रामे उनके साथ कोई नौकर नही था। श्री कैलनबैकने और मैंने उनसे बड़ी विनती की कि वे हमें अपने पैर दबाने दें। लेकिन वे टससे मस न हुए। हमें पैरोंको छूने तक नही दिया। उलटे आधे गुस्सेमे और आधे हसीमें बोले: "आप लोग सब ऐसा ही समझते मालूम होते हैं कि दु:ख और असुविधायें भोगनेके लिए एकमात्र आप ही पैदा हुए हैं और मेरे जैसे लोग आपके हाथों सुख-सुविधायें पानेके लिए ही जन्मे हैं। इस अतिरेककी सजा आज आपको पूरी तरह भोगनी होगी। मैं आपको अपना स्पर्श भी नही करने दूगा। आप सब तो शौचकी क्रियाके लिए घरसे दूर जायगे और मेरे लिए कमरेमे कमोड रखेंगे — क्यों? मैं चाहे जितनी मुसीबत भोग लूगा, लेकिन आप लोगोंका घमंड तो उतार ही दूगा।" ये वचन हमें वज्रके समान गे। कैलनबैक और मैं दोनों खिन्न हो गये। सान्त्वना इतनी ही थी क ये वचन बोलते समय उनके मुख पर मुसकान फैली रही। अर्जुनने ष्णको अनजाने कितना ही दु:ख दिया होगा, परन्तु कृष्णने क्या उसे द रखा होगा? गोखलेने हमारी सेवा-भावनाको ही याद रखा, यद्यपि

कुछ प्राप्त कर सकता था उसे अपने सुखके लिए प्राप्त करनेमें वे कभी पीछे न रहे।

ऐसे पुरुषका टॉल्स्टॉय फार्ममें रहना और सोना-बैठना, खाना-पीना तथा फार्मवासियोके जीवनमें पूरी तरह ओतप्रोत हो जाना — यह कोई साधारण बात नही थी। हमारे लोगोंको इस बातसे आनदके साथ आश्चर्य हुआ था; और कुछ गोरोने श्री कैलनबैकको 'मूर्ख' या पागल मान लिया था। अन्य कुछ गोरोका उनकी त्याग करनेकी शक्तिको देखकर उनके प्रति आदर-भाव बढा था। कैलनबैकने अपने त्यागको कभी दु खरूप नही माना। जितना आनद उन्होंने अपने वैभवसे प्राप्त किया था, उससे अधिक आनद उन्होंने अपने त्यागसे प्राप्त किया था। सादगीके सुखका वर्णन करते करते वे उसमे लीन हो जाते थे और एक क्षण-के लिए तो सुननेवालेको भी वह सुख भोगनेकी इच्छा हो आती थी। छोटे-बडे सबके साथ वे इतने प्रेमसे घुलमिल जाते थे कि उनका थोड़ासा वियोग भी लोगोको खले बिना नहीं रहता था। कैलनबैकको फलके झाडोंका इतना शौक था कि फार्मके मालीका काम उन्होंने अपने ही हाथमें ले लिया था। रोज सुबह वे फार्मके बालक-बालिकाओं और बडोंसे फल-झाड़ोंकी देखभालका काम कराते थे। लोगोसे वे पूरी मेहनत कराते थे; फिर भी वे इतने हसमुख थे और उनका स्वभाव इतना आनदी था कि सबको उनके साथ काम करना अच्छा लगता था। जब कभी रातमें दो बजे उठकर कोई मडली टॉल्स्टॉय फार्मसे जोहानिसबर्गकी यात्राके लिए निकलती तब कैलनबैक उसमें जरूर होते थे।

उनके साथ मेरी धार्मिक चर्चायें हमेशा होती रहती थी। मेरे पास बात करनेके लिए अहिंसा, सत्य आदि यमो और व्रतोके सिवा दूसरा विषय तो क्या होता? जब मैंने कहा कि सर्प आदि प्राणियो-को मारनमें पाप है तब पहले तो मेरे अन्य अनेक गोरे मित्रोंकी तरह श्री कैलनबैकको भी आघात लगा था। परन्तु अंतमें तात्त्विक दृष्टिसे मेरा यह सिद्धान्त उन्होने मान लिया था। हम दोनोके सम्बन्धके आरभ-में ही उन्होने यह बात स्वीकार कर ली थी कि जिस वस्तुको हमारी बुद्धि मान ले, उसे आचरणमें लाना उचित है और हमारा धर्म है। और

इसीलिए वे अपने जीवनमें किसी भी हिचकिचाहटके बिना एक क्षणमें बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर सके थे। अब कैलनबैकने सोचा कि सर्पादि प्राणियोंको यदि मारना पाप हो, तो हमें उनसे मित्रता करनी और बढ़ानी चाहिये। सबसे पहले उन्होंने विभिन्न जातियोंके सर्पोंकी पहचान करनेके लिए सर्पोंसे सम्बन्धित पुस्तकें एकत्र कीं। उनमें उन्होंने देखा कि सभी सर्प जहरीले नहीं होते; और कुछ सर्प तो खेतोंकी फसलोंकी रक्षा करनेवाले होते हैं। हम सबको उन्होंने सांपोंकी पहचान करना सिखाया और अंतमें एक जबरदस्त अजगरको पाला, जो फार्ममें ही उन्हें मिल गया था। उसे कैलनबैक हमेशा अपने हाथसे खिलाते थे। मैंने नरमीसे कैलनबैकके साथ दलील की: "यह सब करनेमें तुम्हारी भावना तो शुद्ध मित्रताकी है, लेकिन अजगर उसे समझ नहीं सकता। *कारण यह है कि तुम्हारी इस प्रीतिके साथ भय मिला हुआ* है। अजगरको मुक्त रखकर उसके साथ लाड़-प्यार करनेकी तुम्हारी या मेरी किसीकी हिम्मत नहीं है। और जिस चीजका हम अपने भीतर विकास करना चाहते हैं, वह इसी प्रकारकी हिम्मत है। इसलिए इस सांपको पालनेमें मैं सद्‌भाव तो देखता हूं, परन्तु इसमें अहिंसा नहीं है। हमारा कार्य और व्यवहार तो ऐसा होना चाहिये, जिसे यह अजगर पहचान सके। प्राणीमात्र भय और प्रीतिको समझ सकते हैं, यह हमारा सदाका अनुभव है। इसके सिवा, तुम इस अजगरको जहरीला तो मानते ही नहीं। इसके तौर-तरीकोंका और इसकी आदतों वगैराका अध्ययन करनेके लिए तुमने इसे कैद कर रखा है। यह एक तरहकी मनमानी या स्वच्छन्दता है। मित्रतामें इसके लिए भी कोई स्थान नहीं हो सकता।"

श्री कैलनबैक मेरी इस दलीलको तो समझ गये। लेकिन उस अजगरको तुरन्त ही छोड़ देनेकी उनकी इच्छा नहीं हुई। मैंने किसी तरहका दबाव तो उन पर डाला ही नहीं था। अजगरके व्यवहारमें मैं भी रस ले रहा था और बालकोंके आनंदका तो कोई पार ही नहीं था। उसे सताने या परेशान करनेकी हरएकको मनाही थी। लेकिन वह कैदी स्वयं ही अपनी मुक्तिका मार्ग खोज रहा था। या तो पिंजरेका

दरवाजा भूलसे खुला रह गया होगा या किसी तदबीरसे अजगरने स्वयं ही उसे खोल लिया होगा — दो चार दिनके अंदर ही एक सवेरे जब कैलनबैक अपने कैदी मित्रसे मिलने गये, तो उन्होंने देखा कि पिंजरा खाली पड़ा है। वे खुश हुए और मैं भी खुश हुआ। लेकिन इस प्रयोगसे साप हमारी बातचीतका एक सदाका विषय बन गया।

कैलनबैक ऑल्ब्रेस्ट नामक एक गरीब जर्मनको फार्म पर लाये थे। वह गरीब था और अपंग भी था। उसकी कूबड़ इतनी झुक गई थी कि वह लकड़ीके सहारेके बिना चल ही नहीं सकता था। उसकी हिम्मतका कोई पार न था। शिक्षित होनेके कारण वह जीवनके सूक्ष्म प्रश्नोंमें बड़ी दिलचस्पी लेता था। टॉल्स्टॉय फार्म पर वह भी हिन्दुस्तानियोंके जैसा ही बनकर सबके साथ घुलमिल कर रहता था। वह निर्भयतासे सांपोंके साथ खेलने लगा था। छोटे छोटे सांपोंको वह अपने हाथमें उठाकर ले आता था और हथेली पर खेलाता भी था। अगर फार्म लम्बे समय तक चला होता, तो ईश्वर जाने उस जर्मनके इन प्रयोगोंका क्या परिणाम आता।

इन प्रयोगोंके फलस्वरूप सांपके बारेमें हमारा डर कम तो हुआ था, लेकिन कोई ऐसा न मान ले कि फार्म पर रहनेवालोंमें से किसीको सांपका डर रह ही नहीं गया था अथवा सांपको मारनेकी सबको मनाही थी। अमुक काममें हिंसा या पाप है, यह विश्वास रखना एक बात है; और उसके अनुसार आचरण करनेकी शक्ति होना दूसरी बात है। जिसके भीतर सर्पका भय है और जो स्वयं प्राणत्याग करनेके लिए तैयार नहीं है, वह संकट खड़ा होने पर सांपको मारे बिना नहीं रहेगा। मुझे याद है कि फार्म पर ऐसा एक किस्सा हुआ भी था। पाठक यह तो समझ ही गये होंगे कि फार्म पर सांपोंका उपद्रव काफी था। हम लोग जब उस फार्म पर रहने गये तब वहां कोई रहते नहीं थे और कुछ समयसे वह निर्जन स्थितिमें ही था। एक दिन कैलनबैकके कमरेमें ही एक सांप ऐसी जगह दिखाई दिया, जहांसे उसे भगाना या पकड़ना असंभव जैसा लगा। फार्मके एक विद्यार्थीने उसे देखा था। उसने मुझे बुलाया और पूछा कि अब क्या किया जाय। उसने

मुझसे सापको मारनेकी इजाजत मांगी। मेरी इजाजतके बिना वह सापको मार सकता था, परन्तु सामान्यतः विद्यार्थी या अन्य लोग भी मुझसे पूछे बिना ऐसा कदम नहीं उठाते थे। सापको मारनेकी इजाजत देना मुझे अपना धर्म मालूम हुआ और मैंने इजाजत दी। यह लिखते समय भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैंने मारनेकी इजाजत देकर कोई बुरा काम किया था। सापको हाथसे पकड़नेकी या फार्मवासियोंको अन्य किसी तरह सापकी ओरसे निर्भय बनानेकी शक्ति मुझमें नहीं थी और आज तक भी मैं अपने भीतर उस शक्तिका विकास नहीं कर पाया हूं।

इतना तो पाठक आसानीसे समझ सकेंगे कि टॉल्स्टॉय फार्ममें सत्याग्रहियोंका ज्वार और भाटा आया ही करता था। कोई न कोई सत्याग्रही जेल जानेवाले या जेलसे रिहा होकर लौटे हुए फार्म पर रहते ही थे। उनमें दो सत्याग्रही ऐसे भी आ पहुंचे थे, जिन्हें मजिस्ट्रेटने जाती मुचलके पर छोड़ा था और जिन्हें दूसरे दिन सजा सुननेके लिए कोर्टमें हाजिर रहना था। वे लोग बातें करनेमें मशगूल थे। इतनेमें आखिरी ट्रेन, जिसे उन्हें पकड़ना था, का समय पूरा होनेको आ गया और यह प्रश्न खड़ा हो गया कि वे ट्रेन पकड़ सकेंगे या नहीं। दोनों ही सत्याग्रही नौजवान थे और कसरतकी कलामें कुशल थे। वे दोनों और उन्हें विदा देनेवाले हम कुछ लोग स्टेशनकी ओर दौड़े। रास्तेमें ही ट्रेनके आनेकी सीटी मैंने सुनी; और ट्रेन रवाना होनेकी सीटी हुई तब तक हम स्टेशनके अहातेमें पहुंच गये। वे दोनों मित्र तो अपनी गति बढाते ही चले गये। मैं पिछड़ गया। ट्रेन रवाना हुई। लेकिन उन नौजवानोंको दौड़ते देखकर स्टेशन-मास्टरने ट्रेनको रोक दिया और दोनोंको बैठा दिया। मैंने स्टेशन पर पहुंच कर स्टेशन-मास्टरको धन्यवाद दिया। इस घटनाका वर्णन करते हुए मैंने दो बातों पर प्रकाश डाला है। पहली, सत्याग्रहियोंकी जेल जाने और अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेकी उत्कंठा; और दूसरी, स्थानीय अधिकारियोंके साथ सत्याग्रहियों द्वारा बढ़ाये हुए मीठे सम्बन्ध। दोनों नौजवान यदि वह ट्रेन न पकड़ पाते, तो दूसरे दिन कोर्टमें हाजिर नहीं

रह सकते थे। न तो दूसरे लोग उनके जामिन थे और न कोर्टने उनसे पैसेके रूपमें ही जमानत ली थी। केवल उनकी भलमनसाहत पर ही उन्हें छोड़ा गया था। सत्याग्रहियोंकी साख ऐसी जम गई थी कि वे जेल जानेके लिए सदा आतुर रहते हैं। इसलिए कोर्टके अधिकारी उनसे जमानत लेना जरूरी नहीं मानते थे। इस कारणसे ट्रेन चूक जानेके भयसे नौजवान सत्याग्रहियोंको बड़ा दुःख हुआ था और इसीलिए वे वायुकी गतिसे दौड़े थे। यह कहा जा सकता है कि सत्याग्रहके आरंभमें अधिकारियोंकी ओरसे सत्याग्रहियोंको थोड़ा परेशान किया जाता था। और यह भी कहा जा सकता है कि कहीं कहीं जेलके अधिकारी भी अत्यन्त कठोर थे। परन्तु ज्यों ज्यों लड़ाई आगे बढ़ती गई त्यों त्यों हमने देखा कि सब मिलाकर अधिकारी लोग कम कड़वे होते गये और कुछ तो मीठे भी बन गये। और जहां उनके साथ सत्याग्रहियोंका लम्बे समय तक संपर्क बना रहता था वहांके अधिकारी उपर्युक्त स्टेशन-मास्टरकी तरह सत्याग्रहियोंकी मदद भी करने लगे थे। कोई पाठक ऐसा न माने कि सत्याग्रही अधिकारियोंको किसी तरहकी रिश्वत देकर उनसे सुविधायें प्राप्त करते थे। ऐसी अनुचित सुविधायें खरीदनेकी बात सत्याग्रहियोंने कभी सोची ही नहीं थी। लेकिन सज्जनता-से दी जानेवाली सुविधायें भोगनेका उत्साह किसे न होगा? और ऐसी सुविधायें सत्याग्रही अनेक स्थानों पर प्राप्त कर सके थे। स्टेशन-मास्टर यदि प्रतिकूल हो तो नियमोंकी मर्यादामें रहते हुए भी सत्याग्रहियोंको खूब परेशान कर सकता है। ऐसी परेशानियोंके खिलाफ शिकायत भी नहीं हो सकती। और यदि स्टेशन-मास्टर उनके अनुकूल हो जाय, तो नियमोंके भीतर रहते हुए भी अनेक सुविधायें दे सकता है। ऐसी सारी सुविधायें हम टॉल्स्टॉय फार्मके नजदीकके लॉले स्टेशनके स्टेशन-मास्टरसे प्राप्त कर सके थे। और इसका कारण था सत्याग्रहियोंकी शिष्टता, उनका धैर्य और दुःख सहनेकी उनकी शक्ति।

एक अप्रस्तुत प्रसंगका उल्लेख यहीं कर देना अनुचित नहीं होगा। मुझे लगभग ३५ वर्षसे धार्मिक, आर्थिक और आरोग्यकी दृष्टिसे आहारमें सुधार करनेका और उसके प्रयोग करनेका शौक रहा है। यह शौक

आज भी कम नहीं हुआ है। इन प्रयोगोंका प्रभाव मेरे आसपास लोगों पर पड़ना स्वाभाविक ही था। आहारके इन प्रयोगोंके सा दवाओंकी मददके बिना कुदरती — उदाहरणके लिए, पानीके औ मिट्टीके — उपचारोंसे रोगियोंके रोग मिटानेके प्रयोग भी मैं करत रहा हूं। जिन दिनों मैं दक्षिण अफ्रीकामें वकालत करता था उन दिन मुवक्किलोंके साथ मेरा पारिवारिक सम्बन्ध हो जाता था। इसलि वे अपने सुख-दुःखमें मुझे अपना साझेदार बनाते थे। कुछ मुवक्किल आरोग्य-विषयक मेरे प्रयोगोंसे परिचित होनेके कारण उस विषयमें भी मेरी मदद लेते थे। कभी कभी ऐसी मदद लेनेवाले लोग टॉल्स्टॉय फार्म पर भी आ धमकते थे। इनमें से एक था लुटावन नामका एक बूढ़ा मुवक्किल, जो पहले उत्तर हिन्दुस्तानसे गिरमिटिया मजदूर बनकर दक्षिण अफ्रीका आया था। उसकी उमर ७० से ऊपर रही होगी। उसे बरसोंसे दमा और खांसीका रोग था। वैद्योंकी पुड़ियोंका और डॉक्टरोंकी बोतलोंका वह काफी अनुभव ले चुका था। उस समय अपने कुदरती उपचारों पर मेरा अपार विश्वास था। इसलिए मैंने स्वीकार किया कि अगर वह मेरी सारी शर्तोंका पालन करके फार्म पर रहनेको तैयार हो, तो मैं उस पर अपने प्रयोग आजमाऊंगा। यह तो कैसे कहा जाय कि मैंने उसकी दवा करना स्वीकार किया! उस बूढ़ेने मेरी सारी शर्तें कबूल कीं। लुटावनको तम्बाकूका बड़ा व्यसन था। लेकिन अनेक शर्तोंमें तम्बाकू छोड़नेकी भी एक शर्त थी। लुटावनको मैंने एक दिनका उपवास कराया। रोज १२ बजे धूपमें बयूनेका कटिस्नान कराना शुरू किया। उस समय मौसम धूपमें बैठने लायक था। खुराकमें उसे थोड़ा भात, थोड़ा जैतूनका तेल, शहद और शहदके साथ कभी कभी खीर और मीठी नारंगी अथवा अंगूर और भुने हुए गेहूंकी कॉफी दी जाती थी। नमक और हर तरहके मसाले मैंने बिलकुल बन्द कर दिये थे। जिस मकानमें मैं सोता था उसी मकानमें अंदरके हिस्सेमें लुटावनका बिस्तर रहता था। बिस्तरके लिए हर आदमीको दो कम्बल दिये जाते थे: एक बिछानेके लिए और दूसरा ओढ़नेके लिए; और लकड़ीका तकिया होता था। एक हफ्तेका

...। लुटावनके शरीरमें तेज आया। दमा कम हुआ। खांसी भी कम हुई। लेकिन दिनके वजाय रातमें दमा और खांसी उसे अधिक कष्ट देते थे। मुझे सदेह हुआ कि वह छिपे-छिपे तम्वाकू पीता होगा। मैंने उससे पूछा। लुटावनने कहा: "मैं नही पीता।" एक दो दिन और गये। फिर भी जब फर्क न पडा तो मैंने गुप्त रूपमें उसकी परीक्षा करनेका निश्चय किया। सभी लोग जमीन पर सोते थे और साप वगैराका डर तो था ही। इसलिए श्री कैलनबैकने मुझे विजलीकी एक चोरवत्ती (टार्च) दी थी। वे खुद भी चोरवत्ती रखते थे। यह ...त्ती अपने पास रखकर मैं सोता था। एक रात विस्तर पर पड़े पड़े जागनेका मैंने निश्चय किया। दरवाजेके वाहर वरामदेमें मेरा विस्तर रहता था। और दरवाजेके भीतर उसके पास ही लुटावनका विस्तर रहता था। लुटावनको आधी रातमें खासी आई। उसने दियासलाई जलाकर वीड़ी पीना शुरू किया। इसलिए मैं धीरेसे उसके विस्तरके पास गया और मैंने चोरवत्तीका वटन दवाया। लुटावन घवराया। वह स्थितिको समझ गया। वीड़ी वुझाकर वह बैठ गया और उसने मेरे पाव पकड लिये। "मैंने वड़ा गुनाह किया। अव मैं कभी तम्वाकू नही पिऊगा। आपको मैंने धोखा दिया। मुझे आप माफ करें।" ऐसा कहते कहते लुटावनका गला भर आया। मैंने उसे सान्त्वना दी और कहा कि वीडी न पीनेमें ही तुम्हारा भला है। ...रे हिसावसे तो तुम्हारी खासी मिट जानी चाहिये थी। लेकिन जव ...हीं मिटी तो मुझे शंका हुई कि तुम छिपे-छिपे वीडी पीते होगे। ...टावनकी वीडी छूट गई। वीडी छूटनेके साथ उसका दमा और खांसी ...घटो और एक महीनेके भीतर दोनों ही रोग दूर हो गये। लुटावन खूब तेजस्वी और ताकतवर वन गया और हमसे विदा हुआ।

स्टेशन-मास्टरके पुत्रको — जो लगभग दो वर्षका रहा होगा — टाइफॉयड हो गया था। वे भी मेरे कुदरती उपचारोंके वारेमें जानते ...थे। इसलिए उन्होंने मेरी सलाह मागी। उस वालकको पहले दिन ...ी मैंने कुछ भी खानेको नही दिया। दूसरे दिनसे आधा केला — खूब ...ला हुआ, उसमें एक चम्मच जैतूनका तेल और मीठी नारंगीके

रसकी थोड़ी बूंदें देने लगा। दूसरी सारी खुराक उसकी मैंने बंद कर दी। रातमें उसके पेट पर मिट्टीकी पट्टी रखता था। उसका रोग भी दूर हो गया। हो सकता है कि उस बालकके बारेमें डॉक्टरोंका निदान गलत हो और उसे टाइफॉयड न रहा हो।

ऐसे तो कितने ही प्रयोग मैंने टॉल्स्टॉय फार्ममें किये। लेकिन किसी भी प्रयोगमें असफलता मिली हो, ऐसा मुझे याद नहीं है। लेकिन आज वे ही उपचार करनेकी मेरी हिम्मत नहीं होगी। टाइफॉयडके रोगीको केला और जैतूनका तेल देनेमें तो आज मैं कांप उठूंगा। १९१८ में हिन्दुस्तानमें मुझे जो सख्त पेचिश हुई थी, उसका ही उपचार मैं नहीं कर सका था। और आज तक मैं यह समझ नहीं पाया हूं कि जो उपचार दक्षिण अफ्रीकामें सफल होते थे वे ही उपचार हिन्दुस्तानमें उस हद तक सफल नहीं होते, इसका कारण मुझमें आत्म-विश्वासकी कमी होगी या यहांके वातावरणके साथ उन उपचारोंका पूरा मेल नहीं बैठता होगा। इतना ही मैं जानता हूं कि इस प्रकारके घरेलू उपचारोंसे और टॉल्स्टॉय फार्म पर अपनाई गई सादगीसे कौमके अधिक नहीं तो दो-तीन लाख रुपये अवश्य बच गये, फार्म-निवासियोंमें पारिवारिक भावना उत्पन्न हुई, सत्याग्रहियोंको शुद्ध आश्रय-स्थान मिला, बेईमानी और दंभके लिए कोई गुंजाइश न रही तथा खरे और खोटे अलग अलग हो गये।

ऊपरके किस्सोंमें आहारके जिन प्रयोगोंका उल्लेख हुआ है, वे आरोग्यकी दृष्टिसे हुए थे। परन्तु टॉल्स्टॉय फार्म पर ही मैंने अपने ऊपर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया था। वह शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे किया गया था।

शाकाहारियोंके नाते हमें दूध लेनेका अधिकार है या नहीं, इस प्रश्न पर मैंने बहुत सोचा था और उसके बारेमें खूब पढ़ा भी था। लेकिन फार्ममें रहते रहते मेरे हाथमें कोई पुस्तक या अखबार आया था। उसमें मैंने पढ़ा था कि कलकत्तेमें गायों और भैंसोंके साथ क्रूर व्यवहार करके दूधकी एक एक बूंद उनके थनोंसे निकाल ली जाती है। उसमें मैंने फूकेकी निर्दय और भयंकर क्रियाका भी वर्णन पढ़ा था।

एक बार मैं श्री कैलनबैकके साथ दूध लेनेकी आवश्यकताके विषयमें चर्चा कर रहा था; उस समय मैंने फूकेकी क्रियाकी बात भी उनसे कही थी। दूधके त्यागके अन्य अनेक आध्यात्मिक लाभोंकी चर्चा भी मैंने की थी और यह भी कहा था कि दूधका त्याग किया जा सके तो अच्छा हो। श्री कैलनबैक अत्यन्त साहसी पुरुष थे, इसलिए वे दूधके त्यागका प्रयोग करनेके लिए तुरन्त तैयार हो गये। उन्हें मेरी बातें बहुत पसद आईं। उसी दिन हम दोनोंने दूध छोड़ दिया और अतमें हम दोनों केवल सूखे और ताजे फलों पर रहने लगे। पकाया हुआ भोजन करना भी हमने बन्द कर दिया। इस प्रयोगका अंत क्या हुआ इसका इतिहास देनेका यह स्थान नहीं है, लेकिन इतना मैं जरूर कह दू कि केवल फलाहार पर मैं पाच वर्ष तक रहा, परन्तु न तो मैंने उससे कमजोरीका अनुभव किया और न किसी तरहके रोगका अनुभव किया। इसके सिवा, उस अरसेमें काम करनेकी मुझमें संपूर्ण शक्ति बनी रही — वह भी इस हद तक कि एक दिनमें पैदल चल-कर मैं ५५ मीलकी यात्रा कर सका था। ४० मीलकी पैदल या तो मेरे लिए मामूली बात थी। मेरा दृढ विश्वास है कि इस प्रयोग आध्यात्मिक परिणाम बड़े सुन्दर आये थे। फलाहारके इस प्रयोगक मुझे कुछ हद तक त्याग करना पड़ा, इसका मुझे सदा ही दु:ख रहा है। और यदि मैं राजनीतिक कार्योंकी व्यस्ततासे थोड़ा मुक्त हो सकू, तो इस उमरमें आज भी मैं शरीरका खतरा मोल लेकर आध्यात्मिक परिणामोंकी जाच करनेके लिए दुबारा यह प्रयोग करू। डॉक्टरों और वैद्योंमें पाया जानेवाला आध्यात्मिक दृष्टिका अभाव भी मेरे मार्गमें बाधक सिद्ध हुआ है।

अब इन मधुर और महत्त्वपूर्ण सस्मरणोंका अन्त होना चाहिये। ऐसे कठिन प्रयोग आत्मशुद्धिकी लड़ाईके सम्बन्धमें ही किये जा सकते हैं। सत्याग्रहके अतिम युद्धके लिए टॉल्स्टॉय फार्म आध्यात्मिक शुद्धिका और तपश्चर्याका स्थान सिद्ध हुआ। यदि ऐसा स्थान प्राप्त न होता ा प्राप्त न किया गया होता, तो आठ वर्ष तक सत्याग्रहकी ल सकी होती या नहीं, अधिक पैसा मिल सका होता या —

अतमे जिन हजारों हिन्दुस्तानियोंने कौमकी लड़ाईमें भाग लिया उन्होंने भाग लिया होता या नहीं, इस विषयमें मुझे पूरी शंका है। हमने टॉल्स्टॉय फार्मका ढिंढोरा पीटनेका नियम नहीं रखा था, फिर भी जो फार्म दयाका पात्र नहीं था उसने लोगोंके दयाभावको जाग्रत किया। लोगोंको यह लगा कि जो काम करनेके लिए वे स्वयं तैयार नहीं हैं और जिसे वे स्वयं दुःखद और कठिन समझते हैं, वह काम फार्मवासी कर रहे हैं। १९१३ में फिरसे बड़े पैमाने पर जो लड़ाई छिड़ी, उसके लिए लोगोंका यह विश्वास बहुत बड़ी पूंजी सिद्ध हुआ। ऐसी पूंजीके लाभका कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता। और लाभ कब मिलता है, यह भी कोई कह नहीं सकता। लेकिन मुझे तो इस विषयमें कोई शंका ही नहीं कि लाभ अवश्य मिलता है; और पाठकोंको भी इस सम्बन्धमें कोई शंका नहीं रखनी चाहिये।

१२

गोखलेकी यात्रा – १

इस प्रकार टॉल्स्टॉय फार्ममें सत्याग्रही अपना जीवन बिता रहे थे और अपने नसीबमें जो कुछ भी लिखा हो उसके लिए तैयार हो रहे थे। लड़ाई कब पूरी होगी इसका उन्हें पता नहीं था और न उन्हें इसकी कोई चिन्ता थी। उनकी प्रतिज्ञा तो एक ही थी: खूनी कानूनके सामने सिर न झुकाना और ऐसा करते हुए जो भी दुःख सहने पड़ें उन्हें खुशी खुशी सहन करना। योद्धाके लिए युद्ध ही विजय होती है, क्योंकि उसीमें वह सुख मानता है। और युद्ध करना उसके हाथमें होनेसे हार-जीतका और सुख-दुःखका आधार स्वयं उसी पर होता है। अथवा यह कहें कि दुःख और पराजय जैसी चीज उसके शब्दकोशमें होती ही नहीं। गीताके शब्दोंमें कहें तो सुख-दुःख या हार-जीत उसके लिए समान हैं।

कोई कोई सत्याग्रही जेलमें जाते रहते थे। ऐसा अवसर खड़ा होता उस समय फार्मके बाहरी कार्योंको देखकर किसीको यह विश्वा नहीं हो सकता था कि वहां सत्याग्रही रहते हैं अथवा वे लड़ाईकी तैयारी कर रहे हैं। इसके बावजूद जब कोई नास्तिक या तत्कालीन मनुष्य फार्ममें आ जाता तब यदि वह मित्र होता तो हम पर तरस खाता और टीकाकार होता तो हमारी निन्दा करता था। वह कहता: "आप लोग आलसी हो गये हैं, इसलिए इस जंगलमें पड़े पड़े रोटी खाते हैं। आप जेलसे थक गये हैं, इसीलिए शहरकी जंजालसे छूटकर फलोंके इस सुन्दर बागमें रहते हैं और नियमित जीवन बिताकर आनंद भोग रहे हैं।" ऐसे टीकाकारोंको यह कैसे समझाया जाय कि सत्याग्रही कभी अनुचित रूपसे नैतिक नियमका भंग करके जेलमें जा ही नहीं सकते। उन्हें कौन समझाये कि सत्याग्रहीकी शांतिमें, उसके संयममें ही लड़ाईकी तैयारी समायी रहती है। उन्हें कौन यह समझाये कि सत्याग्रही मनुष्यकी सहायताका विचार तक छोड़ देता है और केवल ईश्वरका ही आश्रय लेता है। परिणाम भी ऐसा ही आया; ऐसी परिस्थितियां पैदा हुईं या ईश्वरने भेजी, जिनकी कल्पना भी किसीको नहीं हो सकती थी। ऐसी मदद भी आ पहुंची, जिसकी किसीको कल्पना नहीं थी। और, अनसोची परीक्षा भी सत्याग्रहियोंकी हुई तथा अंतमें दुनिया समझ सके ऐसी बाह्य विजय भी उन्हें मिली।

मैं गोखले और दूसरे भारतीय नेताओंसे विनती कर रहा था कि वे दक्षिण अफ्रीकामें आकर हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिका अध्ययन करें। लेकिन कोई आयेगा या नहीं, इसमें मुझे पूरी शंका थी। श्री रिच किसी भी भारतीय नेताको दक्षिण अफ्रीका भेजनेका प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन जब सत्याग्रहकी लड़ाई बिलकुल मंद पड़ गई हो तब वहां आनेकी हिम्मत भला कौन करता? सन् १९११ में गोखले इंग्लैण्डमें थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकामें चल रही हिन्दुस्तानियोंकी इस लड़ाईका अध्ययन तो किया ही था। हिन्दुस्तानकी केन्द्रीय धारासभामें उन्होंने इस प्रश्नकी चर्चायें भी की थीं और उसमें यह प्रस्ताव भी रखा था (२५ फरवरी, १९१०) कि गिरमिटियोंको नेटाल भेजना बन्द कर दिया जाय, जो

पास हुआ था। गोखलेके साथ मेरा पत्र-व्यवहार चलता ही था। वे भारत-मंत्रीके साथ इस विषयमें विचार-विमर्श भी कर रहे थे और दक्षिण अफ्रीका जाकर संपूर्ण प्रश्नका अध्ययन करनेकी बात भी भारत-मंत्रीसे कह चुके थे। भारत-मंत्रीने उनकी यह बात पसंद की थी। गोखलेने मुझे लिखा कि मैं उनकी छह सप्ताहकी यात्राकी योजना बना लूं, और दक्षिण अफ्रीका छोड़नेकी अंतिम तारीख भी लिख भेजी। हमारे आनंदका तो पार ही न रहा। उस समय तक किसी भी भारतीय नेताने दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रा नहीं की थी। दक्षिण अफ्रीकाकी मुलाकात तो क्या, हिन्दुस्तानके बाहर किसी भी उपनिवेशकी मुलाकात उन्होंने वहां बसे हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिकी जांच करनेके उद्देश्यसे नहीं की थी। इसलिए हम सबने गोखले जैसे महान नेताकी मुलाकातका महत्त्व समझ लिया। हमने निश्चय किया कि गोखलेका ऐसा सम्मान किया जाय जैसा किसी बादशाहका भी किसी दिन न हुआ हो। हमने यह भी निर्णय किया कि गोखलेको दक्षिण अफ्रीकाके सब मुख्य मुख्य शहरोंमें ले जाया जाय। सत्याग्रही और दूसरे हिन्दुस्तानी सभी प्रसन्न मनसे गोखलेके स्वागतकी तैयारियोंमें लग गये। इस स्वागतमें सम्मिलित होनेका निमंत्रण गोरोंको भी दिया गया और लगभग हर जगह गोरे भी उसमें सम्मिलित हुए। हमने यह भी निर्णय किया कि जहां जहां आम सभायें हों वहांके मेयर यदि हमारी विनती स्वीकार करें तो उन्हें ही सामान्यतः सभाका सभापति बनाया जाय और वहांके टाउन-हॉलका उपयोग संभव हो तो उसीमें सभा की जाय। रेलवे विभागकी इजाजत लेकर हमने मुख्य स्टेशनोंको भी सजाने-संवारनेकी जिम्मेदारी अपने सिर पर ली और अधिकतर स्टेशनोंको सजानेकी इजाजत हमें मिल भी गई। सामान्यतः ऐसी इजाजत नहीं दी जाती थी। लेकिन स्वागतकी हमारी भव्य तैयारियोंका प्रभाव सत्ताधारियों पर पड़ा और उन्होंने हमारे इस कार्यके साथ यथासंभव सहानुभूति दिखाई। उदाहरणके लिए, जोहानिसबर्गके रेलवे स्टेशनको सजानेमें हमने करीब १५ दिनका समय लिया होगा, क्योंकि वहां हमने एक सुन्दर चित्रोंवाला द्वार बनाया था, जिसका नकशा श्री कैलनबैक द्वारा तैयार किया गया था।

दक्षिण अफ्रीका कैसा देश है, इसका अनुभव गोखलेको इंग्लण्डमें ही हो चुका था। भारत-मंत्रीने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखलेकी प्रतिष्ठा, साम्राज्यमें उनका उच्च स्थान आदि तो बता दिया था; लेकिन जहाजी कंपनीके टिकटकी या जहाजमें उनके लिए एक कैबिनकी सुविधा करानेकी बात किसीको कैसे सूझती? गोखलेकी तबीयत नाजुक रहती थी, इसलिए उन्हें एक आरामदेह कैबिन चाहिये थी, एकान्त चाहिये था। लेकिन कंपनीका स्पष्ट उत्तर मिला कि ऐसी कोई कैबिन खाली नहीं है। मुझे ठीक स्मरण नहीं है कि इंडिया ऑफिसमें स्वयं गोखलेने इस बारेमें खबर भेजी या उनके किसी मित्रने। इंडिया ऑफिसकी ओरसे कंपनीके डाइरेक्टरको पत्र मिला। उसके परिणाम-स्वरूप जहां कोई कैबिन नहीं थी वहां गोखलेके लिए एक अच्छीसे अच्छी कैबिन तैयार हो गई! इस प्रारंभिक कड़वाहटका परिणाम मीठा आया। जहाजके कैप्टनसे भी गोखलेका सुन्दर स्वागत करनेकी सिफारिश की गई। इसलिए गोखलेकी समुद्री यात्राके दिन आनंद और शांतिमें बीते। गोखले जितने गंभीर थे उतने ही आनंदी और विनोदी भी थे। वे जहाजके खेलकूदमें काफी भाग लेते थे और उसके मुसाफिरोंमें अत्यन्त लोकप्रिय हो गये थे। यूनियन सरकारने गोखलेके समक्ष अपना मेहमान बननेका और सरकारकी ओरसे रेलवेका स्टेट सैलून स्वीकार करनेका प्रस्ताव रखा था। मेरे साथ सलाह-मशविरा करके उन्होंने स्टेट सैलून और प्रिटोरियामें सरकारी अतिथि-सत्कार स्वीकार करनेका निश्चय किया था।

गोखले २२ अक्तूबर, १९१२को केप टाउन बन्दरगाह पर उतरे। उनकी तबीयत मेरी आशासे कहीं अधिक नाजुक थी। वे विशेष प्रकारका भोजन ही कर सकते थे और अधिक परिश्रम उठा सकने जैसी उनकी तबीयत नहीं थी। मैंने जो कार्यक्रम बनाया था वह उनके लिए असह्य था। यथासंभव परिवर्तन तो मैंने उसमें किये ही। यदि परिवर्तन संभव ही न होता तो वे तबीयतका खतरा उठाकर भी सारा कार्यक्रम वैसा ही रखनेको तैयार थे। मैंने उनसे पूछे बिना इतना भारी कार्यक्रम बना डालनेकी जो मूर्खता की थी, उसके लिए मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। कुछ परिवर्तन मैंने जरूर किये, लेकिन बहुतसा कार्यक्रम तो जैसेका वैसा ही

रखना पडा। मैं यह समझ नहीं सका कि गोखलेको पूर्ण एकात देनेकी आवश्यकता है। ऐसा एकान्त देनेमें मुझे बड़ीसे बड़ी कठिनाईका सामना करना पडा। लेकिन मुझे सत्यके खातिर नम्रतासे इतना तो कहना ही चाहिये कि बीमारोंकी और गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषाका अभ्यास और शौक होनेके कारण, अपनी मूर्खताका ज्ञान होनेके बाद, मैं कार्यक्रममें जरूरी सुधार करके गोखलेको पर्याप्त एकात और शाति दे सका था। समूची यात्रामें उनके मत्रीका काम तो मैंने ही किया था। स्वयसेवक ऐसे थे जो आधी रातको भी उत्तर दे सकें। इसलिए मैं नही मानता कि सेवकोंके अभावके कारण गोखलेको कोई दुःख या असुविधा भोगनी पड़ी हो। इन स्वयसेवकोंमे श्री कैलनबैक भी एक थे।

हमारे मनमे इतना स्पष्ट था कि केप टाउनमे अच्छीसे अच्छी सभा होनी चाहिये। श्राइनर परिवारके बारेमे मैं प्रथम खंडमें लिख चुका हू। उस परिवारके प्रमुख पुरुष श्री डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे मैंने सभाका सभापति बननेकी प्रार्थना की, जिसे उन्होंने स्वीकार किया। विशाल सभा हुई। सभामें बहुत बड़ी सख्यामें हिन्दुस्तानी और गोरे आये थे। श्री श्राइनरने मधुर शब्दोंमे गोखलेका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। गोखलेका भाषण सक्षिप्त, परिपक्व, विचारोसे पूर्ण, दृढ़ और विनयपूर्ण था। हिन्दुस्तानी उससे प्रसन्न हुए। अपने भाषणसे गोखलेने गोरोंका मन जीत लिया। अतः यह बात कही जा सकती है कि जिस दिन गोखलेने दक्षिण अफ्रीकाकी भूमिमें प्रवेश किया उसी दिन उन्होंने उसके विविध प्रकारके लोगोंके हृदयोंमें प्रवेश किया।

केप टाउनसे गोखलेको जोहानिसबर्ग जाना था। दो दिनकी रेलयात्रा थी। सत्याग्रहकी लड़ाईका कुरुक्षेत्र ट्रान्सवाल था। केप टाउनसे जोहानिसबर्ग आते हुए ट्रान्सवालकी सीमा पर बड़ा स्टेशन क्लार्क्सडॉर्प पडता था। वहां हिन्दुस्तानियोंकी आबादी भी अच्छी सख्यामें थी। क्लार्क्सडॉर्पमें और जोहानिसबर्ग पहुचनेसे पहले मार्गमें आनेवाले ऐसे ही दूसरे शहरों —पोचेफस्ट्रूम और क्रूगर्सडॉर्प—में गोखलेको रुकना और सभाओंमें उपस्थित रहना था, इसलिए क्लार्क्सडॉर्पसे स्पेशियल ट्रेन की गई थी।

सभी शहरोंमें वहांके मेयर सभाके सभापति थे। किसी भी स्टेशन पर ट्रेन एक घटेसे ज्यादा नहीं रुकी। हमारी ट्रेन ठीक समय पर जोहानिसबर्ग पहुंच गई; एक मिनटका भी फर्क नहीं पड़ा। स्टेशन पर खास तरहके गालीचे बिछाये गये थे। एक मंच भी खड़ा किया गया था। जोहानिसबर्गके मेयर श्री एलिस और अन्य गोरे नागरिक भी उपस्थित थे। मेयरने गोखलेके निवास-कालमें अपनी कार उनके उपयोगके लिए दे दी थी। मानपत्र गोखलेको स्टेशन पर ही दिया गया था। मानपत्र उन्हें हर स्थान पर भेंट किये गये थे। जोहानिसबर्गका मानपत्र वहांकी खानसे निकले हुए सोनेकी हृदयके आकारवाली तख्ती पर खोदा गया था, यह तख्ती दक्षिण अफ्रीकाकी खास लकड़ी (रोडेशियन टीक) पर जड़ी हुई थी। लकड़ी पर हिन्दुस्तानके ताजमहलके तथा अन्य सुन्दर स्थानोंके दृश्य बड़ी खूबीसे खोदे गये थे। सबके साथ गोखलेका परिचय कराना, मानपत्र पढ़ना और उसका उत्तर देना तथा दूसरे मानपत्र स्वीकार करना — यह सारी क्रिया २० मिनटके भीतर पूरी कर ली गई थी। मानपत्र इतना छोटा था कि उसके पढ़नेमें पांच मिनटसे ज्यादा समय नहीं लगा होगा। गोखलेका उत्तर भी पांच मिनटसे अधिकका नहीं हो रहा होगा। स्वयंसेवकोंकी व्यवस्था इतनी सुन्दर थी कि प्लेटफार्म पर आशासे अधिक लोग नहीं आये थे। धांधलीका नाम भी न था। बाहर लोगोंकी भारी भीड़ जमा हो गई था। लेकिन किसीको भी आने-जानेमें कोई कठिनाई नहीं हुई।

गोखलेके रहनेकी व्यवस्था श्री कैलनबैककी जोहानिसबर्गसे पांच मील दूर एक पहाड़ी पर बनी सुन्दर कोठीमें की गई थी। वहांका दृश्य इतना भव्य और सुन्दर था, वहांकी शांति इतनी आनंददायक थी और वह कोठी सादी होते हुए भी इतनी कलापूर्ण थी कि गोखलेको वह बहुत ही पसंद आई। सबसे मिलनेकी व्यवस्था शहरमें की गई थी। इसके लिए एक खास ऑफिस किराये पर ले लिया गया था। उसमें एक कमरा गोखलेके आरामके लिए खास तौर पर रखा गया था, दूसरा एक कमरा मुलाकातियोंसे मिलनेके लिए था और तीसरा कमरा मुलाकातियोंके बैठनेके लिए था। जोहानिसबर्गके कुछ प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित नागरिकोंसे

निजी तौर पर मिलनेके लिए भी हम गोखलेको ले गये थे। वहाके प्रमुख गोरोंकी भी एक निजी सभा की गई थी, जिससे उन लोगोंके दृष्टिबिन्दुकी गोखलेको पूरी कल्पना हो सके। इसके सिवा, जोहानिसबर्गमें उनके सम्मानमे एक बड़ा भोजन-समारभ भी रखा गया था। उसमें ४०० लोगोंको निमत्रित किया गया था। आमत्रितोंमें लगभग १५० गोरे रहे होंगे। हिन्दुस्तानी लोग समारभमे टिकट लेकर ही आ सकते थे। एक टिकटकी कीमत एक गिन्नी रखी गई थी। इन टिकटोंकी कीमतसे ही भोजन-समारभका खर्च पूरा हुआ था। भोजन निरामिष था और मद्यपान-रहित था तथा स्वयसेवकोंने ही तैयार किया था। इन सब बातोंका यहा शब्दोंमें वर्णन करना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकामें हमारे हिन्दू और मुसलमान छुआछूतको नही जानते। वे एकसाथ बैठकर खाना खाते है। शाकाहारी हिन्दुस्तानी अपने शाकाहारकी रक्षा करते है। हिन्दुस्तानियोंमें कुछ ईसाई भी थे। उनके साथ भी मेरा अन्य हिन्दुस्तानियों जैसा ही गाढ़ परिचय था। ये ईसाई अधिकतर गिरमिटिया माता-पिताकी सन्तान होते हैं; और उनमे से अनेक होटलोंमे खाना बनाने या भोजन परोसनेका काम करते है। इन लोगोंकी मददसे ही इतने लोगोंका खाना तैयार किया जा सका था। भोजनमें लगभग १५ व्यजन रहे होंगे। दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके लिए यह बिलकुल नया और आश्चर्य-पूर्ण अनुभव था। इतने अधिक हिन्दुस्तानियोके साथ एक पक्तिमें खाने बैठना, निरामिष भोजन करना और मद्यपानके बिना चला लेना — ये तीनों अनुभव उनमे से अधिकतर गोरोके लिए नये थे; और अतिम दो अनुभव तो सभीके लिए नये थे।

इस समारभमे गोखलेने जो भाषण दिया वह दक्षिण अफ्रीकामें उनका सबसे बड़ा और सबसे महत्त्वपूर्ण भाषण था। वे पूरे ४५ मिनट तक बोले। उस भाषणकी तैयारीके लिए गोखलेने हमारी कड़ी परीक्षा ली थी। मुझसे उन्होने कहा कि स्थानीय लोगोंके दृष्टिबिन्दुकी अवगणना न करना और यथाशक्ति उनके साथ अपने दृष्टिबिन्दुका मेल बैठाना — यह उनका जीवन भरका नियम रहा है। और इसलिए उन्होंने मुझसे यह जानना चाहा कि मैं अपनी दृष्टिसे भाषणमें उनसे क्या

कहलवाना चाहता हूं। उन्होंने कहा कि यह चीज मुझे उन्हें लिखकर देनी चाहिये और साथमें शर्त यह लगा दी कि मेरे लिखे हुए मसौदेमें से एक भी वाक्य या विचारका वे अपने भाषणमें उपयोग न करें तो भी मुझे दुःख नहीं होना चाहिये। इसके सिवा, न तो मेरा मसौदा अत्यधिक लम्बा होना चाहिये और न अत्यधिक छोटा होना चाहिये; और फिर भी कोई महत्त्वपूर्ण बात उसमें छूटनी नहीं चाहिये। इन सब शर्तोंका पालन करके मुझे गोखलेके लिए नोट्स लिखने पड़ते थे। मैं यह कह दूं कि मेरी भाषाका उन्होंने बिलकुल ही उपयोग नहीं किया। और यह आशा मैं रखता भी कैसे कि अंग्रेजी भाषामें पारंगत गोखले मेरी भाषाका अपने भाषणमें कहीं भी उपयोग करेंगे? मैं ऐसा भी नहीं कह सकता कि अपने भाषणमें उन्होंने मेरे विचारोंका उपयोग किया। परन्तु मेरे विचारोंकी उपयोगिता उन्होंने स्वीकार की, इससे मैंने अपने मनको समझा लिया कि उन्होंने मेरे विचारोंका किसी न किसी रूपमें उपयोग किया होगा। लेकिन उनकी विचारसरणी कुछ इस प्रकारकी थी कि उन्होंने उसमें कहां हमारे विचारों-को स्थान दिया है अथवा दिया भी है या नहीं, इसका हमें पता ही नहीं चल पाता था। गोखलेके सभी भाषणोंके समय मैं उपस्थित था, लेकिन ऐसा एक भी अवसर मुझे याद नहीं है जब मैंने यह चाहा हो कि अमुक विचार उन्होंने प्रकट न किया होता या अमुक विशेषणका प्रयोग उन्होंने न किया होता तो अच्छा रहता। उनके विचारोंकी स्पष्टता, दृढ़ता, विनय आदिका श्रेय उनके अत्यधिक परिश्रम और सत्यपरायणताको था।

जोहानिसबर्गमें केवल हिन्दुस्तानियोंकी सभा तो होनी ही चाहिये थी। मेरा आरम्भसे ही सदा यह आग्रह रहा है कि या तो मैं मातृभाषामें बोलूं या राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीमें बोलूं। इस आग्रहके कारण दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानियोंके साथ मेरा संबंध सरल और नजदीकका हो गया था। इसलिए मैं चाहता था कि हिन्दुस्तानियोंके सामने गोखले भी हिन्दुस्तानी भाषामें बोलें तो ठीक हो। इस संबंधमें गोखलेके विचार मैं जानता था। टूटी-फूटी हिन्दीसे तो वे अपना काम चला ही नहीं सकते थे। इसलिए या तो वे मराठीमें बोलना पसन्द करते या अंग्रेजीमें। दक्षिण अफ्रीकामें मराठीमें बोलना उन्हें बनावटी मालूम हुआ। और यदि मराठीमें

बोलते तो भी गुजरातियों और उत्तर भारतके श्रोताओंके लिए उसक हिन्दुस्तानीमे अनुवाद करना ही पड़ता। तो फिर वे अग्रेजीमे ही क्यों बोलें? सौभाग्यसे मेरे पास ऐसा एक विशेष तर्क था, जिससे वे मराठीमे बोलना स्वीकार कर सकते थे। जोहानिसवर्गमें कोकणके अनेक मुसलमान थे। थोड़े महाराष्ट्री हिन्दू तो थे ही। उन सबकी गोखलेका भाषण मराठीमें सुननेकी बड़ी इच्छा थी। उन्होंने मुझसे कह रखा था कि मैं गोखलेसे मराठीमें बोलनेकी विनती करूं। मैंने गोखलेसे कहा: "आप मराठीमें बोलेंगे तो वे लोग प्रसन्न होंगे। आपकी मराठीका हिन्दुस्तानी अनुवाद मैं कर दूगा।" मेरी बात सुनकर गोखले खिलखिला कर हस पड़े। वे बोले. "तुम्हारे हिन्दुस्तानीके ज्ञानका तो मुझे अच्छा परिचय हो गया है। वह हिन्दुस्तानी तुम्हे ही मुबारक रहे। लेकिन अब तुम मेरी मराठीका हिन्दुस्तानीमे अनुवाद करना चाहते हो! बताओ तो भला, इतनी मराठी तुमने कहां सीख ली?" मैं बोला: "जो बात आपने मेरी हिन्दुस्तानीके बारेमें कही वही मेरी मराठीके बारेमे समझिये। मराठीका एक शब्द भी मैं बोल नही सकता। लेकिन जिस विषयका मुझे ज्ञान है उस पर यदि आप मराठीमे बोलेंगे, तो मैं उसका भावार्थ अवश्य ही समझ लूगा। आप देखेंगे कि मैं लोगोंके सामने उसका अनर्थ तो नही ही करूंगा। मराठी अच्छी तरह जाननेवाले दूसरे लोगोको मैं आपकी मराठीका अनुवाद करनेका काम जरूर सौप सकता हू। लेकिन इसे आप पसद नही करेंगे। इसलिए मुझसे काम चला लीजिये और मराठीमें ही बोलिये। कोकणी और महाराष्ट्री भाइयोंकी तरह मुझे भी आपका मराठी भाषण सुननेकी बड़ी अभिलाषा है।" "तुम सदा अपने ही मनकी बात करोगे। यहा तुम्हारे आसरे पड़ा हू, इसलिए मराठीमे बोले सिवा दूसरा कोई चारा नही है।" ऐसा कह कर उन्होंने मुझे खुश कर लिया। उसके बाद ऐसी सभाओमें ठेठ झांझीबार तक वे मराठीमें ही बोले; और मैं उनका विशेष रूपसे नियुक्त किया हुआ अनुवादक बना रहा। यथा-संभव मातृभाषामें ही बोलना और व्याकरण-शुद्ध अंग्रेजीकी अपेक्षा व्याकरण-रहित टूटी-फूटी हिन्दुस्तानीमे बोलना अधिक अच्छा है — यह बात मैं गोखलेके गले उतार सका था या नहीं, मैं नहीं जानता। लेकिन

इतना मैं अवश्य जानता हूं कि दक्षिण अफ्रीकामें तो केवल मुझे खुश करनेके लिए ही वे मराठीमें बोले थे। बोलनेके बाद उसका जो परिणाम आया वह उन्हें भी अच्छा लगा, यह मैं देख सका था। जहां सिद्धान्तका प्रश्न न हो वहां सेवकोंको खुश करना अच्छी बात है, यह गोखलेने दक्षिण अफ्रीकामें अनेक अवसरों पर अपने व्यवहारसे सिद्ध कर दिखाया था।

१३

गोखलेकी यात्रा — २

जोहानिसबर्गसे हमें प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामें यूनियन सरकारकी ओरसे गोखलेको सरकारी अतिथि बननेका निमंत्रण मिला था। उसके अनुसार गोखलेको ट्रान्सवाल होटलमें ठहरना था। वहां उन्हें यूनियन सरकारके मंत्रि-मंडलसे मिलना था। उसमें जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे। जैसा मैं पहले बता चुका हूं, मैंने कार्यक्रम इस प्रकार बनाया था कि प्रतिदिनके कार्योंकी सूचना मैं गोखलेको या तो उसी दिन सुबह करता था या वे पूछते तो पिछली रातको कर देता था। मंत्रि-मंडलसे मिलनेका कार्य बहुत बड़ी जिम्मेदारीका कार्य था। हम लोगोंने यह निश्चय कर लिया था कि मुझे गोखलेके साथ नहीं जाना चाहिये, जानेका प्रस्ताव भी नहीं रखना चाहिये। मेरी उपस्थितिसे मंत्रि-मण्डल और गोखलेके बीच किसी हद तक पर्दा-सा पड़ जाता; वह जिसे स्थानीय हिन्दुस्तानियोंकी और मेरी भी गलती मानता हो, उसे दिल खोलकर बता नहीं पाता। मंत्रि-मंडल अपनी भावी नीतिके बारेमें गोखलेसे कुछ कहना चाहता तो वह भी मेरी उपस्थितिके कारण खुले मनसे नहीं कह पाता। परन्तु इससे गोखलेकी जिम्मेदारी दुगुनी हो जाती थी। यदि गोखलेसे तथ्यकी कोई गलती हो जाय या मंत्रि-मंडल कोई नया ही तथ्य गोखलेके सामने प्रस्तुत करे और गोखलेके पास उसका कोई उत्तर न हो या हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे किसी बातकी स्वीकृति देना आवश्यक हो जाय, तब मेरी उपस्थितिके अभावमें अथवा

दक्षिण अफ्रीकाके किसी भी जिम्मेदार हिन्दुस्तानी नेताकी उपस्थितिके अभावमे क्या किया जाय, यह एक समस्या हो गई। परन्तु गोखलेने ही यह समस्या तुरन्त हल कर दी। उन्होंने कहा कि मैं उनके लिए आदिसे अंत तक हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिका एक संक्षिप्त विवरण तैयार कर दूं। हिन्दुस्तानी किस हद तक जानेको तैयार है, यह भी मैं उसमें लिख दूं। उसके बाहरकी कोई भी बात मुलाकातमे उठेगी, तो वे अपना अज्ञान स्वीकार कर लेंगे। यह निर्णय गोखलेने किया और इस निर्णयके साथ ही वे निश्चिन्त हो गये। अब बात केवल ऐसा सार तैयार करनेकी और गोखलेके उसे पढ लेनेकी रही। पढनेके लिए आवश्यक समय तो मैंने बचने ही नही दिया था। मैं चाहे जितना छोटा सार तैयार करूं, फिर भी चार उपनिवेशोंके हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिका अठारह वर्षोंका इतिहास १० से २० पृष्ठोंमे लिखे बिना मैं कैसे दे सकता था? इसके सिवा, वह सार पढ़नेके बाद उनके मनमें अनेक सवालोंका उठना स्वाभाविक था। परन्तु गोखलेकी स्मरण-शक्ति जितनी तेज थी उतनी ही अगाध उनमें परिश्रम करनेकी शक्ति भी थी। वे सारी रात जागे तथा पोलाकको और मुझे भी जगाया। उन्होंने एक एक बातकी पूरी जानकारी प्राप्त की; और वे सारी बाते अच्छी तरह समझ गये है या नही, इसका निश्चय भी उन्होने हर प्रश्न पर अपने विचार मेरे सामने रखकर कर लिया। अंतमे उन्हें संतोष हुआ। मैं ` तो निर्भय था।

तो आवश्यकता हो तब सरकारसे लड़ लेना है और हमारी लड़ाई न्यायकी है यह सिद्ध कर देना है। इस सिद्धिमें आपको दिया हुआ यह वचन हमारे लिए बड़ा लाभकारी होगा। और यदि लड़ना ही पड़ा तो भी लड़नेमें यह वचन हमें दुगुना बल प्रदान करेगा। लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि अधिक हिन्दुस्तानियोंके जेलमें गये बिना मैं एक सालके भीतर हिन्दुस्तान लौट सकता हूं।"

इस पर गोखले बोले, "मैं जो कुछ तुमसे कहता हूं उसमें कोई फर्क पड़नेवाला है ही नहीं। जनरल बोथाने मुझे यह वचन दिया है कि खूनी कानून रद होगा और तीन पौंडका कर हटा दिया जायेगा। तुम्हें बारह महीनेमें हिन्दुस्तान आना ही पड़ेगा। तुम्हारा एक भी बहाना मैं नहीं सुनूंगा।"

ट्रान्सवालमें गोखले डरबन, मेरित्सबर्ग आदि शहरोंमें गये। वहां भी वे अनेक गोरोंसे मिले। किम्बरलीकी हीरेकी खदानें भी उन्होंने देखीं। किम्बरली और डरबनमें भी स्वागत-समितियोंने जोहानिसबर्गके जैसे भोजन-समारंभोंका आयोजन किया था। उनमें बहुतसे गोरे उपस्थित रहे थे। इस प्रकार हिन्दुस्तानियों और गोरोंके हृदय जीतकर गोखलेने १७ नवम्बर, १९१२को दक्षिण अफ्रीकाका किनारा छोड़ा। मैं और कैलनबैक उनकी इच्छासे उन्हें झांझीबार तक बिदा करने गये थे। जहाजमें हमने उनके लिए अनुकूल आहारकी व्यवस्था की थी। मार्गमें डेलागोआ बे, इन्हामबेन, झांझीबार वगैरा बन्दरगाहों पर उनका खूब सम्मान किया गया था।

जहाज पर हमारे बीच केवल हिन्दुस्तानकी अथवा उसके प्रति हमारे धर्मकी ही बातें होती थीं। गोखलेकी हर बात और हर शब्दमें उनकी कोमल भावना, उनकी सत्य-परायणता और उनका स्वदेशाभिमान झलक उठता था। मैंने देखा कि जहाज पर वे जो खेल खेलते थे, उनमें भी खेलकी अपेक्षा हिन्दुस्तानकी सेवाका भाव ही अधिक होता था। खेलोंमें भी उनका ध्येय संपूर्णता प्राप्त करना ही होता था।

जहाज पर हमें शांतिसे बातें करनेका काफी समय मिलता था। उन्होंने उन बातोंमें गोखलेने मुझे हिन्दुस्तानके लिए तैयार किया था। उन्होंने हिन्दुस्तानके प्रत्येक नेताके चरित्रका विश्लेपण मेरे सामने कर दिया था

वह विश्लेषण इतना यथार्थ था कि उन नेताओंके बारेमें आगे चलकर मुझे जो अनुभव हुआ उसमें और गोखलेके आलेखनमें शायद ही कोई फर्क मैंने पाया।

गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रामें उनके साथ स्थापित हुए मेरे सबधके विषयमें ऐसे अनेको पवित्र सस्मरण है, जिन्हें मै यहा दे सकता हू, परन्तु सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका सबध न होनेसे मुझे अनिच्छासे अपनी लेखनीको रोकना पड़ता है। झाझीबारमें गोखलेसे हमारा जो वियोग हुआ, वह मेरे और कैलनबैकके लिए अत्यन्त दु:खदायी था। परतु देहधारियोंके निकटसे निकटके सबधोंका भी किसी दिन अंत होता ही है, ऐसा समझ कर कैलनबैकने और मैंने सन्तोष माना और दोनोंने यह आशा रखी कि गोखलेकी भविष्य-वाणी सफल होगी और हम दोनों एक वर्षके भीतर हिन्दुस्तान जा सकेंगे। परन्तु यह संभव न हुआ।

फिर भी गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्राने हमें अधिक दृढ़ बनाया और जब कौमकी लड़ाई पुन: तीव्र रूपमें आरभ हुई उस समय इस यात्राका महत्त्व और उसकी आवश्यकता हमारी समझमें अधिक आई। यदि गोखलेने दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रा न की होती और यूनियन सरकारके मत्रि-मडलसे वे न मिले होते, तो तीन पौडके करको हम लड़ाईका विषय बना ही नही सकते थे। यदि खूनी कानून रद होनेके कारण सत्याग्रहकी लड़ाई बद हो गई होती, तो तीन पौडके करके बारेमें हमें नया सत्याग्रह करना पड़ता और उसके फलस्वरूप अपार दु:ख भोगना पड़ता। इतना ही नही, लोग इसके लिए तुरन्त तैयार हो सके होते या नही, इस विषयमें भी शका ही थी। तीन पौडका कर रद कराना स्वतत्र हिन्दुस्तानियोका कर्तव्य था। उसे रद करानेके बारेमे अरजिया देना, प्रतिनिधि-मडल भेजना आदि सारे वैधानिक उपाय किये जा चुके थे। ठेठ १८९५ से यह कर चुकाया जा रहा था। लेकिन घोरसे घोर दु:ख भी जब लम्बे समय तक सहना पड़ता है, तो लोग उसके आदी हो जाते है; और फिर उसका विरोध करनेका धर्म उन्हें समझाना कठिन हो जाता है तथा उस दु:खकी घोरता दुनियाको समझाना भी उतना ही कठिन हो जाता है। गोखलेको मत्रि-मडलने जो वचन दिया था, उसने

सत्याग्रहियोंका मार्ग सरल बना दिया। अब या तो सरकार अपने वचनके अनुसार तीन पौंडका कर रद करे और अगर रद न करे तो सरकारका यह वचन-भंग ही लड़ाईका प्रबल कारण बन जाय — ऐसी स्थिति खड़ी हो गई। और हुआ भी ऐसा ही। सरकारने न केवल एक वर्षके भीतर तीन पौंडका कर रद नहीं किया, बल्कि स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा भी कर दी कि यह कर रद नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार गोखलेकी यात्राने तीन पौंडका कर सत्याग्रह द्वारा रद करानेमें हमें सहायता मिली; इतना ही नहीं बल्कि अपनी इस यात्राके कारण गोखले दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके विशिष्ट ज्ञाताके रूपमें स्वीकार किये गये। दक्षिण अफ्रीकाके बारेमें कहे जानेवाले उनके शब्दोंका महत्त्व भी बढ़ गया और दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें व्यक्तिगत ज्ञान रखनेके कारण इस बातको वे अधिक समझ सके, और हिन्दुस्तानको समझानेमें भी अधिक समर्थ हुए, कि उनके बारेमें हिन्दुस्तानको क्या करना चाहिये। जब फिरसे कौमकी लड़ाई शुरू हुई तब हिन्दुस्तानसे धनकी वर्षा हुई तथा लॉर्ड हार्डिंगने सत्याग्रहियोंके प्रति अपनी सहानुभूति दिखाकर उन्हें प्रोत्साहन दिया (दिसम्बर १९१३)। श्री एन्ड्रूज और श्री पियर्सन दक्षिण अफ्रीका आये। यह सब गोखलेकी यात्राके बिना संभव नहीं होता।

सरकारने अपना वचन कैसे भंग किया और उसके बाद क्या हुआ, यह अगले प्रकरणमें दिया जायगा।

१४

वचन-भंग

दक्षिण अफ्रीकाकी सत्याग्रहकी लड़ाईमें इतनी अधिक सावधानीसे काम लिया गया कि प्रचलित नीतिके विरुद्ध एक भी कदम नहीं उठाया जाता था। इतना ही नहीं किन्तु यह बात भी ध्यानमें रखी जाती थी कि अनुचित रीतिसे सरकारको सताया नहीं जा सकता। उदाहरणके लिए, खूनी कानून केवल ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियों पर ही लागू होता था, इसलिए सत्याग्रहकी लड़ाईमें केवल ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंको ही भरती किया जाता था। नेटाल, केप कॉलोनी आदिसे हिन्दुस्तानियोंको भरती करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया था; इसके विपरीत, वहांके हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे आये हुए प्रस्तावोंको अस्वीकार कर दिया जाता था। और लड़ाईकी मर्यादा भी खूनी कानूनको रद कराने तक ही निश्चित कर दी गई थी। इस मर्यादाको न तो गोरे लोग समझ पाते थे और न हिन्दुस्तानी समझ पाते थे। लड़ाईके आरंभ-कालमें हिन्दुस्तानी ऐसी मांग किया करते थे कि यदि लड़ाई शुरू करनेके बाद खूनी कानूनके सिवा दूसरे दुःखोंको भी लड़ाईके हेतुओंमें सम्मिलित किया जा सके, तो क्यों न किया जाय? मैंने धैर्यके साथ उन लोगोंको समझाया कि ऐसा करनेमें सत्यका भंग होता है; और जिस लड़ाईमें सत्यका ही आग्रह हो वहां सत्यके भंगकी बात कैसे सोची जा सकती है? शुद्ध लड़ाईमें लड़ते लड़ते योद्धाओंका बल बढ़ता दिखाई दे, तो भी आरंभमें निश्चित किये गये उद्देश्यके आगे वे कभी जा ही नहीं सकते। इसके विपरीत, जिस उद्देश्यसे लड़ाई आरंभ की गई हो उस उद्देश्यका लड़नेकी शक्ति कुछ समय बाद क्षीण हो जाने पर भी त्याग नहीं किया जा सकता। इन दोनों सिद्धान्तोंका दक्षिण अफ्रीकामें संपूर्ण पालन किया गया था। लड़ाईके आरंभमें जिस बलके आधार पर लक्ष्य निश्चित किया गया था वह बल बादमें झूठा सिद्ध हुआ, यह हम देख चुके हैं; फिर भी बाकी रहे

मुट्ठीभर सत्याग्रही अपनी लड़ाईको छोड़ नहीं सके। इस प्रकार लड़ना अपेक्षाकृत सरल था, परन्तु बलमें वृद्धि होने पर भी लक्ष्यमें वृद्धि न करना अधिक कठिन था और उसमें अधिक संयमकी आवश्यकता थी। ऐसे प्रलोभन दक्षिण अफ्रीकामें अनेक स्थानों पर हमारे सामने आये, परन्तु मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि हमने एक भी अवसर पर उनका लाभ नहीं उठाया। इसीलिए मैंने अनेक बार कहा है कि सत्याग्रहीके लिए एक ही निश्चय होता है। वह न तो उस निश्चयको घटा सकता है, न बढ़ा सकता है, उस निश्चयमें न तो क्षयकी गुंजाइश होती है और न वृद्धिकी। मनुष्य अपने लिए जो मापदंड निश्चित करता है, उसी मापदण्डसे जगत भी उसका मूल्य आंकने लगता है। ऐसी सूक्ष्म नीतिका सत्याग्रही दावा करते हैं यह सरकारने जाना तब उसने सत्याग्रहियोंको उनके रचे हुए मापदंडसे ही आंकना शुरू कर दिया, यद्यपि नीतिके ऐसे किसी भी सिद्धान्तसे वह अपनेको बंधी हुई नहीं मानती थी। और दो-चार बार उसने सत्याग्रहियों पर नीति-भंगका आक्षेप भी लगाया था। खूनी कानूनके बाद हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध जो नये कानून बनाये जायं उनका समावेश लड़ाईके लक्ष्यमें किया जा सकता है, यह किसी बालकके भी समझमें आने जैसी बात है। फिर भी जब ट्रान्सवालमें नये प्रवेश करनेवाले हिन्दुस्तानियों पर नया अंकुश लगाया गया और उसे लड़ाईके लक्ष्यमें सम्मिलित किया गया, तब सरकारने कौम पर सत्याग्रहमें नई बातें शामिल करनेका आक्षेप लगाया। यह आक्षेप सर्वथा अनुचित था। यदि सरकार नये प्रवेश करनेवाले हिन्दुस्तानियों पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाये, जो पहले नहीं थे, तो उन्हें भी लड़ाईमें शरीक करनेका अधिकार हमें होना चाहिये था। इसीलिए सोराबजी और दूसरे लोग ट्रान्सवालमें दाखिल हुए, यह हम देख चुके हैं। सरकार तो इस बातको बरदाश्त नहीं कर सकती थी, लेकिन निष्पक्ष लोगोंको इस कदमका औचित्य समझानेमें मुझे जरा भी कठिनाई नहीं हुई।

गोखलेके चले जाने पर ऐसा अवसर फिर खड़ा हुआ। गोखलेकी धारणा थी कि तीन पौंडका कर एक वर्षके भीतर रद हो ही जायगा; और उनके जानेके बाद यूनियन पार्लियामेन्टकी जो बैठक होगी

इस करको रद करनेका कानून पेश होगा। इसके बदले जनरल स्मट्सने पार्लियामेन्टकी उस बैठकमें यह घोषणा की कि नेटालके गोरे यह कर रद करनेके लिए तैयार नही है, इसलिए दक्षिण अफ्रीकाकी सरकार तीन पौंडका कर रद करनेका कानून पास करनेमें असमर्थ है। वस्तुतः ऐसा कुछ नही था। यूनियन पार्लियामेन्टमें चार उपनिवेशोंके प्रतिनिधि थे, इसलिए केवल नेटालके सदस्योंकी बात उसमें नही चल सकती थी। इसके सिवा, मन्त्रि-मण्डल द्वारा प्रस्तुत किया हुआ बिल पार्लियामेन्ट अस्वीकार करे वहा तक जनरल स्मट्सको उसे ले जाना चाहिये था। परन्तु जनरलने इसमे से कुछ नही किया। इसलिए हमें इस क्रूर करको भी लड़ाईके कारणोंमें सम्मिलित करनेका शुभ अवसर आसानीसे मिल गया। इसके दो कारण हमारे पास थे: (१) लड़ाई चल रही हो उस बीच सरकारकी ओरसे दिया गया कोई वचन यदि सरकार भंग करे, तो उस वचन-भंगको चल रहे सत्याग्रहमें सम्मिलित किया जा सकता है। (२) ऐसे वचन-भंगसे हिन्दुस्तानके गोखले जैसे प्रतिनिधिका अपमान होता है और गोखलेका अपमान समस्त हिन्दुस्तानका अपमान माना जायगा; और ऐसा अपमान सहन नही किया जा सकता। यदि केवल पहला ही कारण होता और सत्याग्रहियोमे इतनी शक्ति न होती, तो तीन पौडका कर रद करानेके लिए सत्याग्रहके शस्त्रका उपयोग करना वे छोड़ देते। लेकिन हिन्दुस्तानका अपमान हो यह बात किसी भी स्थितिमें बरदाश्त नही की जा सकती थी। इसलिए हमने माना कि तीन पौडके करको सत्याग्रहकी लड़ाईमे सम्मिलित करना सत्याग्रहियोंका धर्म है। और जब तीन पौंडके करको इस लड़ाईमें स्थान मिल गया तब गिरमिटिया हिन्दुस्तानियोंको भी सत्याग्रहमें भाग लेनेका अवसर मिला। पाठकोंको यह बात ध्यानमे रखनी चाहिये कि आज तक गिरमिटिया हिन्दुस्तानि-योंको लड़ाईसे दूर ही रखा गया था। इस तरह एक ओर लड़ाईकी जिम्मेदारीका बोझ बढ़ा और दूसरी ओर लड़नेवाले सैनिकोंकी सख्या बढ़नेका भी अवसर दिखाई दिया।

गिरमिटिया हिन्दुस्तानियोंमें आज तक सत्याग्रहकी जरा भी चर्चा नही की गई थी; तब फिर सत्याग्रहकी तालीम तो उन्हें दी ही कैसे

जाती ? वे निरक्षर होनेके कारण 'इंडियन ओपीनियन' या दूसरे अखबार पढ़ नहीं सकते थे। ऐसा होते हुए भी मैंने देखा कि गरीब गिरमिटिया लोग सत्याग्रहका निरीक्षण कर रहे थे, जो कुछ हो रहा था उसे समझ रहे थे और उनमें से कुछ लोगोंको सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल न हो पानेके कारण दुःख भी होता था। परन्तु जब यूनियन मंत्रि-मंडलने अपना दिया हुआ वचन भंग कर दिया और तीन पौंडके करको भी लड़ाईके हेतुओंमें शरीक कर लिया गया, उस समय मैं बिलकुल नहीं जानता था कि उनमें से कौन कौन लोग लड़ाईमें भरती होंगे।

सरकारके वचन-भंगकी बात मैंने गोखलेको लिखी। उन्हें अतिशय दुःख हुआ। मैंने उन्हें लिखा कि आप सर्वथा निर्भय रहें, हम मरण-पर्यन्त लड़ेंगे और तीन पौंडका कर रद्द करायेंगे। केवल इतना ही हुआ है कि एक वर्षके भीतर मेरे भारत लौटनेकी बात टल गई है और बादमें मैं कब आ सकूंगा यह कहना असंभव हो गया है। लेकिन गोखले तो अंकशास्त्री थे। उन्होंने मुझसे सत्याग्रहके अधिकसे अधिक और कमसे कम सैनिकोंके नाम मांगे। जहां तक इस समय मुझे याद है, मैंने उन्हें अधिकसे अधिक ६५ या ६६ नाम भेजे थे और कमसे कम १६ नाम भेजे थे। मैंने गोखलेको यह भी लिखा था कि इतनी छोटीसी संस्थाके लिए मैं हिन्दुस्तानसे पैसेकी मददकी अपेक्षा नहीं रखूंगा। मैंने उनसे यह प्रार्थना भी की कि हमारे विषयमें वे निश्चिन्त रहें और अपने शरीर पर अधिक जोर न डालें। मुझे अखबारोंसे और अन्य स्रोतोंसे यह पता चला था कि दक्षिण अफ्रीकासे बम्बई लौटनेके बाद गोखले पर यूनियन सरकारके साथ हुई बातचीतमें कमजोरी वगैरा दिखानेके आक्षेप लगाये गये थे। इसलिए मैं चाहता था कि गोखले हमारे लिए धन भेजनेकी कोई भी हलचल हिन्दुस्तानमें न करें। परन्तु गोखलेका मुझे यह कड़ा उत्तर मिला: "जिस प्रकार आप लोग दक्षिण अफ्रीकामें अपने धर्मको समझते हैं, उसी प्रकार हिन्दुस्तानमें हम भी अपने धर्मको कुछ तो समझते ही होंगे। हमारे लिए क्या करना उचित है या अनुचित है, आपको नहीं कहने देंगे। मैं तो केवल वहांकी स्थिति जा... था। हमारी ओरसे क्या होना चाहिये, इस विषयमें आपकी

नहीं मागी थी।" गोखलेके इन शब्दोंका भेद मैं समझ गया। उसके बाद इस विषयमें कभी एक शब्द न तो मैंने कहा और न उन्हें लिखा। उसी पत्रमें गोखलेने मुझे सान्त्वना और चेतावनी भी दी थी। जब इस प्रकार सरकारने वचन-भग किया तब उन्हें भय लगा कि सत्याग्रहकी लडाई लवी चलेगी और इस बातकी शंका हुई कि मुट्ठीभर सत्याग्रही कब तक सरकारसे टक्कर ले सकेंगे। यहां दक्षिण अफ्रीकामें हमने लड़ाईकी तैयारियां शुरू कर दीं। इस लड़ाईमें शांतिसे बैठना तो संभव ही नहीं था। हमने यह बात भी समझ ली थी कि सत्याग्रहियोंको लम्बी जेल भोगनी पड़ेगी। हमने टॉल्स्टॉय फार्म बन्द करनेका निर्णय किया। कुछ परिवार अपने पुरुष-वर्गके जेलसे छूटनेके बाद अपने अपने घर चले गये। जो बच गये उनमें मुख्यतः फिनिक्सवासी थे। इसलिए अब आगे फिनिक्सको सत्याग्रहियोंका केन्द्र बनानेका निश्चय किया गया। फिनिक्सको केन्द्र बनानेका निश्चय इसलिए भी किया गया कि तीन पौंडकी लड़ाईमें जो गिरमिटिया हिन्दुस्तानी भाग लेंगे, उनसे मिलना-जुलना भी नेटालमें रखे गये स्थानसे अधिक सुविधाजनक होगा।

लड़ाई छेड़नेकी हमारी तैयारियां अभी चल ही रही थी कि इतनेमें एक नया विघ्न खड़ा हो गया, जिसकी वजहसे स्त्रियोंको भी लड़ाईमें भाग लेनेका अवसर मिल गया। कुछ वीर स्त्रियोंने लड़ाईमें भाग लेनेकी माग भी की थी। और जब फेरीके परवाने दिखाये बिना फेरी लगाकर लोग जेलमें जाने लगे तब फेरीवालोंकी स्त्रियोंने भी जेलमें जानेकी इच्छा प्रकट की थी। परन्तु उस समय विदेशमें स्त्रियोंको जेल भेजना हम सबको अनुचित लगा। उस समय स्त्रियोंको जेल भेजनेका कोई कारण भी दिखाई नहीं दिया; और अपनी बात कहूं तो उस समय स्त्रियोंको जेल भेजनेकी मेरी हिम्मत भी नहीं थी। साथ ही हमें ऐसा भी लगा कि जो कानून मुख्यतः पुरुषों पर ही लागू होता है, उसे रद्द करानेमें स्त्रियोंकी आहुति देना पुरुषोंके लिए बदनामीकी बात होगी। परन्तु अब एक घटना ऐसी घटी, जिससे विशेषतः स्त्रियोंका अपमान होता था; और उस अपमानको दूर करानेमें स्त्रियोंकी आहुति देना भी हमें गलत नहीं मालूम हुआ।

१५

जब विवाह विवाह नहीं माना गया

दक्षिण अफ्रीकामें एक ऐसी घटना घटी, जिसकी किसी भी हिन्दुस्तानीको कल्पना नहीं थी और जिसके द्वारा ईश्वर मानो अदृश्य रूपमें हिन्दुस्तानियोंकी जीतकी सामग्री तैयार कर रहा था तथा दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंका अन्याय अधिक स्पष्ट रूपमें प्रकट करना चाहता था। हिन्दुस्तानसे अनेक विवाहित लोग दक्षिण अफ्रीका आये थे और कुछने वहीं विवाह किये थे। हिन्दुस्तानमें सामान्य विवाहोंको रजिस्टर करानेका कोई कानून नहीं है। धार्मिक विधि ही ऐसे विवाहोंमें पर्याप्त मानी जाती है। दक्षिण अफ्रीकामें भी हिन्दुस्तानियोंके लिए वही प्रथा ठीक मानी जानी चाहिये थी, और पिछले ४० वर्षसे हिन्दुस्तानी दक्षिण अफ्रीकामें बसते आये थे, लेकिन कभी भी हिन्दुस्तानके अलग अलग धर्मोंके अनुसार हुए विवाह रद नहीं माने गये थे। परन्तु इस समय अदालतमें एक मुकदमा ऐसा आया, जिसमें केप सुप्रीम कोर्टके न्यायाधीश श्री सर्लने १४ मार्च, १९१३ को यह निर्णय दिया कि दक्षिण अफ्रीकाके कानूनमें ईसाई धर्मके अनुसार हुए विवाहके सिवा — विवाह-अधिकारीके ऑफिसमें रजिस्टर कराये हुए विवाहके सिवा — दूसरे किसी विवाहके लिए स्थान नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दू, मुस्लिम, पारसी आदि धर्मोंकी विधिके अनुसार हुए विवाह न्यायाधीशके उपर्युक्त भयंकर निर्णयसे दक्षिण अफ्रीकामें रद माने गये और इसलिए उस कानूनके अनुसार दक्षिण अफ्रीकामें असंख्य विवाहित हिन्दुस्तानी स्त्रियोंका दरजा अपने पतियोंकी धर्मपत्नीका न रहकर उपपत्नियोंका हो गया तथा उन स्त्रियोंकी सन्तानको अपने पिताकी विरासत पानेका भी अधिकार नहीं रह गया। इस स्थितिको न तो स्त्रियां सहन कर सकती थीं, न पुरुष सहन कर सकते थे। दक्षिण अफ्रीकामें बसे हुए हिन्दुस्तानियोंमें इससे भारी खलबली मच गई। अपने स्वभावके अनुसार मैंने सरकारसे पूछा कि क्या वह न्यायाधीशके इस निर्णयको स्वीकार

करेगी? या न्यायाधीश द्वारा किया गया कानूनका अर्थ सच्चा हो त भी वह अनर्थ है, ऐसा समझ कर नया कानून पास करेगी और उस द्वारा हिन्दू, मुसलमान आदिकी धार्मिक विधियोंके अनुसार हुए विवाहोंक कानूनी मानेगी? सरकारकी वृत्ति उस समय मेरी बात सुननेकी नही थी उसका उत्तर 'नहीं' मे आया।

न्यायाधीशके इस निर्णयके विरुद्ध अपील की जाय या नहीं, इसकी चर्चा करनेके लिए सत्याग्रह मण्डलकी एक सभा हुई। चर्चाके अतमे सबने यह फैसला किया कि ऐसे मामलेमे अपील हो ही नही सकती। यदि अपील करनी हो तो सरकार करे। अथवा सरकार चाहे और वह अपने वकील (एटर्नी जनरल) द्वारा खुले रूपमें हिन्दुस्तानियोंका पक्ष ले, तो ही हिन्दुस्तानी अपील कर सकते हैं। ये शर्तें पूरी न हों तो अपील करनेका अर्थ होगा एक प्रकारसे हिन्दू, मुसलमान आदि विवाहोंके रद होनेकी बात बरदाश्त कर लेना। इसके सिवा, ऐसी अपील करनेके बाद भी यदि उसमें हार हो, तब तो सत्याग्रह करना अनिवार्य हो जायगा। ऐसी स्थितिमें इस तरहके असह्य अपमानके विरुद्ध अपील करनेका प्रश्न ही नही रह जाता।

अब समय ऐसा आ गया था जब शुभ मुहूर्त या शुभ तिथिकी प्रतीक्षा की ही नही जा सकती थी। स्त्रियोंका अपमान होनेके बाद धैर्य कैसे रखा जाता? कम या अधिक जितने भी सत्याग्रही मिलें उन्हीके साथ हमने तीव्र सत्याग्रह करनेका निश्चय किया। अब स्त्रियोंको लड़ाईमे भाग लेनेसे रोका नही जा सकता था। यही नही, हमने स्त्रियोंको लडाईमें भरती होनेका निमंत्रण देनेका निश्चय किया। सबसे पहले उन बहनोंको निमंत्रण दिया, जो टॉल्स्टॉय फार्ममे रह चुकी थी। वे तो लड़ाईमे शरीक होनेके लिए अत्यन्त उत्सुक थी। मैंने उन्हें सत्याग्रहकी लड़ाईमे भाग लेनेके सारे खतरोंसे परिचित कराया। मैंने उन्हे समझाया कि लड़ाईमें सम्मिलित होनेके बाद उनके खाने-पीने, पोशाक, सोने-बैठने सब पर नियत्रण लग जायंगे, जिन्हें उनको बरदाश्त करना होगा। मैंने उन्हें यह चेतावनी भी दी कि जेलमें उन्हें कड़ी मेहनतका काम सौंपा जा सकता है, उनसे कपड़े धुलवाये जा सकते हैं, जेल-अधिकारी उनका अपमान भी कर सकते

हैं। लेकिन वे सब बहनें बहादुर थीं; वे मेरी बताई एक भी बातसे भयभीत नहीं हुईं। एक तो गर्भवती थीं; छह बहनोंकी गोदमें छोटे बच्चे थे। ऐसी बहनोंने भी लड़ाईमें भाग लेनेका आग्रह किया। इनमें से किसी भी बहनको रोकनेकी शक्ति मुझमें नहीं थी। एकके सिवा बाकी सब बहनें तामिल थीं। उनके नाम नीचे दिये जाते हैं :

१. श्रीमती थंबी नायडू, २. श्रीमती एन० पिल्ले, ३. श्रीमती के० मुरुगेसा पिल्ले, ४ श्रीमती ए० पी० नायडू, ५. श्रीमती पी० के० नायडू, ६. श्रीमती के० चिन्नस्वामी पिल्ले, ७ श्रीमती एन० एस० पिल्ले, ८. श्रीमती आर० ए० मुदलिंगम्, ९ श्रीमती भवानी दयाल, १०. कुमारी एम० पिल्ले, ११. कुमारी बी० एम० पिल्ले।

कोई अपराध करके जेल जाना आसान है, लेकिन निर्दोष होते हुए जेल जाना कठिन है। क्योंकि अपराधी गिरफ्तार होना नहीं चाहता, इसलिए पुलिस उसकी पीठ पर खड़ी रहती है और उसे पकड़ती है। लेकिन स्वेच्छासे और निर्दोष रहकर जेल जानेके लिए तैयार रहनेवालेको पुलिस लाचार हो जाने पर ही पकड़ती है। इन बहनोंका प्रथम प्रयत्न निष्फल गया। उन्होंने ट्रान्सवालके वेरीनिजिंग नामक स्थानमें बिना परवानेके प्रवेश करके फेरी लगाई, लेकिन पुलिसने उन्हें पकड़नेसे इनकार कर दिया। उन्होंने फीनिक्ससे ऑरेंजिया (ऑरेंज फ्री स्टेट) की सीमामें बिना इजाजतके प्रवेश किया, फिर भी किसीने उन्हें पकड़ा नहीं। अब इन बहनोंके सामने सवाल यह खड़ा हुआ कि गिरफ्तार कैसे हों। जेल जानेके लिए तैयार हों ऐसे बहुतसे पुरुष नहीं थे। और जो पुरुष जेल जानेको तैयार थे, उनका गिरफ्तार होना आसान नहीं था।

अब हमने अपना सोचा हुआ अंतिम कदम उठानेका निश्चय किया; और वह कदम बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुआ। मैंने सोचा था कि अंतिम समयमें फिनिक्समें मेरे साथ रहे हुए सब लोगोंकी आहुति मैं दे दूंगा। वह सत्य-देवताके लिए मेरा अंतिम त्याग होता। फिनिक्समें रहे हुए लोग मेरे घनिष्ठ साथी और सगे-सम्बन्धी थे। मैं यह चाहता था कि 'इंडियन ओपीनियन' चलानेके लिए जितने आदमी जरूरी हों उनके सिवा और १६ वर्षके भीतरके बालकोंके सिवा बाकी सबको जेल भेज दिया जाय। इससे

इसके बाद मैं फिनिक्स गया। फिनिक्समें सबके साथ बैठकर अपनी योजनाके विषयमें मैंने बातें की। सबसे पहले मैंने फिनिक्सवासी बहनोंसे सलाह की। मैं जानता था कि बहनोंको जेलमें भेजनेका कदम बड़ा खतरनाक है। फिनिक्समें रहनेवाली अनेक बहनें गुजराती थीं। इसलिए वे ट्रान्सवालकी उपर्युक्त बहनों जितनी तालीम पाई हुई या अनुभवी नहीं मानी जा सकती थीं। इसके सिवा, यह बात भी थी कि गुजराती बहनोंमें से अधिकतर मेरी रिश्तेदार थीं। इसलिए वे केवल मेरी शरमकी वजहसे ही जेल जानेका विचार करतीं और फिर ऐन कसौटीके मौके पर घबरा कर या जेलमें पहुंचनेके बाद वहांके कष्टोंसे ऊब कर माफी मांग लेतीं, तो मुझे आघात लगता और सत्याग्रहकी लड़ाई एकदम कमजोर पड़ जाती। मेरा यह निश्चय था कि अपनी पत्नीको तो मैं जेल जानेके लिए ललचाऊंगा ही नहीं। उसमें ना भी नहीं कहा जा सकता था और अगर वह हां कहती तो उस हांकी कितनी कीमत की जाय यह कहना मेरे लिए कठिन था। मैं यह समझता था कि ऐसे खतरेके काममें पत्नी स्वयं जो कदम उठाये वही पुरुषको स्वीकार करना चाहिये, और यदि पत्नी कोई कदम न उठाये, तो पतिको उसमें जरा भी दुःखी नहीं होना चाहिये। इसलिए मैंने सोचा कि अपनी पत्नीके साथ इस संबंधमें मैं कोई बात नहीं करूंगा। दूसरी बहनोंसे मैंने बात की। उन्होंने ट्रान्सवालकी बहनोंकी तरह बीड़ा उठा लिया और वे जेलयात्रा करनेके लिए तैयार हो गईं। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि हर तरहका दुःख सहन करके भी वे जेलकी सजा पूरी करेंगी। इस सारी बातचीतका सार मेरी पत्नीने भी जान लिया। उसने मुझसे कहा "यह बात आप मुझे नहीं बताते, इसका मुझे दुःख है। मुझमें ऐसी क्या कमी है कि मैं जेल नहीं जा सकती? आप इन बहनोंको जिस रास्ते पर चलनेकी सलाह दे रहे हैं, उसी रास्ते पर मैं भी चलना चाहती हूं।" मैंने कहा: "मैं तुम्हें कभी दुःख पहुंचा ही नहीं सकता। इसमें अविश्वासकी कोई बात नहीं है। मैं तो तुम्हारे जेल जानेसे खुश ही होऊंगा। लेकिन मेरे चाहनेसे तुम जेल गई हो, ऐसा आभास भी मुझे पसंद नहीं होगा। ऐसे काम सबको अपनी हिम्मतसे ही करने चाहिये। अगर मैं कहूं तो मेरी बात रखनेके लिए तुम आसानीसे

जेल जा सकती हो; लेकिन बादमें कोर्टमें खड़े होते ही तुम कांपने लगो और हार जाओ अथवा जेलके दुःखोंसे घबरा जाओ, तो उसमें मैं तुम्हारा दोष तो नहीं मानूंगा, परन्तु उससे मेरी स्थिति कैसी हो जायगी? उस हालतमें मैं तुम्हें अपने साथ कैसे रख सकूंगा और जगतके सामने क्या मुंह लेकर खड़ा हो सकूंगा? इसी भयसे मैंने तुम्हें ललचाया नहीं।" पत्नीने उत्तर दिया: "मैं हार कर जेलसे बाहर आ जाऊं, तो मुझे अपने साथ न रखना। मेरे बच्चे भी दुःख सह सकते हैं, आप सब लोग भी सह सकते हैं, लेकिन अकेली मैं ही दुःख नहीं सह सकती — ऐसा आप मेरे बारेमें कैसे मान सकते हैं? मैं इस लड़ाईमें भाग लेकर ही रहूंगी।" मैंने कहा: "तो मैं भी तुम्हें इस लड़ाईमें शामिल करके ही रहूंगा। मेरी शर्तें तो तुम जानती ही हो, मेरा स्वभाव भी तुम जानती हो। अभी भी सोचना हो तो दुबारा सोच लेना और गहरे विचारके बाद तुम्हें लगे कि लड़ाईमें शरीक नहीं होना चाहिये, तो वैसा करनेकी तुम्हें पूरी छूट है। और तुम्हें जानना चाहिये कि निश्चय बदलनेमें अभी भी कोई शरमकी बात नहीं है।" उत्तरमें उसने कहा: "मुझे कोई सोच-विचार करना ही नहीं है। मेरा यह दृढ़ निश्चय है।"

फिनिक्सके दूसरे निवासियोंसे भी मैंने कहा कि आप स्वतंत्र रूपसे अपना निश्चय करें। सत्याग्रहकी लड़ाई थोड़े समय तक चले या लम्बे समय तक, फिनिक्स आश्रम टिका रहे या मिट्टीमें मिल जाय, जेल जानेवाले सत्याग्रही जेलमें बीमार पड़ें या स्वस्थ रहें, परन्तु कोई हार कर तो जेलसे छूट ही नहीं सकता — यह शर्त मैंने बार-बार और विविध प्रकारसे उन लोगोंको समझाई। सब तैयार हो गये। फिनिक्ससे बाहरके सिर्फ रुस्तमजी जीवणजी घोरखोदु ही थे। उन्हें हम प्रेमसे काकाजी कहते थे। उनसे मैं फिनिक्सकी सारी चर्चायें गुप्त नहीं रख सकता था। और वे पीछे रहे ऐसे आदमी नहीं थे। एक बार वे जेलकी सजा भोग चुके थे, लेकिन उनका आग्रह दुबारा जेल जानेका था। इस दलमें शरीक होनेवाले सत्याग्रहियोंके नाम ये थे:

१. सौ. कस्तूरबाई मोहनदास गांधी, २. सौ. जयाकुंवर मणिलाल डॉक्टर, ३. सौ. काशी छगनलाल गांधी, ४. सौ. संतोक मगनलाल

गांधी, ५. श्री पारसी रुस्तमजी जीवणजी घोरखोदु, ६. श्री छगनलाल खुशालचंद गांधी, ७. श्री रावजीभाई मणिभाई पटेल, ८ श्री मगनभाई हरिभाई पटेल, ९. श्री सोलोमन रॉयपेन, १०. भाई रामदास मोहनदास गांधी, ११. भाई राजु गोविन्दु, १२. भाई शिवपूजन बद्री, १३. भाई गोविन्द राजुलु, १४. कुप्पुस्वामी मुदलियार, १५. भाई गोकलदास हंसराज, १६. भाई रेवाशंकर रतनशी सोढा।

इसके बाद क्या हुआ, यह अगले प्रकरणमें दिया जायगा।

१६
स्त्रियां जेलमें

सत्याग्रहियोंका यह दल सीमा लांघ कर बगैर परवानेके ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेके अपराधमें जेल जानेवाला था। पिछले प्रकरणमें दिये गये नामोंमें पाठक देखेंगे कि उनमें कुछ नाम ऐसे हैं, जिन्हें प्रकट कर देनेसे उन नामवालोंको पुलिस शायद नहीं पकड़ती। मेरे बारेमें ऐसा ही हुआ था। दो-एक बार पकड़नेके बाद सीमा लांघते समय पुलिसने मुझे पकड़ना छोड़ दिया था। इस दलके रवाना होनेकी सूचना किसीको दी नहीं गई थी। तब फिर अखबारोंको तो दी ही कैसे जाती? इसके सिवा, इस दलसे कहा गया था कि वे पुलिसको भी अपना नाम-पता न बतायें; पुलिससे इतना ही कहें कि हम अदालतमें अपने नाम बतायेंगे।

पुलिसके सामने ऐसे मामले अनेक बार आते थे। हिन्दुस्तानियोंको गिरफ्तार होनेकी आदत पड़ जानेके बाद कई बार तो वे मनोरंजनकी दृष्टिसे पुलिसको परेशान करनेके लिए भी अपने नाम उसे नहीं बताते थे। इसलिए पुलिसको फिनिक्स दलका व्यवहार विचित्र नहीं लगा। उसने इस दलको गिरफ्तार कर लिया। उस पर अदालतमें मुकदमा चला। हर सत्याग्रहीको तीन तीन महीनेकी सख्त कैदकी सजा मिली (२३ सितंबर, १९१३)

जो बहनें ट्रान्सवालमें गिरफ्तार होनेके प्रयत्नमें निराश हुई थीं, उन्होंने अब नेटालमें प्रवेश किया। उन्हें बगैर परवानेके नेटालमें प्रवेश करनेके अपराधमें पुलिसने गिरफ्तार नहीं किया। यह निश्चय किया गया था कि पुलिस यदि उन्हें गिरफ्तार न करे, तो न्यूकैसलमें छावनी डाल कर वे कोयलेकी खदानोंके गिरमिटिया मजदूरोंको अपना काम छोड़नेकी बात समझायें। न्यूकैसल नेटालमें कोयलेकी खदानोंका केन्द्र है। इन खदानोंमें मुख्यतः हिन्दुस्तानी मजदूर काम करते थे। बहनोंने अपना काम आरंभ कर दिया। उनका प्रभाव बिजलीकी तरह फैल गया। तीन पौंडके करकी करुण कहानीने मजदूरोंके हृदयको पिघला दिया। उन्होंने अपना काम छोड़ दिया। यह समाचार मुझे तारसे दिया गया। मैं जितना प्रसन्न हुआ उतना ही घबराया भी। अब मैं क्या करूं? मजदूरोंकी इस अद्भुत जागृतिके लिए मैं तैयार नहीं था। मेरे पास धन नहीं था; और न मेरे पास इतने आदमी ही थे, जो इस कामकी जिम्मेदारी संभाल सके। लेकिन मेरा कर्तव्य क्या है, यह मैं समझता था। मैंने तय किया कि मुझे न्यूकैसल जाना चाहिये। मैं तुरन्त रवाना हो गया।

अब सरकार इन बहादुर बहनोंको कैसे छोड़ती? उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें वही सजा मिली जो फिनिक्सके दलको मिली थी और उसी जेलमें रखा गया जहां फिनिक्सवाले रखे गये थे (२१ अक्तूबर, १९१३)। इन घटनाओंसे दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी जाग उठे। उनकी नींद टूटी। उनमें नयी चेतना और नया उत्साह दिखाई दिया। परन्तु बहनोंके बलिदानने मातृभूमि हिन्दुस्तानको भी जगा दिया। सर फिरोजशा महेता आज तक तटस्थ रहे थे। १९०१ में उन्होंने मुझे उलाहना देकर दक्षिण अफ्रीका न जानेकी बात समझाई थी। उनका मत था कि जब तक हिन्दुस्तान अपनी स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक प्रवासी भारतीयोंके लिए कुछ नहीं किया जा सकता। दक्षिण अफ्रीकाकी सत्याग्रहकी लड़ाईने भी उनको बहुत कम प्रभावित किया था। परन्तु स्त्रियोंकी जेलने उन पर जादूका-सा असर डाला। उन्होंने स्वयं बम्बईके टाउन-हॉलमें दिये गये अपने भाषणमें कहा कि स्त्रियोंकी जेलकी सजाने मेरी

शांति भी भंग कर दी है। हिन्दुस्तानमें अब शांत होकर बैठा ही नहीं जा सकता।

स्त्रियोंकी वीरताका वर्णन भला किन शब्दोंमें किया जाय! सभीको नेटालकी राजधानी मेरित्सबर्गके जेलमें रखा गया था। वहां उन्हें काफी कष्ट दिये गये। उनके भोजनके बारेमें जरा भी ध्यान नहीं रखा गया। मेहनतमें उन्हें धोबीका काम सौंपा गया। सरकारने लगभग सजा खतम होने तक बाहरसे भोजन पहुंचाने पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा रखा था। एक बहनका एक विशेष प्रकारका भोजन करनेका व्रत था। बड़ी कठिनाईके बाद जेल-अधिकारियोंने उसे विशेष भोजनकी इजाजत दी, लेकिन जो भोजन दिया जाता था वह इतना खराब होता था कि खाया नहीं जाता था। जैतूनके तेलकी उस बहनको बड़ी जरूरत थी। पहले तो वह नहीं दिया गया; कुछ दिन बाद दिया गया, लेकिन वह पुराना था और उतरा हुआ था। जब उस बहनने अपने पैसेसे यह तेल मंगानेकी प्रार्थना की, तो उत्तरमें कहा गया: "यह कोई होटल नहीं है। जो भोजन दिया जाय वही तुम्हें खाना होगा।" वह बहन जब जेलसे बाहर निकली तब हाड़-पिंजर मात्र रह गई थी। बड़े प्रयत्नसे ही वह बची।

दूसरी एक बहन जानलेवा बुखार लेकर जेलसे रिहा हुई। उसके इस बुखारने उसे जेलसे रिहा होनेके कुछ ही दिन बाद भगवानके पास पहुंचा दिया (२२ फरवरी, १९१४)। उसे मैं कैसे भुला सकता हूं? उसका नाम वालियाम्मा था। वह १६ वर्षकी बाला थी। मैं उसे मिलने गया तब वह रोग-शय्या पर पड़ी थी। वह कदमें ऊंची थी, इसीलिए उसका लकड़ी जैसा कृश शरीर भयंकर दिखाई देता था।

मैंने पूछा: "वालियाम्मा, जेल जानेका तुम्हें पश्चात्ताप तो नहीं है?"

"पश्चात्ताप क्यों होगा? मुझे फिरसे पकड़ा जाय तो मैं फिर जेल जानेको तैयार हूं।"

"लेकिन इसका परिणाम तुम्हारी मौतमें आये तो?" मैंने पूछा।

"भले आये। देशके खातिर मरना कौन पसंद न करेगा?"

हमारी इस बातचीतके बाद कुछ ही दिनोंमें वालियाम्मा मर गई। उसके शरीरका नाश हो गया, परन्तु वह बाला अपना नाम अमर कर गई। वालियाम्माकी मृत्यु पर शोक प्रकट करनेके लिए जगह जगह शोकसभायें हुईं और कौमने इस पवित्र बालाके स्मरणार्थ 'वालियाम्मा हॉल' बनानेका निर्णय किया। यह हॉल बनानेका धर्म अभी तक कौमने पूरा नहीं किया है। उसमें अनेक विघ्न पैदा हो गये। कौममें फूट फैल गई। मुख्य कार्यकर्ता एकके बाद एक चल बसे। लेकिन पत्थर और चूनेका हॉल बनाया जाय या न बनाया जाय, वालियाम्माकी सेवाका कभी नाश नहीं होगा। इस सेवाका हॉल तो वह अपने ही हाथोंसे बना कर गई है। उसकी मूर्ति आज भी अनेक लोगोंके हृदय-मंदिरमें विराज रही है। और जब तक इस दुनियामें भारतवर्षका नाम जीवित रहेगा तब तक दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासमें वालियाम्मा भी जीवित रहेगी।

इन बहनोंका बलिदान विशुद्ध था। वे बेचारी कानूनकी बारीकियां नहीं जानती थीं। उनमें से कई बहनोंको देशकी कोई कल्पना नहीं थी। उनका देशप्रेम केवल श्रद्धा पर निर्भर था। उनमें से कुछ बहनें निरक्षर थीं; इसलिए अखबार पढ़ना तो वे जान ही कैसे सकती थीं? परन्तु इतना वे जानती थीं कि कौमके स्वाभिमान-रूपी वस्त्रका हरण हो रहा है। उनकी जेलयात्रा उनका आर्तनाद थी; शुद्ध यज्ञ थी। हृदयकी ऐसी प्रार्थना ईश्वर सुनता है। यज्ञकी शुद्धतामें ही यज्ञकी सफलता निहित है। ईश्वर भावनाका भूखा है। भक्तिसे अर्थात् नि:स्वार्थ बुद्धिसे अर्पण किया गया पत्र, पुष्प या जल भी ईश्वर प्रेमसे स्वीकार करता है और उसका करोड़ गुना फल देता है। भोला सुदामा शुद्ध भावनासे मुट्ठीभर चावलोंकी भेंट लेकर श्रीकृष्णके पास गया था, लेकिन उससे सुदामाका वर्षोंका अभाव और भूख मिट गई। अनेक लोगोंके जेल जानेसे कोई फल न भी निकले, परन्तु एक ही शुद्ध आत्मा द्वारा भक्तिपूर्वक किया हुआ त्याग कभी असफल नहीं होता। कौन जानता है कि दक्षिण अफ्रीकामें किस-किसका यज्ञ फलदायी सिद्ध हुआ है? परन्तु इतना तो हम जानते ही हैं कि वालियाम्माका यज्ञ अवश्य फलदायी सिद्ध हुआ है। यही बात अन्य बहनोंके यज्ञके बारेमें भी कही जा सकती है।

स्वदेश-यज्ञमें और जगत्-यज्ञमें असंख्य आत्माओंने अपनी आहुति दी है, आज भी असंख्य आत्मायें अपनी आहुति दे रही है और भविष्यमें भी देंगी। यही यथार्थ है, क्योंकि कोई नहीं जानता कि शुद्ध कौन है। परन्तु सत्याग्रही इतना तो समझते ही है कि यदि एक भी सत्याग्रही उनमें शुद्ध हो, तो उसका यज्ञ फल उत्पन्न करनेके लिए काफी होता है। पृथ्वी सत्यके बल पर टिकी हुई है। असत् – असत्य – का अर्थ है: 'नही'; सत् – सत्य – का अर्थ है: 'है'। असत्का जब कोई अस्तित्व ही नही है, तो उसकी सफलता कैसे हो सकती है? और जो 'है' उसका नाश कौन कर सकता है? इतनेमें सत्याग्रहका संपूर्ण शास्त्र समा जाता है।

१७

मजदूरोंका प्रवाह

न्यूकैसलके पासकी कोयलेकी खदानोंके हिन्दुस्तानी मजदूरों पर बहनोंके इस त्यागका अद्‌भुत असर पड़ा। उन्होंने अपने औजार छोड़ दिये और उनका प्रवाह शहरकी ओर बहने लगा। इसका पता चलते ही मैंने फिनिक्स छोड़ा और मैं न्यूकैसल जा पहुंचा।

ऐसे मजदूरोंके अपने मकान नही होते। खदानोंके मालिक ही उनके लिए घर बनाते है और मालिक ही उनके रास्तों पर बत्तियां लगाते हैं। मालिक ही उन्हें पानी भी देते हैं। इसलिए मजदूर हर तरहसे मालिकोंके अधीन रहते है। और, जैसा कि तुलसीदासने कहा है:

'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।'

ये हड़ताली मेरे पास तरह तरहकी शिकायते लाने लगे। कोई कहते कि मालिक रास्तोंकी बत्तियां बंद कर देते है; कोई कहते कि मालिक हमारा पानी बद कर देते है। तीसरे कहते कि मालिक हड़तालियोंकी गृहस्थीका सामान कोठरियोंसे बाहर फेंक देते हैं। सैयद इब्राहीम नामक एक पठानने मेरे पास आकर अपनी पीठ दिखाई और बोला: "यह देखो। मुझे कैसा मारा है! मैंने आपके लिए उन बदमाशोंको

छोड़ दिया है। आपका यही हुक्म है। मैं पठान हूं; और पठान कभी मार खाता नहीं है, मार मारता है।"

मैंने उत्तरमें कहा: "भाई, तुमने बहुत ही अच्छा काम किया है। इसीको मैं सच्ची बहादुरी कहता हूं। तुम्हारे जैसे लोगोंके बल पर ही हम जीतेंगे।"

मैंने इस तरह उसे बधाई तो दी, लेकिन मनमें सोचा कि अगर ऐसा व्यवहार अनेक मजदूरोंके साथ हुआ तो हड़ताल चलेगी नहीं। मारकी बातको छोड़ दें, तो मालिकोंकी शिकायत भी क्या की जाय? हड़ताल करनेवाले मजदूरोंकी बत्ती, पानी वगैराकी सुविधायें मालिक काट दें, तो उनकी शिकायतके लिए अधिक कारण नहीं रहता। लेकिन कारण हो या न हो, मजदूर ऐसी स्थितिमें कैसे टिक सकते हैं? मुझे कोई उपाय सोचना चाहिये। अथवा लोग केवल थक कर काम पर लौट जायं, इसकी अपेक्षा अधिक अच्छा यही होगा कि वे अपनी हार कबूल करके वापिस काम पर जायं। लेकिन ऐसी सलाह मेरे मुंहसे मजदूर कभी नहीं सुनेंगे। एकमात्र मार्ग यही रह जाता था कि मजदूर मालिकोंकी कोठरियां छोड़ दें — अर्थात् वे 'हिजरत' करें।

मजदूर कोई पाच-पचीस नहीं थे, बल्कि सैकड़ों थे; और उनके हजारों होनेमें भी कोई देर नहीं लगती। उन सबके लिए मकान मैं कहांसे लाऊं? खाना कहांसे लाऊं? हिन्दुस्तानसे मैं पैसा मगाना नहीं चाहता था। वहांसे पैसेकी जो वर्षा आगे चलकर हुई थी, वह अभी आरंभ नहीं हुई थी। दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी व्यापारी इतने भयभीत हो गये थे कि वे खुले तौर पर मेरी कोई मदद करनेको तैयार नहीं थे। उनके व्यापारिक सबंध खदानोंके मालिकों और अन्य गोरोंके साथ थे, इसलिए वे खुले तौर पर मुझसे कैसे मिलते? मैं जब न्यूकैसल जाता तब इन व्यापारियोंके यहां ठहरा करता था। लेकिन इस बार मैंने स्वयं ही उनका रास्ता सरल कर दिया। मैंने दूसरी जगह ठहरनेका निश्चय किया।

मैं पहले बता चुका हूं कि जो बहनें ट्रान्सवालसे आई थी वे भारतके द्राविड़ प्रदेशकी थी। उनका पड़ाव एक ईसाई द्राविड़ परिवारमें था।

वह परिवार मध्यम वर्गका था। उसके पास जमीनका एक छोटासा टुकड़ा था और दो-तीन कमरोंवाला एक मकान था। मैंने इसी परिवारके साथ ठहरनेका निश्चय किया। परिवारके मुखियाका नाम श्री डी० लाजरस था। गरीबको किसका भय हो सकता है? सब लोग मूल गिरमिटिया परिवारके थे, इसलिए उन्हें या उनके सगे-संबंधियोंको तीन पौंडका कर देना पड़ता था। गिरमिटिया हिन्दुस्तानियोंके दुःखोंसे वे अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए इस परिवारके लोगोंकी उन लोगोंके साथ पूरी सहानुभूति थी। इस परिवारने मेरा हार्दिक स्वागत किया। मेरा स्वागत कभी भी मित्रोंके लिए सरल नहीं रहा। परन्तु इस बार तो मेरा स्वागत करनेका अर्थ था आर्थिक नाशका स्वागत करना, इसके फलस्वरूप शायद परिवारके लोगोंको जेलका भी स्वागत करना पड़ता। ऐसी स्थितिका सामना करनेके लिए धनी व्यापारी थोड़े ही तैयार हो सकते थे? मैं अपनी और उनकी मर्यादाओंको समझता था, इसलिए मैंने उन्हें ऐसी विषम स्थितिमें नहीं डाला। बेचारे लाजरस थोड़ी तनखाह खोनी पड़े तो खो सकते थे। उन्हें जेलमें ले जाय तो वे जेल भी जा सकते थे। लेकिन वे अपनेसे भी गरीब गिरमिटिया मजदूरोंका दुःख चुपचाप कैसे बरदाश्त कर सकते थे? अपने ही परिवारमें ठहरी हुई बहनोंको उन्होंने गिरमिटिया लोगोंकी मदद करनेके कारण जेल जाते देखा था। भाई लाजरसने सोचा कि गिरमिटियोंके प्रति भी उनका कुछ कर्तव्य है, इसलिए उन्होंने मुझे अपने यहां ठहराया। मुझे ठहराया तो सही, परन्तु अपना सब कुछ उन्होंने दे दिया। उनके घर मैं गया उसके बाद वह घर धर्मशाला बन गया। हर तरहके सैंकड़ों आदमी उनके यहां आते और जाते थे। उनके घरके आसपासकी जमीन लोगोंसे खचाखच भरी रहती थी। उनके रसोई-घरमें चौबीसों घंटे खाना बनता रहता था। उनकी पत्नीने रसोई-घरमें दिन-रात जीतोड़ परिश्रम किया। तिस पर भी दोनों पति-पत्नीके चेहरों पर हास्य खेलता रहता था। उनके चेहरों पर मैंने कभी भी नाराजी नहीं देखी।

लेकिन लाजरस सैंकड़ों मजदूरोंको खाना नहीं खिला सकते थे। मजदूरोंसे मैंने कह दिया कि उन्हें अपनी हड़तालको स्थायी मानकर

मालिकोंके दिये हुए झोंपड़े छोड़ देने चाहिये। जो सामान बेचने जैसा हो उसे बेच डालना चाहिये। बाकीका सामान अपनी कोठरियोंमें रहने देना चाहिये। मालिक उसे नहीं छुएंगे। लेकिन अगर अधिक बदला लेनेके लिए मालिक उनका सामान बाहर फेंक दें, तो यह खतरा उठानेके लिए भी उन्हें तैयार रहना चाहिये। जब वे मेरे पास आयें तब अपने साथ पहननेके कपड़ों और ओढ़नेके कम्बलके सिवा और कुछ न लायें। जब तक हड़ताल चलेगी और जब तक वे जेलसे बाहर रहेंगे तब तक मैं उनके साथ ही रहूंगा और उनके साथ ही खाऊं-पिऊंगा। इस शर्त पर अगर वे अपने झोंपड़ोंको छोड़कर बाहर आयेंगे, तो ही वे हड़ताल पर टिक सकेंगे और तो ही कौमकी जीत होगी। ऐसा करनेकी हिम्मत जिसमें न हो उसे जाकर अपने काम पर लग जाना चाहिये। जो लोग फिरसे अपने काम पर लग जायं, उनका कोई अपमान न करे; कोई उन्हें परेशान न करे। मुझे याद नहीं आता कि किसी भी मजदूरने मेरी इन शर्तोंको माननेसे इनकार किया हो। मैंने कहा उसी दिनसे हिजरतियोंका — गृहत्यागियोंका प्रवाह आरंभ हो गया। सब मजदूर अपने बाल-बच्चोंको साथ लेकर और सिरों पर कपड़ोंकी गठरियां रख कर मेरे पास आने लगे। मेरे पास मकानके नाते केवल जमीन थी। सौभाग्यसे वह मौसम न तो वर्षाका था, न जाड़ेका था।

भोजनके बारेमें मेरा विश्वास था कि हमारा व्यापारी-वर्ग हमारे खान-पानकी व्यवस्था करनेमें पीछे नहीं रहेगा। न्यूकैसलके हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने रसोई बनानेके लिए बरतन दिये और दाल-चावलकी बोरियां भेजी। दूसरे शहरोंसे भी दाल, चावल, सागभाजी, मसालों वगैराकी वर्षा होने लगी। मैं आशा करता था उससे अधिक मात्रामें ये वस्तुएं मेरे पास आने लगी। सब लोग जेल जानेको तैयार नहीं थे, परन्तु सबकी सहानुभूति तो कौमकी लड़ाईके साथ थी ही। सब लोग कौमकी लड़ाईमें यथाशक्ति मदद करनेको तैयार थे। जो लोग पैसे या खाद्य वस्तुओंकी मदद नहीं कर सकते थे, उन्होंने स्वयसेवकके रूपमें अपनी सेवायें देकर मदद की। इन सैकड़ों अनजान और अशिक्षित मजदूरों और उनके परि-

जरूरत थी। ऐसे स्वयंसेवक हमें मिल गये। उन्होंने हमारी अमूल्य सहायता की। उनमें से कई गिरफ्तार भी किये गये। इस प्रकार सभी लोगोंने यथाशक्ति हमारी सहायता की और हमारे रास्तेको सरल बनाया।

लोगोंकी भारी भीड़ जम गई। इतने अधिक और निरन्तर बढ़ते रहनेवाले मजदूरोंको एक ही स्थान पर बगैर काम-धन्धेके रखना यदि असभव नही तो भयंकर काम अवश्य था। उनकी शौचादिकी आदतें तो अच्छी थी ही नहीं। इस सबमें कुछ आदमी अपराध करके जेलकी सजा भोगे हुए भी थे। कुछ तो हत्याका अपराध करनेवाले भी थे, कुछ चोरीके अपराधमें जेल भोगकर बाहर आये थे। कुछ व्यभिचारके लिए जेल काट कर आये थे। हड़ताल करनेवाले मजदूरोंमें नैतिकताकी दृष्टिसे मैं कोई भेद नही कर सकता था। भेद करने जाता तो भी कौन अपना दोष स्वीकार करने लगा? मैं किसीका काजी बनता तो विवेकहीन कहलाता। मेरा कार्य केवल हड़तालका सचालन करना था। उसमें दूसरे सुधारोंको नही मिलाया जा सकता था। छावनीमे नैतिक नियमोंका पालन हो, यह देखना मेरा काम था। उसमें आनेवाले लोग भूतकालमें कैसे थे, इसकी जाच करना मेरा धर्म नही था। ऐसे पचरगी लोगोंका समुदाय एक स्थान पर स्थिर होकर बिना किसी कामके रहे, तो उनके बीच अपराध हुए बिना रह ही नहीं सकते थे। जितने दिन हम लोग वहा रहे उतने शातिसे बीते, यही एक चमत्कार था। सब कोई ऐसी शातिसे रहे, मानो सबने अपना आपद्-धर्म समझ लिया हो।

मुझे अपनी समस्याका हल मिल गया। इस समूहको मुझे ट्रान्सवाल ले जाना चाहिये और जिस प्रकार फिनिक्सके १६ सत्याग्रही गिरफ्तार हो गये उसी प्रकार इस समूहको भी जेलमे बैठा देना चाहिये। इन लोगोंको थोड़ी थोड़ी सख्यामें बांट कर हर टुकडीसे सीमा पार करानी चाहिये — यह विचार ज्यों ही मनमें उठा त्यों ही मैंने उसे छोड़ दिया। उस पर अमल किया जाता तो समय बहुत चला जाता और सामुदायिक जेलयात्राका जो असर पड़ता वह थोड़े थोड़े मजदूरोंके जेल जानेसे नहीं पड़ता।

मेरे पास लगभग पांच हजार आदमी एकत्र हो गये थे। इतने लोगोंको ट्रेनसे ले जाना संभव नहीं था। इतने पैसे मैं कहासे लाता? और ट्रेनसे ले जानेमें उन सबकी परीक्षा नहीं हो सकती थी। न्यूकैसलसे ट्रान्सवालकी सीमा ३६ मील दूर थी। नेटालका सरहदी गाव चार्ल्सटाउन और ट्रान्सवालका वॉक्सरस्ट था। अतमे मैंने पैदल यात्रा करनेका निश्चय किया। मजदूरोंके साथ मैंने चर्चा की। उनके साथ उनकी पत्निया और बालक भी थे। कुछ लोगोंने आनाकानी की। लेकिन हृदयको कड़ा बनानेके सिवा मेरे पास दूसरा इलाज ही नहीं था। मैंने उनसे कह दिया कि जिन्हें वापस खदानों पर जाना हो वे जा सकते हैं। लेकिन कोई वापस जानेको तैयार नहीं थे। जो लोग अपग थे उन्हें ट्रेनसे भेजनेका हमने निर्णय किया। बाकी सब लोगोंने पैदल चार्ल्सटाउन जानेकी तैयारी बताई। यह मंजिल दो दिनमें तय करनी थी। ऐसा करनेसे अतमे सब लोग खुश हो गये। मजदूरोंने यह भी समझा कि इस कदमसे बेचारे लाजरस और उनके परिवारको थोड़ी राहत मिलेगी। न्यूकैसलके गोरोंके मनमें महामारी फैलनेका डर पैठ गया था और वे महामारीको रोकनेके लिए अनेक प्रकारके उपाय करना चाहते थे। लेकिन हमारे चार्ल्सटाउनकी दिशामें कूच करनेसे वे भयमुक्त हो गये और उनके उपायोंके भयसे हम लोग भी मुक्त हो गये।

इस कूचकी हमारी तैयारिया चल रही थी उसी बीच खदान-मालिकोंसे मिलनेका निमंत्रण मेरे पास आया। मैं डरबन गया। लेकिन इस किस्सेके लिए नया प्रकरण जरूरी होगा।

१८

मालिकोंसे मुलाकात और उसके बाद

खदान-मालिकोंके निमंत्रण पर मैं उनसे मिलने डरबन गया। मैंने देखा कि मालिकों पर मजदूरोंकी हड़तालका कुछ असर हुआ है। लेकिन उनके साथ होनेवाली बातचीतसे कोई लाभ होगा, ऐसा मुझे विश्वास नहीं था। लेकिन सत्याग्रहीकी नम्रताकी कोई सीमा नहीं होती। वह समझौतेका एक भी मौका हाथसे जाने नहीं देता; और इस कारणसे कोई उसे कायर माने, तो वह अपनेको कायर मानने देता है। जिसके हृदयमें विश्वास है और विश्वाससे उत्पन्न होनेवाला बल है, वह दूसरोंकी अवगणनाकी परवाह नहीं करता। वह अपने आन्तरिक बल पर निर्भर रहता है। इसलिए वह सबके प्रति नम्र बना रहता है और जगतके मनको शिक्षित बना कर उसे अपने कार्यकी ओर आकर्षित करता है।

इसलिए मुझे मालिकोंका निमंत्रण स्वागतके योग्य मालूम हुआ। मैं उनके पास गया। मैंने देखा कि वहांके वातावरणमें गरमी थी। मुझसे सारी परिस्थिति समझनेके बजाय मालिकोंके प्रतिनिधिने मुझसे जिरह शुरू कर दी। उसे मैंने समुचित उत्तर दिये।

मैंने उससे कहा: “इस हड़तालका अंत करना आपके हाथमें है।”

मालिकोंकी ओरसे उत्तर दिया गया, “हम कोई अधिकारी नहीं हैं।”

मैंने कहा, “आप अधिकारी नहीं हैं, फिर भी आप बहुत-कुछ कर सकते हैं। आप मजदूरोंका केस उनकी ओरसे लड़ सकते हैं। यदि आप सरकारसे तीन पौंडका कर रद करनेकी मांग करें, तो मैं नहीं मानता कि वह रद करनेसे इनकार करेगी। आप दूसरे गोरोंके मतको तैयार कर सकते हैं।”

“लेकिन सरकारके लगाये हुए उस करके साथ मजदूरोंकी हड़ताल-का क्या संबंध है? अगर खदान-मालिक मजदूरोंको कष्ट देते हों, तो आप बाकायदा उनके खिलाफ अरजी करें।”

"मै मजदूरोंके हाथमें हड़तालके सिवा अन्य कोई उपाय नही देखता। तीन पौंडका कर भी मालिकोंके खातिर उन पर लगाया गया है। मालिक मजदूरोंकी मेहनत तो चाहते हैं, लेकिन उनकी स्वतन्त्रता नही चाहते। इसलिए वह कर दूर करानेके लिए यदि मजदूर हड़ताल करते हैं, तो उसमे मुझे कही भी अनीति अर्थात् मालिकोंके प्रति अन्याय नहीं दिखाई देता।"

"तब क्या आप मजदूरोंको काम पर जानेकी सलाह नही देंगे?"

"मैं लाचार हूं; ऐसा मैं नही कर सकता।"

"इसका परिणाम आप जानते हैं?"

"मैं सावधान हू। अपनी जिम्मेदारीका मुझे पूरा भान है।"

"हा, इसमें आपका तो क्या बिगड़नेवाला है? लेकिन हड़तालसे जो नुकसान इन वहकाये हुए मजदूरोंको होगा, उसकी भरपाई आप कर देंगे?"

"मजदूरोंने सोच-समझ कर और अपने नुकसानको ध्यानमें रखकर यह हड़ताल की है। स्वाभिमानकी हानिसे अधिक बड़े नुकसानकी मैं कल्पना नही कर सकता। मजदूर इस बुनियादी बातको समझ गये हैं, यही मेरे लिए गहरे संतोषकी बात है।"

मालिकोंके प्रतिनिधिसे मेरी इस प्रकार बातें हुई। सारी बातचीत इस समय मुझे याद नही आती। बातचीतके जो मुद्दे मुझे याद रहे हैं, उन्हें मैंने सक्षेपमें यहां दे दिया है। मालिकोंको अपना केस कमजोर लगा, यह तो मैं देख सका था; क्योंकि उनका विचार-विमर्श सरकारके साथ पहलेसे ही चल रहा था।

डरबन जाते और वहासे लौटते हुए मैंने देखा कि ट्रेनके गार्डों पर और अन्य लोगों पर इस हड़तालका और हड़तालियोंकी शातिका बहुत अच्छा असर पड़ा था। मैं तो तीसरे दर्जेमें ही यात्रा करता था। परन्तु वहा भी गार्ड वगैरा रेलवे-अधिकारी मुझे घेर लेते थे और रस तथा आग्रहके साथ मुझसे सारी बातें पूछते और सब हड़तालकी विजय चाहते थे। मेरे लिए वे अनेक प्रकारकी छोटी-मोटी सुविधायें कर देते थे। उनके

लालच नहीं देता था। वे स्वेच्छासे मेरे प्रति सौजन्य दिखाते, तो मुझे प्रसन्नता होती थी। परन्तु सौजन्यको खरीदनेका मैंने कभी प्रयत्न ही नहीं किया। गरीब, अपढ़, बेसमझ मजदूर इतनी दृढ़ता दिखा सकते हैं, यह उन्हें आश्चर्यजनक लगता था। और, दृढ़ता तथा बहादुरी तो ऐसे गुण हैं, जिनका प्रभाव विरोधियों पर भी पड़े बिना नहीं रहता।

मैं न्यूकैसल लौटा। मजदूरोंका प्रवाह अभी भी चारों दिशाओंसे निरन्तर बहता चला आ रहा था। मैंने हड़तालियोंको सारी स्थिति बारीकीसे समझा दी। यह भी कहा कि उन्हें वापस काम पर जाना हो तो जा सकते हैं। मालिकोंकी धमकियोंकी बात भी मैंने उन सबसे कह सुनाई। भविष्यके खतरोंका चित्र भी उनके सामने रख दिया। मैंने उनसे कहा कि लड़ाई कब पूरी होगी, यह बता सकना कठिन है। जेलके दु:खोंका वर्णन भी उनके सामने कर दिया। लेकिन सब अपनी बात पर डटे रहे। उन्होंने निर्भयतासे मुझे उत्तर दिया. "जब तक आप लड़नेको तैयार रहेंगे तब तक हम कभी हारनेवाले नहीं हैं। हम दु:खोंको समझते हैं, इसलिए आप हमारी चिन्ता न करें।"

अब तो हमारे लिए सिर्फ कूच करना ही बाकी था। एक दिन शामको मैंने उन लोगोंसे कह दिया कि कल प्रात.काल हमें अपना कूच आरम्भ करना है (२८ अक्तूबर, १९१३)। रास्ते पर चलनेके नियम मैंने उनके सामने पढ़ सुनाये। पाच-छह हजार आदमियोंके समुदायको सभालना कोई खेल नहीं था। उनकी निश्चित सख्या तो मेरे पास थी ही नहीं। न मेरे पास उनके नाम और पते ही थे। जितने आदमी मेरे साथ रहना चाहते थे उतनों ही से मुझे सतोष था। प्रत्येक हड़तालीको डेढ़ पौंड डबल-रोटी और ढाई तोला शक्करके सिवा अन्य कोई भोजन देनेकी शक्ति मुझमें नहीं थी। मैंने उनसे कहा था कि रास्तेमें अगर कोई हिन्दुस्तानी व्यापारी कुछ देगा, तो उसे हम स्वीकार करेंगे। लेकिन कुछ नहीं मिला तो सबको डबल-रोटी और शक्करसे ही संतोष करना होगा। बोअर-युद्ध और जूलू-विद्रोहके समय जो अनुभव मुझे प्राप्त हुए थे, वे इस समय मेरे लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। एक शर्त यह भी थी कि साथमें कोई जरूरतसे ज्यादा कपड़े न रखें। रास्तेमें किसीकी

चीज नहीं ली जा सकती। अधिकारी या कोई अंग्रेज रास्तेमें मिलें और वे गाली दें अथवा मार मारें, तो वह भी सहन कर लिया जाय। पुलिस गिरफ्तार करे तो गिरफ्तार हो जाना चाहिये; मैं गिरफ्तार हो जाऊं तो भी कूच उन्हें जारी रखना चाहिये — आदि आदि बातें मैंने हड़तालियोंको समझाईं। मेरी गिरफ्तारीके बाद एकके बाद एक कौन व्यक्ति नेताके रूपमें नियुक्त होंगे, उनके नाम भी मैंने सबको बता दिये।

सब लोग मेरी सूचनाओंको समझ गये। हमारा काफिला सही-सलामत चार्ल्सटाउन पहुच गया। चार्ल्सटाउनमें हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने खूब मदद दी। उन्होंने अपने मकानोंका उपयोग हमें करने दिया। मस्जिदके मैदानमें खाना बनानेकी इजाजत दी। कूचके समय जो खाना दिया जाता था, वह स्थायी छावनीमें नहीं रहता था। इसलिए वहां रसोई बनानेके लिए बरतनोंकी जरूरत पड़ती थी। ये बरतन भी व्यापारी हमें खुशीसे देते थे। चावल वगैरा तो मेरे पास बड़ी मात्रामें जमा हो गये थे। उसमें भी व्यापारियोंने अपना हिस्सा दिया था।

चार्ल्सटाउन एक छोटासा गांव था। उसकी आबादी उस समय मुश्किलसे १००० आदमियोंकी थी। उसमें इन कई हजार हड़तालियोंका समावेश करना कठिन था। सिर्फ स्त्रियों और बच्चोंको ही हमने मकानोंमें ठहराया। बाकीके सब लोगोंने मैदानमें ही पड़ाव डाला।

चार्ल्सटाउनके हमारे मधुर सस्मरण अनेक हैं; कुछ संस्मरण कड़वे भी हैं। मधुर सस्मरणोंमें मुख्यतः चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-विभागसे और उस विभागके अधिकारी डॉ० ब्रिस्कोसे संबंध रखते हैं। वे चार्ल्सटाउनकी आबादी इतनी बढ़ी हुई देख कर घबरा गये। लेकिन कोई सख्त कदम उठानेके बजाय वे मुझसे मिले और कुछ सूचनायें देकर मेरी मदद करनेके लिए भी कहा। यूरोपके लोग तीन बातोंकी सावधानी रखते हैं, जब कि हम हिन्दुस्तानी नहीं रखते। वे हैं: १. पानीकी स्वच्छता, २. रास्तोंकी सफाई और ३. पाखानोंकी सफाई। डॉ० ब्रिस्कोने मुझसे कहा कि मैं किसीको रास्तों पर पानी न फेंकने दूं, जहां तहां लोगोंको पेशाब न करने दूं और हर कहीं कूड़ा-कचरा न डालने दूं। वे बतायें उसी जगह मैं लोगोंको रखूं और उसकी सफाईकी जिम्मेदारी अपने

सिर ले लूं। ये सब बातें मैंने उनका उपकार मान कर स्वीकार की। इससे मैंने पूर्ण शांतिका अनुभव किया।

हमारे लोगोंसे इन नियमोंका पालन कराना बडा कठिन काम था। लेकिन यात्रियों और मेरे साथियोंने इस कामको सरल बना दिया। मेरा यह सदाका अनुभव है कि जो सेवक सेवा करता है वह अगर लोगों पर हुक्म न चलाये तो बहुत काम हो सकता है। सेवक स्वयं शरीर-श्रम करे, तो दूसरे लोग भी शरीर-श्रम करेंगे। इसका काफी अनुभव हमें इस छावनीमें मिला। मेरे साथी और मैं झाडू लगाने, मैला उठाने और ऐसे ही दूसरे कामोंमें जरा भी नहीं हिचकिचाते थे। इसलिए दूसरे लोग भी बड़े उत्साहसे ये काम करते थे। यदि हम ये काम न करते, तो किसे हुक्म देते? यदि सब कोई सरदार बनकर दूसरोंको हुक्म दें, तो अंतमें कोई काम पूरा ही न हो। परन्तु जहां सरदार खुद सेवक बन जाता है वहां दूसरे लोग सरदारीका दावा कर ही कैसे सकते हैं?

साथियोंमें से कैलनबैक पहले ही चार्ल्सटाउन पहुंच गये थे। कुमारी श्लेसिन भी हाजिर हो गई थी। उस युवतीकी मेहनत, सावधानी और ईमानदारीकी जितनी प्रशंसा करूं उतनी थोडी है। हिन्दुस्तानी साथियोंमें स्व० पी० के० नायडू और क्रिस्टोफरके नाम मुझे इस समय याद आते हैं। दूसरे लोग भी थे। इन सबने कड़ी मेहनत करके इस काममें बहुत बड़ी मदद की। भोजनमें सबको चावल और दाल दिये जाते थे। सागभाजी खूब मिल जाती थी। परंतु उसे अलगसे पकानेकी गुंजाइश नहीं थी, इसलिए उसे दालमें मिला दिया जाता था। अलगसे सागभाजी पकानेका न तो हमारे पास समय था, न इतने बरतन थे। रसोई-घर चौबीसों घंटे चलता था, क्योंकि भूखे-प्यासे आदमी किसी भी समय चले आते थे। न्यूकैसलमें तो किसीको रहना ही नहीं था। रास्ता सब कोई जानते थे। इसलिए खदानसे निकल कर मजदूर सीधे चार्ल्सटाउन पहुंच जाते थे।

जब मैं लोगोंके धैर्य और सहनशीलताका विचार करता हूं तब मेरे सामने ईश्वरकी महिमा मूर्तिमन्त हो उठती है। रसोई बनानेवालोंका मुखिया मैं था। कभी दालमें पानी अधिक गिर जाता, तो कभी दाल कच्ची रह जाती। कभी साग अच्छी तरह न सीजता, तो कभी भात भी

कच्चा रह जाता। ऐसा भोजन हंसते मुह खानेवाले लोग मैंने दुनियामें बहुत नहीं देखे हैं। इसके विपरीत, दक्षिण अफ्रीकाके जेलोंमें मुझे ऐसा भी अनुभव हुआ कि अच्छे शिक्षित माने जानेवाले लोग भी भोजन मात्रामें थोडा कम मिलता, देरसे मिलता या कच्चा मिलता, तो आपेसे बाहर हो जाते थे।

खाना बनानेके बजाय खाना परोसनेका काम अधिक कठिन था। और यह काम केवल मेरे ही हाथमें रहता था। कच्चे-पक्के खानेका हिसाब तो मुझे ही लोगोंको देना होता था। खाना कम हो और खानेवाले बढ़ जायं तब सबको कम खाना देकर सन्तुष्ट करनेका काम भी मुझे ही करना होता था। जब मैं बहनोंको कम खाना देता तो वे एक क्षणके लिए मेरे सामने उलाहनेकी नजरसे देखती और फिर मेरी स्थितिको समझ कर हंसती हसती चल देती थीं। उन दृश्योंको मैं जीवनमें कभी भूल नही सकूंगा। मैं उनसे कहता: "क्या करूं? मैं लाचार हो गया हू। मेरे पास बना हुआ खाना कम है और खानेवाले लोग ज्यादा हैं। इसलिए मुझे सबके हिस्सेमे जितना आ सकता है उतना ही देना होगा।" इतनेसे वे स्थितिको समझ लेती थी और 'सतोपम्' कहकर हंसती हुई चली जाती थी।

ये तो सब मधुर संस्मरण हुए। कडवे संस्मरण ये हैं कि लोगोंको घडी भरकी भी फुरसत मिलती तो वे आपसमें लड़ने-झगडने लग जाते थे। इससे बुरी बात तो यह है कि छावनीमे व्यभिचारके भी उदाहरण मिल जाते थे। स्त्रियों और पुरुषोंको एकसाथ रखना ही पड़ता था, क्योंकि भीड़का पार नही था। व्यभिचारीको लज्जा तो होती ही कैसे? ऐसी घटनायें घटते ही मैं मौके पर जा पहुंचा। व्यभिचारी शरमिन्दा हुए। उन्हें अलग अलग रख दिया गया। लेकिन मेरे जाननेमे न आये हों ऐसे व्यभिचारके किस्से कितने हुए होंगे, यह कौन कह सकता है? इस बातकी अधिक चर्चा करना व्यर्थ है। इतनी चर्चा भी मैंने यह दिखानेके लिए ही की है कि छावनीमे सभी कुछ ठीकसे नही चल रहा था और ऐसे किस्से होने पर भी किसीने मेरे साथ उद्धतताका व्यवहार नही किया। जगली जैसे, नीति और अनीतिके भेदको बहुत न जाननेवाले लोग भी

अच्छे वातावरणमें कैसे सीधे और सही मार्ग पर चलते हैं, यह मैंने इस प्रकारके अनेक अवसरों पर अनुभव किया है। और इस सत्यको जानना अधिक आवश्यक और लाभदायी है।

१९
ट्रान्सवालमें प्रवेश – १

अब हम १९१३ के नवम्बर महीनेके आरभमें आ पहुंचे है। हम आगे कूच करें इससे पहले मैं दो घटनाओंका उल्लेख कर दू। न्यूकैसलमें तामिल बहनें जब जेल गईं तो डरबनकी बाई फातिमा मेहताबसे नही रहा गया। इसलिए वह भी अपनी मा हनीफा बाई और सात वर्षके बच्चेके साथ जेल जानेके लिए वॉक्सरस्टकी दिशामें रवाना हो गई। मा और लड़की तो गिरफ्तार कर ली गईं, परन्तु बच्चेको गिरफ्तार करनेसे सरकारने साफ इनकार कर दिया। बाई फातिमाकी अंगुलियोंकी छाप लेनेकी पुलिसने कोशिश की, परन्तु वह निडर रही और उसने अपनी अंगुलियोंकी छाप नहीं दी।

इस समय मजदूरोंकी हड़ताल पूरे जोर पर थी। उसमें पुरुष और स्त्रिया दोनों आते थे। स्त्रियोंमें दो मातायें अपने शिशुओंके साथ थी। एक शिशुको कूचमें सरदी लग गई और वह मृत्युकी शरणमें चला गया। दूसरा शिशु माताकी गोदसे एक नालेमें गिर गया, जब वह उसे पार कर रही थी। बच्चा प्रवाहके साथ खिंचकर डूब गया और मर गया। लेकिन मातायें निराश न हुईं। दोनोंने अपना कूच जारी रखा। एक माताने कहा: "हम मरे हुए शिशुका शोक क्यों मनायें? क्या वह वापस आयेगा? जिन्दोंकी सेवा करना ही हमारा धर्म है।" गरीबोंमें ऐसी शात बहादुरीके, ऐसी ईश्वर-श्रद्धाके और ऐसे ज्ञानके उदाहरण मैंने अनेक बार देखे हैं।

ऐसी ही दृढ़तासे स्त्रिया और पुरुष चार्ल्सटाउनमें अपने कठिन धर्मका पालन कर रहे थे। लेकिन हम चार्ल्सटाउनमें शांतिके लिए नही

आये थे। जिसे शातिकी अभिलाषा हो उसे अपने अंतरमें ही शातिकी खोज करनी थी। बाहर तो जिस ओर भी कोई देखता — और उसे देखना आता तो — उसी ओर मानो 'यहा शाति नही मिलती' की तख्तिया लगी हुई दिखाई पड़ती थी। परन्तु ऐसी ही अशातिके बीच मीराबाई जैसी भक्तिन हाथमे जहरका प्याला रख कर उसे मुहसे लगाते हुए हसती है। और सुकरात अपनी अधेरी कोठरीमे बैठा हुआ जहरका प्याला हाथमे रखकर अपने मित्रोको गूढ़ ज्ञान देता है और हमे सिखाता है: "जिसे शाति चाहिये उसे अपने हृदयके भीतर उसकी खोज करनी चाहिये।"

ऐसी शातिमे सत्याग्रहियोंका दल छावनी डालकर कल प्रात.काल क्या होगा इसकी चिन्ता किये बिना चार्ल्सटाउनमे पड़ा था।

मैंने ट्रान्सवाल सरकारको पत्र लिखा था कि हम ट्रान्सवालमे बसनेके उद्देश्यसे प्रवेश नही करना चाहते। हमारा यह प्रवेश सरकारके वचन-भगके विरुद्ध उठाई जानेवाली हमारी प्रभावशाली आवाज है; और हमारे स्वाभिमानके भगसे हमे जो दुःख हो रहा है उसकी शुद्ध निशानी है। यदि आप हमे यही — चार्ल्सटाउनमे ही — पकड़ लेगे, तो हम सब निश्चिन्त हो जायेंगे। यदि आप ऐसा न करें और हमारे दलमे से कोई छिपे तौर पर ट्रान्सवालमे दाखिल हो जाय, तो उसके लिए हम जिम्मेदार नही रहेंगे। हमारी इस लड़ाईमे गुप्त कुछ है ही नही। किसीको अपना व्यक्तिगत स्वार्थ नही साधना है। हममें से कोई आदमी छिपे तौर पर ट्रान्सवालमे प्रवेश करे, यह हमें पसद नही है। लेकिन जहा हजारो अपरिचित और अनजाने लोगोसे काम लेना है और जहा प्रेमके सिवा दूसरा कोई बधन नही है, वहा किसीके कामके लिए हम जिम्मेदार नही हो सकते। इसके सिवा, आप यह भी जान लें कि अगर आप तीन पौडका कर रद कर देंगे, तो गिरमिटिया मजदूर फिरसे काम पर लग जायेंगे और हड़ताल बद हो जायगी। हमारे दूसरे दुःखोको दूर करानेके लिए हम इन मजदूरोंको सत्याग्रहमे शरीक नहीं करेंगे।

इसलिए हमारी स्थिति बिलकुल अनिश्चित थी; यह कहना कठिन था कि सरकार हमें कब गिरफ्तार करेगी। लेकिन ऐसी स्थितिमें सरकारके

उत्तरकी प्रतीक्षा अधिक दिन तक नहीं की जा सकती थी, एक या दो डाककी ही प्रतीक्षा की जा सकती थी। इसलिए हमने निश्चय किया कि सरकार गिरफ्तार न करे, तो तुरन्त चार्ल्सटाउन छोड़कर ट्रान्सवालमें प्रवेश करना चाहिये। अगर सरकार रास्तेमें गिरफ्तार न करे, तो काफिलेको प्रतिदिन २० से २४ मीलकी यात्रा आठ दिन तक करनी थी। आठ दिनमें हमारा इरादा टॉल्स्टॉय फार्म पहुंचनेका था। हमने सोचा था कि लड़ाई पूरी होने तक सब सत्याग्रही वहीं रहेंगे और फार्म पर काम करके अपनी जीविका उत्पन्न करेंगे। श्री कैलनबैकने सारी जरूरी व्यवस्था कर रखी थी। हमारा विचार था कि फार्म पर मिट्टीके मकान खड़े किये जाय और यह काम हड़तालियोंके काफिलेसे ही करवाया जाय। जब तक ये मकान खड़े न हो जाय तब तक छोटे तम्बू खड़े करके बूढ़ों, कमजोरों और अपंगोंको उनमें रखा जाय और जो लोग शरीरसे मजबूत हों वे बाहर खुलेमें पड़ाव डालकर रहें। इसमें एकमात्र कठिनाई यह थी कि अब वर्षाऋतु शुरू होनेवाली थी, इसलिए वर्षाके समय आसरेका होना सबके लिए जरूरी था। लेकिन इस समस्याका सामना करनेकी श्री कैलनबैकमें हिम्मत थी।

काफिलेके कूचकी दूसरी तैयारियां भी हमने की। चार्ल्सटाउनके भले अंग्रेज डॉक्टर ब्रिस्कोने हमारे लिए दवाइयोंकी एक छोटीसी पेटी तैयार कर दी और अपने कुछ ऐसे औजार भी दे दिये, जिनका उपयोग मेरे जैसा सामान्य आदमी कर सके। यह पेटी हमें स्वयं ही उठाकर ले जानी थी। काफिलेके साथ कोई गाड़ी वगैरा नहीं थी। इस परसे पाठक यह समझ लेंगे कि उस पेटीमें कमसे कम दवाइयां थीं। वे इतनी भी नहीं थीं कि एकसाथ सौ आदमियोंको दी जा सकें। इसका कारण यह था कि हमें प्रतिदिन किसी गांवके पास अपना पड़ाव डालना था, इसलिए कम पड़नेवाली दवाइयां हम वहांसे प्राप्त कर सकते थे। और अपने साथ हम एक भी रोगी या अपंग व्यक्तिको नहीं रखते थे; उसे तो रास्तेके गांवोंमें ही छोड़ देनेका प्रबंध हमने कर लिया था।

खुराकमें डबल-रोटी और शक्करके सिवा दूसरा कुछ नहीं था। परन्तु डबल-रोटी आठ दिनके कूचमें मुहैया कैसे की जाय? फिर रोटी

रोज काफिलेके लोगोंमें बांटना जरूरी था। इसका एकमात्र उपाय यह था कि हर मंजिल पर हमें डबल-रोटी पहुचानेकी जिम्मेदारी कोई ले। लेकिन यह काम कौन करे? हिन्दुस्तानी भठियारे तो वहा कोई थे ही नहीं। फिर, हर गांवमें भी भठियारे नहीं थे। गावोंमें डबल-रोटी शहरोंसे जाती थी। यह डबल-रोटी हमें तभी मिल सकती थी जब कोई भठियारा हमें मुहैया करे और रेलवे निश्चित स्टेशन पर उसे पहुचा दे। वॉक्सरस्ट (चार्ल्सटाउनके नजदीक ट्रान्सवालका सरहदी केन्द्र) चार्ल्सटाउनसे लगभग दुगुना बड़ा था। वहा गोरे भठियारेकी एक बड़ी दुकान थी। उसने प्रत्येक स्थान पर डबल-रोटी पहुंचानेका करार हमारे साथ किया। हमारी विषम स्थितिसे लाभ उठाकर उसने बाजार-भावसे अधिक दाम लेनेकी कोशिश नहीं की और डबल-रोटी भी सुन्दर आटेकी बनाकर हमें दी। उसने समयसे रेल पर डबल-रोटी भेजी और रेल-कर्मचारियोंने (ये भी गोरे ही थे) ईमानदारीसे डबल-रोटी हम तक पहुंचाई। यही नहीं, उन लोगोंने डबल-रोटी हम तक पहुचानेमें पूरी सावधानी बरती और हमारे लिए कुछ खास सुविधायें कर दी। वे जानते थे कि हमारी किसीसे दुश्मनी नहीं थी, हमें किसीको नुकसान नहीं पहुंचाना था। हमें तो दुःख सहन करके न्याय प्राप्त करना था। इस कारणसे हमारे आसपासका समग्र वातावरण शुद्ध हो गया और शुद्ध बना रहा। मनुष्य-जातिका प्रेमभाव प्रकट हुआ। सब लोगोंने यह अनुभव किया कि हम सब ईसाई, यहूदी, हिन्दू, मुसलमान आदि भाई भाई हैं।

जब हमारे कूचकी सारी तैयारिया हो गई तब मैंने फिर एक बार सरकारके साथ समझौतेका प्रयत्न किया। पत्र और तार तो मैंने भेजे ही थे। अब मैंने यह निर्णय किया कि सरकारको टेलिफोन भी किया जाय, भले वह मेरा अपमान ही क्यों न करे। चार्ल्सटाउनसे प्रिटोरियाके लिए टेलिफोनकी व्यवस्था थी। मैंने जनरल स्मट्सको टेलिफोन किया। उनके मंत्रीसे मैंने कहा: "आप जनरल स्मट्ससे कहिये कि मेरी कूचकी सारी तैयारिया हो गई हैं; वॉक्सरस्टके गोरे उत्तेजित हो गये हैं। वे शायद हमारे प्राणोंको भी नुकसान पहुचायें। ऐसी धमकी उन लोगोंने हमें दी ही है। मैं मानता हू कि ऐसा परिणाम आये, यह जनरल भी

नहीं चाहेंगे। वे तीन पौंडका कर रद करनेका वचन दें, तो मैं कूच नहीं करूंगा। मैं कानूनका भंग केवल उसका भंग करनेके लिए ही नहीं करूंगा। लेकिन उसका भंग करनेके लिए मैं लाचार हो गया हूं। जनरल क्या मेरी इतनी बात नहीं मानेंगे?" आधे मिनटमें मुझे इसका उत्तर मिल गया: "जनरल स्मट्स आपके साथ कोई संबंध नहीं रखना चाहते। आप जो चाहें सो करें।" और टेलिफोन बन्द हो गया।

मैंने इसी उत्तरकी आशा रखी थी। केवल अशिष्टताकी आशा नहीं रखी थी। जनरल स्मट्ससे मैंने शिष्ट और सभ्य उत्तरकी अपेक्षा रखी थी, क्योंकि सत्याग्रहके संगठनके बाद जनरल स्मट्सके साथ मेरा राजनीतिक संबंध छह वर्ष पुराना हो चुका था। लेकिन उनकी शिष्टतासे मैं फूलनेवाला नहीं था। उसी तरह उनके इस अशिष्ट उत्तरसे मैं ढीला भी नहीं पड़ा। अपने कर्तव्यकी सीधी रेखा मुझे अपने सामने स्पष्ट दिखाई देती थी। दूसरे दिन (६ नवम्बर, १९१३) निश्चित समय पर (प्रातः साढ़े छह बजे) हमने प्रार्थना की और ईश्वरके नाम पर अपना कूच आरंभ किया। हमारे इस काफिलेमें २०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियां और ५७ बालक थे।

२०

ट्रान्सवालमें प्रवेश – २

इस प्रकार संघ कहिये, काफिला कहिये अथवा यात्री-समुदाय कहिये, बिलकुल नियत किये हुए समय पर चार्ल्सटाउनसे रवाना हो गया। चार्ल्सटाउनसे एक मील दूर वॉक्सरस्टका छोटासा नाला पड़ता था। उस नालेको पार किया कि वॉक्सरस्टमें या कहिये ट्रान्सवालमें प्रवेश किया ऐसा माना जाता था। उस नालेके छोर पर घुड़सवार पुलिस पहरे पर खड़ी थी। सबसे पहले मैं उसके पास गया। जाते समय काफिलेके लोगोंसे कह गया था कि मैं आनेका संकेत करूं तब वे सीमामें प्रवेश करें। लेकिन मैं पुलिससे बात कर ही रहा था कि लोग तेजीसे आगे बढ़े और उन्होंने नाला पार कर दिया। वे ट्रान्सवालकी सीमामें पहुंच गये। घुड़सवारोंने उन्हें घेर लिया। परन्तु यह काफिला इस तरह पुलिसके रोके

रुकनेवाला नहीं था। पुलिसका इरादा हमें पकड़नेका तो था ही नहीं मने सब लोगोंको शात किया और कतारोंमें व्यवस्थित होकर चलनेकी वात समझाई। पाच-सात मिनटमे ही सब कुछ ठीक हो गया और हमारा कूच ट्रान्सवालमें आरभ हुआ।

वॉक्सरस्टके गोरोंने दो दिन पहले ही एक सभा की थी और उसमें अनेक तरहकी धमकियां हमें दी थी। कुछ लोगोंने कहा था कि यदि हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें प्रवेश करेंगे, तो हम उन पर गोलिया बरसायेंगे। उस सभामें श्री कैलनबैक गोरोंको समझाने गये थे। लेकिन कोई उनकी वात सुननेको तैयार नही थे। कुछ गोरे तो उन्हें मारनेके लिए खड़े हुए। श्री कैलनबैक स्वयं एक पहलवान हैं। उन्होंने सैन्डोसे कसरतकी तालीम ली थी। उन्हें डराना कठिन था। एक गोरेने तो उन्हें द्वन्द्वयुद्धका निमत्रण दिया। श्री कैलनबैकने कहा: "मैंने शातिका धर्म स्वीकार किया है। इसलिए मैं तुमसे युद्ध नही कर सकता। जिसे भी मुझ पर प्रहार करना हो वह खुशीसे कर सकता है। परन्तु मैं इस सभामे बोल कर ही रहूंगा। आपने सब गोरोंको इस सभामे आनेका निमत्रण दिया है। मैं आपको यह सुनाने आया हू कि सभी गोरे आपकी तरह निर्दोष मनुष्योंको मारनेके लिए तैयार नहीं हैं। कमसे कम एक गोरा तो ऐसा है, जो आपको यह सुनाना चाहता है कि आप हिन्दुस्तानियों पर जो आक्षेप लगाते है वे झूठे हैं। आप जैसा सोचते है वैसा हिन्दुस्तानी कुछ नही करना चाहते। उन्हें न तो आपका राज्य चाहिये, न वे आपसे लड़ना चाहते हैं और न वे आपके देशको हिन्दुस्तानियोंसे भर देना चाहते हैं। वे केवल शुद्ध न्याय चाहते है। जो हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें प्रवेश करना चाहते हैं वे बसनेके लिए नही, परन्तु उन पर जो तीन पौंडका अन्यायपूर्ण कर लगाया गया है उसके विरुद्ध अपनी प्रभावशाली पुकार सुनानेके लिए यहा प्रवेश करना चाहते हैं। वे लोग बहादुर है। वे उपद्रव नही करेंगे। वे आपसे लड़ेंगे नही। लेकिन आपकी गोलिया सहकर भी वे ट्रान्सवालमे प्रवेश तो करेंगे ही। वे लोग ऐसे नही हैं कि आपकी गोलियों या भालोंके डरसे पीछे हट जायं। वे खुद दु:ख सहकर आपके हृदयोंको पिघलाना चाहते हैं। मेरा विश्वास है कि वे आपके हृदयोंको अवश्य ही

पिघला देंगे। बस, इतना ही कहनेके लिए मैं यहां आया हूं। इतनी बात कह कर मैंने आप सबकी सेवा ही की है। आप सावधान हो जाइये और अन्यायसे बचिये।" इतना कहकर श्री कैलनबैक चुप हो गये। सभामें आये हुए लोग कुछ लज्जित हुए। वह द्वन्द्वयुद्धका निमंत्रण देनेवाला पहलवान तो कैलनबैकका मित्र ही बन गया।

लेकिन इस सभाके बारेमें हमने सुन लिया था, इसलिए वॉक्सरस्टके गोरे अगर कोई तूफान करते तो उसके लिए हम तैयार थे। सरकारने इतनी अधिक पुलिस सीमा पर इकट्ठी की, उसका अर्थ शायद यह भी हो कि जरूरत पड़ने पर वह गोरोंको मर्यादाका उल्लंघन करनेसे रोके। अब जो भी हो, हमारा जुलूस तो शांतिसे आगे बढ़ गया। मुझे याद नहीं आता कि किसी गोरेने हमारे साथ जरा भी शरारत की हो। वे सब यह अनोखा दृश्य देखनेके लिए बाहर निकल आये। उनमें से कुछ लोगोंकी आंखोंमें मित्रताका भाव भी दिखाई देता था।

पहले दिन हमारा पड़ाव वॉक्सरस्टसे करीब आठ मील दूरके एक स्टेशन पामफोर्ड पर था। वहां हम शामके कोई ५-६ बजे पहुंचे होंगे। लोगोंने डबल-रोटी और शक्कर खाई और सब खुली हवामें मैदानमें लेट गये। कोई भजन गाते थे, तो कोई बातें करते थे। रास्तेमें कुछ स्त्रियां थक गईं। अपने बच्चोंको गोदमें लेकर चलनेकी हिम्मत तो उन्होंने की थी, लेकिन आगे चलना उनकी शक्तिसे बाहर था। इसलिए मेरी चेतावनीके अनुसार मैंने उन्हें एक भले हिन्दुस्तानीकी दुकानमें छोड़ दिया और उससे कहा कि हम टॉल्स्टॉय फार्म पर पहुंच जायं तो इन बहनोंको वहां पहुंचा देना और यदि गिरफ्तार हो जायं तो इन्हें इनके घर भेज देना। हिन्दुस्तानी व्यापारीने मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

रात बढ़ती गई त्यों त्यों शोरगुल शांत होता गया। मैं भी सोनेकी तैयारीमें ही था कि मुझे किसीके जूतोंकी खट-खट सुनाई दी। मैंने एक गोरेको हाथमें लालटेन लिये आते देखा। मैं सावधान हो गया। सब कुछ समझ गया। मुझे तैयारी तो कुछ करनी ही नहीं थी। पुलिस-अधिकारीने मुझसे कहा :

"आपके लिए मेरे पास वारंट है। मुझे आपको गिरफ्तार करना है।"

"कब?" मैंने पूछा।

"इसी समय।" उत्तर मिला।

"आप मुझे कहां ले जायेंगे?"

"इस समय तो पासके रेलवे स्टेशन पर; और जब गाड़ी आवे तब उस पर बैठाकर वॉक्सरस्ट।"

मैं बोला: "तो मैं किसीको जगाये बिना आपके साथ आता हूं लेकिन मेरे एक साथीको थोड़ी सूचनायें दे दूं।"

"जरूर दे दें।"

पास ही सोये हुए पी० के० नायडूको मैंने जगाया। उन्हें अपनी गिरफ्तारीकी बात बताई और कहा कि सुबह होनेसे पहले वे लोगोंको न जगायें। सबेरा होने पर नियमानुसार कूच करनेकी सूचना उन्हे कर दी। साथ ही यह भी कहा कि कूच सूर्योदयसे पहले आरंभ हो। जहा विश्राम करने और खुराक बांटनेका समय हो जाय वहा लोगोंने मेरी गिरफ्तारीकी बात कही जाय। इस बीच जो कोई पूछे उसे यह बात कहते जाय। काफिलेको पुलिस पकडे तो वह गिरफ्तार हो जाय; और न पकड़े तो निश्चित कार्यक्रमके अनुसार अपना कूच जारी रखे। नायडूको कोई डर तो था ही नहीं। वे गिरफ्तार कर लिये जायं तो क्या किया जाय, यह भी मैंने उनसे कह दिया।

श्री कैलनबैक तो वॉक्सरस्टमे मौजूद थे ही।

मैं पुलिस अधिकारीके साथ गया। सबेरा हुआ। हम दोनों वॉक्सरस्टकी ट्रेनमें बैठे। वॉक्सरस्टकी अदालतमें मुझ पर मुकदमा चला। पब्लिक प्रॉसिक्यूटरने स्वय माग की कि केस १४ नवम्बर, १९१३ तक मुलतवी रखा जाय, क्योंकि उसके पास सबूत तैयार नही था। केस मुलतवी रहा। मैंने जमानत पर छूटनेकी अरजी दी और कारणमे बताया कि मेरे साथ १२२ स्त्रियां, ५० बालकों तथा २००० पुरुषोंसे अधिक लोग हैं। मुकदमेकी तारीख लगने तक मैं उन्हे निश्चित स्थान पर रखकर वापिस आ सकता हू और मुकदमेके समय हाजिर हो सकता हूं। सरकारी वकीलने जमानतकी मेरी अरजीका विरोध किया, लेकिन मजिस्ट्रेट लाचार था। मुझ पर जो आरोप लगाया गया था वह ऐसा नही था,

जिसमें जमानत पर छुटकारा पानेकी बात भी मजिस्ट्रेटकी सत्ता पर निर्भर हो। इसलिए मजिस्ट्रेटने मुझे ५० पौंडकी जमानत पर छोड़ दिया। श्री कैलनबैकने मेरे लिए मोटर तैयार ही रखी थी। उसमें बैठाकर उन्होंने मुझे अपने काफिलेके पास पहुंचा दिया। 'दि ट्रान्सवाल लीडर' का विशेष संवाददाता हमारे साथ आना चाहता था। हमने उसे कारमें बैठनेकी इजाजत दे दी। उसने कारकी इस यात्राका, मेरे मुकदमेका और काफिलेके साथ हुए मेरे मिलापका सुन्दर चित्रण अपने अखबारमें उस समय किया था। लोगोंने मेरा हार्दिक स्वागत किया। उनके उत्साह और जोशका कोई पार न रहा। इसके बाद कैलनबैक तुरंत वॉक्सरस्ट लौट गये। उनके जिम्मे चार्ल्सटाउनमें रुके हुए और नये आनेवाले हिन्दुस्तानियोंकी देखभाल करनेका काम था।

हमने अपना कूच जारी रखा। परन्तु मुझे स्वतन्त्र रखना सरकारको अनुकूल नहीं लगा। इसलिए उसने दूसरे दिन स्टेन्डरटनमें दूसरी बार मुझे गिरफ्तार कर लिया। स्टैंडरटन तुलनामें बड़ा गांव था। वहां मुझे विचित्र तरीकेसे पकड़ा गया। मैं काफिलेके लोगोंको डबल-रोटी बांट रहा था। वहांके हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने मुरब्बेके डिब्बे भेंट किये थे, इसलिए बटवारेके काममें ज्यादा देर लगती थी। मजिस्ट्रेट मेरे पास आकर खड़े हो गये। उन्होंने खुराक बांटनेका काम मुझे पूरा कर लेने दिया। उसके बाद उन्होंने मुझे एक ओर बुलाया। मैं उन्हें पहचानता था। इसलिए मैं समझा कि वे मुझसे कोई बात करना चाहते होंगे। लेकिन उन्होंने हंस कर मुझसे कहा:

"आप मेरे कैदी हैं।"

मैंने कहा: "मेरा दरजा बढ़ गया है। पुलिसके बदले मजिस्ट्रेट स्वयं पकड़ने आये हैं। लेकिन आप मुझ पर इसी समय मुकदमा चलायेंगे न?"

वे बोले: "मेरे साथ ही आप चलिये। कोर्ट बैठी ही है।"

काफिलेके लोगोंको कूच जारी रखनेकी सलाह देकर मैं उनसे अलग हुआ। कोर्टमें पहुंचते ही मैंने देखा कि मेरे कुछ साथी भी गिरफ्तार कर लिये गये हैं। वे पांच थे: पी० के० नायडू, बिहारीलाल महाराज, रामनारायण सिंह, रघु नारसु और रहीमखां।

मुझे तुरन्त कोर्टके सामने खड़ा किया गया। मैंने बॉक्सरस्टमें जमानत पर छूटनेके जो कारण बताये थे वे ही कारण यहां भी बताते हुए जमानत पर छूटनेकी अरजी दी। यहां भी सरकारी वकीलने मेरी अरजीका विरोध किया। लेकिन यहां भी मजिस्ट्रेटने २१ नवम्बर, १९१३ तक मुकदमा मुलतवी कर दिया और मुझे ५० पौंडके जाती मुचलके पर छोड़ दिया। हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने मेरे लिए इक्का तैयार ही रखा था। उसमें बैठाकर मुझे काफिलेके पास पहुंचा दिया, जो अभी तीन मीलका फासला भी तय नहीं कर पाया था। अब काफिलेके लोगोंने और मैंने भी सोचा कि शायद टॉल्स्टॉय फार्म तक सब पहुंच जायेंगे। परन्तु हमारी यह धारणा गलत निकली। फिर भी काफिलेके लोग मेरी गिरफ्तारीके आदी हो गये, यह कोई मामूली परिणाम नहीं था। मेरे पांच साथी तो जेलमें ही रहे।

२१
सभी लोग जेलमें

हम कूच करते करते अब जोहानिसबर्गके निकट आ पहुंचे थे। पाठकोंको याद होगा कि संपूर्ण यात्राको हमने आठ दिनकी आठ मंजिलोंमें बांट दिया था। अभी तक हम निश्चित की हुई मंजिलें पूरी करते चले आ रहे थे। इसलिए अब हमारे सामने कुल चार मंजिलें तय करना बाकी था। परन्तु ज्यों ज्यों हमारा उत्साह बढ़ता जा रहा था त्यों त्यों सरकारकी जागृति भी बढ़ती जा रही थी। सरकार हमें अपनी मंजिल पूरी कर लेने देती और उसके बाद हमें पकड़ती, तब तो वह उसकी कमजोरी और अकुशलता मानी जाती। इसलिए यदि उसे हमें पकड़ना हो, तो मंजिल पूरी होनेके पहले ही पकड़ना चाहिये।

सरकारने देखा कि मेरी गिरफ्तारीके बाद भी काफिला न तो निराश हुआ, न डरा और न उसने कोई उपद्रव मचाया। वह उपद्रव करता तो सरकारको उसे बन्दूकका निशाना बनानेका पूरा मौका मिलता।

जनरल स्मट्सके लिए तो हमारी दृढ़ता और उसके साथ हमारी शांति ही बडे दु.खकी बात तो गई। ऐसा उन्होंने कहा भी था। किसी शात मनुष्यको आखिर कब तक सताया जा सकता है? स्वेच्छासे मरे हुए किसी मनुष्यको आप कैसे मार सकते है? और मृत्युका स्वागत करनेवालेको मारनेमें किसीका रस हो ही नही सकता। इसीलिए शत्रुको जिन्दा पकड़नेमे गौरव समझा जाता है। अगर चूहा बिल्लीसे डरकर भागे नही, तो बिल्लीको दूसरा शिकार खोजना ही पड़े। अगर सब मेमने सिहकी बगलमें आकर बैठ जायं, तो सिहको मेमने खाना छोड़ देना पड़े। सिह यदि सामना न करे, तो क्या पुरुष-सिह उसका शिकार करेगा?

हमारी शाति और हमारे निश्चयमें हमारी विजय छिपी ही हुई थी।

गोखलेने समुद्री तार द्वारा यह इच्छा प्रकट की थी कि श्री पोलाक हिन्दुस्तान आकर भारत सरकार और साम्राज्य सरकारके सामने दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति रखनेमे उनकी सहायता करें। पोलाकका स्वभाव ऐसा था कि वे जहा भी जाते वहां उपयोगी बन जाते थे। जो काम वे हाथमे लेते उसमे वे तन्मय हो जाते थे। इसलिए उन्हे हिन्दुस्तान भेजनेकी तैयारी चल रही थी। मैंने उन्हें लिख भेजा था कि वे हिन्दुस्तान जा सकते हैं। लेकिन मुझसे मिले बिना और पूरी हिदायतें लिये बिना जानेकी उनकी इच्छा नही थी। इसलिए हमारे कूचके दौरान ही मुझसे मिल जानेकी उन्होंने माग की। मैंने तार किया कि गिरफ्तारीका खतरा उठाकर आप आना चाहे तो आ सकते हैं। लेकिन लड़वैये तो आवश्यक खतरे उठानेमे कभी हिचकिचाते ही नही। सरकार यदि सबको गिरफ्तार कर लेती तो भी कोई परवाह नही थी, क्योंकि गिरफ्तार होनेकी ही तो यह लड़ाई थी। सरकार गिरफ्तार न करे तब तक गिरफ्तार होनेकी सीधी और नीतिमय कोशिशें इस लड़ाईमे सबको करनी थी। इसलिए श्री पोलाकने गिरफ्तारीका खतरा उठाकर भी मेरे पास आना पसद किया।

हम हेडलबर्गके आसपास पहुंच चुके थे। वहा पोलाक पासके एक स्टेशन पर ट्रेनसे उतर कर पैदल चलते हुए हमसे मिलने आये। हमारी बातें चल रही थीं; लगभग पूरी होनेको आई थीं। उस समय दोपहरके

करीब ३ बजे होंगे। हम दोनों काफिलेके आगे चल रहे थे। दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। शामको श्री पोलाकको डरबन जानेवाली गाड़ी पकड़नी थी। परन्तु जब रामचन्द्रजी जैसेको भी राज-तिलकके ही समय वनवास मिला, तो पोलाक भला किस गिनतीमें थे? हम बातें कर रहे थे, इतनेमें एक घोड़ागाड़ी हमारे सामने आकर खड़ी हो गई। उसमें एशियाई विभागके अधिकारी श्री चमनी और पुलिसका एक अधिकारी था। दोनों नीचे उतरे। मुझे जरा दूर ले जाकर उनमें से एकने कहा: "मैं आपको गिरफ्तार करता हूं।" इस प्रकार मैं चार दिनमें तीन बार गिरफ्तार किया गया।

मैंने पूछा: "काफिलेका क्या होगा?"

"सब हो जायगा।"

मैं कुछ न बोला। पुलिस अधिकारीने मुझे केवल अपनी गिरफ्तारीकी ही खबर लोगोंको सुनाने दी। मैंने पोलाकसे कह दिया कि वे काफिलेके साथ जायं। जब मैं लोगोंको शांति रखने आदिकी बात समझाने लगा, तो अधिकारी महोदयने कहा:

"अब आप कैदी हैं। आप कोई भाषण नहीं दे सकते।"

अपनी मर्यादाको मैं समझ गया। लेकिन समझनेकी कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि मेरा बोलना बन्द करनेके साथ ही अधिकारीने कोचवानको गाड़ी तेज हांकनेका हुक्म दिया। एक क्षणमें काफिला मेरी आंखोंसे ओझल हो गया।

अधिकारी जानता था कि कुछ देरके लिए तो वहां मेरा ही राज्य था, क्योंकि वह हमारी अहिंसा पर विश्वास रखकर ही उस निर्जन मैदानमें दो हजार सत्याग्रहियोंके बीच अकेला खड़ा था। वह जानता था कि उसने समन भेज कर मुझे गिरफ्तार किया होता, तो भी मैं उसके अधीन हो जाता। ऐसी स्थितिमें मुझे इस बातका स्मरण कराना अनावश्यक था कि मैं कैदी हूं। मैं काफिलेके लोगोंसे जो कुछ कहनेवाला था, वह सत्ताधारियोंके लिए भी उपयोगी सिद्ध होता। लेकिन वे अपना रूप दिखाये बिना कैसे रहते? इसके साथ मुझे यह भी कहना चाहिये कि अन्य अनेक सरकारी अधिकारी हमारी कैदको समझते थे। वे जानते थे

कि यह कैद या जेल हमारे लिए अकुश-रूप या दुःखरूप नही है, बल्कि हमारी दृष्टिमें वह मुक्तिका द्वार है। इसलिए वे लोग हमें सब तरहकी छूट देते थे। इतना ही नही, हमें गिरफ्तार करते समय उन्हे सुविधा हो और उनका समय बचे, इसके लिए वे हमारी मदद मागते थे और मदद मिलने पर हमारा उपकार मानते थे। पाठकोंको इन प्रकरणोंमे दोनों प्रकारके अधिकारियोंके नमूने देखनेको मिल जायगे।

दोनों अधिकारी मुझे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर घुमाकर अतमें हेडलबर्गके थानेमे ले गये। रात मेरी वही बीती।

काफिलेको लेकर पोलाक आगे बढे। सब ग्रेलिंगसटेंड पहुचे। वहा हिन्दुस्तानी व्यापारी काफी सख्यामे थे। रास्तेमे उसे सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया और सेठ आमद भायात मिले। क्या होनेवाला है, इसका पता उन्हे चल गया था। मेरे साथ आये हुए पूरे काफिलेको भी गिरफ्तार करनेकी व्यवस्था हो चुकी थी। इसलिए पोलाक सोचते थे कि काफिलेके गिरफ्तार हो जानेके बाद वे एक दिन देरसे भी डरबन पहुंच कर हिन्दुस्तान जानेवाला जहाज पकड़ सकेंगे। लेकिन ईश्वरने कुछ और ही सोच रखा था।

१० नवम्बर, १९१३ को काफिला सवेरे ९ बजे बेलफोर पहुचा। वहा तीन स्पेशियल ट्रेनें स्टेशन पर काफिलेके लोगोंको कैद करके नेटाल पहुचा देनेके लिए खड़ी थी। लेकिन लोगोंने कुछ जिद पकड़ ली। वे बोले. "गाधीको बुलाइये। वे कहेंगे तो हम गिरफ्तार हो जायगे और ट्रेनमें बैठ जायगे।" लेकिन उनकी यह जिद गलत थी। वे जिद न छोड़ते तो हमारी बाजी बिगड़ जाती और सत्याग्रहियोंका तेज घट जाता। जेल जानेमें गांधीका क्या काम था? क्या सैनिक अपने सेनापतिका चुनाव कर सकते है? अथवा एक ही सेनापतिका हुक्म माननेकी जिद पकड़ सकते है? श्री चमनीने काफिलेके लोगोंको समझानेमें श्री पोलाक और काछलिया सेठकी मदद ली। दोनों बड़ी कठिनाईसे काफिलेको समझा सके कि कूच करनेवाले यात्रियोंकी मुराद ही जेल जानेकी है। इसलिए जब सरकार पकड़नेको तैयार हुई है तो उन्हे उसके निमत्रणका स्वागत करना चाहिये। ऐसा करनेमें ही हमारी सज्जनता और लड़ाईकी विजय समायी

हुई है। मेरी दूसरी कोई इच्छा हो ही नहीं सकती, पर लोगोंको सन्तोष देना चाहिये। अन्तमें सब लोग शान्त हुए और शांतिसे ट्रेनमें बैठ गये।

दूसरे दिन मुझे फिर अदालतमें मजिस्ट्रेटके सामने खड़ा किया गया। उसके बारेमें मुझे कोई पता नहीं था। मैंने एक बार फिर मुकदमेको मुल्तवी रखने और जमानत पर छोड़नेकी माँग की। पहले दो कोर्टोंने मुझे ऐसी मुहलत दी थी, यह भी मैंने कहा; और यह भी बताया कि अब हमारी बहुत थोड़ी मंजिल बाकी है। इसलिए या तो सरकार काफिलेको गिरफ्तार कर ले अथवा मुझे उसे टॉल्स्टॉय फार्म पर छोड़ आनेकी इजाजत दे। कोर्टने मेरी अरजी मंजूर नहीं की, लेकिन मेरी मांगको सरकार तक तुरन्त पहुंचा देना स्वीकार किया। इस बार मुझे डंडी ले जानेवाले थे। मुझ पर गिरमिटिया मजदूरोंको नेटालकी सरहद छोड़नेके लिए फुसलानेके अभियोगमें मुख्य मुकदमा वहीं चलनेवाला था। इसलिए उसी दिन मुझे ट्रेनसे डंडी ले जाया गया।

इधर श्री पोलाकको बेल्फोरमें गिरफ्तार नहीं किया गया; बल्कि अधिकारियोंने उनकी मददके लिए उनका आभार भी माना। श्री चमनीने तो यह भी कहा था कि सरकार पोलाकको गिरफ्तार करनेका इरादा ही नहीं रखती। लेकिन ये तो श्री चमनीके अपने विचार थे अथवा उस समय वे सरकारके विचारोंको जिस हद तक जानते थे उस हद तक सरकारके विचार थे। लेकिन सरकारके विचार तो बार-बार बदलते रहते थे। अन्तमें उसने यह निर्णय किया कि पोलाकको हिन्दुस्तान किसी भी हालतमें न जाने दिया जाय और पोलाक तथा कैलनबैकको, जो हिन्दुस्तानियोंके लिए बड़े ही उत्साहसे काम कर रहे थे, गिरफ्तार कर लिया जाय। इसलिए पोलाकको चार्ल्सटाउनमें गिरफ्तार किया गया। कैलनबैक भी गिरफ्तार कर लिये गये। दोनोंको वॉक्सरस्टकी जेलमें रखा गया।

मुझ पर ११ नवंबर, १९१३ को डंडीमें मुकदमा चला और ९ माहकी सख्त कैदकी सजा मिली। अभी निषिद्ध लोगोंको ट्रान्सवालके भीतर प्रवेश करनेमें मदद देनेके अभियोगमें मुझ पर वॉक्सरस्टमें मुकदमा चलना बाकी था। इसलिए डंडीसे मुझे १३ नवंबरको वॉक्सरस्ट ले जाया

गया। वहां मैंने श्री कैलनबैक और श्री पोलाकको देखा। हम तीनों वॉक्सरस्टकी जेलमें मिले, इससे हमें अपार आनन्द हुआ।

१४ नवंबरको वॉक्सरस्टकी कोर्टमें मुझ पर मुकदमा चला। इस मुकदमेकी खूबी यह थी कि कोर्टके सामने मेरे खिलाफ गवाही देनेवाले साक्षी मुझीको लाने थे। पुलिस ऐसे साक्षी प्राप्त तो कर सकती थी, परन्तु कठिनाईसे। इसलिए पुलिसने इस काममें मेरी मदद ली। दक्षिण अफ्रीकाकी अदालतें केवल कैदीके अपराधी होना स्वीकार कर लेनेसे ही उसे सजा नहीं देती।

मेरे विषयमें तो यह व्यवस्था हो गई, लेकिन श्री कैलनबैक और श्री पोलाकके विरुद्ध कौन गवाही दे? और उनके विरुद्ध गवाही न मिले, तो उन्हें सजा देना असंभव था। इन दोनोंके विरुद्ध तुरन्त गवाही मिलना कठिन था। श्री कैलनबैकको तो अपना अपराध स्वीकार करना था, क्योंकि उनका इरादा काफिलेके साथ रहनेका था। लेकिन श्री पोलाकका इरादा हिन्दुस्तान जानेका था। इस बार वे जान-बूझ कर जेल नहीं जाना चाहते थे। इसलिए हम तीनोंने मिल कर यह निर्णय किया कि यदि हमसे पूछा जाय कि जिस अपराधका अभियोग पोलाक पर लगाया गया है वह उन्होंने किया है या नहीं, तो हम उत्तरमें न तो 'हां' कहें और न 'ना' कहें।

इन दोनोंके विरुद्ध मैं साक्षी बना। हमें मुकदमेको लम्बाना नहीं था, इसलिए तीनोंका मुकदमा एक एक दिनमें पूरा हो इसके लिए हमने कोर्टकी पूरी मदद की; और एक एक दिनमें ही हमारे मुकदमे पूरे भी हो गये। हम तीनोंको तीन तीन माहकी कैदकी सजा मिली। हमने सोचा कि कमसे कम तीन महीने तो हम वॉक्सरस्ट जेलमें साथ रह सकेंगे। लेकिन सरकारको ऐसा होने देनेमें अपना लाभ नहीं दीखा।

इस बीच कुछ दिन तो हम वॉक्सरस्ट जेलमें सुखसे रहे। वहां प्रतिदिन नये नये कैदी आते थे और बाहरके समाचार हमें सुनाते थे। इन सत्याग्रही कैदियोंमें हरबतसिंग नामका एक बूढ़ा था। उसकी उमर लगभग ७५ वर्षकी थी। वह खदानोंमें नौकरी भी नहीं करता था। वह अपनी गिरमिट वर्षों पहले पूरी कर चुका था, इसलिए वह हड़ताली नहीं

था। मेरी गिरफ्तारीके बाद हिन्दुस्तानियोंका जोश खूब बढ़ गया था और अनेक लोग नेटालसे ट्रान्सवालकी सीमामें प्रवेश करके गिरफ्तार हो जाते थे। हरबतसिंग ऐसा ही एक उत्साही सत्याग्रही था।

मैंने हरबतसिंगसे जेलमें पूछा: "आप जेलमें क्यों आये? आप जैसे बूढ़ोंको मैंने जेलमें आनेका निमंत्रण नहीं दिया है।"

हरबतसिंगने जवाब दिया: "मैं कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लड़के भी हम लोगोंके लिए जेल चले गये?"

"लेकिन आपसे जेलका दुःख बरदाश्त नहीं हो सकेगा। आप जेलसे बाहर चले जाय। आपके छूटनेकी तजवीज मैं करूं?"

"मैं हरगिज जेल नहीं छोड़ूंगा। मुझे एक दिन तो मरना ही है। ऐसा दिन कहां कि मेरी मौत यहां हो जाय!"

इस दृढ़ताको मैं कैसे विचलित करूं? मेरे विचलित करनेसे भी वह विचलित होनेवाली नहीं थी। मेरा सिर इस निरक्षर ज्ञानीके सामने झुक गया। हरबतसिंगकी जैसी भावना थी वैसा ही हुआ। उसकी मृत्यु ५ जनवरी, १९१४ को जेलमें ही हुई। उसका शव वॉक्सरस्टसे डरबन मगाया गया। सैकड़ों हिन्दुस्तानियोंकी उपस्थितिमें सम्मानके साथ हरबतसिंगका अग्नि-संस्कार किया गया। हमारी सत्याग्रहकी लड़ाईमें ऐसे हरबतसिंग एक नहीं बल्कि अनेक थे। परन्तु जेलमें मरनेका सौभाग्य केवल हरबतसिंगको ही मिला। इसीलिए दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें उसका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार आकर्षित होकर लोग जेलमें आयें, यह सरकारको पसंद नहीं था। और, जेलसे छूटनेवाले लोग मेरे सन्देश बाहरके लोगोंके पास ले जायं, यह भी उसे पसंद नहीं था। इसलिए सरकारने मुझे, कैलनबैकको और पोलाकको एक-दूसरेसे अलग कर देनेका, किसीको भी वॉक्सरस्टमें न रखनेका और मुझे ऐसी किसी जेलमें ले जानेका निर्णय किया — जहां कोई हिन्दुस्तानी आकर मुझे देख ही न सके। इसलिए मुझे ऑरेंजियाकी राजधानी ब्लूमफोन्टीनकी जेलमें भेज दिया गया। ऑरेंजियामें ५० से ज्यादा हिन्दुस्तानी नहीं होंगे। वे सब होटलोंमें 'वेटर' की नौकरी

करते थे। ऐसे प्रदेशके जेलमें हिन्दुस्तानी कैदी हो ही नहीं सकते थे। उस जेलमें अकेला मैं ही हिन्दुस्तानी कैदी था। दूसरे सब कैदी गोरे थे या हब्शी थे। पर इस एकाकीपनसे मैं दुःखी नहीं था। मैंने उसमें सुखका अनुभव किया। मुझे न तो कुछ सुनना था और न कुछ देखना था। इसकी भी मुझे खुशी थी कि यहा मुझे नया अनुभव मिलेगा। इसके सिवा, मुझे अध्ययन करनेका तो वर्षोंसे — कहिये कि १८९३ के बाद — समय ही नहीं मिला था। यह जानकर भी मुझे खुशी हुई कि अब मुझे अध्ययनके लिए एक वर्षका समय मिलेगा।

ब्लूमफोन्टीनकी जेलमें मुझे जो एकात मिला, उसका कोई पार ही नहीं था। असुविधायें वहा काफी थीं, लेकिन सब बरदाश्त होने जैसी थीं। उनका वर्णन पढ़नेमें मैं पाठकोंका समय नहीं ले सकता। परन्तु इतना कह देना जरूरी है कि वहाके डॉक्टर मेरे मित्र बन गये थे। जेलर केवल अपने अधिकारोंको ही समझता था और डॉक्टर कैदियोंके अधिकारोंकी रक्षा करता था। उन दिनों मैं शुद्ध फलाहार करता था। न तो मैं दूध पीता था, न घी खाता था। कोई अनाज भी मैं नहीं खाता था। मैं आहारमें केले, टमाटर, कच्ची मूगफली, नीबू और जैतूनका तेल लेता था। इनमें से एक भी चीज सड़ी हुई आ जाती तो मुझे भूखों मरना पड़ता। इसलिए डॉक्टर मेरे आहारकी वस्तुओंके बारेमें बड़ी सावधानी रखते थे। उन्होंने मेरे आहारमें बादाम, अखरोट तथा ब्राजील नट और जोड़ दिये थे। वे स्वय सारे फलोंकी जाच करते थे। जेलमें मुझे जो कोठरी दी गई थी, उसमें हवा बहुत कम आती थी। डॉक्टरने कोठरीका दरवाजा खुला रखवानेकी खूब कोशिश की, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। जेलरने धमकी दी कि अगर मेरा दरवाजा खुला रखा जायगा, तो वह इस्तीफा दे देगा। जेलर बुरा आदमी नहीं था। लेकिन उसका स्वभाव एक ही साचेमें ढल गया था। उसे कैसे बदला जाय? उपद्रवी कैदियोंसे उसका वास्ता पड़ा था। उसका यह भय सच्चा था कि अगर वह मेरे जैसे भले कैदीका पक्ष लेने जाय, तो दूसरे कैदी उसके सिर पर सवार हो जायगे। जेलरके दृष्टिकोणको मैं अच्छी तरह समझ सकता था। इसलिए मेरे कारणसे डॉक्टर और जेलरके बीच जो झगड़ा होता

था, उसमें मेरी सहानुभूति सदा जेलरके प्रति रहती थी। जेलर अनु और सीधे मार्ग पर चलनेवाला आदमी था और अपने मार्गको साफ सकता था।

श्री कैलनबैकको वॉक्सरस्टसे प्रिटोरियाकी जेलमें और श्री पोलाक जरमिस्टनकी जेलमें ले जाया गया।

परन्तु सरकारकी ये सारी तजवीजें बेकार थीं। जब आसमान पड़े तो पैबंद कहां कहां लगाया जाय? नेटालके गिरमिटिया हिन्दुस्ता अब पूरी तरह जाग गये थे। उन्हें संसारकी कोई भी सत्ता आगे बढ़ने रोक नहीं सकती थी।

२२

कसौटी

सोनेकी परख करनेवाला जौहरी सोनेको हमेशा कसौटी पर घिसता है। फिर अधिक परीक्षा करनेके लिए सोनेको भट्ठीमें डालता है, उसे टीपता है, उसमें मैल हो तो उसे साफ कर देता है और अंतमें उसका कुंदन बना देता है। ऐसी ही कसौटी दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानियोंकी हुई, वे टीपे गये, भट्ठीमें डालकर तपाये गये और जब कसौटी पर खरे उतरे तभी उनकी कीमत आंकी गई।

काफिलेके यात्रियोंको सरकार विशेष ट्रेनोंमें बैठाकर कोई सैर करानेके लिए नहीं, परन्तु आगमें तपानेके लिए ही ले गई थी। रास्तेमें उनके खाने-पीनेकी कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। नेटाल पहुंचते ही उन पर मुकदमा चला और उन्हें सीधे जेल भेज दिया गया। इतना तो हमने सोचा ही था। इतना हम चाहते भी थे। परन्तु हजारोंको जेलमें रखनेका अर्थ होता खर्चको बढ़ाना और हिन्दुस्तानियोंकी मनचाही बात करना। और कोयलेकी खदानोंका काम तो बन्द रहता ही। ऐसी स्थिति लम्बे समय तक बनी रहती, तो सरकारके लिए तीन पौंडका कर रद करना अनिवार्य हो जाता। इसलिए यूनियन सरकारने नई युक्ति

खोज निकाली। जिन जिन स्थानोंसे काम छोड़कर गिरमिटिया मजदूर भागे थे, उन स्थानोंको ही सरकारने एक नया कानून रचकर जेल बना दिया; और खदानोंके यूरोपियन नौकरोंको उन जेलोंके वार्डर नियुक्त कर दिया। ऐसा करके मजदूरोंने जिस कामको स्वेच्छासे छोड़ा था वह काम सरकारने उनसे जबरदस्ती करवाया; और खदानें फिरसे चालू हो गईं। गुलामी और नौकरी दोनोंमें फर्क यह है कि नौकर अगर नौकरी छोड़ता है, तो उस पर सिर्फ दीवानी दावा ही किया जा सकता है; लेकिन गुलाम नौकरी छोड़ता है, तो उसे जबरन् नौकरी पर वापस लाया जा सकता है। इसलिए अब ये मजदूर संपूर्ण गुलाम बन गये।

लेकिन इतना करना काफी नही था। मजदूर तो बहादुर थे। उन्होंने खदानोंमें काम करनेसे साफ इनकार कर दिया। इसके फलस्वरूप उन्हें कोड़ोंकी मार सहनी पड़ी। जो उद्धत आदमी एक क्षणमें अधिकारी बन गये थे, उन्होंने इन मजदूरोंको लातें मारीं, गालिया दी और दूसरे भी अनेक अत्याचार उन पर किये — जिनका लिखित रूपमें कही उल्लेख तक नही हुआ है। ये सब अन्याय और अत्याचार गरीब मजदूरोंने धीरज रखकर सहन किये। इन सारे अत्याचारोंके संबधमें गोखलेको हिन्दुस्तान तार किये गये। अगर किसी दिन उन्हें ब्योरेवार तार न मिलता, तो वे स्वय पूछते थे। इन तारोका प्रचार गोखले रोगशय्या पर पड़े पड़े भी करते थे, क्योंकि उन दिनों वे सख्त बीमार थे। अपनी बीमारीके बावजूद वे दक्षिण अफ्रीकाके कामकी देखभाल स्वय करनेका आग्रह रखते थे; और उस कामको करते समय न तो उन्होने रात देखी, न दिन देखा। उसका परिणाम यह हुआ कि समूचा हिन्दुस्तान भड़क उठा और दक्षिण अफ्रीकाका प्रश्न हिन्दुस्तानका प्रमुख प्रश्न बन गया।

यही वह अवसर था जब (दिसबर १९१३) वाइसरॉय लॉर्ड हार्डिंगने अपना मद्रासका प्रसिद्ध भाषण किया था, जिसने दक्षिण अफ्रीकामें और इंग्लैण्डमें खलबली मचा दी थी। वाइसरॉय दूसरे उपनिवेशोंकी अथवा ब्रिटिश साम्राज्यके अंगभूत देशोंकी सार्वजनिक रूपमें टीका नही कर सकते थे; परन्तु लॉर्ड हार्डिंगने न केवल यूनियन सरकारकी कड़ी टीका की, बल्कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोंका पूरा बचाव भी किया और उनके द्वारा

किये जानेवाले सविनय कानून-भंगका समर्थन किया। लॉर्ड हार्डिंगके इस साहसकी इंग्लैण्डमें थोड़ी कड़वी टीका हुई, परन्तु उन्होंने अपने कार्यके लिए पश्चात्ताप प्रकट करनेके बजाय उसका औचित्य घोषित किया। उनकी इस दृढ़ताका बड़ा अच्छा असर हुआ।

इन पकड़े हुए, दुःखी और बहादुर मजदूरोंको छोड़कर हम एक क्षणके लिए खदानोंके बाहर नेटालके दूसरे भागों पर नजर डालें।

कोयलेकी खदानें नेटालके उत्तरी विभागमें थी। लेकिन मजदूरोंकी बड़ीसे बड़ी सख्या नेटालके नैऋत्य और वायव्य कोणमें थी। वायव्य कोणमें फिनिक्स, वेरूलम, टोंगाट इत्यादि स्थान हैं। नैऋत्य कोणमें इसिपिंगो, अमजिंटो इत्यादि स्थान हैं। वायव्य कोणके हिन्दुस्तानी मजदूरोके सपर्कमें मैं काफी आया था। उनमें से अनेक मजदूर मेरे साथ बोअर-युद्धमें भी काम कर चुके थे। नैऋत्यके मजदूरोंके संपर्कमें मैं इतना नही आया था। इस भागमें मेरे साथी भी बहुत थोड़े थे। फिर भी खदानोंके मजदूरोंकी हड़ताल और उनकी गिरफ्तारीके समाचार इन भागोंमें बिजलीकी तरह फैल गये थे। दोनों ही कोणोंमें हजारों मजदूर एकाएक अपना काम छोड़कर बाहर आ गये। कुछने अपना माल-सामान भी बेच डाला —ऐसा समझ कर कि लड़ाई लम्बी चलेगी और दूसरे कोई उन्हें खाना नही दे सकेंगे। मैंने जेल जाते समय अपने साथियोंको सावधान कर दिया था कि वे अधिक मजदूरोंको हड़ताल करनेसे रोकें। मुझे आशा थी कि खदान-मजदूरोंकी मददसे लड़ाई जीती जा सकेगी। यह स्पष्ट था कि यदि सारे हिन्दुस्तानी मजदूर, अर्थात् लगभग ६० हजार आदमी, हड़ताल कर देते, तो उनका भरण-पोषण करना कठिन हो जाता। इतने सब मजदूरोंको कूच पर ले जानेके साधन ही हमारे पास नही थे; और न हमारे पास इतने लोगों पर नियत्रण रखनेके लिए जरूरी मुखिया थे, न इतने लोगोंको खिलानेके लिए जरूरी पैसा था। इसके सिवा, इतने ज्यादा लोगोंको एकत्र करनेके बाद उपद्रव या दंगा-फसादको रोकना असंभव हो जाता।

लेकिन आनेवाली बाढ़को कौन रोक सकता है? मजदूरोंने सब जगह स्वेच्छासे अपना काम छोड़ दिया। उन उन स्थानों पर मजदूरोंकी देखभालके लिए स्वयसेवक भी अपने-आप तैनात हो गये।

अब यूनियन सरकारने बन्दूककी नीति अपनाई। मजदूरोंको जबरन् हड़ताल करनेसे रोका गया। हड़तालियोंके पीछे घुड़सवार दौड़ाये गये और उन्हें अपने कामके स्थानों पर भेजा गया। मजदूर जरा भी उपद्रव करते, तो उन पर गोलीबार किया जाता था। उनमें से कुछ लोगोंने फिरसे काम पर जानेका विरोध किया। कुछने पत्थर भी फेंके। पुलिसने गोलीबार किया। कई लोग घायल हुए। दो चार मर भी गये। लेकिन मजदूरोंका जोश ठंडा न पड़ा। स्वयंसेवकोंने बड़ी कठिनाईसे वेरूलमके पास मजदूरोंकी हड़तालको रोका। फिर भी सारे मजदूर काम पर तो नहीं ही गये। कुछ मजदूर डरके मारे छिप गये और वापस नहीं गये।

यहां एक घटनाका उल्लेख करने जैसा है। वेरूलममें बहुतसे मजदूर काम छोड़कर बाहर निकल आये थे। अधिकारियोंके सारे प्रयत्नोंके बावजूद वे काम पर नहीं जा रहे थे। जनरल ल्युकिन उस स्थान पर अपने सैनिकोंके साथ हाजिर था। वह अपने सैनिकोंको मजदूरों पर गोलीबार करनेका हुक्म देनेके लिए बिलकुल तैयार था। स्व० पारसी रुस्तमजीका छोटा लड़का बहादुर सोराबजी — जिसकी उमर मुश्किलसे १८ वर्षकी रही होगी — डरबनसे वहां आ पहुंचा था। वह जनरलके घोड़ेकी लगाम पकड़ कर बोल उठा: "आप गोली चलानेका हुक्म नहीं दे सकते। मैं अपने लोगोंको शांतिसे काम पर लगानेकी जिम्मेदारी अपने सिर लेता हूं।" जनरल ल्युकिन इस नौजवानकी बहादुरी पर मुग्ध हो गया। उसने सोराबजीको अपना प्रेमबल आजमानेकी छूट दी। सोराबजीने मजदूरोंको समझाया। मजदूर उसकी बात समझ गये और अपने काम पर लौट गये। इस प्रकार एक नौजवानकी समय-सूचकता, निर्भयता और प्रेमसे अनेक मजदूरोंकी हत्या टल गई।

पाठकोंको यह समझना चाहिये कि सरकारने हड़तालियों पर जो गोलीबार किया और उनके साथ जो बुरा व्यवहार किया, वह बिलकुल गैर-कानूनी था। न्यूकैसलकी खदानोंके मजदूरोंके साथ सरकारने जो व्यवहार किया था, वह ऊपरसे कानूनी दिखाई देता था। उन मजदूरोंको हड़ताल करनेके लिए नहीं, परन्तु बगैर परवानेके ट्रान्सवालकी सीमामें प्रवेश करनेके लिए गिरफ्तार किया गया था। नेटालके नैऋत्य और

वायव्य कोणोंमें हड़ताल ही अपराध मानी गई — लेकिन कानूनके बल पर नहीं, बल्कि सरकारकी सत्ताके बल पर। अंतमें तो सरकारकी सत्ता ही कानूनका रूप ले लेती है। ब्रिटिश कानूनमें एक कहावत है कि 'राजा कभी कोई गलत काम करता ही नहीं।' अंतिम विश्लेषणमें सत्ताकी अनुकूलता या सुविधा ही कानून बन जाती है। यह दोष सभी सरकारों पर एकसा लागू होता है। सच पूछा जाय तो इस तरह कानूनको भूलना हमेशा दोष ही नहीं होता। कभी कभी कानूनको पकड़ रखना ही दोष बन जाता है। जब कोई सत्ता लोक-संग्रह करती है और उस सत्ता पर लगे हुए नियंत्रण उसका नाश करनेवाले बन जाते हैं, तब उन नियंत्रणोंका अनादर करना उसका धर्म हो जाता है और ऐसा करनेमें विवेक है। परन्तु ऐसे अवसर बिरले ही होते हैं। जब सत्ता बारम्बार निरंकुश व्यवहार करती है तब वह लोकोपकारी रह ही नहीं सकती। दक्षिण अफ्रीकामें सत्ताके निरंकुश बननेका कोई कारण नहीं था। मजदूर हड़तालके अधिकारका अनादि कालसे उपभोग करते आये हैं। सरकारके पास यह जाननेके पर्याप्त कारण थे कि हड़तालियोंको कोई उपद्रव नहीं करना था। मजदूरोंकी इस हड़तालका बड़ेसे बड़ा परिणाम केवल तीन पौंडका कर रद होनेमें आता। शांतिप्रिय लोगोंके विरुद्ध शांत उपाय ही उचित माने जा सकते हैं। इसके सिवा, दक्षिण अफ्रीकाकी सत्ता लोकोपकारी नहीं थी। उस सत्ताका अस्तित्व गोरोंके उपकारके लिए था। सामान्यतः वह हिन्दुस्तानियोंके खिलाफ थी। इसलिए ऐसी एकपक्षी सत्ताकी निरंकुशता किसी भी हालतमें उचित अथवा क्षंतव्य नहीं मानी जा सकती।

इसलिए मेरी रायमें यहां सत्ताका निरा दुरुपयोग हुआ। लेकिन जिस कार्यकी सिद्धिके लिए सत्ताका ऐसा दुरुपयोग किया जाता है, वह कार्य कभी सिद्ध नहीं होता। कभी कभी क्षणिक सिद्धि प्राप्त होती देखी जाती है, परन्तु स्थायी सिद्धि ऐसे दुरुपयोगसे कभी प्राप्त नहीं होती। दक्षिण अफ्रीकामें तो इन मजदूरों पर गोली चलानेके बाद छह महीनेमें ही तीन पौंडका वह कर सरकारको रद करना पड़ा, जिसकी रक्षाके लिए यह अत्याचार किया गया था। इस प्रकार दुःख अनेक बार सुखके लिए होता है। दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंके इन दुःखोंकी

आवाज सब जगह पहुंच गई। मेरा यह विश्वास है कि जैसे किसी यंत्रमें उसके हर पुर्जेका अपना स्थान होता है वैसे ही हर आन्दोलनमें उसकी हर क्रियाका *अपना स्थान होता है; और जिस प्रकार जंग, मैल वगैरासे* यंत्रकी गति रुकती है उसी प्रकार कुछ बातोंसे आंदोलनकी गति भी रुकती है। हम केवल ईश्वरीय इच्छाके निमित्त मात्र होते हैं, इसलिए हम सदा यह नहीं जानते कि कौनसी वस्तु हमारे लिए प्रतिकूल है और कौनसी अनुकूल है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें केवल साधनोंको जाननेका ही अधिकार है। साधन यदि पवित्र हो तो हम परिणामके विषयमें निर्भय और निश्चिन्त रह सकते हैं।

सत्याग्रहकी इस लड़ाईमें मैंने देखा कि जैसे जैसे लड़नेवालोंका दुःख बढ़ता गया वैसे वैसे लड़ाईका अंत निकट आता गया; और जैसे जैसे दुःखियोंकी निर्दोषता अधिक स्पष्ट होती गई वैसे वैसे भी लड़ाईका अंत निकट आता गया। इसके सिवा, मैंने इस युद्धमें यह भी देखा कि ऐसे निर्दोष, निःशस्त्र और अहिंसक युद्धमें संकटके समय आवश्यक साधन *अनायास जुट जाते हैं। ऐसे अनेक स्वयंसेवकोंने, जिन्हें मैं आज तक नहीं* जानता, खुद होकर इस लड़ाईमें हमारी मदद की थी। ऐसे सेवक बहुधा निःस्वार्थ होते हैं। अनिच्छासे भी वे अदृश्य रूपमें अपनी सेवायें दे देते हैं। न तो उनकी सेवाकी ओर कोई ध्यान देता, न उनकी सेवाके लिए कोई उन्हें प्रमाणपत्र देता। उनके ऐसे अमूल्य कार्य ईश्वरके बहीखातेमें लिखे जाते हैं, इतना भी कुछ सेवक नहीं जानते।

दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी अपनी इस अग्नि-परीक्षामें पास हुए। उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया और उसमें से वे संपूर्ण रूपमें शुद्ध होकर बाहर निकले। इस लड़ाईके अन्तका आरंभ कैसे हुआ, इसकी चर्चा हम अगले प्रकरणमें करेंगे।

२३

अन्तका आरंभ

पाठक देख चुके हैं कि हिन्दुस्तानी कौम जितने सात बलका उपयोग कर सकती थी उतनेका और जितनेकी उससे आशा रखी जा सकती थी उससे कहीं अधिक सात बलका उसने उपयोग किया। पाठक यह भी देख चुके हैं कि इस सात बलका उपयोग करनेवाले लोगोंका अधिकांश ऐसे गरीब और दबे-कुचले आदमियोंका था, जिनसे ऐसी कोई आशा रखी ही नहीं जा सकती। पाठकोंको यह भी याद होगा कि फिनिक्सके दो या तीन जिम्मेदार कार्यकर्ताओंके सिवा बाकी सब जेलमें थे। फिनिक्सके बाहरके कार्यकर्ताओंमें स्व० सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया थे, जो जेलसे बाहर थे। फिनिक्स-निवासियोंमें श्री वेस्ट, कुमारी वेस्ट और मगनलाल गांधी जेलसे बाहर थे। काछलिया सेठ सामान्य देखरेख रखते थे। कुमारी श्लेसिन ट्रान्सवालका सारा हिसाब-किताब रखती थी और सीमा पार करनेवाले लोगोंकी देखभाल करती थी। श्री वेस्ट पर 'इंडियन ओपीनियन' का अंग्रेजी विभाग चलानेकी और गोखलेके साथ तार-व्यवहार चलानेकी जिम्मेदारी थी। जब परिस्थिति क्षण क्षणमें नये रूप लेती हो, उस समय पत्र-व्यवहारकी जरूरत तो पड़ती ही कैसे? तार ही पत्रों जैसे लम्बे लम्बे भेजने पड़ते थे। यह नाजुक जिम्मेदारीका काम श्री वेस्टको करना पड़ता था।

अब फिनिक्स न्यूकैसलके समान नेटालके वायव्य कोणके हड़ताली मजदूरोंका केन्द्र बन गया। सैकड़ों मजदूर वहा आकर सलाह लेने लगे या आश्रय ग्रहण करने लगे। ऐसी स्थितिमें सरकारकी नजर फिनिक्सकी ओर मुड़े बिना कैसे रहती? आसपास रहनेवाले गोरोंकी आखें भी लाल हो गईं। फिनिक्समें रहना कुछ हद तक खतरनाक बन गया। फिर भी वहाके बच्चे तक हिम्मत और बहादुरीके साथ खतरेसे भरे हुए काम करते थे। इस बीच वेस्ट गिरफ्तार हो गये। सच पूछा जाय तो वेस्टको गिरफ्तार

करनेका कोई भी कारण नहीं था। हमारे बीच यह तय हो चुका था कि वेस्ट और मगनलाल गांधी गिरफ्तार होनेका एक भी प्रयत्न न करें; बल्कि यथासंभव गिरफ्तार होनेके अवसरोंसे दूर रहें। इसलिए वेस्टने गिरफ्तार होनेका कोई कारण पैदा नहीं होने दिया था। लेकिन सरकार सत्याग्रहियोंकी सुविधाका खयाल थोड़े ही रखनेवाली थी? अथवा किसीको गिरफ्तार करनेका मौका भी उसे थोड़े ही खोजने जाना था? सत्ताधारीकी कोई कार्य करनेकी इच्छा हो उसके लिए अवसर बन जाता है। वेस्टके गिरफ्तार होनेका तार गोखलेको मिला कि तुरन्त उन्होंने हिन्दुस्तानसे होशियार और योग्य आदमियोंको दक्षिण अफ्रीका भेजनेका कदम उठाया। जब लाहौरमें दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोंकी मददके लिए सभा हुई तो उसमें एन्ड्रूजने अपने पासके सारे पैसे सत्याग्रहियोंके लिए दे दिये थे। और तभीसे गोखलेकी दृष्टि उन पर लगी हुई थी। इसलिए वेस्टकी गिरफ्तारीके समाचार सुनते ही गोखलेने तार द्वारा एन्ड्रूजसे पूछा: "आप तुरन्त ही दक्षिण अफ्रीका जानेको तैयार है?" एन्ड्रूजने उत्तरमें 'हां' लिखा। उसी क्षण एन्ड्रूजके परम प्रिय मित्र पियर्सन भी उनके साथ जानेको तैयार हो गये। दोनों पहले जहाजसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हुए।

परन्तु सत्याग्रहकी लड़ाई अब पूरी होनेको आई थी। हजारों निर्दोष मनुष्योंको जेलमें बंद रखनेकी शक्ति दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारमें नहीं थी। भारतके वाइसरॉय भी इस बातको सहन करनेवाले नहीं थे। सारी दुनिया देख रही थी कि जनरल स्मट्स अब क्या करते हैं। दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारने वही किया जो ऐसे समय सामान्यतः दूसरी सरकारें करती हैं। जांच तो इस मामलेमें कुछ करनी ही नहीं थी। हिन्दुस्तानियोंके साथ जो अन्याय हुआ था, वह तो सारे संसारमें प्रसिद्ध हो चुका था। उस अन्यायको दूर करनेकी आवश्यकताको हर कोई समझ सकता था। जनरल स्मट्स भी देख सकते थे कि हिन्दुस्तानी कौमके साथ अन्याय हुआ है और वह अन्याय दूर होना चाहिये। लेकिन उनकी स्थिति सांप-छछूंदर जैसी थी। उन्हें न्याय करना चाहिये था। परन्तु न्याय करनेकी शक्ति वे खो बैठे थे, क्योंकि उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंको

यह समझाया था कि मैं न तो तीन पौंडका कर रद करूंगा और न दूसरे कोई सुधार करूंगा। लेकिन अब तीन पौंडका कर रद करनेके लिए और दूसरे सुधार करनेके लिए वे मजबूर हो गये थे। प्रजामतसे डर कर चलनेवाले राज्य एक कमीशन नियुक्त करके ऐसी विषम स्थितिसे बाहर निकल जाते हैं। यह कमीशन नामकी जांच करता है, क्योंकि ऐसे कमीशनकी जांचका परिणाम पहलेसे ही जाना हुआ रहता है। और कमीशन जो सिफारिशें करता है उन पर अनिवार्य रूपमें अमल करनेकी सामान्य प्रथा होती है। इसलिए ऐसे कमीशनकी सिफारिशोंका आश्रय लेकर राज्य वही न्याय करते हैं, जिनके लिए वे पहले इनकार कर चुके होते हैं। जनरल स्मट्सके इस कमीशनमें तीन सदस्य नियुक्त किये गये थे। हिन्दुस्तानी कौमने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक इस कमीशनके संबंधमें उसकी बताई हुई शर्तें पूरी नहीं की जायंगी तब तक वह कमीशनका बहिष्कार करेगी। उनमें से पहली शर्त यह थी कि सब सत्याग्रहियोंको जेलसे मुक्त कर दिया जाय। दूसरी शर्त यह थी कि कमीशनमें कमसे कम एक सदस्य हिन्दुस्तानी कौमकी ओरसे होना चाहिये। पहली शर्तको कुछ अंशमें स्वयं कमीशनने ही स्वीकार कर लिया था और सरकारसे सिफारिश की थी कि उसका काम सरल बनानेके लिए श्री कैलनबैकको, श्री पोलाकको और मुझे बिना शर्तके छोड़ दिया जाय। सरकारने उसकी यह सलाह मान ली और हम तीनोंको एकसाथ (१८ दिसंबर, १९१३) छोड़ दिया। हमने मुश्किलसे छह सप्ताहकी कैद भोगी होगी।

दूसरी ओर, वेस्टको सरकारने पकड़ा जरूर, परन्तु उन पर मुकदमा दायर किया जा सके ऐसा कोई दोष उनका था नहीं। इसलिए उन्हें भी सरकारने छोड़ दिया। ये घटनायें एन्ड्रूज और पियर्सनके दक्षिण अफ्रीका पहुंचनेसे पहले हो चुकी थीं, इसलिए मैं ही दोनों मित्रोंको डरबन जाकर जहाजसे उतार लाया था। इन घटनाओंका पता न होनेसे दोनोंको मुझे जहाज पर देखकर आनंद और आश्चर्य हुआ था। इन दोनोंसे मेरी यह पहली ही मुलाकात थी।

हम तीनोंको जेलसे छूटने पर निराशा ही हुई। बाहरकी घटनाओंकी हमें कोई जानकारी नहीं थी। कमीशनकी नियुक्तिके समाचारने

हमें आश्चर्य हुआ, लेकिन हमने देखा कि हम कमीशनकी कोई सहायता करनेमें असमर्थ थे। ऐसा हमें जरूर लगा कि कमीशनमें हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे एक सदस्य अवश्य होना चाहिये। इसलिए हम तीनों डरबन पहुंचे। वहांसे २१ दिसम्बर, १९१३ को हमने जनरल स्मट्सको एक पत्र लिखा, जिसका सार इस प्रकार है:

"हम कमीशनका स्वागत करते हैं। परन्तु उसमें दो सदस्योंकी — श्री एसलन और श्री वाइलीकी — नियुक्ति जिस तरह हुई है, उसका हम कड़ा विरोध करते हैं। व्यक्तिगत रूपमें हमारा उनसे कोई विरोध नहीं है। वे प्रसिद्ध और सुयोग्य नागरिक हैं। परन्तु उन दोनोंने अनेक बार हिन्दुस्तानियोंके प्रति अपनी नाराजी जाहिर की है, इसलिए उनसे अनजाने हिन्दुस्तानियोंके साथ अन्याय हो जानेकी संभावना है। मनुष्य एकाएक अपने स्वभावको नहीं बदल सकता। इसलिए ये दोनों सज्जन अपना स्वभाव बदल डालेंगे, ऐसा मानना कुदरतके नियमके खिलाफ है। फिर भी हम यह नहीं चाहते कि उन्हें कमीशनसे अलग कर दिया जाय। हम तो इतना ही सुझाना चाहते हैं कि कमीशनमें कोई तटस्थ सदस्य बढ़ाये जायं; इस उद्देश्यसे हम सर जेम्स रोजइनिज और ऑनरेबल डब्ल्यू० पी० श्राइनरके नाम सुझाते हैं। ये दोनों पुरुष जाने-पहचाने हैं और अपनी न्यायवृत्तिके लिए विख्यात हैं। हमारी दूसरी प्रार्थना यह है कि सारे सत्याग्रही कैदियोंको छोड़ दिया जाय। यदि ऐसा न किया गया तो हमारे लिए जेलसे बाहर रहना कठिन हो जायगा। अब उन लोगोंको जेलमें बंद रखनेका कोई कारण नहीं रह जाता। इसके सिवा, यदि हमें कमीशनके सामने गवाही देनी ही है, तो हमें खदानोंमें और अन्यत्र जहां जहां गिरमिटिया मजदूर काम करते हैं वहां जानेकी आजादी मिलनी चाहिये। यदि सरकार हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेगी, तो हमें दुःखके साथ फिरसे जेलमें पहुंचनेके उपाय खोजने होंगे।"

जनरल स्मट्सने कमीशनके सदस्य बढ़ानेसे इनकार कर दिया और कहा कि कमीशनकी नियुक्ति किसी पक्षके लिए नहीं की गई है। कमीशन केवल सरकारके संतोषके लिए ही है। २४ दिसम्बरको प्राप्त हुए इस उत्तरके बाद हमारे पास एक ही इलाज रह गया था। हमने जेल

जानेकी तैयारी करके यह घोषणा कर दी कि १ जनवरी, १९१४
दिन डरवनसे जेल जानेवाले हिन्दुस्तानियोंका एक कूच आरभ होगा

परन्तु जनरल स्मट्सके उत्तरमें एक वाक्य था, जिसके आधार
मैंने उन्हें दूसरा पत्र लिखा। वह वाक्य था: "हमने निष्पक्ष औ
अदालती कमीशनकी नियुक्ति की है। और उसकी नियुक्ति करते सम
जैसे हमने हिन्दुस्तानियोंके साथ कोई सलाह-मशविरा नही किया उसी
तरह खदान-मालिकों या शक्करवालोके साथ भी नही किया था।" मैंने
निजी तौर पर जनरलको लिखा कि यदि सरकार हिन्दुस्तानियोंके साथ
न्याय ही करना चाहती हो, तो मुझे आपसे मिलने और आपके सामने
कुछ तथ्य प्रस्तुत करनेकी इजाजत दीजिये। इसके उत्तरमे जनरल स्मट्सने
मुलाकातकी मेरी विनती स्वीकार की। इसके फलस्वरूप हमारे कूचका
कार्यक्रम कुछ दिनके लिए मुलतवी रहा।

हिन्दुस्तानमें गोखलेने जब सुना कि एक नया कूच आरभ करनेका कार्यक्रम हम लोग बना रहे हैं तब उन्होंने मुझे एक लम्बा तार भेजा। उसमे उन्होंने लिखा कि हमारे इस नये कदमसे लॉर्ड हार्डिगकी स्थिति और उनकी अपनी स्थिति बड़ी अटपटी हो जायगी; उन्होने हमे दूसरा कूच रोकनेकी और कमीशनके सामने गवाही देकर उसकी मदद करनेकी जोरदार सलाह दी।

इससे हम धर्म-सकटमें फस गये। यदि कमीशनके सदस्योंमे वृद्धि न की जाय, तो कौम उसका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा ले चुकी थी। लॉर्ड हार्डिग नाराज हो जायं और गोखले दु:खी हों, तो भी ली हुई प्रतिज्ञा कैसे तोड़ी जाय? श्री एन्ड्रूजने सुझाया कि हम गोखलेकी भावनाओका और उनकी नाजुक तबीयतका तथा हमारे इस निश्चयसे गोखलेको लगनेवाले आघातका विचार करे। मैं तो यह सब जानता ही था। कौमके नेताओके साथ सलाह-मशविरा करके अतमें हमने यह निर्णय किया कि यदि कमीशनके सदस्य बढाये न जाय, तो बड़ेसे बडा खतरा उठा कर भी कमीशनका बहिष्कार तो हमे करना ही चाहिये। इसलिए हमने करीब १०० पौड खर्च करके गोखलेको एक लम्बा तार किया। उसमें एन्ड्रूज हमारे साथ सहमत थे। उस तारका सार इस प्रकार था:

"आपकी वेदनाको हम समझते हैं। चाहे जैसा त्याग करके भी हम आपकी सलाह मानना चाहेंगे। लॉर्ड हार्डिगने हमारी अमूल्य सहायता की है। हम यह भी चाहते हैं कि उनकी सहायता हमें अंत तक मिलती रहे। लेकिन हम चाहते हैं कि आप हमारी स्थितिको समझें। इसमें हजारों आदमियोंकी प्रतिज्ञाका प्रश्न समाया हुआ है। हमारी प्रतिज्ञा शुद्ध है। हमारी संपूर्ण लड़ाईकी रचना प्रतिज्ञाओंकी बुनियाद पर की गई है। यदि प्रतिज्ञाका बन्धन न होता, तो आज हममें से अनेक लोग नीचे गिर गये होते। हजारों लोगोंकी प्रतिज्ञा पर एक बार पानी फिर जाय, तो फिर नैतिक बन्धन जैसी कोई भी चीज न रह जाय। प्रतिज्ञा लेते समय कौमके लोगोंने पूरा पूरा विचार किया था। उसमें किसी प्रकारकी अनीति तो है ही नहीं। बहिष्कारकी प्रतिज्ञा लेनेका कौमको पूरा अधिकार है। मैं चाहता हूं कि आप भी हमें ऐसी सलाह दें कि इस प्रकारकी प्रतिज्ञा किसीके भी लिए तोड़ी नहीं जानी चाहिये और बड़ेसे बड़ा खतरा उठा कर भी उसका पालन किया जाना चाहिये। कृपया यह तार लॉर्ड हार्डिंगको भी दिखा दीजिये। हम चाहते हैं कि आपकी स्थिति अटपटी न बने। यह लड़ाई हमने ईश्वरको साक्षी रखकर और उसकी सहायता पर आधार रखकर आरंभ की है। बुजुर्गोंकी, बड़े लोगोंकी सहायता हम मांगते हैं, और चाहते हैं; और जब उनकी सहायता मिलती है तो हम खुश होते हैं। लेकिन उनकी सहायता मिले या न मिले, प्रतिज्ञाका बंधन किसी भी हालतमें टूटना नहीं चाहिये, ऐसा हमारा नम्र मत है। अपनी प्रतिज्ञाके पालनमें हम आपका समर्थन और आशीर्वाद चाहते हैं।"

यह तार गोखलेके पास पहुंचा तो उनकी तबीयत पर इसका बुरा असर पड़ा। लेकिन हमें मिलनेवाली उनकी मदद पर इसका बुरा असर नहीं पड़ा। अथवा कोई असर हुआ हो तो यह कि उनकी मददका जोर और ज्यादा बढ़ गया। उन्होंने लॉर्ड हार्डिंगको इस विषयमें तार किया, परन्तु हमारा त्याग नहीं किया। उलटे उन्होंने हमारी दृष्टिका लॉर्ड हार्डिंगके सामने बचाव किया। लॉर्ड हार्डिंग भी अपनी बात पर अडिग रहे।

मैं एन्ड्रूजके साथ प्रिटोरिया गया। इसी समय यूनियन रेलवेमें गोरे कर्मचारियोंकी बहुत बड़ी हड़ताल हुई। उस हड़तालसे यूनियन सरकारकी

स्थिति नाजुक हो गई। मुझसे कहा गया कि ऐसे समय में हिन्दुस्तानियोंक कूच आरभ कर दूं। पर मैंने घोषित किया कि मैं हड़ताली गोरोंकी इस तरह मदद नहीं कर सकता। हमारा उद्देश्य सरकारको परेशान करना नहीं है। हमारी लड़ाई गोरोंकी लड़ाईसे अलग है और भिन्न प्रकारकी है। हमें कूच करना भी होगा तो हम दूसरे समय करेंगे, जब रेलवेका उपद्रव शात हो जायगा। हमारे इस निश्चयका गहरा प्रभाव हुआ। इसकी सूचना रायटरने तारसे इग्लैण्ड भेजी। लॉर्ड एम्प्टहिलने हमें इंग्लैंडसे धन्यवादका तार भेजा। दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेज मित्रोंने भी हमें धन्यवाद दिया। जनरल स्मट्सके एक सचिवने मुझसे विनोदमें कहा: "मुझे आपके लोग बिलकुल अच्छे नहीं लगते। मैं उनकी जरा भी मदद नही करना चाहता। लेकिन हम उनका क्या करें? आप लोग संकटकी स्थितिमें हमारी सहायता करते हैं। आपको कैसे मारा जाय? मैं तो बहुत बार चाहता हूं कि आप भी इन अग्रेज हड़तालियोंकी तरह हुल्लड़ करें। वैसी स्थितिमें तो हम तुरन्त आप लोगोंको सीधा कर सकते हैं। लेकिन आप तो दुश्मनोंको भी दुःखी नही करना चाहते। आप स्वयं ही दुःख सहन करके जीतना चाहते हैं। आप शिष्टताकी मर्यादा कभी छोड़ते नहीं, इससे हम आपके सामने लाचार हो जाते हैं।"

इसी प्रकारके उद्गार जनरल स्मट्सने भी प्रकट किये थे।

पाठकोंको जानना चाहिये कि सत्याग्रहियोंके सौजन्य और विनयका यह पहला ही उदाहरण नही था। जब वायव्य कोणके मजदूरोंने हड़ताल की उस समय कुछ कटा हुआ गन्ना यदि उचित स्थान पर— मिलमें पहुंचाया न जाता, तो गोरे मालिकोंको बड़ा नुकसान उठाना पड़ता। इसलिए उस गन्नेको यथास्थान पहुंचानेके लिए १२०० हिन्दुस्तानी मजदूर फिरसे काम पर लग गये और काम पूरा होनेके बाद ही अपने साथियोंके साथ हड़तालमें शरीक हुए। इसके सिवा, डरबन म्युनिसिपैलिटीके गिरमिटिया लोगोंने हड़ताल की तब उसमें भी जो लोग भंगीका और अस्पतालका काम करते थे, उन्हें वापस काम पर भेज दिया गया और वे खुशीसे वापस गये थे। भंगियोंकी और अस्पतालके मजदूरोंकी सेवायें न मिलती, तो शहरमें रोग फैल जाता और बीमारोंकी सार-संभालका काम रुक जाता। सत्याग्रही

से परिणामकी कभी इच्छा नहीं कर सकता। इसलिए ऐसे नौकरोंको हमने हड़तालसे मुक्त रखा था। सत्याग्रही जो भी कदम उठाये उसमें उसे विरोधीकी स्थितिका विचार तो करना ही चाहिये।

हिन्दुस्तानियोंके सौजन्यके ऐसे अनेक उदाहरणोंका जो अदृश्य प्रभाव चारों ओर पड़ता ही रहता था, उसे मैं देख सकता था। इस प्रभावके फलस्वरूप हिन्दुस्तानियोंकी प्रतिष्ठामें वृद्धि होती रहती थी और समझौतेके लिए अनुकूल हवा बनती रहती थी।

२४

प्राथमिक समझौता

इस प्रकार समझौतेके लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो रहा था। मैं और श्री एन्ड्रूज प्रिटोरिया पहुंचे उसी अरसेमें सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन, जिन्हें लॉर्ड हार्डिंगने एक विशेष जहाजमें दक्षिण अफ्रीका भेजा था, वहां पहुंचनेवाले थे। परन्तु जनरल स्मट्सने जो दिन तय किया था उसी दिन हमें प्रिटोरिया पहुंचना था, इसलिए सर बेंजामिनकी राह देखे बिना ही हम रवाना हो गये थे। उनकी राह देखनेका कोई कारण भी नहीं था। कौमकी लड़ाईका अंतिम परिणाम तो हमारी शक्तिके अनुसार ही आनेवाला था।

हम दोनों प्रिटोरिया गये। परन्तु जनरल स्मट्ससे अकेले मुझीको मिलना था। वे महोदय रेलवेके गोरे मजदूरोंकी हड़तालके काममें उलझे हुए थे। वह हड़ताल इतनी भयंकर थी कि यूनियन सरकारने फौजी कानून (मार्शल लॉ) घोषित कर दिया था। गोरे कर्मचारियोंका ध्येय केवल वेतन बढ़वाना ही नहीं था, उन्हें तो राज्यकी सत्ता अपने हाथमें लेनी थी। जनरल स्मट्सके साथ मेरी पहली मुलाकात बहुत थोड़े समयकी हुई। लेकिन उस मुलाकातमें मैंने देख लिया कि पहले अर्थात् हमारे महान कूचके समय उनकी जो स्थिति थी वह आज नहीं रह गई है। पाठकोंको स्मरण होगा कि उस समय जनरल स्मट्सने मुझसे बात करनेसे भी इनकार कर दिया था। सत्याग्रहकी धमकी तो जैसे इस समय थी

वैसे उस समय भी थीं; फिर भी उस समय उन्होंने मुझसे समझौतेकी बातचीत करनेसे इनकार कर दिया था। परन्तु आज वे मुझसे बातचीत करनेको तैयार थे।

हिन्दुस्तानी कौमकी माग तो यह थी कि कमीशनमें हिन्दुस्तानियोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले किसी सदस्यकी नियुक्ति होनी चाहिये। लेकिन इस विषयमें जनरल स्मट्स दृढ़ थे। उन्होंने कहा: "कमीशनमें यह वृद्धि हो ही नहीं सकती, क्योंकि उससे सरकारका महत्त्व घटेगा और मैं जो सुधार करना चाहता हूं उन्हें कर नही सकूंगा। आपको यह जानना चाहिये कि श्री एसलन हमारे आदमी हैं; सुधारोंके बारेमें वे सरकारके विरुद्ध नही जायेंगे, बल्कि सरकारके अनुकूल रहेंगे। कर्नल वाइली नेटालके एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं; इसके सिवा वे आप लोगोंके विरुद्ध भी माने जायंगे। इसलिए यदि वे भी तीन पौंडका कर रद करनेमें सहमत हो जायं, तो हमारा काम सरल हो जायगा। हमारे अपने कष्ट इतने अधिक हैं कि हमें एक क्षणकी फुरसत नही मिलती। इसलिए हम चाहते हैं कि आपका प्रश्न निबट जाय। आपकी जो मांगें हैं उन्हें स्वीकार करनेका हमने निर्णय कर लिया है। परन्तु कमीशनकी सम्मतिके बिना हम उन्हे पूरा नही कर सकते। आपकी स्थितिको भी मैं समझ सकता हूं। आपने इस बातकी सौगन्ध खा ली है कि जब तक हम कमीशनमें आपकी ओरसे किसी सदस्यकी नियुक्ति नही करेंगे तब तक आप कमीशनके सामने गवाही नही देंगे। आप न चाहें तो गवाही न दें। परन्तु जो लोग देने आयें उन्हें आप रोकें नहीं और कमीशनका काम चले तब तक सत्याग्रह स्थगित रखें। मेरा विश्वास है कि ऐसा करनेमें आपको लाभ ही होगा और मुझे शांति मिलेगी। हड़ताल करनेवाले हिन्दुस्तानी मजदूरों पर जुल्म ढाये जानेकी बात आप लोग कहते हैं। लेकिन यह बात आप सिद्ध नही कर सकेंगे, क्योंकि कमीशनके सामने आप गवाही नही देंगे। लेकिन यह तो स्वयं आपके सोचनेकी बात है।"

ये उद्गार जनरल स्मट्सने प्रकट किये। मेरा मन तो सब मिला कर उनकी कही हुई बातोंके अनुकूल था। हड़तालियों पर सिपाहियों और वार्डरोंने जो जुल्म ढाये थे, उनकी शिकायत हमने खूब की थी।

परन्तु कमीशनका बहिष्कार करनेके कारण उसे सिद्ध करनेका सुयोग हमें नहीं मिल सकता था। यह एक धर्म-संकट था। हमारे बीच इस विषयमें मतभेद था। एक पक्ष यह मानता था कि हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे सिपाहियों और वार्डरों पर लगाये गये आरोप सिद्ध किये ही जाने चाहिये। और इसलिए इस पक्षका सुझाव था कि अगर कमीशनके सामने गवाही न दी जा सके, तो जिन लोगोंको कौम अपराधी मानती है उनके विरुद्ध शिकायतें ऐसे रूपमें प्रकट की जाय, जिससे अभियुक्त चाहें तो 'लाइबल' का — मानहानिका — दावा कोर्टमें कर सकें। लेकिन मैं इस पक्षके खिलाफ था। कमीशनका निर्णय सरकारके विरुद्ध हो, इसकी बहुत कम संभावना थी। मानहानिका दावा कर सकने जैसी हकीकतें जाहिर करनेसे कौमको बड़ी झंझटोंमें फंसना पड़ता और उसका परिणाम केवल शिकायतें सिद्ध करनेके संतोषके सिवा दूसरा कुछ नहीं होता। एक वकीलके नाते मैं मानहानिवाली बातोंको सिद्ध करनेकी कठिनाइयोंको जानता था। लेकिन सबसे वजनदार दलील मेरे पास यह थी कि सत्याग्रहियोंको दुःख सहन करना है। सत्याग्रह आरंभ करनेसे पहले सत्याग्रही यह जानते थे कि उन्हें मृत्यु-पर्यन्त दुःख सहने पड़ेंगे और ये सब दुःख सहनेके लिए वे तैयार भी हैं। तो फिर जो दुःख उन्हें सहन करने पड़ें उन्हें सिद्ध करनेमें कोई विशेषता नहीं है। बदला लेनेकी वृत्ति तो सत्याग्रहीमें होनी ही नहीं चाहिये। इसलिए सही मार्ग यही होगा कि जहां अपने दुःख साबित करनेमें असामान्य कठिनाइयां आयें वहां सत्याग्रहीको शांत रहना चाहिये। सत्याग्रहीको लड़ाई तो मूल वस्तुके लिए ही करनी चाहिये। और मूल वस्तु ये काले कानून हैं। जब उनके रद होनेकी या उनमें आवश्यक परिवर्तन होनेकी पूरी संभावना हो तब सत्याग्रही दूसरी झंझटोंमें नहीं पड़ेगा। इसके सिवा, सत्याग्रहीका मौन कानूनके विरुद्ध लड़ी जानेवाली लड़ाईमें समझौतेके समय उसका सहायक ही सिद्ध होता है। इन दलीलोंसे मैं विरोधी पक्षके बड़े भागको अपनी बात समझा सका था। इसलिए हमने दुःखोंकी शिकायतें कानूनकी सहायतासे सिद्ध करनेका विचार छोड़ देनेका निर्णय किया।

२५

पत्रोंका आदान-प्रदान

प्रायमिक समझौतेके लिए जनरल स्मट्स और मेरे बीच पत्र-व्यवहार हुआ था। मेरे २१ जनवरी, १९१४ के पत्रका आशय इस प्रकार था:

"अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम आपके बताये अनुसार कमीशनके सामने गवाही देकर उसकी सहायता नही कर सकेंगे। हमारी इस प्रतिज्ञाको आप समझ सकते हैं और आप उसका सम्मान भी करते हैं। आप कौमके साथ सलाह-मशविरा करनेके सिद्धान्तको स्वीकार करते हैं, इसलिए गवाही देनेके सिवा दूसरे तरीकेसे कमीशनकी सहायता करनेकी और कमसे कम कमीशनके कार्यमें बाधक न बननेकी सलाह तो मैं अपने देशबन्धुओंको दे सकता हू। इसके सिवा, कमीशनका कार्य चले उस बीच और नये कानून पास हों उस बीच सरकारकी स्थितिको विषम न बनानेकी दृष्टिसे मैं कौमको सत्याग्रह स्थगित रखनेकी सलाह भी दे सकता हू। साथ ही वाइसरॉयके भेजे हुए सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनकी सहायता करनेकी सलाह भी मैं अपने देशबन्धुओंको दूगा।

"जेलमें और हड़तालके दिनोंमें हमें जो दु:ख उठाने पड़े और हम पर जो अत्याचार किये गये, उनके सबधमें मुझे यह कहना चाहिये कि अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम उन दु:खों और अत्याचारोंको सिद्ध नही कर सकेंगे। सत्याग्रहियोंके नाते हम यथासंभव अपने दु:खों और कष्टोंकी शिकायत नहीं करते और उनका बदला नही मांगते। परन्तु इस विषयमें हमारे मौनका यह अर्थ न किया जाना चाहिये कि हमारे पास उन्हें सिद्ध करनेकी कोई सामग्री ही नही है। मैं चाहता हू कि आप हमारी स्थितिको भी समझें। इसके सिवा, जब हम सत्याग्रह स्थगित रखते हैं तो जो सत्याग्रही इस समय लड़ाईके सिलसिलेमें जेलमें बद हैं वे रिहा कर दिये जाने चाहिये। मैं यहां यह भी बता देना जरूरी समझता हूं कि हमारी मांगें क्या क्या हैं:

१. तीन पौंडका कर रद कर दिया जाय।

२. जो विवाह हिन्दू, मुस्लिम वगैरा धार्मिक विधिके अनुसार हुए हों, वे कानूनसे जायज माने जाय।

३. शिक्षित हिन्दुस्तानियोंको इस देशमें प्रवेश करने दिया जाय।

४. ऑरेंज फ्री स्टेटके विषयमें जो करार हुए हैं, उनमें सुधार किया जाय।

५ वर्तमान कानूनोंका अमल इस प्रकार होनेका आश्वासन दिया जाय कि उनसे हिन्दुस्तानियोंके मौजूदा अधिकारोंको कोई नुकसान न पहुचे।

"अगर इन मागोंके बारेमें आपकी ओरसे सन्तोषकारक उत्तर मिला, तो मैं कौमको सत्याग्रह स्थगित रखनेकी सलाह दूगा।"

इस पत्रका जनरल स्मट्सने उसी दिन जो उत्तर दिया, उसका आशय यह था :

"सरकारको इस बातका दुःख है कि आप कमीशनके सामने गवाही नहीं दे सकते। लेकिन वह आपकी स्थितिको समझ सकती है। आप सत्याग्रहियोंके दुःखोंकी बात छोड़ देनेका जो इरादा बताते हैं, उसके पीछे रहा हेतु भी सरकार समझती है। सरकार इस बातसे साफ इनकार करती है कि सत्याग्रहियोंके साथ कोई क्रूर व्यवहार किया गया था। लेकिन यदि आप इस विषयमें कमीशनके सामने कोई सबूत पेश न करें, तो सरकारके लिए कुछ करनेको नहीं रह जाता। और सत्याग्रही कैदियोंको छोड़नेके बारेमें तो आपका पत्र मिलनेसे पहले ही सरकारने आवश्यक आदेश भेज दिये हैं। हिन्दुस्तानी कौमके दुःखोंके बारेमें आपने पत्रके अंतमें जो लिखा है, उसके संबंधमें सरकार कमीशनकी रिपोर्ट मिलने तक कोई कदम नहीं उठायेगी।"

हमारे इन दोनों पत्रोंका आदान-प्रदान हुआ उसके पूर्व मैं और श्री एन्ड्रूज जनरल स्मट्ससे कई बार मिल चुके थे। इस बीच सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन भी प्रिटोरिया पहुच गये थे। यद्यपि सर बेंजामिन लोकप्रिय अधिकारी माने जाते थे और गोखलेका सिफारिशी पत्र भी अपने साथ लाये थे, फिर भी मैंने देखा कि वे सामान्य अंग्रेज अधिकारियोंकी कम-जोरियोंसे सर्वथा मुक्त नहीं थे। उन्होंने आते ही कौममें फूट डालना और

सत्याग्रहियोंको डराना शुरू कर दिया। प्रिटोरियामें उनके साथ हुई मेरी पहली मुलाकातमें मुझ पर उनकी अच्छी छाप नहीं पड़ी। सत्याग्रहियोंको डरानेके बारेमें मुझे कुछ तार मिले थे, जिनके संबंधमें मैंने सर बेंजामिनसे बात भी की थी। मुझे तो सबके साथ एक ही रीतिसे अर्थात् स्पष्टता और निखालिसपनसे ही काम लेना था, इसलिए हम दोनों मित्र बन गये। परन्तु मैंने अनेक बार यह अनुभव किया है कि डरनेवालेको अधिकारी डराते ही हैं और सीधे तथा निडर व्यक्तिके साथ वे सीधे रहते हैं।

इस प्रकार सरकारके साथ हमारा प्राथमिक समझौता हुआ और सत्याग्रह अंतिम बारके लिए स्थगित रहा। इससे अनेक अंग्रेज मित्र प्रसन्न हुए और उन्होंने अंतिम समझौतेमें हमारी सहायता करनेका विश्वास भी दिलाया। कौमसे इस समझौतेको स्वीकार करानेका काम कुछ मुश्किल था। कोई ऐसा नहीं चाहता था कि कौमके लोगोंमें उत्पन्न हुआ उत्साह टूट जाय। इसके सिवा, जनरल स्मट्सका विश्वास तो कोई रखते ही क्यों? कुछ लोगोंने मुझे १९०८ के समझौतेकी याद दिलाई और कहा: "एक बार जनरल स्मट्सने कौमको धोखा दिया है। उन्होंने अनेक बार आप पर सत्याग्रहमें नई बातें सम्मिलित करनेके आक्षेप लगाये, कौम पर अनेक अत्याचार किये; इतने पर भी आप जनरलको नहीं समझे, यह कितने दुःखकी बात है? वह आदमी फिर आपको धोखा देगा। और फिर आप सत्याग्रहकी बात करेंगे। उस समय आपका विश्वास कौन करेगा? लोग इस तरह बार बार जेलमें जायं और बार बार नुकसान उठायें, यह कैसे चल सकता है? जनरल स्मट्स जैसे आदमीके साथ तो एक ही समझौता हो सकता है। कौम जो मांगे वही उनसे लिया जाय; उनसे वचन नहीं लिया जा सकता। जो आदमी वचन देकर उसे तोड़ दे, उसका अधिक विश्वास कैसे किया जाय?"

मैं जानता ही था कि ऐसी दलीलें कुछ स्थानों पर की जायंगी। इसलिए मुझे इनसे आश्चर्य नहीं हुआ। चाहे जितनी बार धोखा किया जाय, फिर भी जब तक किसीके वचन पर विश्वास न रखनेका स्पष्ट कारण न हो तब तक सत्याग्रही विश्वास रखता ही है। जिस सत्याग्रहीने दुःखको सुख मान लिया है वह जहां अविश्वासका कोई कारण न हो

वहां केवल दु:खके भयसे त्रस्त होकर विरोधी पर अविश्वास नहीं करेगा; परन्तु अपनी शक्ति पर विश्वास रखकर विरोधी पक्ष द्वारा दिये जानेवाले धोखेके बारेमें निश्चिन्त रहेगा और चाहे जितनी बार धोखा खानेके बाद भी विरोधी पर विश्वास रखेगा तथा यह मानेगा कि ऐसा करनेसे सत्यका बल बढ़ेगा और विजय अधिक निकट आयेगी। इसलिए जगह जगह सभायें करके मैं समझौतेको स्वीकार करनेकी बात अंतमें कौमके लोगोंको समझा सका और वे भी सत्याग्रहके रहस्यको अधिक समझने लगे। इस बारके समझौतेमें श्री एन्ड्रूज मध्यस्थ और साक्षी थे। साथ ही वाइसरॉयके प्रतिनिधिके रूपमें सर बेंजामिन रॉबर्टसन भी हाजिर थे। इस कारण इस समझौतेके भंगका कमसे कम भय था। यदि मैंने समझौता न करनेकी जिद पकड़ ली होती, तो वह कौमका दोष माना जाता; और छह महीने बाद कौमको जो विजय मिली, उसके मिलनेमें अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित होते। सत्याग्रही किसी समय अपनी ओर किसीको अंगुली उठानेका भी मौका नहीं देता — ऐसे ही अनुभवसे 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' वचन लिखा गया होगा। अविश्वास भी डरपोकपनकी निशानी है। सत्याग्रहमें निर्भयता निहित ही है। निर्भयको डर किस बातका? और जहां विरोधीके विरोध पर विजय पानी है, विरोधीका नाश नहीं करना है, वहां अविश्वास कैसा?

इसलिए कौमने समझौता स्वीकार कर लिया उसके बाद केवल यूनियन पार्लियामेन्टकी बैठककी राह देखना ही बाकी रहा। इस बीच कमीशन अपने कार्यमें लगा था। कमीशनके सामने हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे बहुत ही कम साक्षी गये थे। इस घटनासे इस बातका सचोट प्रमाण मिला कि उस समय सत्याग्रहियोंका कौम पर कितना अधिक प्रभाव था। सर बेंजामिन रॉबर्टसनने अनेक हिन्दुस्तानियोंको कमीशनके सामने गवाही देनेके लिए समझाया, किन्तु लड़ाईका बहुत ज्यादा विरोध करनेवाले कुछ लोगोंके सिवा सब कोई अडिग रहे। कमीशनके इस बहिष्कारका जरा भी बुरा असर नहीं हुआ। इससे कमीशनका काम कम हो गया और उसकी रिपोर्ट तुरन्त प्रकाशित हो गई। रिपोर्टमें कमीशनके सदस्योंने कौमकी ओरसे कोई मदद न मिलनेकी कड़ी टीका की। उन्होंने सिपाहियोंके बुरे बरतावका आक्षेप उड़ा दिया, परन्तु कौमकी जो जो मांगें थी उन सबको पूरा करनेकी

सरकारसे सिफारिश की। उदाहरणके लिए, तीन पौंडका कर अवश्य ह रद कर दिया जाना चाहिये। विवाहके बारेमें हिन्दुस्तानियोंकी मां स्वीकार की जानी चाहिये। दूसरी भी कुछ छोटी छोटी सुविधायें देने औ यह सब जल्दी ही करनेकी कमीशनने सिफारिश की। इस प्रकार कमीशनकं रिपोर्ट जनरल स्मट्सके कथनानुसार कौमके लिए अनुकूल सिद्ध हुई। श्री एन्ड्रूज इंग्लैण्डके लिए रवाना हुए। सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन भारतके लिए रवाना हो गये। हमें यह विश्वास दिलाया गया था कि कमीशनकी रिपोर्टके अनुसार आवश्यक कानून बनाया जायगा। वह कानून क्या था और कैसे बनाया गया, इसकी चर्चा अगले प्रकरणमें की जायगी।

२६
लड़ाईका अन्त

कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेके कुछ ही समय बाद जिस कानून-के द्वारा समझौता होनेवाला था, उसका मसौदा यूनियन गजटमें प्रकाशित हुआ। इस मसौदेके प्रकाशित होते ही मुझे केप टाउन जाना पड़ा। यूनियन पार्लियामेन्टकी बैठक वहीं होनेवाली थी, वहीं होती है। उस बिलमें नौ धारायें थीं। वह सारा बिल 'नवजीवन' के दो कालममें छप सकता है। उसके एक भागका सम्बन्ध हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुषोंके विवाहोंसे था। उसका आशय यह था कि जो विवाह हिन्दुस्तानमें कानूनी माने जायं, वे दक्षिण अफ्रीकामें भी कानूनी माने जाने चाहियें। परन्तु एकसे अधिक पत्नियां एक ही समयमें किसीकी कानूनी पत्नियां नहीं मानी जा सकतीं। बिलका दूसरा भाग तीन पौंडके उस करको रद करता था, जो गिरमिट पूरी होनेके बाद स्वतंत्र हिन्दुस्तानीके रूपमें दक्षिण अफ्रीकामें बसना चाहनेवाले प्रत्येक गिरमिटिया मजदूरको प्रतिवर्ष देना पड़ता था। बिलके तीसरे भागमें उन प्रमाणपत्रोंके महत्त्व पर प्रकाश डाला गया था, जो दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंको मिलते थे। अर्थात् उस भागमें यह बताया गया था कि जिन हिन्दुस्तानियोंके पास ऐसे प्रमाणपत्र हों, उनका दक्षिण

अफ्रीकामें रहनेका अधिकार किस हद तक सिद्ध होता है। इस बिल पर यूनियन पार्लियामेन्टमें लम्बी और मीठी चर्चा हुई।

दूसरी जिन बातोंके लिए कानून बनाना जरूरी नहीं था, उन सबकी स्पष्टता जनरल स्मट्स और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहारमें की गई थी। उसमें निम्न-लिखित बातोंकी स्पष्टता की गई थी: केप कॉलोनीमें शिक्षित हिन्दुस्तानियोंके प्रवेश-अधिकारकी रक्षा करना, खास इजाजत पाये हुए शिक्षित हिन्दुस्तानियोंको दक्षिण अफ्रीकामें प्रवेश करने देना, पिछले तीन वर्षोंमें (१९१४से पहले) दक्षिण अफ्रीकामें प्रवेश कर चुके शिक्षित हिन्दुस्तानियोंका दरजा तय करना और जिन हिन्दुस्तानियोंने एकसे अधिक स्त्रियोंसे विवाह किया हो उन्हें अपनी दूसरी पत्नियोंको दक्षिण अफ्रीकामें लानेकी इजाजत देना। इन सब प्रश्नोंसे सम्बन्ध रखनेवाले जनरल स्मट्सके पत्रमें एक और बात भी जोड़ी गई थी: "मौजूदा कानूनोंके बारेमें यूनियन सरकारने हमेशा यह चाहा है और आज भी वह चाहती है कि इन कानूनोंका अमल न्यायपूर्ण ढंगसे और आज जो अधिकार भोगे जा रहे हैं उनकी रक्षा करके ही हो।" यह पत्र ३० जून, १९१४को मुझे लिखा गया था। उसी दिन मैंने जनरल स्मट्सको जो पत्र लिखा, उसका आशय इस प्रकार था:

"आजकी तारीखका आपका पत्र मुझे मिला है। आपने धैर्य और सौजन्यके साथ मेरी बातें सुनीं, इसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं। हिन्दुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानून (इंडियन्स रिलीफ बिल) से और हमारे बीचके इस पत्र-व्यवहारसे सत्याग्रहकी लड़ाईका अंत होता है। यह लड़ाई सितम्बर १९०६में आरम्भ हुई थी। इससे हिन्दुस्तानी कौमको बड़ा दु:ख और पैसेका भारी नुकसान उठाना पड़ा है, और सरकारको भी इसकी वजहसे चिन्तातुर रहना पड़ा है।

"आप जानते हैं कि मेरे कुछ हिन्दुस्तानी भाइयोंकी मांग बहुत अधिक थी। अलग अलग प्रान्तोंमें व्यापारके परवानेके कानूनोंमें — उदाहरणके लिए, ट्रान्सवालका गोल्ड लॉ, ट्रान्सवाल टाउनशिप्स एक्ट तथा १८८५ का ट्रान्सवालका कानून नं. ३ — ऐसे कोई परिवर्तन नहीं हुए, जिनसे हिन्दुस्तानियोंको वहां निवासके संपूर्ण अधिकार प्राप्त हों, व्यापार

करनेकी छूट मिले और जमीनकी मालिकीका अधिकार मिले। इससे उन्हें असतोष हुआ है। कुछ हिन्दुस्तानियोंको तो इसलिए असतोष हुआ है कि उन्हे एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें जानेकी सपूर्ण स्वतत्रता नही मिली है। कुछको इसलिए असतोष हुआ है कि हिन्दुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानूनमे विवाह-सबधी जो छूट दी गई है उससे अधिक छूट दी जानी चाहिये थी। उन्होंने मुझसे यह माग की है कि ऊपरकी सारी बातोंको सत्याग्रहकी लड़ाईमें सम्मिलित कर दिया जाय। परन्तु मैंने उनकी यह माग स्वीकार नही की। इसलिए यद्यपि ये बातें सत्याग्रहकी लडाईमे सम्मिलित नही की गई, फिर भी इससे इनकार नही किया जा सकता कि भविष्यमें किसी दिन सरकारको इन बातों पर अधिक सहानुभूतिसे सोच-विचार कर हिन्दुस्तानियोंको ये राहतें देनी होंगी। जब तक यहा बसनेवाली हिन्दुस्तानी कौमको नागरिकोंके सपूर्ण अधिकार नही दिये जायगे, तब तक उसे सपूर्ण संतोष होनेकी आशा नही रखी जा सकती।

"अपने देशबन्धुओंसे मैंने कहा है कि आपको धीरज रखना होगा और प्रत्येक उचित साधनकी सहायतासे लोकमतको ऐसा शिक्षित करना होगा कि भविष्यकी सरकार हमारे इस पत्र-व्यवहारमे बताई गई शर्तोंसे अधिक आगे जा सके। मैं आशा करता हू कि जब दक्षिण अफ्रीकाके गोरे यह समझेंगे कि हिन्दुस्तानसे गिरमिटिया मजदूरोंका आना अब बद हो गया है और 'इमिग्रेशन एक्ट' से स्वतत्र हिन्दुस्तानियोंका भी दक्षिण अफ्रीकामें आना लगभग रुक गया है और जब वे यह समझेंगे कि यहाके राजकाजमे किसी तरहका हस्तक्षेप करनेकी हिन्दुस्तानियोंकी कोई महत्त्वाकाक्षा नही है, तब वे यह समझ जायेंगे कि मेरे बताये हुए अधिकार हिन्दुस्तानियोंको देने ही चाहिये और उसीमे न्याय समाया हुआ है। इस बीच इस प्रश्नको हल करनेमे पिछले कुछ माहसे सरकारने जो उदार भावना प्रकट की है वही उदार भावना, आपके पत्रमें बताये मुताबिक, आजके कानूनोंके अमलमें बनी रही, तो मेरा विश्वास है कि सपूर्ण यूनियनमे हिन्दुस्तानी कौम कुछ हद तक शातिका उपभोग करते हुए रह सकेगी और सरकारके लिए परेशानीका कारण नही बनेगी।"

उपसंहार

इस प्रकार आठ वर्षके अंतमें सत्याग्रहकी यह महान लड़ाई पूरी हुई और यह माना गया कि संपूर्ण दक्षिण अफ्रीकामें बसे हुए हिन्दुस्तानियोंको शान्ति मिली। १८ जुलाई, १९१४को दुःख और हर्षके साथ मैं इंग्लैण्डमे गोखलेसे मिलकर वहासे हिन्दुस्तान जानेके लिए दक्षिण अफ्रीकासे रवाना हो गया। जिस दक्षिण अफ्रीकामे मैंने २१ वर्ष निवास किया और असख्य कड़वे और मीठे अनुभव प्राप्त किये तथा जहा मैं अपने जीवनके लक्ष्यको समझ सका, उस देशको छोडना मुझे बहुत कठिन मालूम हुआ और मैं दुःखी हुआ। हर्ष मुझे यह सोचकर हुआ कि अनेक वर्षोंके बाद हिन्दुस्तान जाकर मुझे गोखलेके नेतृत्वमे देशकी सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा।

सत्याग्रहकी लड़ाईके इतने सुन्दर अतके साथ दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी वर्तमान स्थितिकी तुलना करने पर एक क्षणके लिए ऐसा प्रश्न मनमें उठता है कि उन्होने इतने बड़े बड़े दुःख किसलिए भोगे? अथवा मानव-जातिकी समस्याये हल करनेमें सत्याग्रहके शस्त्रकी उत्तमता कहा सिद्ध हुई? इस प्रश्नके उत्तरका हमे यहा विचार करना चाहिये। सृष्टिका ऐसा एक नियम है कि जो वस्तु जिस साधनसे प्राप्त होती है, उसकी रक्षा भी उसी साधनसे की जा सकती है। हिंसासे प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा हिंसा ही कर सकती है; सत्यसे प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा सत्यके द्वारा ही की जा सकती है। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी यदि आज भी सत्याग्रहके शस्त्रका उपयोग कर सकें, तो वे वहा सुरक्षित बन सकते है। सत्याग्रहमें यह विशेषता तो नहीं है कि सत्यसे प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा सत्यका त्याग करने पर भी हो सके। यदि ऐसा परिणाम सभव हो, तो भी वह वाछनीय नही माना जा सकता। इसलिए यदि दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति आज कमजोर पड़ गई है, तो हमें समझ लेना चाहिये कि इसका कारण उनके बीच सत्याग्रहियोंका अभाव है। मेरा यह कथन दक्षिण अफ्रीकाके वर्तमान हिन्दु-

स्तानियोके दोपका सूचक नही, परन्तु वहांकी वस्तुस्थितिका द्योतक है। व्यक्ति अथवा व्यक्तियोके समुदाय जो गुण उनके भीतर नही है, उन्हें वाहरसे कैसे ला सकते हैं? वहांके सत्याग्रही सेवक एकके बाद एक भगवानके पास चले गये। सोराबजी, काछलिया, थवी नायडू, पारसी रुस्तमजी इत्यादिका स्वर्गवास हो जानेसे वहाके हिन्दुस्तानियोंमे अब बहुत कम अनुभवी सत्याग्रही बच रहे हैं; जो सत्याग्रही जीवित हैं, वे आज भी वहांकी सरकारसे लड़ रहे हैं। और इस विपयमें मुझे कोई शका नही कि वे लोग समय आने पर—यदि उनमें सत्यका आग्रह हुआ तो—हिन्दुस्तानी कौमकी रक्षा कर लेंगे।

अतमे ये प्रकरण पढनेवाले पाठक इतना तो समझ ही गये होंगे कि यदि सत्याग्रहकी यह महान लड़ाई न लड़ी गई होती और अनेक हिन्दुस्तानियोंने जो बडे बड़े दु.ख सहन किये वे न किये होते, तो आज दक्षिण अफ्रीकामे हिन्दुस्तानियोका नाम-निशान न रह जाता। इतना ही नही, दक्षिण अफ्रीकामे हिन्दुस्तानियोंको जो विजय मिली, उसकी वजहसे ब्रिटिश साम्राज्यके दूसरे उपनिवेशोंमे बसे हुए हिन्दुस्तानी भी कम या ज्यादा मात्रामे बच गये। दूसरे कुछ हिन्दुस्तानी यदि न बच सके, तो इसमे दोप सत्याग्रहका नही है; बल्कि इससे यह सिद्ध होता है कि उन उपनिवेशोंमे बसे हुए हिन्दुस्तानियोंमे सत्याग्रहका अभाव है और हिन्दुस्तानमें उनकी रक्षा करनेकी शक्ति नही है। सत्याग्रह एक अमूल्य शस्त्र है, उसमें निराशा या पराजयके लिए कोई स्थान ही नही है—ऐसा यदि कुछ अशोमे भी इस इतिहाससे सिद्ध हो सका हो, तो मैं स्वयको कृतार्थ हुआ मानूगा।

सत्याग्रहकी लड़ाईके इतिहासकी मुख्य तारीखें और घटनायें

[गांधीजी अप्रैल १८९३ में २४ वर्षकी आयुमें हिन्दुस्तानसे रवाना होकर मईमें डरबन पहुंचे थे।]

१९०६

४ अगस्त — श्री डंकननें ट्रान्सवाल लेजिस्लेटिव कौंसिलमें एशियाटिक एमेन्डमेन्ट एक्ट प्रस्तुत करनेका प्रस्ताव रखा।

११ सितम्बर — जोहानिसबर्गके एम्पायर थियेटरमें हिन्दुस्तानियोंकी सार्वजनिक सभा हुई। सभामें उपस्थित प्रत्येक हिन्दुस्तानीने खूनी कानून पास होने पर उसके सामने सिर न झुकाकर जेल जानेकी सौगंध खाई। हिन्दुस्तानियोंका एक प्रतिनिधि-मंडल इंग्लैण्ड भेजनेका निर्णय किया गया।

१२ सितम्बर — खूनी कानून ट्रान्सवालकी धारासभामें पास हुआ।

१ अक्तूबर — हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल जोहानिसबर्गसे रवाना हुआ।

८ नवम्बर — प्रतिनिधि-मंडल उपनिवेश-मंत्री लॉर्ड एल्गिनसे मिला।

२९ नवम्बर — लंदनमें साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमेटीकी स्थापना हुई। सर लेपेल ग्रिफिन उसके प्रथम अध्यक्ष और श्री रिच उसके मंत्री नियुक्त किये गये।

१ दिसम्बर — प्रतिनिधि-मंडल इंग्लैण्डसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हुआ।

३ दिसम्बर — खूनी कानूनको ब्रिटिश सम्राट्ने अस्वीकार किया।

१९०७

२२ मार्च — साम्राज्य सरकार द्वारा अस्वीकृत खूनी कानूनको ट्रान्सवालकी नई पार्लियामेन्टने २४ घंटेमें पास कर दिया।

२ मई — खूनी कानूनको ब्रिटिश सम्राट्की स्वीकृति प्राप्त हुई।

१ जुलाई — खूनी कानूनका अमल शुरू हुआ और उसके अनुसार पहले प्रिटोरियामे परवाना देनेके लिए रजिस्ट्रेशन ऑफिस खोला गया। उस दिनसे यह ऑफिस चार माह तक गाव-गांव घूमा। लेकिन लगभग सर्वत्र हिन्दुस्तानियों द्वारा उसका बहिष्कार हुआ। ८००० की आबादीमें करीब ५०० आदमियोंने नाम दर्ज करा कर परवाने लिये। इस अवधिके बाद लोगोंकी गिरफ्तारिया शुरू हो गई।

१८ सितबर — माननीय गोखलेजीकी ओरसे एसोसियेशनको तार मिला: "आपकी लड़ाईका मैं अच्छी तरह निरीक्षण कर रहा हू। चिन्तातुर होकर उसमे मन एकाग्र कर रहा हू। हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हू। लड़ाईकी प्रशसा करता हूं। दृढतासे ईश्वरकी इच्छा पर आधार रखिये।"

२५ अक्तूबर — खूनी कानूनके विरुद्ध ट्रान्सवालके सात या आठ हजार हिन्दुस्तानियोंमे से ४५२२ आदमियोंके हस्ताक्षरोंवाली एक बड़ी अरजी एसोसियेशनकी ओरसे सरकारको भेजी गई।

३ नवम्बर — रजिस्ट्रेशनकी अरजिया लेना बंद कर दिया गया।

११ नवम्बर — पहले-पहल सत्याग्रहियोंकी गिरफ्तारी शुरू हुई।

२७ दिसम्बर — गाधीजीको कोर्टमें हाजिर रहनेकी चेतावनी मिली।

२८ दिसम्बर — जोहानिसबर्गमें श्री जॉर्डनने गाधीजीको ४८ घंटेमें ट्रान्सवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया।

१९०८

१० जनवरी — जोहानिसबर्गमें श्री जॉर्डनने गाधीजीको दो माहकी सादी कैदकी सजा दी।

३० जनवरी — सत्याग्रही कैदियोंको जेलसे रिहा किया गया। ट्रान्सवाल सरकारने हिन्दुस्तानियोंके सामने स्वेच्छासे परवाने लेनेका प्रस्ताव रखा और ऐसा हो तो खूनी कानून रद करनेका वचन दिया।

१० फरवरी — गाधीजी, श्री थबी नायडू और अन्य कुछ गाधी एशियाटिक ऑफिसकी ओर जा रहे थे। इतनेमें गांधीजी पर हमला हुआ।

२४ जून — सरकारने खूनी कानून रद करनेसे इनकार किया, इसलिए सत्याग्रहकी लड़ाई शुरू हुई। श्री सोराबजीने सबसे पहले नेटालसे ट्रान्सवालमें प्रवेश किया और २० जुलाईको वॉल्क्स्रस्टके मजिस्ट्रेटने उन्हें एक माहकी जेलकी सजा दी।

१२ जुलाई — लगभग २००० ऐच्छिक परवाने जोहानिसबर्गकी सार्वजनिक सभामें जलाये गये।

२२ जुलाई — लॉर्ड सेलबोर्नको साम्राज्य सरकारका तार मिला कि रोडेशियामें पास हुए कठोर एशियाटिक कानूनको ब्रिटिश सम्राट्की स्वीकृति नहीं दी जा सकती।

२२ अगस्त — ऐच्छिक परवानोंको कानूनी माननेवाला और दूसरे हिन्दुस्तानियोंको परवाने देनेवाला कानून ट्रान्सवाल पार्लियामेन्टके दोनों सदनोंमें पास हुआ।

३० अगस्त — प्रिटोरियाकी सार्वजनिक सभामें दूसरे २०० ऐच्छिक परवाने जलाये गये।

७ सितम्बर — गांधीजी वॉल्क्स्रस्टमें गिरफ्तार हुए। एक सप्ताह बाद उन पर जो मुकदमा चला, उसमें उन्हें दो महीनेकी सख्त कैदकी सजा मिली।

९ नवम्बर — आजसे पांच दिनमें २२७ हिन्दुस्तानी जेल गये। उनमें अनेक हिन्दू और मुसलमान व्यापारी थे। इस संख्यामें ६४ जोहानिसबर्गके, ९७ जर्मिस्टनके और ६० प्रिटोरियाके हिन्दुस्तानी थे।

१४ नवम्बर — इस सप्ताहमें २२७ हिन्दुस्तानी जेल गये। उनमें ६४ जोहानिसबर्गके, ९७ जर्मिस्टनके, ६० प्रिटोरियाके और ६ अन्य स्थानोंके थे।

१७ नवम्बर — ५३ तामिल हिन्दुस्तानी फेरी लगाते हुए पकड़े गये। उन्हें ७ दिनकी जेलकी सजा मिली।

२२ नवम्बर — कलकत्तेमें श्री अब्दुल जबरके सभापतित्वमें सत्याग्रहियोंके प्रति सहानुभूति दिखानेके लिए एक बड़ी सभा हुई।

१३ दिसम्बर — गांधीजी दो महीनेकी दूसरी बारकी कैद पूरी करके छूटे।

१९०९

९ जनवरी — डरबनमें 'मर्क्युरी' पत्रके प्रतिनिधिने गांधीजीसे मुलाकात की। उसमें गांधीजीने बताया कि ट्रान्सवालमें लगभग २००० हिन्दुस्तानी जेल हो आये हैं।

१५ जनवरी — गांधीजी नेटालसे वॉल्करस्ट जाते हुए तीसरी बार पकड़े गये। कुछ सप्ताह बाद उन पर मुकदमा चला, जिसमें उन्हें तीन माहकी कैदकी सजा मिली। उसी दिन हमीदिया सोसायटीके उपाध्यक्ष श्री उमरजी साले, जिनकी आयु ६५ वर्षकी थी, तथा श्री डेविड अर्नेस्ट वगैरा प्रसिद्ध हिन्दुस्तानियोंको तीन तीन मासकी सजा हुई।

२९ जनवरी — फ्रूगर्सडॉर्पमें खोलवड कान्फरेन्स हुई। उसने किसी भी तरहके परवाने न लेने, दुकानें बंद करके फेरी लगाने और जेल जानेका *निर्णय किया*।

६ फरवरी — ट्रान्सवालकी श्री हॉस्किनकी कमेटीने हिन्दुस्तानियोंको राहत देनेके बारेमें 'लंदन टाइम्स'को पत्र लिखा।

१० फरवरी — रोडेशियाका सरकारी कानून साम्राज्य सरकारने अस्वीकार कर दिया।

१२ फरवरी — पारसी रुस्तमजी और अन्य कुछ हिन्दुस्तानियोंको छह छह मासकी कैदकी सजा मिली।

६ मार्च — गोरोंने बॉक्सबर्ग, नॉरवुड, ब्लूमफोन्टीन, बार्बरटन तथा फ्रूगर्सडॉर्पमें लोकेशन स्थापित करनेका आन्दोलन आरंभ किया।

१० मार्च — डेलागोआ बेके मार्गसे सत्याग्रही कैदियोंको ट्रान्सवालसे निर्वासित करके हिन्दुस्तान भेजना शुरू हुआ।

१२ मार्च — प्रिटोरियामें श्रीमती पिल्लेके केसमें गांधीजीको हथकड़ी पहना कर कोर्टमें ले जाया गया।

५ अप्रैल — १४ सितम्बरसे १७ मार्च तक लिखे गये दस्तावेजोंकी ब्ल्यू बुक साम्राज्य सरकारने प्रकाशित की।

३० अप्रैल — श्री काछलिया और अन्य १८ सत्याग्रही जेलकी सजा पूरी करके बाहर आये।

... सत्याग्रही कैदियोंको जेलमें घी देना शुरू किया गया।

२४ मई — गांधीजीको तीसरी बार तीन महीनेकी कैदकी सजा हुई।

७ जून — जर्मिस्टनमें गोरोंकी लिटररी एण्ड डिबेटिंग सोसायटीमें गांधीजीने 'सत्याग्रहकी नीति' के बारेमें उल्लेखनीय भाषण दिया।

१६ जून — जोहानिसबर्गकी सार्वजनिक सभामें श्री ए० एम० काछलिया, श्री हाजी हबीब, श्री वी० ए० चेट्टियार और गांधीजीको इंग्लैण्ड भेजनेका तथा श्री एम० ए० कामा, श्री एन० जी० नायडू, श्री ई० एस० कुवाडिया और श्री एच० एस० पोलाकको हिन्दुस्तान भेजनेका निर्णय किया गया। इस प्रतिनिधि-मंडलके प्रस्थान करनेसे पहले ही श्री काछलिया, श्री कुवाडिया, श्री कामा और श्री चेट्टियारको गिरफ्तार कर लिया गया।

४ जुलाई — जोहानिसबर्गकी जेलसे छूटनेके बाद जेलमें भोगी हुई मुसीबतों और कष्टोंके कारण नागप्पनकी मृत्यु हो गई।

१६ जुलाई — 'मुजफ़री' स्टीमरमें १४ हिन्दुस्तानियोंको देश-निकाला दे दिया गया।

१ सितम्बर — बम्बईके शेरीफने दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईकी चर्चा करनेके लिए एक सार्वजनिक सभाका आयोजन किया था, लेकिन बम्बई सरकारने वह सभा नहीं होने दी। यह सभा फिर १३ दिन बाद हुई।

१६ सितम्बर — इंग्लैंडमें ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडलने लॉर्ड क्रूसे भेंट की।

१३ नवम्बर — इंग्लैंड गया हुआ हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मंडल 'किल्डोनन कैसल' नामक जहाजमें दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हुआ।

१ दिसम्बर — हिन्दुस्तानमें श्री रतन टाटाने दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहकी सहायताके लिए २५ हजार रुपयेका दान घोषित किया।

१९१०

२५ फरवरी — हिन्दुस्तानकी केन्द्रीय धारासभामें गोखलेजीका गिरमिट-प्रथा बन्द करनेका प्रस्ताव पास हुआ।

१ जून — दक्षिण अफ्रीकाका यूनियन बना उसी दिन श्री सोराबजी शापुरजी अडाजणिया सातवीं बार गिरफ्तार हुए।

४ जून — श्री कैलनबैकने लॉलेमें अपना फार्म सत्याग्रहियोंके रहनेके लिए दिया।

१३ जून — छब्बीस सत्याग्रही हिन्दुस्तानसे 'प्रसिडेन्ट' स्टीमरमें वापस दक्षिण अफ्रीका आये।

२६ जुलाई — पुर्तगाली सरकारकी मददसे हिन्दुस्तानियोंको देश-निकाला दे दिया गया। इस कदमके खिलाफ लॉर्ड एम्प्टहिलने लॉर्डसभामें जोरदार चर्चा की।

३० जुलाई — आज तक जो हिन्दुस्तानी बालक बालिग होने पर नाम दर्ज करवाकर परवाने ले सकते थे, उन्हें १९०८ का कानून पास होनेके बाद बालिग होने पर भी नाम दर्ज करवा कर परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया।

२२ अगस्त — छोटाभाईके लड़केका प्रसिद्ध टेस्ट केस जोहानिसबर्गकी कोर्टमें शुरू हुआ। उसमें छोटाभाई अंतमें जीत गये।

२८ सितम्बर — श्री पोलाक देश-निकालेकी सजा पाये हुए ८५ हिन्दुस्तानी सत्याग्रहियोंके साथ डरबन आये।

१६ अक्तूबर — स्वर्गीय नारायण स्वामी 'गर्टरूड वुरमन' नामक जहाजमें हिन्दुस्तानसे लौटते हुए डेलागोआ बेमें मर गये।

१९११

२५ फरवरी — यूनियन सरकारके गजटमें इमिग्रेशन रेस्ट्रिक्शन बिल प्रकाशित हुआ।

२५ अप्रैल — वह बिल पार्लियामेन्टके चालू अधिवेशनमें स्थगित रखा गया।

२० मई — शर्तोंके साथ सरकारसे समझौता हुआ और सत्याग्रहकी लड़ाई दूसरी बार मुलतवी रही।

[इसके बाद लगभग दो वर्ष तक कुछ शांति रही। १९१३ में फिरसे चौंकानेवाली घटनायें हुईं। उनका ब्योरा नीचे दिया जाता है:]

१९१३

२२ मार्च — हिन्दुस्तानियोंके धर्म पर आक्रमण किया गया। जस्टिस सर्लने एक फैसला ऐसा दिया, जिसमें मुसलमानी शरीअतके

अनुसार विवाहित बाई मरियमका उसके पतिके साथ हुआ विवाह गैर-कानूनी ठहराया गया।

३ अप्रैल — नया इमिग्रेशन बिल यूनियन गजटमें प्रकाशित हुआ।

३ मई — जोहानिसबर्गकी एक सार्वजनिक सभामें सत्याग्रह आरंभ करनेका निर्णय हुआ। उसी सप्ताहमें हिन्दुस्तानी स्त्रियोंकी ओरसे भी ऐसा निर्णय गृह-विभागके मंत्रीके पास भेजा गया।

२४ मई — गांधीजी और गृह-विभागके मंत्री श्री फिशरके बीच ३० अप्रैलसे जो पत्र-व्यवहार चला था वह प्रकाशित हुआ।

७ जून — ऊपरके पत्र-व्यवहारका बाकीका भाग प्रकाशित हुआ।

२१ जून — इमिग्रेशन एक्टको ब्रिटिश सम्राट्की स्वीकृति मिली।

१५ जुलाई — नये कानूनकी धारायें यूनियन गजटमें प्रकाशित हुईं।

१ अगस्त — नये कानूनके अनुसार तीनों उपनिवेशोंमें अपील बोर्ड रचे गये। इन बोर्डोंमें इमिग्रेशन अधिकारी भी एक एक सदस्य थे।

१३ सितम्बर — सत्याग्रहका आरंभ। सरकार और गांधीजीके बीच हुआ सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंकी चर्चा करनेवाला पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ।

२२ सितम्बरसे १५ अक्तूबर — नेटाल तथा ट्रान्सवालके अनेक सत्याग्रही स्त्री-पुरुष फेरी लगाकर अथवा सीमा लांघ कर गिरफ्तार हुए और जेल गये।

१६ अक्तूबर — तीन पौंडके करके विरुद्ध न्यूकैसलसे मजदूरोंकी हड़ताल शुरू हुई और सब जगह फैल गई।

६ नवम्बर — गांधीजीने हड़तालियोंके साथ ट्रान्सवालमें प्रवेश किया।

११ नवम्बर — गांधीजीको डंडीमें ९ महीनेकी कैदकी सजा मिली।

२८ नवम्बर — भारतके वाइसरॉयका भाषण।

११ दिसम्बर — कमीशन नियुक्त किया गया।

१९ दिसम्बर — गांधीजी, श्री कैलनबैक और श्री पोलाक जेलसे रिहा किये गये।

१९१४

१६ फरवरी — समझौतेके अनुसार यूनियनकी जेलोंसे सारे सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये।

१८ मार्च — कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई।

३ जून — इंडियन्स रिलीफ बिल प्रकाशित हुआ।

३० जून — सरकारसे अंतिम समझौता हुआ।

२० जुलाई — ४५ वर्षकी आयुमें गांधीजीने कस्तूरबा और कैलनबैकके साथ इंग्लैण्ड जानेके लिए दक्षिण अफ्रीका सदाके लिए छोड़ा।

परिशिष्ट – २

पूर्ति

[इस पुस्तकके पृ० ३१७–१८ पर छपे प्रसगके सदर्भमें श्री रावजी-भाई म० पटेल अपनी पुस्तक 'गाधीजीकी साधना' में (पृ० १८०–८३ पर, १९५९) बहनोंको जेलमें भेजनेके निर्णयके बारेमें इस प्रकार लिखते हैं:]

इसके सिवा, इस अतिम लड़ाईमें दो प्रचड शक्तिया और जुड़ गईं। आज तक किसी स्त्रीकी इच्छा हो तो भी उसे लड़ाईमें शरीक होनेसे रोक दिया जाता था। परन्तु इस अतिम लड़ाईमें हिन्दुस्तानी स्त्रियोंके स्त्रीत्व पर जो आक्रमण हुआ था, उसका विरोध करना जरूरी था। उसमे हिन्दुस्तानी स्त्रियोंके स्वाभिमानकी रक्षाका प्रश्न था। इसीलिए यह निर्णय किया गया कि इस लडाईमें स्त्रियोंको भी सम्मिलित होना चाहिये। इसी प्रकार गिरमिटिया मजदूरोंको भी आज तक सत्याग्रहकी लड़ाईमें सम्मिलित होनेकी सलाह या प्रेरणा नही दी गई थी; परन्तु तीन पौडके करकी लड़ाईमें भाग लेना उनका भी फर्ज हो गया। इसलिए हजारों गिरमिटिया मजदूर भी इस लड़ाईमें भाग लेनेकी स्थितिमें आ गये। इन दो बलोंकी इस अतिम लड़ाईमें वृद्धि हुई।

लेकिन इन बलोंका सर्जन करके उनका संग्रह करनेकी शक्ति होना भी आवश्यक था। गाधीजीको यह विश्वास तो था ही कि अनेक हिन्दुस्तानी बहनें जेल जानेको तैयार हो जायेगी। परन्तु स्वय मरे बिना स्वर्ग कौन जा सकता है? गांधीजीको लगा कि कस्तूरबा अगर इस लडाईमें सम्मिलित होनेको तैयार हो जाय और जेलमें जाय, तो सारी बाजी सुधर जाय। लेकिन बाको तैयार कैसे किया जाय? उन्हें आदेश देकर जबरन् तैयार करनेमें कोई सार नही है। बादमें इस प्रकार खड़े किये गये बल पर विश्वास कैसे रखा जाय? कस्तूरबामें ऐसी शक्ति तो है ही कि एक बार वह किसी बातको समझ ले तो फिर उससे सदा

चिपटी रहे। लेकिन प्रश्न यह है कि यह बात बाको समझा कर इसके विषयमें उसके भीतर दृढ़ता कैसे उत्पन्न की जाय? गांधीजी इस बारेमें सोचा करते थे; और मौका मिलने पर उन्होंने बाको समझाने और दृढ़ बनानेका कार्य सफलतासे पूरा किया।

एक दिन सदाके नियमके अनुसार पाखाने साफ करनेके बाद नहा-धोकर मैं करीब ९।। बजे रसोई-घरमें गया। गांधीजी भी उसी समय शालासे पढ़ाकर आये। कस्तूरबा तो वहां मौजूद थी ही। उन्होंने 'भाखरी' का आटा सान कर रख दिया था। वे भाखरिया बेलने लगीं और मैं उन्हें सेंकने लगा। गांधीजी दूसरा फुटकर काम कर रहे थे। अपना काम करते करते गांधीजीने एकाएक कस्तूरबासे पूछा:

"तुम्हें कुछ पता चला?"

"क्या?" जिज्ञासासे कस्तूरबाने पूछा।

गांधीजीने हंसते हुए उत्तर दिया: "आज तक तुम मेरी विवाहिता स्त्री थीं; लेकिन अब तुम मेरी विवाहिता स्त्री नहीं रहीं।"

कस्तूरबाने कुछ भौंहें चढ़ाकर कहा: "यह और किसने कह दिया? आप तो रोज ही नयी नयी समस्यायें ढूंढ़ निकालते हैं!"

गांधीजी हंसते हंसते बोले: "मैं कहा ढूंढ़ निकालता हूं? वह जनरल स्मट्स कहता है कि ईसाई विवाहोंकी तरह हमारा विवाह कोर्टमें दर्ज नहीं किया गया है, इसलिए वह गैर-कानूनी माना जायगा; तुम मेरी विवाहिता पत्नी नहीं किन्तु उपपत्नी (रखेली) मानी जाओगी।"

कस्तूरबाने क्रोधमें आकर कहा: "अपना सिर कहा जनरल स्मट्सने! उस निठल्लेको ऐसी बाते कहासे सूझ जाती हैं?"

गांधीजीने कहा: "लेकिन अब तुम बहनें क्या करोगी?"

"हम भला क्या कर सकती हैं?" कस्तूरबाने पूछा।

"हम पुरुष जैसे सरकारसे लड़ते हैं वैसे तुम भी लड़ो। अगर तुम्हें सच्ची विवाहिता पत्नी बनना हो और उपपत्नी न बनना हो और अपनी इज्जत तुम लोगोंको प्यारी हो, तो तुम भी हमारी तरह सरकारसे लड़ो।"

"आप लोग तो जेल जाते हैं!"

"तो तुम भी अपनी इज्जतके खातिर जेल जानेको तैयार हो जाओ।"

गांधीजीका यह वाक्य सुनकर कस्तूरबा आश्चर्यसे बोली: "क्या कहते हैं? मैं जेलमें जाऊं! स्त्रीसे कहीं जेलमें जाया जाता है?"

"क्यो भला? स्त्रियोंसे जेलमें क्यों नहीं जाया जा सकता? पुरुष जो सुख-दुःख भोगते हैं, उन्हें स्त्रिया क्यों नही भोग सकती? रामके पीछे सीता गई थी। हरिश्चन्द्रके पीछे तारामती गई थीं। नलके पीछे दमयती गई थी। और, सबने जंगलमें अपार दु.ख सहन किये थे।"

गांधीजीका विवेचन सुनकर कस्तूरबा बोल उठी: "वे तो सब देवताओं जैसे थे! उनके कदमों पर चलनेकी शक्ति हमारे पास कहां है?"

गांधीजीने गभीरतासे कहा: "इसमें क्या हुआ? हम भी उनके जैसा व्यवहार करें, तो उनके जैसे बन सकते हैं। हम भी देवता बन सकते हैं। रामके कुलका मैं हूं और सीताके कुलकी तुम हो। मैं राम बन सकता हूं और तुम सीता बन सकती हो। सीता धर्मके लिए रामके पीछे न गई होती और राज-महलमें बैठी रहती, तो उसे कोई सीता माता नही कहता। तारामती यदि हरिश्चन्द्रके सत्यव्रतके लिए बिकी न होती, तो हरिश्चन्द्रके सत्यव्रतमें दोष रह जाता। हरिश्चन्द्रको कोई सत्यवादी न कहता और तारामतीको कोई सती भी नही कहता। दमयती नलके पीछे जाकर जंगलके दुःख सहनेमें शामिल न हुई होती, तो उसे भी कोई सती नही कहता। उसी तरह अगर तुम्हे अपनी इज्जत बचानी हो, मेरी विवाहिता पत्नी कहलाना हो और उपपत्नी कहलानेके कलकसे मुक्त होना हो, तो तुम सरकारसे लड़ो और जेल जानेके लिए तैयार हो जाओ।"

कस्तूरबा चुप रही। मैं देख रहा था कि बा इसका क्या उत्तर देती है। दोनोंकी बातचीत सुननेमें मुझे आनद आ रहा था। इतनेमें कस्तूरबा बोल उठी: "तो आपको मुझे जेल भेजना है, यही बात है न? अब इतना ही बाकी रहा है। ठीक है, मैं जाऊंगी। लेकिन जेलका भोजन मुझे माफिक आयेगा?"

"मै नही कहता कि तुम जेल जाओ। तुम्हें अपनी इज्जतके खातिर जेल जानेकी उमग हो तो जाओ। और जेलका भोजन माफिक न आये तो वहां फलाहार करना।"

"जेलमें सरकार फलाहार देगी?"

फलाहार पानेका उपाय बताते हुए गांधीजीने कहा: "सरकार फलाहार न दे तब तक उपवास करना।"

कस्तूरबाने हंसकर कहा: "अच्छा, यह तो आपने मुझे मरनेका ही रास्ता बताया है! मुझे लगता है कि जेल जाऊंगी तो मैं जरूर मर जाऊंगी।"

गांधीजी सिर हिलाते हुए खिलखिला उठे और बोले: "हा, हा, मैं भी यही चाहता हू। तुम जेलमें अगर मर जाओगी, तो मैं तुम्हें जगदम्बाके समान पूजूंगा।"

"अच्छा, तब तो मै जेल जानेको तैयार हूं।" कस्तूरबाने दृढ़तासे अपना निश्चय प्रकट किया।

गांधीजी खूब हंसे। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। कस्तूरबा किसी कामसे जरा बाहर गईं तो मौका देख कर गांधीजीने मुझसे कहा: "बाकी यही खूबी है कि वह मनसे या बेमनसे मेरी इच्छाका अनुसरण करती है।"

सूची

अन्य लेखकोंकी विशिष्ट पुस्तकें